Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर : मेरी दृष्टि में

भाग : २

भगवान श्री रजनीश

पहलगांव में सितम्बर २४ से अक्टूबर २, १९६९ के बीच आयोजित शिविर में भगवान श्री रजनीश द्वारा दिये १२ प्रवचनों एवं प्रश्नोत्तरों का संकलन। श्रीनगर में दिये पहले १३ प्रवचन एवं प्रश्नोत्तर भाग : १ में प्रकाशित।

रजनीशधाम
प्रकाशन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

© १९८४ रजनीश फाउन्डेशन इंटरनेशनल
रजनीशपुरम ओरेगॉन ९७७४१ यू० एस० ए०

सर्वाधिकार सुरक्षित

रजनीश फाउन्डेशन इंटरनेशनल की पूर्वलिखित अनुमति के बिना पूर्ण या आंशिक सामग्री को पुनः प्रकाशित करना प्रतिबंधित है।

प्रकाशक
स्वामी सत्य बोधिसत्व
रजनीशधाम
१७, कोरेगांव पार्क,
पूना ४११००१ (महाराष्ट्र)

संकलन
स्वामी योग चिन्मय

संपादन एवं संयोजन
स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

प्रथम संस्करण : अगस्त १९७१
द्वितीय संस्करण : जुलाई १९७४ प्रतियां : २०००
तृतीय संशोधित संस्करण : अप्रैल १९८४ प्रतियां : २०००
(दो भागों में)

मूल्य : रु० २५ (पच्चीस)

मुद्रक
पुष्प प्रिंट सर्विसेज
शाहदरा, दिल्ली ११००५३

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मुक्तिदाता महावीर

मेरी दृष्टि में महावीर या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों को त्यागी कहने में बुनियादी भूल है। इनसे बड़े भोगी खोजना असंभव है—अगर हम अर्थ समझ लें तो। त्याग का अर्थ है कुछ छोड़ना, भोग का अर्थ है कुछ पाना। महावीर से बड़ा भोगी असंभव है। क्योंकि जगत में जो भी है, सब उसका ही हो गया है। उसका भोग भी अनंत हो गया, उसका घर भी अनंत हो गया, उसकी श्वास भी अनंत हो गई, उसके प्राण भी अनंत हो गए, उसका जीवन भी अनंत हो गया है।

महावीर पर इतने दिनों तक बात करनी अत्यंत आनंदपूर्ण थी। यह ऐसे ही था, जैसे मैं अपने संबंध में ही बात कर रहा हूं। पराये के संबंध में बात की भी नहीं जा सकती। दूसरे के संबंध में कुछ कहा भी कैसे जा सकता है? अपने संबंध में ही सत्य हुआ जा सकता है। और महावीर पर इस भांति मैंने बात नहीं की, जैसे वे कोई दूसरे और पराये हैं। जैसे हम अपने आंतरिक जीवन के संबंध में ही बात कर रहे हों, ऐसी ही उन पर बात की है। उन्हें केवल निमित्त माना है, और उनके चारों ओर उन सारे प्रश्नों पर चर्चा की है, जो प्रत्येक साधक के मार्ग पर अनिवार्य रूप से खड़े हो जाते हैं। महत्त्वपूर्ण भी यही है।

महावीर एक दार्शनिक की भांति नहीं हैं, एक सिद्ध, एक महायोगी हैं। दार्शनिक तो बैठकर विचार करता है जीवन के संबंध में, योगी जीता है जीवन को। दार्शनिक पहुंचता है सिद्धांतों पर, योगी पहुंच जाता है सिद्धावस्था पर। सिद्धांत बातचीत है, सिद्धावस्था उपलब्धि है। महावीर पर ऐसे ही बात की है, जैसे वे कोई मात्र कोरे विचारक नहीं हैं। और इसलिए भी बात की है कि जो इस बात

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को सुनेंगे, समझेंगे, वे भी जीवन में कोरे विचारक न रह जाएं। विचार अद्भुत है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। विचार कीमती है, लेकिन कहीं पहुंचाता नहीं। विचार से ऊपर उठे बिना कोई व्यक्ति आत्म-उपलब्धि तक नहीं पहुंचता है।

महावीर कैसे विचार से ऊपर उठे, कैसे ध्यान से, कैसी समाधि से—यह सब बातें हमने कीं। कैसे महावीर को परम जीवन उपलब्ध हुआ और कैसे परम जीवन की उपलब्धि के बाद भी वे अपनी उपलब्धि की खबर देने वापस लौट आए, उस करुणा की भी हमने बात की। जैसे कोई नदी सागर में गिरने के पहले पीछे लौटकर देखे एक क्षण को, ऐसे ही महावीर ने अपने अनंत जीवन की यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पीछे लौटकर देखा है। लेकिन उनके पीछे लौटकर देखने को केवल वे ही लोग समझ सकते हैं, जो अपने जीवन की अंतिम यात्रा की तरफ आगे देख रहे हों। महावीर पीछे लौटकर देखें, लेकिन हम उन्हें तभी समझ सकते हैं, जब हम भी उनके जीवन के आगे के पड़ाव की तरफ देख रहे हों। अन्यथा महावीर को नहीं समझा जा सकता।

साधारणतः महावीर को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए। वह अतीत की घटना है। इतिहास यही कहेगा। मैं यह नहीं कहूंगा। साधक के लिए महावीर भविष्य की घटना है। उसकी अपनी दृष्टि से वह महावीर के होने तक आगे कभी नहीं पहुंचेगा। इतिहास की दृष्टि से अतीत की घटना है, पीछे बीते हुए समय की। साधककी दृष्टि से आगे की घटना है। उसके जीवन में आने वाले किसी क्षण में वह वहां पहुंचेगा, जहां महावीर पहुंचे हैं। और जब तक हम उस जगह न पहुंच जाएं, तब तक महावीर को समझा नहीं जा सकता है। क्योंकि हम उस अनुभूति को कैसे समझेंगे, जो अनुभूति हमें नहीं हुई है? अंधा कैसे समझेगा प्रकाश के संबंध में? और जिसने कभी प्रेम नहीं किया और प्रेम नहीं दिया, वह कैसे समझेगा प्रेम के संबंध में? हम उतना ही समझ सकते हैं, जितने हम हैं, जहां हम हैं। हमारे होने की स्थिति से हमारी समझ ज्यादा नहीं होती। इसलिए महापुरुष के प्रति अनिवार्य होता है कि हम नासमझी में हों। महापुरुष को समझना अत्यंत कठिन है, बिना स्वयं महापुरुष हो जाए। जब तक कि कोई व्यक्ति उस स्थिति में न खड़ा हो जाए, जहां कृष्ण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हैं, जहां क्राइस्ट हैं, जहां मुहम्मद हैं, जहां महावीर हैं; तब तक हम समझ नहीं पाते। और जो हम समझते हैं, वह अनिवार्यरूपेण भूल-भरा होता है।

इसलिए एक बात ध्यान में रखनी चाहिए, महावीर को समझना हो तो सीधे ही महावीर को समझ लेना संभव नहीं है, महावीर को समझना हो तो बहुत गहरे में स्वयं को समझना और रूपांतरित करना ज्यादा जरूरी है। लेकिन हम तो शास्त्र से समझने जाते हैं, तभी भूल हो जाती है। हम तो स्वयं के भीतर उतरेंगे, तो उस जगह पहुंचेंगे, जहां महावीर कभी पहुंचे हों, तभी हम समझ पाएंगे।

महावीर की जड़ प्रतिमा को, मृत प्रतिमा को, शब्दों में निर्मित रूपरेखा को मैंने बिलकुल ही अलग छोड़ दिया है। मैंने तो एक जीवित महावीर को पकड़ने की कोशिश की है। और यह कोशिश तभी संभव है, जब हम इतने गहरे में प्रेम दे सकें कि हमारे प्राण और उनके प्राण से एक हो जाएं तो ही वे पुनरुज्जीवित हो सकते हैं। और प्रत्येक बार जब भी कोई व्यक्ति कृष्ण, बुद्ध, महावीर के निकट पहुंचेगा, तब उसे ऐसे ही पहुंचना पड़ेगा। उसे फिर से प्राण डाल देने पड़ेंगे। अपने ही प्राण उंड़ेल देगा तो ही उसे दिखाई पड़ सकेगा कि क्या है।

—भगवान श्री रजनीश

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रवचन संकेत

मुक्तिदाता महावीर

अध्याय	पृष्ठ
१. महावीर : परम समर्पित व्यक्तित्व	१
२. महावीर : अस्तित्व की गहराइयों में	२७
३. महावीर : अनादि अनीश्वर और स्वयंभू अस्तित्व	८१
४. महावीर के मौलिक योगदान	१११
५. वासना : चक्र के बाहर महावीर-छलांग	१६०
६. महावीर : सत्य अनेकांत	१८८
७. महावीर : परम स्वातंत्र्य की उद्घोषणा	२२१
८. अनेकांत : महावीर का दर्शन-आकाश	२५७
९. जागा सो महावीर : सोया सो अमहावीर	२९७
१०. महावीर : आत्यंतिक स्वतंत्रता के प्रतीक	३२१
११. सुख, दुख और महावीर-आनंद	३४५
१२. महावीर : मेरी दृष्टि में	३७३

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर : परम समर्पित व्यक्तित्व

प्रवचन : १४, दिनांक : २४ सितम्बर, १९६९, पहलगांव

प्रश्न—महावीर को ऐसा कोई गुरु अथवा पंथ क्यों नहीं मिल सका, जिनके चरणों में महावीर आत्मसमर्पण कर सकते ? महावीर ऐसा क्या चाहते थे ?

जीवन में बहुत कुछ है, जो दूसरे से नहीं मिल सकता है। और जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सत्य है, सुंदर है, उसे दूसरे से पाने का कोई भी उपाय नहीं है। जो दूसरे से पाया जा सकता है, परम अर्थों में उसका कोई मूल्य नहीं हो सकता, क्योंकि जिसे हम दूसरे से पा लेते हैं, वह हमारे प्राणों से विकसित हुआ, हुआ नहीं होता। वह ऐसा ही है जैसे कि कागज के फूल कोई बाजार से ले आए और घर को सजा ले। वृक्षों से आए हुए फूलों की बात और है, वे जीवंत हैं। यह भी हो सकता है कि कोई उधार वृक्षों के फूल भी ले आए, तो भी वे मृत हो जाते हैं। थोड़ी-बहुत देर गुलदस्ते में धोखा दे सकते हैं जीवित होने का, लेकिन फिर भी वे जीवित नहीं हैं।

सत्य के फूल तो कभी भी उधार नहीं मिलते हैं। इसलिए जो भी सत्य को खोजने को निकला हो, वह गुरु को खोजने नहीं निकलता है। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए। जो सत्य को खोजने निकला है, वह गुरु को खोजने नहीं निकलता है। हां, असत्य को कोई खोजने निकला हो तो गुरु की खोज बहुत जरूरी है। सत्य की खोज में गुरु एकदम अनावश्यक है। सत्य की खोज में गुरु अनावश्यक है, लेकिन शिष्यत्व, सीखने की क्षमता, एटिट्यूट आफ डिसाइपलशिप बहुत कीमती है।

महावीर ने कोई गुरु कभी नहीं बनाया। असल में अगर कोई शिष्य होने को तैयार है, तो उसे गुरु बनाने की जरूरत ही नहीं है, तब सारा जीवन ही गुरु बन जाता है। जो व्यक्ति सीखने को तैयार है, वह सब जगह से सीख लेता है—उन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जगहों से भी, जहां सीखने की कोई उम्मीद न हो। गुरु तो बनाते ही वे हैं, जिनके शिष्य होने की क्षमता बड़ी छोटी है। जो सबके शिष्य नहीं हो सकते हैं, वे गुरु बनाते हैं। जो इस अनंत जीवन से नहीं सीख सकते, वे किसी एक को पकड़ कर सीखने की कोशिश करते हैं! और जो अनंत से न सीख सकता हो, वह एक से सीख सकेगा, इसकी कोई संभावना नहीं है, क्योंकि अनंत भी जिसे सिखाने में असमर्थ है, उसे एक कैसे सिखा सकेगा?

असली सवाल सीखने की क्षमता का है। और जिसके पास सीखने की क्षमता है, वह गुरु नहीं बनाता, सीखता चला जाता है, क्योंकि गुरु बनाना बंधना है। गुरु बनाना एक तरह का बंधन निर्मित करना है। वह इस बात की चेष्टा है कि सत्य पाएंगे तो इस व्यक्ति से, और कहीं से, सब तरफ से अंधे हो जाएंगे। सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है कि किसी एक व्यक्ति से प्रवाहित हो रही हो। सत्य तो पूरे जीवन पर छाया हुआ है। अगर हम सीखने को तत्पर हैं, उत्सुक हैं, रिसेप्टिव हैं, ग्राहक हैं तो सत्य सब जगह से सीखा जा सकता है। एक गुरु लाख समझाए कि जिंदगी असार है, और एक गुरु लाख समझाए कि कल मौत आ जाएगी, चेत जाओ, और अगर हम सीख न सकते हों तो आवाज कान में सुनाई पड़ेगी और समाप्त हो जाएगी। और अगर कोई सीख सकता है तो एक वृक्ष से गिरते हुए सूखे पत्ते को देखकर भी सीख सकता है कि जिंदगी असार है। और अभी जो हरा था, अभी सूख गया है; कल जो जन्मा था, आज मर गया है। और एक सूखा पत्ता गिरता हुआ भी एक व्यक्ति को जीवन की सारी व्यर्थता का बोध करा जा सकता है। लेकिन सीखने की क्षमता न हो तो यह बोध कोई भी नहीं करा सकता।

महावीर में सीखने की अद्भुत क्षमता है, इसलिए उन्होंने गुरु नहीं बनाया। गुरु खोजा भी नहीं, बस सीखने निकल पड़े, खोजने निकल पड़े। बीच में किसी व्यक्ति को लेना नहीं चाहा, क्योंकि उधार ज्ञान लेने की उनकी कोई आकांक्षा नहीं है।

और उधार भी कभी ज्ञान हो सकता है? और सब चीजें उधार हो सकती हैं, ज्ञान उधार नहीं हो सकता। ज्ञान तो उसको ही होता है, जो पाता है। दूसरे को देते ही व्यर्थ हो जाता है। इसलिए गुरुओं की कमी न थी महावीर के जीवन में, सब तरफ गुरु मौजूद थे। शास्त्रों की कमी न थी, शास्त्र मौजूद थे। सिद्धांतों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

की कमी न थी, सिद्धांत मौजूद थे। लेकिन महावीर ने सबकी तरफ पीठ कर दी, क्योंकि शास्त्र की तरफ मुंह करना और सिद्धांत की तरफ या गुरु की तरफ, बासे और उधार के लिए उत्सुक होना है। वे निपट अपनी खोज पर चले गए। स्वयं ही पा लेना है। और जो स्वयं न मिले, वह दूसरे से मांगकर मिल भी कैसे सकता है? मिलने का मार्ग भी क्या है, रास्ता भी क्या है? दूसरे से ज्यादा-से-ज्यादा शब्द मिल सकते हैं, सिद्धांत मिल सकते हैं, सत्य नहीं। इसलिए महावीर ने किसी गुरु के प्रति समर्पण नहीं किया।

यह भी समझ लेने जैसी बात है कि समर्पण ही करना हो तो क्षुद्र के प्रति, सीमित के प्रति क्या! समर्पण ही करने कोई राजी हो गया हो तो समस्त के प्रति क्यों नहीं? सच तो यह है कि एक के प्रति समर्पण असल में समर्पण नहीं है। एक के प्रति समर्पण में शर्त है। जब मैं कहता हूं कि फलां व्यक्ति के प्रति मैं समर्पण करूंगा और फलां के प्रति नहीं; तो मैं शर्त रख रहा हूं; क्योंकि मैं मानता हूं कि यह ठीक है, दूसरा गलत है; इसने पा लिया है, दूसरे ने नहीं पाया है, इससे मिलेगा, दूसरे से नहीं मिलेगा; यही दे सकता है, दूसरा नहीं दे सकता है, तब समर्पण कैसा हुआ? सौदा हुआ। जिससे हमें मिलेगा, जिससे हम पा सकते हैं, इसकी आकांक्षा को ध्यान में रखकर अगर समर्पण किया गया हो तो समर्पण कैसा हुआ? बड़ा सौदा हुआ, लेन-देन हुआ।

समर्पण का तो अर्थ यही है कि बिना शर्त, बिना आकांक्षा के स्वयं को छोड़ देना।

तब कोई किसी व्यक्ति के प्रति कभी समर्पित नहीं हो सकता, समर्पित तो हो सकता है सिर्फ परमात्मा के प्रति। और परमात्मा का मतलब है समस्त। अगर परमात्मा भी एक व्यक्ति है, तो भी समर्पण नहीं हो सकता। जैसे अगर किसी ने परमात्मा को राम मान लिया है तो राम के प्रति समर्पण है उसका, कृष्ण के प्रति नहीं है।

एक बड़े प्रसिद्ध संत के जीवन में उल्लेख है कि उन्हें···वह राम के भक्त हैं, उन्हें कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया है, तो बांसुरी बजाते कृष्ण की मूर्ति को उन्होंने नमस्कार करने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं तो धनुर्धारी राम के प्रति ही झुकता हूं, और अगर चाहते हो कि मैं झुकूं तो धनुषबाण हाथ में ले लो! यानी झुकने वाला शर्त लगाएगा! वह यह भी शर्त लगाएगा कि तुम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कैसे खड़े होओ—धनुषबाण लेकर कि बाँसुरी लेकर ! तुम्हारी कैसी शक्ल हो, तुम्हारी कैसी आंखें हों—इस सबकी वह शर्त लगाएगा ! और समर्पण में शर्त हो सकती है ? यानी कोई यह कहे कि तुम ऐसे हो जाओ तो मैं समर्पण करूंगा तो समर्पण क्या रहा ? समर्पण का तो अर्थ ही सदा बेशर्त है, अनकंडीशनल।

तो मैं मानता हूं कि महावीर का समर्पण है, लेकिन किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, समस्त के प्रति। और समस्त के प्रति जिनका समर्पण है, उनका हमें समर्पण पता नहीं चलता। क्योंकि पता कैसे चलेगा ? हम तो व्यक्तियों के समर्पण को ही समझ पाते हैं कि यह आदमी फलां आदमी के प्रति समर्पित है, तो हमें समझ में आता है। लेकिन एक आदमी समस्त के प्रति समर्पित है—उस पत्थर के प्रति भी जो सड़क पर पड़ा है, और आकाश के तारे के प्रति भी, और फूल के प्रति भी, और आदमी के प्रति भी, और बच्चे के प्रति भी और जानवर के प्रति भी।

जो समस्त के प्रति समर्पित है, उसका समर्पण हमारी पहचान में नहीं आएगा, क्योंकि हमारा मापदंड सीमित, सौदे का है। जैसे अगर मैं एक व्यक्ति को प्रेम करूं तो समझ में आ सकता है कि मैं प्रेम करता हूं। लेकिन अगर मेरा समस्त के प्रति प्रेम हो तो समझ में आना मुश्किल हो जाएगा कि इस आदमी का शायद किसी से भी प्रेम नहीं है, क्योंकि हम प्रेम को पहचान ही तब पाते हैं, जब वह व्यक्ति से बंध जाए। अगर वह फैला हो, अनबंधा हो, असीम हो तो हम नहीं पहचान पाते।

इसलिए महावीर को समझने वाले सोचते रहे हैं कि महावीर ने किसी के प्रति समर्पण नहीं किया। यह बात ही झूठ है। असल में महावीर ने किसी के प्रति इसीलिए समर्पण नहीं किया कि किसी के प्रति समर्पण करने से शेष के प्रति असमर्पण हो जाता है। अगर टोटल सरेंडर है, अगर पूर्ण समर्पण है तो पूर्ण के प्रति ही हो सकता है। अपूर्ण के प्रति, सीमित के प्रति पूर्ण समर्पण नहीं हो सकता। अब तक किसी ने भी इस तरह नहीं सोचा है महावीर के प्रति कि वे समर्पित व्यक्ति थे। मैं कहता हूं कि वे बिल्कुल ही पूर्ण समर्पित व्यक्ति थे। लेकिन पूर्ण समर्पित व्यक्ति किसी के प्रति समर्पित नहीं होता। वे किसी के आगे सिर नहीं झुकाएंगे, इसलिए नहीं कि अहंकार है कि किसी के प्रति सिर नहीं झुका सकते हैं; बल्कि इसीलिए कि किसी के प्रति सिर झुकाना, किसी के प्रति सिर न

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

झुकाना बनता है। और जिसका सिर झुका ही हुआ है सबके प्रति, अब वह कैसे अलग-अलग खोजने जाए कि इसके प्रति झुकूं और उसके प्रति न झुकूं ? उसका किसी के प्रति झुकने का कोई सवाल नहीं है।

और ध्यान रहे, जो व्यक्ति किसी के प्रति झुकता है, वह किसी के प्रति सदा अकड़ा रहता है। और जो व्यक्ति किसी के चरण छूता है, वह किसी से चरण छुआने की आतुरता में रहता है। मैं एक बड़े संन्यासी के आश्रम में गया था। एक बड़े मंच पर संन्यासी बैठे हुए हैं, उनके मंच के नीचे ही छोटा तख्त है, उस पर दूसरे संन्यासी बैठे हैं, उनके तख्त के नीचे और संन्यासी बैठे हुए हैं। बड़े संन्यासी ने मुझसे कहा कि आप देखते हैं मेरे बगल में कौन बैठा हुआ है ? मैंने कहा, मुझे जरूरत नहीं है; कोई बैठा है जरूर, कोई जरूरत नहीं है। नहीं, उन्होंने कहा, आपको शायद पता नहीं, वे हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस थे। साधारण आदमी नहीं हैं, लेकिन बड़े विनम्र हैं, कभी मेरे साथ तख्त पर नहीं बैठते, हमेशा छोटे तख्त पर नीचे बैठते हैं।

मैंने कहा, वह मुझे दिखाई पड़ रहा है, लेकिन उनसे भी नीचे तख्त पर कुछ लोग बैठे हुए हैं, वे उनके प्रति विनम्र नहीं हैं ? उनसे नीचे तख्त पर बैठे हुए हैं। और मैंने कहा कि वे आपके मरने की प्रतीक्षा देख रहे हैं कि जब आप मरें तो वे इस तख्त पर बैठें और वे जो नीचे बैठे हैं, वे सरककर उनके बगल के तख्त पर बैठ जाएंगे। और वे भी लोगों से कहेंगे कि यह आदमी बड़ा विनम्र है, कभी मेरे साथ नहीं बैठता। और मैंने कहा कि यह आदमी विनम्र है, क्योंकि आपके साथ नहीं बैठता। आप कैसे आदमी हैं ? इसको भी तो सोचना जरूरी है कि आप कैसे आदमी हैं ? आप बड़े इगोइस्ट, बड़े अहंकारी आदमी मालूम होते हैं, कि इसके साथ बैठने से आप अविनय समझेंगे कि यह साथ बैठ गया तो यह आदमी अहंकारी है ! आप कैसे आदमी हैं, जो साथ बैठने में दूसरे के अविनय को समझेंगे, नीचे बैठने में विनय को ! लेकिन वह आदमी भी बिल्कुल नीचे नहीं बैठा हुआ है। वह प्रतीक्षा कर रहा है सिर्फ आपकी। सब चेले प्रतीक्षा करते हैं कि कब गुरु हो जाएं। और सब समर्पित व्यक्ति, किसी के प्रति समर्पित व्यक्ति दूसरों के समर्पण की मांग करते हैं। क्योंकि जो वे इधर देते हैं, वह दूसरे से मांग करते हैं।

यह निरंतर आपने देखा होगा कि जो आदमी किसी की खुशामद करेगा,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वह आदमी अपने से पीछे वाले लोगों से खुशामद मांगेगा। जो आदमी किसी की खुशामद नहीं करेगा, वह खुशामद भी नहीं मांगेगा। ये दोनों बातें एक साथ चलती हैं। जो आदमी बहुत विनम्रता दिखलाएगा, वह आदमी दूसरों से विनम्रता की मांग करेगा।

महावीर को समझना इस अर्थ में कठिन हो जाता है। वह किसी के प्रति समर्पित नहीं हैं, कोई उनका गुरु नहीं है, किसी के चरण नहीं छुए हैं, किसी के चरणों में नहीं बैठे हैं, किसी के पीछे नहीं चले हैं, तो समझना हमें कठिन हो जाता है। लेकिन मेरी अपनी दृष्टि यही है कि वे इतने समर्पित व्यक्ति हैं, वे समस्त के प्रति इस भांति झुके हुए हैं कि अब और किसके लिए झुकना है और क्यों झुकना है ?

एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि आप फलां-फलां आदमी को महात्मा मानते हैं कि नहीं ? मैंने कहा, तुम अगर मुझसे कहते कि यह आदमी को महात्मा मानते हैं कि नहीं, तो मैं जल्दी से राजी हो जाता। तुम कहते हो, फलां-फलां व्यक्ति को······अब उसमें यह बात छिपी है कि मैं एक व्यक्ति को महात्मा मानूं तो दूसरों को हीनात्मा मानूं, इसके सिवाय कोई चारा नहीं है। एक को महात्मा मानने में, दूसरे को हीनात्मा मानना ही पड़ेगा, नहीं तो उसे महात्मा कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। तो मैंने कहा कि मैं किसी को हीनात्मा मानने को राजी नहीं हूं, इसलिए महात्मा भी एकदम विदा हो जाता है मेरे मन से। मेरे लिए कोई महात्मा नहीं है, क्योंकि कोई हीनात्मा नहीं है। और एक को महात्मा बनाओ तो हजार, लाख, करोड़ को हीनात्मा बनाना जरूरी है, नहीं तो काम चलता नहीं। यानी एक महात्मा की रेखा खींचने के लिए करोड़ हीनात्माओं का घेरा खड़ा करना पड़ता है, तब एक महात्मा बन सकता है, बनाया जा सकता है। लेकिन यह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता ! यह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता कि एक महात्मा बनाने में करोड़ों लोगों को हीनात्मा की दृष्टि से हम देखना शुरू कर देते हैं।

महावीर किसी को न महात्मा मानते हैं, न किसी को हीनात्मा मानते हैं। महावीर इस विचार में ही नहीं पड़ते। वे एक-एक की गिनती ही नहीं कर रहे हैं। समस्त जीवन का सीधा समर्पण है, इसलिए व्यक्ति बीच में आता नहीं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और इसी तरह, इस संबंध में, इस प्रश्न से संबंधित दूसरी बात भी मैं आपको याद दिला दूं। चूंकि महावीर ने किसी को गुरु नहीं बनाया, इसलिए जितने लोगों ने महावीर को गुरु बनाया, उन सबने महावीर के साथ अन्याय किया है। क्योंकि समझ ही नहीं पाए उस आदमी को। यानी जिस आदमी ने किसी को कभी गुरु नहीं बनाया, वह कभी किसी को शिष्य बनाने की बात भी नहीं सोच सकता है। ये संयुक्त बातें हैं। क्योंकि जब वह अपने ही लिए नहीं यह मानता है ठीक कि किसी को गुरु की तरह ऊपर स्थापित करें, वह यह कैसे मान सकता है कि कोई उसे गुरु की तरह स्थापित करे? इसलिए महावीर के जो अपने को शिष्य और अनुयायी समझते हों, वे महावीर के साथ बुनियादी अन्याय कर रहे हैं। उस आदमी को समझ ही नहीं पाए हैं। जिस महावीर ने अपने से पहले चले आए किसी शास्त्र को मान्यता नहीं दी, तो जिन्होंने महावीर का शास्त्र बना लिया, उन्होंने महावीर के साथ जो व्यभिचार किया है, उसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। महावीर ने अपने से पहले के किसी···किसी भी व्यक्ति को ऐसा नहीं कहा कि उससे मुझे मिल जाएगा, या वह मुझे देने वाला हो सकता है। बात ही नहीं उठाई इसकी। मुझे ही पाना होगा। उस महावीर के पीछे लाखों लोग हैं, जो यह कहते हैं कि तुम्हीं हमें पहुंचा दो, तुम्हीं हमें मिला दो, तुम्हीं हमारा कल्याण करो, तुम्हीं हमारे नाव और खेवैया, जो कुछ हो तुम्हीं हो! उस महावीर के प्रति ये बातें, ऐसी अशोभन हैं। लेकिन ख्याल में नहीं आतीं। ख्याल में नहीं आतीं, क्योंकि हम महावीर को समझ ही नहीं पाए।

यह भी पूछा है उस प्रश्न में कि ऐसा महावीर क्या खोज रहे थे, जिसकी वजह से वह किसी गुरु के पास नहीं गए?

निश्चित ही, वह ऐसी कोई चीज खोज रहे थे, जो किसी गुरु से कभी किसी को नहीं मिली है। हां, कुछ चीजें हैं, जो गुरु से मिल जाती हैं। असल में जीवन का बाह्य ज्ञान सदा गुरु से ही मिलता है। गणित सीखनी है, भूगोल सीखनी है, इतिहास सीखना है, इन सबका कोई आत्म-ज्ञान नहीं होता। ऐसा नहीं होता कि एक आदमी आंख बंद करके बैठ जाए और भूगोल सीख जाए। और किसी गुरु के पास न जाए और भाषा सीख जाए, ऐसा नहीं होता। असल में जो चीजें जीवन के बाहर के फैलाव से संबंधित हैं, वे सब की सब किसी से सीखनी पड़ती हैं। लेकिन कुछ बात ऐसी भी है, जो बाहर के फैलाव से संबंधित ही नहीं है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जो मेरी अंतस् चेतना में ही छिपी है, उसे कभी किसी गुरु से नहीं सीखना पड़ता है। जैसे कोई भूगोल, सोचता हो कि मैं आंख बंद करके अंतर्यात्रा करूं और जगत की भूगोल जान लूं···जैसी गलती वह करेगा, ऐसा ही वह भी आदमी गलती करेगा, जो अंतर्यात्रा करना चाहता हो और किसी गुरु के पास चला जाए, जैसा भूगोल सीखने के लिए जाना पड़ता है—और किसी गुरु के पास सीखने की कोशिश करने लगे, वह भी वैसी ही भूल करेगा।

कुछ हैं, जो दूसरे से सीखा जाता है और स्वयं सीखा ही नहीं जा सकता।

और कुछ है, जो स्वयं ही सीखा जाता है और दूसरे से कभी भी नहीं सीखा जा सकता।

महावीर उसी परम सत्य की खोज पर थे, इसलिए कोई···वे किसी के पास नहीं गए, उन्होंने किसी को बीच में नहीं लेना चाहा। क्योंकि बीच में ले लेने से ही शुद्धता नष्ट हो जाती है। अगर मैं प्रेम की खोज में हूं तो मैं किसी को बीच में नहीं लेना चाहूंगा। अगर मैं सत्य की खोज में हूं तो भी मैं किसी को बीच में नहीं लेना चाहूंगा। अगर मैं सौंदर्य की खोज में हूं तो भी मैं अपनी आंखों से ही सौंदर्य देखना चाहूंगा, मैं दूसरों की आंखें उधार नहीं लेना चाहूंगा। क्योंकि वे आंखें दूसरों की होंगी, अनुभव दूसरों का होगा, मुझे क्या हो सकता है ? इसलिए महावीर उस परम सत्य की खोज में हैं, जो स्वयं में ही छिपा है। और किसी के पास न मांगने गए, न हाथ जोड़ने गए, न प्रार्थना करने गए। इससे कोई ऐसा न समझ ले कि बहुत अहंकारी व्यक्ति रहे होंगे। क्योंकि साधारणत: हमारा ख्याल यह है कि जो किसी के प्रति सिर नहीं झुकाता, नमस्कार नहीं करता, किसी के चरण में नहीं बैठता, किसी को आदर नहीं देता, किसी को सम्मान नहीं देता, वह आदमी बड़ा अहंकारी है। लेकिन जो आदमी किसी को सम्मान नहीं देता, जो आदमी किसी को आदर नहीं देता, वह आदमी किसी से आदर मांगता है, किसी से सम्मान मांगता है तो अहंकार की खबर मिलती है। लेकिन जो आदमी न आदर देता, न मांगता; उसे कैसे अहंकारी कहोगे ? जो न गुरु बनाता, न बनता, जो न शास्त्र मानता, न शास्त्र रचता, उसे कैसे अहंकारी कहोगे ? अत्यंत विनम्र व्यक्ति है, सीधी खोज पर गया है, सीधा रास्ता अपना खोज रहा है, किसी को साथ नहीं लेना चाहता। कोई साथ हो भी नहीं सकता। अकेले के रास्ते हैं, अकेले की यात्राएं हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्लोटिनस ने एक किताब लिखी है और उस किताब में उसने कहा है कि बहुत-सी यात्राएं थीं, जो सबके साथ हुईं, बहुत-सी खोजें थीं, जिनमें मित्र थे, बहुत-सी संपत्ति थी, जिसमें साथी-सहयोगी थे, फिर एक ऐसी खोज आई, जहां न मित्र थे, न संगी था, न कोई साथी था—फ्लाइट आफ दि अलोन टु दि अलोन : अकेले की उड़ान थी अकेले की तरफ। और कोई बीच में न था। और जरा भी बीच में ले लेते तो बस भटकन शुरू हो जाती थी। क्योंकि उड़ान ही अकेले की अकेले के तरफ थी।

इसलिए महावीर बहुत सचेत हैं। उतने ही लोग अगर महावीर को प्रेम करने वाले भी सचेत होते तो दुनिया ज्यादा बेहतर होती। बुद्ध को प्रेम करने वाले, क्राइस्ट को प्रेम करने वाले भी अगर इतने ही सचेत होते तो दुनिया बहुत बेहतर होती। तब दुनिया में धर्म होता--जैन न होता, हिंदू न होता, मुसलमान न होता, ईसाई न होता। क्योंकि हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन गुरुओं से बंधी हुई धारणा से पैदा होते हैं। अगर गुरु की धारणा ही टूट जाए तो दुनिया में आदमियत होगी, धर्म होगा, लेकिन पंथ न होंगे। और तब सारी वसीयत हमारी हो जाएगी।

आज एक ईसाई के लिए महावीर अपने नहीं मालूम पड़ते, क्योंकि कुछ लोगों ने उन्हें अपना बना रखा है। और जब कुछ लोग किसी को अपना बनाते हैं तो शेष लोगों के लिए वह पराया हो जाता है। आज क्राइस्ट जैनियों के लिए अपने नहीं मालूम पड़ते, क्योंकि कुछ लोगों ने उन्हें अपना बना लिया है। इसका मतलब यह हुआ कि जो लोग भी किसी बड़े सत्य को अपना बनाने का दावा करते हैं, वे शेष मनुष्य जाति को वंचित कर देते हैं, उस सत्य की संपदा से, उसकी वसीयत से, उसके हेरीटेज से।

अगर गुरु के आसपास पागलपन पैदा न हो, श्रद्धा पैदा न हो, अंध-भक्ति पैदा न हो, गुरुडम पैदा न हो, तो संप्रदाय विदा हो जाएं। तब क्राइस्ट भी हमारे हों, मुहम्मद भी हमारे हों, महावीर भी हमारे हों, बुद्ध भी हमारे हों, सारी दुनिया की समस्त जाग्रत चेतनाएं हमारी हों। और तब हम इतने समृद्ध हों, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन हम दरिद्र हैं और हम दरिद्र अपने हाथों से हैं।

महावीर दरिद्र नहीं होना चाहे, इसलिए उन्होंने किसी को नहीं पकड़ा। जो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

किसी को पकड़ेगा, वह दरिद्र हो जाएगा। वे पूर्ण समृद्ध हो गए, क्योंकि सब कुछ उनका था। कुछ न था, जिसका निषेध करना है; कुछ न था, जिसको इनकार करना है; कुछ न था, जिसको पकड़ना है। जो पकड़ेगा, वह निषेध करेगा। जो पकड़ेगा वह इनकार करेगा। जो एक को पकड़ेगा, वह दूसरे को छोड़ने की भी जिद करेगा।

महावीर समग्र के प्रति समर्पित व्यक्ति हैं।

और इसलिए, इसलिए ये सवाल उठ सकते हैं कि क्यों गुरु नहीं? क्यों शास्त्र नहीं? क्यों—प्राचीन तीर्थंकर हुए उनको—क्यों मान्यता नहीं? यह प्रश्न उठ सकता है। लेकिन यह प्रश्न व्यर्थ है, यह हमारे उस चित्त से उठता है, जो बिना गुरु बनाए, बिना शास्त्र पकड़े, बिना संप्रदाय बनाए एक क्षण नहीं रह सकता।

प्रश्न : इसी संबंध में जैसे वे महावीर की उन शर्तों का क्या अभिप्राय है? वह भी शर्त ऐसी होंगी कि सामने भिक्षा देने वाला ऐसा व्यक्ति होगा तो ही लूंगा, नहीं तो नहीं लूंगा। जैसे चंदन बाला जो हैं।

अभिप्राय है।

प्रश्न : हां, उसका क्या अर्थ? वह शर्त क्या है?

अभिप्राय है। महावीर, जैसा मैंने कहा—अगर मेरी बात समझ में आ गई हो तो ही अभिप्राय समझ में आ सकता है—जैसा मैंने कहा कि महावीर की खोज पूरी हो चुकी थी। इस जन्म में वे खोज नहीं कर रहे हैं, इस जन्म में वे सिर्फ बांटने आए हैं। इस जन्म में उनकी अपनी कोई खोज नहीं है।

असल में महावीर ने एक बहुत गहरा प्रयोग किया, जो कि मनुष्य जाति में कभी किसी ने नहीं किया था। महावीर ने यह प्रयोग किया है कि अगर मैं बांटने ही आया हूं और मेरा अपना कोई स्वार्थ नहीं है, तो अगर विश्वसत्ता मुझे भोजन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहे तो मैं भोजन भी क्यों लूं? अगर विश्व-सत्ता मुझे जीवन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहे तो मेरे जीवन का भी क्या अर्थ है? अब महावीर का कोई निजी स्वार्थ नहीं है, अब होने की कोई आकांक्षा नहीं है, जिसको हम जिजीविषा कहते हैं, लस्ट फार लाइफ, वह महावीर में नहीं है। इसलिए महावीर ने बड़े अनूठे काम किए।

महावीर भोजन लेने निकलते तो वह पहले अपने मन में एक संकल्प बना

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेते कि आज ऐसे घर में भोजन लूंगा, जिस घर के सामने दो गायें लड़ती हों, गायों का रंग काला हो, स्त्री खड़ी हो, एक पैर बाहर हो, एक पैर भीतर हो, आंख से आँसू बहते हों, होठों हर हंसी हो—ऐसा कुछ भी, वे एक धारणा कर लेते सुबह और तब वे भिक्षा मांगने निकलते। अगर यह धारणा पूरी हो जाती कहीं तो वे भिक्षा ग्रहण कर लेते उस द्वार पर, अन्यथा वे वापिस लौट आते।

इसका मतलब बहुत गहरा है। और जैन तो नहीं समझ सके कि मतलब क्या है। इसका मतलब यह है कि महावीर यह कह रहे हैं कि अगर विश्व की पूरी सत्ता की इच्छा हो तो ही मैं जीता हूं। अपनी तरफ से मैं जीता ही नहीं। तो अगर भोजन देना हो तो···यानी मैं मांगने नहीं जा रहा हूं अब, कोई मुझे दे रहा है, इसलिए भी मैं नहीं लूंगा, अब मैं किसी का अनुग्रह भी नहीं मान रहा हूं। अब तो परिपूर्ण जगत की सत्ता भी अगर आज मुझे भोजन देना चाहती हो तो ठीक, अन्यथा मैं वापिस लौट आता हूं। लेकिन मुझे कैसे पता चलेगा कि विश्व की सत्ता ने मुझे भोजन दिया? तो मैं एक शर्त ले लेता हूं, वह शर्त विश्व की सत्ता पूरी कर दे तो मैं समझूं कि भोजन उससे आया। न देने वाले को मैं धन्यवाद दूंगा, क्योंकि अब यह सवाल ही न रहा। न देने वाले को मैं धन्यवाद दूंगा, क्योंकि देने वाले का कोई सवाल न रहा। न मैं अनुगृहीत हूं किसी का।

और बड़ी गहरी बात है वह यह है कि जो व्यक्ति पूर्णता को उपलब्ध हुआ, लौटा, अब उसके लिए कर्म जैसी कोई चीज नहीं। और कर्म होता है इच्छा से, और कर्म का जन्म होता है आकांक्षा से। तो अब महावीर यह कहते हैं कि अब मैं यह भी इच्छा नहीं करता कि भोजन मुझे मिलना ही चाहिए, यह भी विश्व की सत्ता पर छोड़ देता हू। यह पूरे के प्रति समर्पण है। अगर······अगर पूरी हवाएं, पत्थर, पर्वत, आदमी की चेतना, जानवर, पशु, देवी-देवता, जो भी है; अगर उस पूरे की आकांक्षा है कि महावीर एक दिन और जी जाएं तो इंतजाम करो, अन्यथा अपना कोई इंतजाम नहीं। इसका मतलब गहरे में यह है······इसलिए मैं शर्त लगा देता हूं, क्योंकि मुझे पता कैसे चलेगा? मुझे पता कैसे चलेगा कि यह किसी ने मुझे भोजन दिया या पूरे जगत के अस्तित्व ने मुझे भोजन दिया?

तो महावीर बड़ी पेचीदा शर्तें लगाते हैं, जिनका पूरा होना भी मुश्किल मालूम होता है: कि अब एक स्त्री एक पैर बाहर किए हो, एक पैर भीतर किए

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हो, राजकुमारी हो, हाथ में हथकड़ियां पड़ीं हों, आंख से आंसू गिरते हों, मुंह से हंसी आती हो—ऐसा किसी द्वार पर मुझे कोई मिल जाएगा तो उस द्वार से मैं भोजन कर लूंगा। फिर जरूरी नहीं है कि उस द्वार पर भोजन देने वाला हो। उस द्वार पर महावीर को भोजन देने वाला हो, यह भी जरूरी नहीं। ऐसा द्वार मिल जाए आज, यह भी नहीं। ऐसी स्थिति बने यह भी जरूरी नहीं। महावीर बिल्कुल ही अनहोनी की कल्पना करके घर से निकलते हैं, अपनी भिक्षा के लिए निकलते हैं। यह अनहोना अगर पूरा हो जाए तो महावीर अपने मन में जानते हैं कि विश्व की सत्ता ने एक दिन जीने के लिए और दिया है। यानी मैं अपनी तरफ से, अपनी जिद से नहीं टिका हूं। जरूरत है अस्तित्व को तो मैं आ रहा हूं, नहीं तो मैं एक दिन भी जीने की आशा नहीं करता। अपनी तरफ से जीने का कोई अर्थ नहीं है।

इसलिए यह बड़ा सार्थक है। और ऐसा प्रयोग कभी किसी ने नहीं किया है जगत में। कभी किसी व्यक्ति ने नहीं किया। बहुत अनूठा है। आज भी जैन मुनि करते हैं, लेकिन श्रावक उनको पहले ही बता जाते हैं कि ऐसा-ऐसा कर लेना, या वे श्रावकों को बता देते हैं! और कुछ बधे हुए इंतजाम कर रखे हैं उन्होंने! एक घर के सामने दो केले लटके हों तो वहां हम भोजन ले लेंगे! और सब मुनियों का सबको पता चल जाता है कि वह किस तरह की बातें करते हैं तो दस-पांच घरों में लोग अपने घर के सामने केला लटका लेते हैं दो! एक स्त्री थाल लेकर खड़ी हो जाती है! एक स्त्री बच्चे को लेकर खड़ी हो जाती है! ऐसे दस-पांच बंधे हुए नियम हैं उनके, वे बधे हुए नियम दस घरों में पूरे कर दिए जाते हैं! एक घर का उनका काम बैठ जाता है और वह अपना ले लेते हैं। अब भी चलता है, दिगंबर जैन मुनि वैसा ही करते हैं रोज भोजन लेने के पहले। पच्चीस चौके सज जाते हैं, पच्चीस चौकों के सामने वह घूमता है, पच्चीस चौकों में उसकी बात पूरी हो जाती है। और सबके सीक्रेट्स, सबको पता रहते हैं। और वे सब पता हो गए हैं, सब हो जाता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं होती।

मगर महावीर ने जो प्रयोग किया था, बहुत ही अनूठा था। वह ऐसी हैरानी से भरी हुई धारणा लेकर चलते थे कि जिसमें उपाय कम ही था कि वह अपने आप घट जाए, जब तक कि विश्वसत्ता राजी न हो। इसलिए महावीर एक-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एक दिन, एक-एक दिन जी रहे हैं। अपने लिए नहीं, अगर जरूरत है परमात्मा को तो ही। और उनका पूरा जीवन इस बात का प्रमाण है कि जिस व्यक्ति को विश्वसत्ता के लिए जरूरत है, वह उसके लिए आयोजन करती है। पूरी विश्व-सत्ता भी मिलकर उसके लिए आयोजन करती है, जिसके होने का, जिसकी एक-एक श्वास का परिणाम है और जिसकी श्वास से, जिसके होने से, जिसके जीने से, जिसकी आंख से, जिसके चलने से कुछ घटित हो रहा है, जो कि कल्प-कल्प बीत जाएं तो दुबारा घटित मुश्किल से होता है। तो विश्वसत्ता को उसकी जरूरत है—उसके अस्तित्व की। एक-एक दिन और एक-एक दिन की लीज पर महावीर जी रहे हैं। यानी ऐसा भी नहीं है कि इकट्ठा एक दिन तय कर लिया तो बारह साल के लिए काफी हो गया। ऐसा भी नहीं है, एक-एक दिन की लीज है कि आज जी लूंगा, और इनकारी हो तो बात खतम है।

यह इस बात की खबर है कि यह आदमी…अपनी तरफ से जीने का कोई मोह, कहीं भी नहीं रह गया। बड़ी कीमती है वह बात। और कोई व्यक्ति चाहे तो बराबर वैसा जी सकता है। लेकिन तभी जी सकता है, जब अपने जीवन का मोह विदा हो गया हो। तब पूरा अस्तित्व हमारे प्रति मोहपूर्ण हो जाता है, यह मैं कहना चाहता हूं।

जैसे ही किसी व्यक्ति का अपने जीवन के प्रति मोह विदा हो जाता है, उसी क्षण सारा अस्तित्व उसके प्रति मोहपूर्ण हो जाता है।

और सारा अस्तित्व उसे बचाने के सब उपाय करने लगता है। और उसकी सब ढंग की, बेढंग की शर्तें भी स्वीकार करने लगता है। यानी उसके ढंग-बेढंग की शर्तों का फिर हिसाब नहीं रह जाता। फिर वह क्या कहता है, क्या नहीं कहता है, कैसा उठता है, कैसा बैठता है, सबकी स्वीकृति हो जाती है। सारा जगत एक गहरे प्रेम से उसे घेर लेता है और उसके लिए जो भी किया जा सके, वह करने का उपाय करता है।

बुद्ध, जिस दिन बुद्ध घर त्याग किए, उस रात जो कथा प्रचलित है, बहुत मधुर है। बुद्ध जब घर से चले तो उनका जो घोड़ा है, वैसा घोड़ा नहीं है दूर-दूर के लोकों में। उसके पैरों की टाप ऐसी है कि बारह-बारह कोस तक सुनी जाती है। आधी रात है, बुद्ध उस घोड़े पर सवार होकर चले हैं। तो घोड़े की टाप तो इतनी होगी कि सारा महल जाग जाए, सारा गांव जाग जाए। तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कहानी यह कहती है कि घोड़े की टाप के नीचे देवता फूल रखते चले जाते हैं, टाप फूलों पर पड़ती है, ताकि गांव में कोई जाग न जाए। क्योंकि बहुत-बहुत कल्पों के बाद कभी कोई व्यक्ति इतना बड़ा महाअभिनिष्क्रमण करता है। कभी ऐसा अवसर आता है अस्तित्व को कि कोई ऐसा व्यक्ति······।

फिर द्वार पर वे पहुचे हैं नगर के तो द्वार पर बड़ी-बड़ी कीलें हैं, जिन्हें पागल हाथी भी धक्के मारें तो खुल नहीं सकते हैं। और जब वे द्वार खुलते हैं तो उनकी इतनी आवाज होती है कि पूरा नगर सुनता है उनकी आवाज को। असल में सुबह उनकी आवाज को सुनकर ही नगर उठता है, जब वह द्वार खुलता है नगर का। अब वह द्वार खुल जाएगा और आवाज हो जाएगी और हो सकता है बुद्ध रोक लिए जाएं, और वह जो होनेवाला है, न हो पाए। तो देवता उस दरवाजे को ऐसे खोल देते हैं, जैसे वह बंद ही न था।

ये···ये जो सारी कहानियां हैं ये तो प्रतीक हैं, ये सब प्रतीक हैं। लेकिन सूचक ये इस बात के हैं···ऐसा कहीं घटा नहीं है, कहीं कोई घोड़े के नीचे फूल नहीं रख गया है। नहीं, सूचक हैं सिर्फ इस बात के कि हम यह कहना चाहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के लिए सारा जगत, सारा अस्तित्व मात्र सुविधा देने लगता है। क्योंकि इस अस्तित्व मात्र को इस आदमी की जरूरत पड़ जाती है। हम सबको अस्तित्व की जरूरत है। हम सबके लिए अस्तित्व की आवश्यकता है—हमारे लिए। श्वास चले इसलिये हवा की जरूरत है, प्यास बुझे इसलिए पानी की जरूरत है, गरमी मिले इसलिए सूरज की जरूरत है। सारे अस्तित्व की हमें जरूरत है अपने लिए, लेकिन कभी-कभी वैसा व्यक्ति भी पैदा होता है, जिसके लिए अस्तित्व को लगने लगता है कि उस आदमी के होने की जरूरत है। वह हो जाए, और थोड़ी देर रह जाए, और थोड़ी देर रह जाए वह। उसके लिए कोई असुविधा न आ जाए।

और महावीर इस बात को जानते हैं। और अस्तित्व के साथ मजे का जुआ खेल रहे हैं, ऐसा जुआ किसी आदमी ने नहीं खेला। यानी वह बिल्कुल ही दांव की बात है कि ठीक है अब, अब जिलाना हो तो आज ऐसा इंतजाम हो जाए, नहीं हो तो हम वापिस लौट आएंगे। इस वजह से वैसा भाव लेकर वे चलते हैं। न तो···लेकिन उसको नहीं समझ पाया जा सका, उसको समझा ही नहीं जा सका। ऐसा आदमी चुनौती दे रहा है परमात्मा को। यह चैलेंजिग है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऐसा आदमी कि ठीक है, रखना हो तो इतना इंतजाम, अन्यथा जाते हैं।

प्रश्न : महावीर को पारिवारिक या सामाजिक कौन-सा असंतोष था ? क्या उनका गृह-त्याग जबावदारियों से पलायन नहीं है ?

महावीर को कौन-सा पारिवारिक, सामाजिक असंतोष था ? और क्या उनका गृहत्याग उत्तरदायित्व से पलायन नहीं है ?

पहली बात तो यह कि महावीर को न कोई पारिवारिक असंतोष था और न कोई सामाजिक असंतोष था। इस जन्म में तो व्यक्तिगत असंतोष भी कोई नहीं था—इस जन्म में, जिससे दुनिया महावीर को पहचानी है। इस जन्म में तो व्यक्तिगत भी असंतोष कोई न था। लेकिन पिछले जन्मों में···

आमतौर से तीन तरह के असंतोष होते हैं, पारिवारिक असंतोष, सामाजिक असंतोष या नितांत वैयक्तिक असंतोष । पारिवारिक असंतोष आर्थिक हो सकता है, विवाह-दाम्पत्य का हो सकता है, शरीर की सुविधा-असुविधा का हो सकता है। वैसा असंतोष जिसे है, वैसा आदमी कभी धार्मिक नहीं बनता, क्योंकि वैसा आदमी उसी तरह के असंतोष को मिटाने में लगा रहता है। वैसा आदमी, जिसको हम कहें अत्यधिक भौतिक, मैटेरियलिस्टिक होता है।

फिर सामाजिक असंतोष है। व्यवस्था है समाज की, नीति है, नियम हैं, शोषण हैं, धन है, राज्य है, संपत्ति है, वितरण है, यह सब है; ऐसा असंतोष भी होता है। ऐसा व्यक्ति सामाजिक, क्रांतिकारी, सुधारक, रिफार्मिस्ट, रिवोल्यूशनरी, ऐसी दिशा में चला जाता है।

ऐसा व्यक्ति भी धार्मिक नहीं होता है।

धार्मिक तो होता है वह व्यक्ति जिसके असंतोष का न समाज से कोई संबंध है, न परिवार से कोई संबंध है, न संपत्ति से कोई संबंध है, न शरीर से कोई संबंध है। जिसके असंतोष की एक ही अर्थवत्ता है, एक ही अर्थ है और वह यह है कि मेरा होना मात्र अभी ऐसा नहीं है कि जिससे मैं संतुष्ट हो जाऊं। जिसका अल्टीमेट कन्सर्न जिसकी आखिरी चिंता इस बात की है कि मैं जैसा हूं, क्या ऐसा ही होना काफी है, पर्याप्त है ? अगर हिंसक हूं तो हिंसक होना ही काफी है, पर्याप्त है ? अगर क्रोधी हूं तो क्रोधित होना ही काफी है, पर्याप्त है ? अशांत हूं तो बस अशांत ही होना ठीक है ? दुखी हूं, अज्ञानी हूं, सत्य का कोई पता नहीं, प्रेम का कोई अनुभव नहीं, क्या बस ऐसा होना काफी है ? एक ऐसा असंतोष है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जो इस भीतरी जगत से उठता है, जहां व्यक्ति कहता है नहीं, अज्ञान नहीं, अंधकार नहीं, दुख नहीं, अशांति नहीं, क्रोध नहीं, घृणा नहीं, द्वेष नहीं, कोई नहीं; ऐसा जीवन चाहता हूं, जहां यह कुछ भी न हो, क्योंकि इसके रहते जीवन जीवन ही कहां है? इस आंतरिक असंतोष से धार्मिक व्यक्ति का जन्म होता है।

इस जीवन में तो महावीर का यह असंतोष भी नहीं है; क्योंकि धार्मिक व्यक्ति का जन्म हो चुका है। लेकिन पिछले जन्म में, पिछले जन्मों में उनका नितांत असंतोष, डिसकंटेंट जो है, वह आध्यात्मिक है; न तो सामाजिक है, न पारिवारिक है। आध्यात्मिक असंतोष बड़ी कीमत की चीज है। और जिसमें नहीं है, वह कभी उस यात्रा पर आएगा ही नहीं, जहां आध्यात्मिक संतोष उपलब्ध हो जाए। जिस असंतोष से हम गुजरते हैं, उसी तल का संतोष हमें उपलब्ध हो सकता है। अगर धन का असंतोष है तो ज्यादा से ज्यादा धन मिलने का संतोष उपलब्ध हो सकता है। लेकिन बड़े मजे की बात है, जिस तल पर हमारा असंतोष होगा, उसी तल पर हमारा जीवन होगा। प्रत्येक व्यक्ति को खोज लेना चाहिए कि मैं किस बात से असंतुष्ट हूं? तो उसे पता चल जाएगा कि वह किस तल पर जी रहा है।

अब यह हो सकता है कि एक आदमी महल में जी रहा है, लक्जरी में, विलास में, भोग में और एक आदमी लंगोटी बांधकर संन्यासी की तरह खड़ा है नंगा धूप में, सर्दी में, वर्षा में, इससे कुछ पता नहीं चलता कि कौन धार्मिक है। पता तो चलेगा—इस व्यक्ति के भीतर डिसकंटेंट क्या है? इस व्यक्ति के भीतर असंतोष क्या है? हो सकता है कि महल में जो है, उसके भीतर एक ही असंतोष है कि यह सब महल किस मतलब का है। यह धन किस मतलब का है। और उसे एक असंतोष पकड़े हुए हो कि मैं उसे कैसे पाऊं—वह जो मेरा स्वरूप है, वह जो मेरा अंतिम आनंद है—उसे मैं कैसे पाऊं? सोता है महल में, लेकिन असंतोष उसका उसी तल पर चल रहा है तो वह व्यक्ति आध्यात्मिक है, धार्मिक है।

और एक आदमी लंगोटी बांधे सड़क पर खड़ा है, मंदिर में प्रार्थना कर रहा है, पूजा कर रहा है, लेकिन प्रार्थना में मांग यही कर रहा है कि आज अच्छा भोजन मिल जाए, ठहरने को जगह मिल जाए, इज्जत मिल जाए, अनुयायी मिल जाएं, भक्त मिल जाएं, आश्रम मिल जाए। अगर इसी तरह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

की प्रार्थना मंदिर में भी कर रहा है तो वह आदमी धार्मिक नहीं है।

हमारा असंतोष हमारी खबर देता है कि हम कहां हैं।

महावीर इस जन्म में तो किसी असंतोष में नहीं हैं, लेकिन पिछले सारे जन्मों में उनके असंतोष की एक लंबी यात्रा है। वह निरंतर यही है कि मेरा अस्तित्व, मेरा सत्य, मेरी वह स्थिति, जहां मैं परम मुक्त हूं, न कोई सीमा है, न कोई बंधन है—वह कहां है? वह कैसे मिले? उसकी खोज जारी है।

ऐसी खोज वाला व्यक्ति भी, ऐसी खोज पूरी हो गई ऐसा व्यक्ति भी, दूसरों के पारिवारिक असंतोष को मिटाने के लिए उत्सुक हो सकता है, दूसरों के सामाजिक असंतोष को मिटाने के लिए भी उत्सुक हो सकता है। ऐसा व्यक्ति निपट संत भी रह सकता है, क्रांतिकारी भी बन सकता है, सुधारक भी बन सकता है। लेकिन ऐसे व्यक्ति की स्वयं की चिंता इन तलों पर नहीं है। उसकी चिंता एक अलग ही तल पर है। और बहुत कम लोग हैं, जिनके जीवन में आध्यात्मिक असंतोष होता है। अगर हम लोगों के सिर खोलकर देख सकें तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे, उनके असंतोष बड़े ही नीचे तल पर होते हैं। और जिस तल पर असंतोष होता है, उसी तल पर व्यक्ति होता है।

नीत्शे ने एक बहुत अद्‍भुत बात कही है। नीत्शे ने कहा है, अभागा होगा वह दिन, जिस दिन आदमी अपने से संतुष्ट हो जाएगा। अभागा होगा वह दिन, जिस दिन मनुष्य की आकांक्षा का तीर पृथ्वी के अतिरिक्त और किन्हीं तारों की तरफ न मुड़ेगा। आकांक्षाओं का तीर पृथ्वी को छोड़कर और किन्हीं तारों की तरफ न मुड़ेगा।

लेकिन हम सबकी आकांक्षाओं के तीर पृथ्वी से भिन्न कहीं भी नहीं जाते। और हम सबकी बड़ी अद्‍भुत बात है कि हम सब चीजों से अतृप्त होते हैं, सिर्फ अपने को छोड़कर। एक आदमी मकान से अतृप्त होगा कि मकान ठीक नहीं, दूसरा बड़ा मकान बनाऊं। एक आदमी अतृप्त होगा, यह पत्नी ठीक नहीं, दूसरी पत्नी चाहिए। एक आदमी अतृप्त होगा कि यह बेटा ठीक नहीं, दूसरा बेटा चाहिए। एक आदमी अतृप्त होगा ये कपड़े ठीक नहीं, दूसरे कपड़े चाहिए। लेकिन अगर हम खोजने जाएं तो ऐसा आदमी मुश्किल से मिलता है, जो न मकान से अतृप्त है, न कपड़ों से, न पत्नी से, न बेटों से, जो अपने से अतृप्त है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और जो कहता है यह, मैं आदमी ठीक नहीं, यह और तरह का आदमी चाहिए। जब कोई आदमी इस तरह की भाषा में अतृप्त होता है कि और तरह का आदमी चाहिए, अपने प्रति ही असंतुष्ट हो जाता है, तब उसके जीवन में धर्म की यात्रा शुरू होती है।

महावीर जरूर असंतुष्ट रहे हैं, वही यात्रा उन्हें उस तक लाई है, जहां तृप्ति और संतोष उपलब्ध होता है। क्योंकि जिस दिन व्यक्ति अपने को रूपांतरित करके उसे पा लेता है, जो वह वस्तुतः है, उस दिन परम तृप्ति का क्षण आ जाता है, उसके बाद फिर कोई अतृप्ति नहीं है। उसके बाद उस व्यक्ति की फिर कोई अतृप्ति नहीं है। फिर अगर वह जीता है एक क्षण भी, तो वह दूसरों की अतृप्ति को कैसे तृप्ति के मार्ग पर दिशा दे सके, उसके लिए ही जीता है, पर उसकी अपनी यात्रा समाप्त हो जाती है।

साथ ही उसमें एक बात और पूछी है कि क्या उनका गृह-त्याग दायित्व से पलायन नहीं है, एस्केप नहीं है?

गृह-त्याग महावीर ने कभी किया ही नहीं है। गृह का त्याग वे करते हैं, जिन्हें गृह के साथ पकड़, क्लिंगिग, आसक्ति होती है। महावीर ने तो वही छोड़ दिया है, जो घर नहीं था। यह हमें ख्याल में आना जरा मुश्किल होता है, क्योंकि हम तो मिट्टी-पत्थर के घरों को घर समझे हुए हैं। जो घर नहीं था, महावीर ने उसका ही त्याग किया है। इसलिए गृह-त्याग का तो शब्द ही भ्रांत है। असल में महावीर घर की खोज में निकले हैं, अगृह को छोड़कर गृह की खोज में चले गए हैं। जो घर नहीं था, उसे छोड़ा है और जो घर है, उसकी खोज में गए हैं। और हम जो घर नहीं है, उसे पकड़े बैठे हैं और जो घर हो सकता है, उसकी तरफ आंख बंद किए हुए हैं! एस्केपिस्ट हम हैं, पलायनवादी हम हैं।

पलायन का क्या मतलब होता है?

एक आदमी कंकड़-पत्थरों को पकड़ ले और हीरों की तरफ आंख बंद कर ले और दूसरा आदमी कंकड़-पत्थर छोड़ दे और हीरों की खोज पर निकल जाए—पलायनवादी कौन है? एस्केपिस्ट कौन है? क्या आनंद की खोज पलायन है? तो फिर दुख में जीना पलायन नहीं होगा? क्या ज्ञान की खोज पलायन है? तो फिर अज्ञान में जीना पलायन नहीं होगा? तो क्या परम-जीवन की खोज पलायन है? तो फिर क्षुद्र जीवन पलायन नहीं होगा?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पहली तो बात, महावीर ने कोई गृह-त्याग नहीं किया, वे गृह की खोज में ही गए हैं। और दूसरी बात, पलायन शब्द हमारे ख्याल में नहीं आता कि उसका मतलब क्या हो सकता है ?

आमतौर से आदमी सोचता है कि जो आदमी दायित्व से भागता है, उत्तरदायित्व से, जिम्मेदारी से, रिस्पांसिबिलिटी से, वह पलायनवादी है। ठीक सोचता है, लेकिन पक्का पता है कि रिस्पांसिबिलिटी क्या है, दायित्व क्या है ?

महावीर जैसा आदमी एक दुकान पर बैठकर दुकान चलाता रहे, यह दायित्व होगा जगत के प्रति, जीवन के प्रति ? महावीर जैसा व्यक्ति एक घर में बैठकर बाल-बच्चों को बड़ा करता रहे, यह दायित्व होगा जीवन के प्रति, जगत के प्रति ? इससे बड़ी और ज्यादा इरिस्पांसिबिलिटी क्या होगी ? महावीर जैसे व्यक्ति के लिए इस तरह के क्षुद्रतम घेरे में खड़े होकर क्षुद्र में ही सब खो देने से ज्यादा बड़ी और दायित्वहीनता क्या हो सकती है ?

बड़े दायित्व जब पुकारते हैं, छोटे दायित्व छोड़ देने पड़ते हैं। बड़े दायित्व की पुकार चूंकि हमारे जीवन में नहीं है, इसलिए हमें देखकर बड़ी मुश्किल होती है। हमें देखकर बड़ी मुश्किल होती है कि यह आदमी सब जिम्मेदारियां छोड़कर जा रहा है। यह आदमी बड़ी जिम्मेदारियां ले रहा है, यह हमारे ख्याल में नहीं है। और महावीर जैसा व्यक्ति कितनी बड़ी जिम्मेदारियां ले रहा है, उसका हमारे···उसको धारणा बनानी भी कठिन है, उसकी कल्पना करनी भी कठिन है। एक घर को आदमी छोड़ता दिखता है, करोड़ घर के लोग उसके घर के लोग हो जाते हैं। एक आंगन को छोड़ता है, सारे आकाश का विस्तार उसका आंगन हो जाता है। एक पत्नी को, एक बेटे को, एक प्रियजन को छोड़कर जाता है, सारा जगत उसका प्रियजन और मित्र हो जाता है। लेकिन हमने हमेशा उसे जो छोड़ा है, उस भाषा में सोचा है, जिस विस्तार पर वह फैला है, वह हमने सोचा नहीं ! और जिस एक को छोड़कर गया, उसे भी छोड़कर कहां गया ?

बुद्ध के जीवन में बड़ी मधुर घटना है कि बुद्ध लौटे हैं घर बारह वर्ष बाद। पत्नी नाराज है, क्रुद्ध है। वह व्यंग्य में, मजाक में—बुद्ध का बेटा एक दिन का था, जब वे छोड़कर गए थे रात, वह अब बारह वर्ष का हो गया है राहुल—उसे सामने कर देती है और व्यंग्य करती है, मजाक करती है, टांट करती है और कहती है कि यह तुम्हारे पिता हैं, पहचान लो। यह जो भिक्षा-पात्र लिये खड़े हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यही तुम्हारे पिता हैं, इन्हीं ने तुम्हें जन्म दिया था और एक ही दिन बाद ये भाग गए थे ! इनसे पूछ लो, तुम्हारे लिए क्या कमाई इन्होंने छोड़ी ? तुम्हारा दायित्व क्या निभाया है ? यही रहे तुम्हारे पिता—ये जो भिक्षापात्र लिये खड़े हैं, यही सज्जन तुम्हें जन्म देकर एक ही रात बाद भाग गए थे ! इन्होंने जगाकर भी मुझे नहीं कहा था कि मैं जाता हूं। इनसे अपना देय, भाग मांग लो, यह तुम्हारे पिता हैं ।

भिक्षु सन्नाटे में आ गए। आनंद घबड़ाने लगा कि इस पागल को पता नहीं कि किससे क्या कह रही है। बुद्ध से यह कह रही है ! और बुद्ध बहुत आनंदित हो राहुल को कहे—निश्चित ही बेटा मैं तेरा पिता हूं, हाथ फैला, कि जो संपत्ति मैंने तेरे लिए इकट्ठी की, तुझे दान कर दूं। लेकिन हाथ तो खाली हैं ! और बुद्ध की पत्नी हंसती है कि हाथ में कुछ है ! हाथ में कुछ दिखता तो नहीं, फिर भी बेटा हाथ फैला दे। और उस भीड़ में कैसा अपमानित बुद्ध को वह कर रही है ! राहुल ने, उस बारह वर्ष के लड़के ने हाथ फैला दिए हैं, बुद्ध ने अपना भिक्षापात्र उसके हाथ में दे दिया और कहा, तू दीक्षित हुआ।

तू दीक्षित हुआ, क्योंकि बुद्ध जैसा पिता तुझे ऐसी ही संपदा दे सकता है, जो तुझे भी बुद्ध बना दे।

तू दीक्षित हुआ। मैंने बहुत दिन भटका, तुझे क्यों भटकाऊं ? मुझे देर लगी भटकने में, तुझे क्यों भटकाऊं ?

यशोधरा तो रोने लगी। सब लोग चिल्लाने लगे कि यह क्या पागलपन हो रहा है। एक बेटा छोड़ गए थे, तुम घर से भाग गए हो, सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई, उस बेटे को भी लिये जाते हो ? तो बुद्ध कहते हैं कि और भी जिनको चलना हो, उनको भी ले जाने को मैं तैयार हूं। क्योंकि जो मैंने वहां पाया है, अपने बेटे को कैसे छोड़ जाऊं वहां ले जाने से ? जिस···जिस हीरों की खदान पर मैं पहुंच गया हूं, अपने बेटे को न ले जाऊँ ? उसे तो ले जाऊंगा, लेकिन और भी जिनको जाना हो, वे भी आ जाएं।

लगेगा हमें कि दायित्व छोड़कर बुद्ध भाग गए। लेकिन मैं कहता हूँ कि जैसा बुद्ध थे, वैसा ही रहकर दायित्व भी क्या पूरा कर लेते ? कितने बाप हुए हैं, और कितने बेटे हुए हैं, किसने क्या दायित्व पूरा कर लिया। लेकिन बुद्ध ने दायित्व पूरा किया है। एक बाप जो कर सकता था ज्यादा से ज्यादा बेटे के लिए वह बुद्ध ने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

किया है। और जो कुछ जाना था, जो पाया था, उसके सामने खोल दिया है। लेकिन इस दायित्व को पहचानना हमें मुश्किल हो जाए।

शायद दुख के भार को हस्तांतरित करने को ही हम दायित्व समझते हैं!

अज्ञान की यात्रा को और गति देने को ही हम दायित्व समझते हैं!

तो फिर पलायनवादी मालूम पड़ेंगे महावीर-बुद्ध जैसे लोग, लेकिन वे पलायनवादी नहीं हैं।

एक बात और समझनी चाहिए इस संबंध में कि पलायन वह करता है, जो दुखी हो; भागता वह है; जो दुखी हो; भागता वह है; जो डरता हो; भयभीत हो; भागता वह है, जिसे शक हो कि जीत न सकूंगा। ऐसा आदमी हमें भागता दिखता है। इस घर में आग लगी हो और एक आदमी इस घर के बाहर निकले, उसे आप भागने वाला तो न कहेंगे। उसे कोई यह तो नहीं कहेगा कि एस्केपिस्ट है। घर में आग लगी थी और यह बाहर निकल आया। कोई उसे न कहेगा कि यह पलायनवादी है—कि जब घर में आग लगी थी, तब तुम बाहर निकल आए और जब घर में आग नहीं थी, तब मजे से रहते थे! घर में आग लगी थी, तभी तो रहना था, तभी तो पता चलता कि तुम पलायनवादी तो नहीं हो। लेकिन घर लगी आग में कोई भागने वाले को पलायनवादी नहीं कहेगा। क्योंकि घर में आग लगी हो तो कोई भाग नहीं रहा है, भागने का सवाल ही नहीं है। घर में आग लगी हो तो विवेक की बात है कोई बाहर हो जाए। विवेकपूर्ण है, बाहर हो जाए। हो सकता है बाहर के लोग कहें कि तुम पलायनवादी हो। घर में आग लगी, बाहर आ गए।

महावीर जैसे व्यक्ति जहां से भी हटते हैं, भागते नहीं हैं। जहां-जहां आग है हटते हैं। हटना एकदम विवेकपूर्ण है। और इसलिए भी हटते हैं कि जहां-जहां दुख जन्मता है, जहां-जहां दुख उत्पन्न होता है, जहां-जहां व्यर्थ ही दुख बढ़ता है और फैलता है, वहां खड़े रहने का क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है? वहां से वे हटते हैं। हटते सिर्फ इसलिए हैं कि और बेहतर जगहें हैं, जहां आग नहीं है।

समझें कि आप बीमार पड़े हैं और आप इलाज कराने चले जाएं और डॉक्टर आपसे कहे, बड़े पलायनवादी हैं आप, बीमारी से भागते हैं? एस्केपिस्ट हैं। अब बीमारी आई है तो भोगें, जीएं, भागना क्या है? वह आदमी कहेगा, मैं बीमारी से नहीं भागता; लेकिन बीमारी में, बीमारी में खड़े रहने में न तो कोई बुद्धिमत्ता

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है, न कोई अर्थ है। मैं स्वास्थ्य की खोज में जाता हूँ, वह आनंदपूर्ण है। तो हम बीमार आदमी को कभी नहीं कहते कि तुम डॉक्टर के यहां मत जाओ, क्योंकि यह पलायन है। एक अंधेरे में खड़ा आदमी अगर सूरज की रोशनी की तरफ आता है तो हम नहीं कहते कि पलायनवादी है। लेकिन हम महावीर जैसे लोगों को क्यों पलायनवादी कहना चाहते हैं ?

उसका कारण है। उसका कारण सिर्फ यह है कि अगर हम महावीर जैसे लोगों को सिद्ध कर दें कि पलायनवादी हैं तो हम जहां खड़े हैं, वहां से हमें हटने की कोई जरूरत न रह जाएगी। हम निश्चित हो जाएंगे कि यह आदमी गड़बड़ था। हम जहां खड़े हैं, हम बिल्कुल ठीक हैं। हम सब मिलकर इसको तय कर दें कि यह आदमी सिर्फ भगोड़ा है, भागता है जिंदगी से। हम बहादुर लोग हैं, हम जिंदगी में खड़े हुए हैं। किस जिंदगी में खड़े हैं हम ? जहां जिंदगी है ही नहीं। और बहादुरी क्या है ? और उस बहादुरी से हमें क्या उपलब्ध हो रहा है ?

जिन लोगों ने महावीर को महावीर का नाम दिया, उन्होंने महावीर को पलायनवादी नहीं समझा था इसीलिए। शायद कारण तो यही है कि हम अपनी कमजोरी की वजह से जहां से नहीं हट सकते हैं, वहां से महावीर अपने साहस की वजह से हट जाते हैं। लेकिन हम अपनी कमजोरी को भी छिपाते हैं और जस्टीफाई करते हैं ! हम उसके भी न्याययुक्त कारण खोज लेते हैं ! और कोई नहीं मानना चाहता कि हम कमजोर हैं। और तब हमारे बीच से अगर एक बहादुर आदमी हटता हो···बड़ा मुश्किल है हिम्मत जुटाना। घर में आग लगी हो और घर में पचास आदमी हों और हर आदमी मानता ही न हो, कि घर में आग लगी है; वह तो जिस आदमी को आग लगी दिखाई पड़ती हो वह घर के बाहर निकलता हो, तो वे कहेंगे कि यह पलायनवादी कहां भागा चला जा रहा है ?

हमने दुनिया के श्रेष्ठतम लोगों को सदा पलायनवादी कहा है। उसका कारण है। स्टीफन ज्विग ने आत्महत्या की, लेकिन आत्महत्या करने के पहले उसने एक पत्र लिखा और उस पत्र में उसने लिखा कि ध्यान रहे, कोई यह न समझे कि मैं पलायनवादी हूं। और यह भी ध्यान रहे कि कोई यह न समझे कि मैं कायर या कावर्ड हूं। बल्कि मेरा नतीजा तो यह है जिंदगी-भर का, कि लोग चूंकि मरने की हिम्मत नहीं जुटा पाते, इसलिए जिंदा रहे चले जाते हैं। मैं

CC-0.Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भी बहुत दिन तक हिम्मत नहीं जुटा पाया, इसलिए मैं जिंदा रहे चला गया हूं। लेकिन अब मुझे साफ दिखाई पड़ गया है कि इस तरह की जिंदगी अगर रोज जीनी है, तो मैं इसको तोड़ता हूँ। और ध्यान रहे कि मैं तोड़ता हूं सिर्फ इसलिए कि मैं हिम्मतवर हूं; और तुम नहीं तोड़ते हो, क्योंकि तुम हिम्मतवर नहीं हो। लेकिन मैं जानता हू कि मेरे मरने के बाद लोग कहेंगे कि कावर्ड था, कायर था, पलायनवादी था—मर गया, भाग गया जिंदगी से।

ज्विग बहुत कीमती बात कह रहा है। और ज्विग उस जगह खड़ा है, जहां से या तो आदमी आत्महत्या करता है या आत्म-साधना में जाता है। ज्विग उस जगह खड़ा है, जहां जिंदगी व्यर्थ हो गई, जिसे हम जिंदगी कहते हैं : वही रोज सुबह का उठना, वही सांझ सो जाना, वही काम; वही पुनरुक्त वासनाएं, वही पुनरुक्त भोग, वही पुनरुक्त क्रोध, काम, लोभ; वही रोज-रोज, रिपीटेडली वही ! एक मशीन की तरह हम घूमते चले जाते हैं। ज्विग उस जगह पहुंच गया है, जहां वह कहता है कि अगर यही जिंदगी है तो मैं खतम करता हूं अपने को, और ध्यान रहे कि मैं कायर नहीं हूँ।

और मैं भी कहता हूं कि वह कायर नहीं है। हां, वह गलती करता है, कायर नहीं है। वह चूक गया एक बिंदु को जिसको महावीर नहीं चूकते। महावीर भी उस जगह पहुँचते हैं। दुनिया के सभी वे लोग जिनकी जिंदगी में क्रांति घटित होती है, एक दिन उस जगह पहुँचते हैं, जहां या तो आत्महत्या या साधना, इसके सिवाय विकल्प नहीं रह जाता। या तो जैसे हम हैं, उसको खत्म करो फिजिकली, शरीर से मिटा दो; या जैसे हम हैं, उसे बदलो, रूपांतरित करो आत्मिक अर्थों में, ताकि हम दूसरे हो जाएं। ज्विग आत्महत्या कर लेता है। कायर नहीं है, है तो बहादुर ही, लेकिन भूल से भरा है। क्योंकि आत्महत्या से क्या होगा ? जीवन की आकांक्षा फिर नए जीवन बना देगी। महावीर जैसे व्यक्ति आत्महत्या नहीं करते, आत्मा को ही रूपांतरित करने में लग जाते हैं। वे कहते हैं कि आत्महत्या करने से क्या होगा ? आत्मा को ही बदल डालें, नई ही आत्मा कर लें, नया ही जीवन कर लें।

लेकिन हमें दोनों भागे हुए लग सकते हैं। और इसके लगने के पीछे कारण भी है, क्योंकि सौ में से निन्यानवें लोग निश्चित ही भागते हैं। सौ संन्यासियों में निन्यानवें संन्यासी एस्केपिस्ट ही होते हैं। और उन निन्यानवें के कारण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सौवें को पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है। निन्यानवें तो इसीलिए भागते हैं कि बीमारी है, झगड़ा है, पत्नी मर गई है, दिवाला निकल गया है; कुछ ऐसे कारण हैं, जो उन्हें कहते हैं कि इस झझट से दूर हो जाओ। लेकिन ऐसे आदमी अगर इस झंझट से भागते हैं तो नई झंझटें खड़ी कर लेते हैं, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि वह आदमी तो वही का वही था, वह नई झंझटें निर्मित कर लेता है। ऐसा आदमी तो एस्केपिस्ट कहा जा सकता है, पलायनवादी, महावीर जैसा व्यक्ति नहीं। क्योंकि वह कोई नई झंझट खड़ी ही नहीं करता है और किसी भय से नहीं भागता है, किसी समझ, किसी ज्ञानपूर्ण चेतना में सीढ़ी बदल देता है, दूसरी सीढ़ी पर चला जाता है।

इसको मैं ऐसा मानता हूँ कि अगर कोई आदमी भाग रहा हो किसी से डरकर तो एक बात है, और एक आदमी भाग रहा हो कुछ पाने को, तो बिल्कुल दूसरी बात है। वह आदमी भी दौड़ता है जिसके पीछे बन्दूक लगी है और वह आदमी भी दौड़ता है, जिसे हीरों की खदान दिखाई पड़ गई है। लेकिन एक के पीछे बन्दूक का भय है, इसलिए भागता है; एक को हीरों की खदान दिख गई, इसलिए भागता है। दूसरे आदमी को भी आप भागने वाला नहीं कह सकते, एस्केपिस्ट नहीं कह सकते, पलायनवादी नहीं कह सकते। गतिवान कह सकते हैं, दौड़ने वाला कह सकते हैं; भागने वाला नहीं। किसी चीज से भाग नहीं रहा है वह, कहीं जा रहा है। कहीं से नहीं जा रहा है, कहीं जा रहा है। उसकी दृष्टि की जो एंफेसिस है, जो जोर है, वह जिस चीज से जा रहा है, वहाँ से उसका जोर नहीं है, जहाँ जा रहा है, वहाँ जोर है। दोनों हालत में वह जगह छूट जाती है, लेकिन दोनों हालतों में बुनियादी फर्क हैं।

महावीर कहीं से भी भागे हुए नहीं हैं। लेकिन निन्यानवें भागे हुए संन्यासियों में एक गया हुआ संन्यासी पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है, एकदम मुश्किल हो जाता है। और वह मुश्किल हमारी समझ में ऐसी बाधाएं खड़ी कर देती है कि उसके दो ही रास्ते रह जाते हैं: या तो हम सौ ही संन्यासियों को गया हुआ मान लेते हैं या हम सौ ही संन्यासियों को भागा हुआ मान लेते हैं, जबकि जरूरत इस बात की है कि हम ठीक से जांच-पड़ताल करें कि कोई आदमी पाने गया है या कोई आदमी सिर्फ छोड़कर भागा है। पाने गया हो तो जरूर कुछ चीजें छूट जाती हैं। आप सीढ़ियां चढ़ रहे हों, दूसरी सीढ़ी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पर पैर रखते हैं, पहली सीढ़ी छूट जाती है । पहली सीढ़ी से आप भागते नहीं हैं, सिर्फ पहली सीढ़ी छूटती है, क्योंकि दूसरी सीढ़ी पर पैर रखना जरूरी है । जो लोग ऊंची सीढ़ियों पर पैर रखते हैं, नीची सीढ़ियां छूटती हैं; भागते नहीं हैं, न वे छोड़ते हैं । और नीची सीढ़ियों से जो भागता है, छोड़ता है, डरता है; वह ऊंची सीढ़ी पर नहीं पहुंच पाता, और नीचे की सीढ़ियों पर उतर आता है । क्योंकि डरा हुआ, ऊंचा कहां जा सकता है । जो इतनी ऊंचाई से डर रहा है, वह और ऊंचाई पर और डर जाने वाला है । उसका भागना सिर्फ उसे और नीचे की सीढ़ियों पर ले आता है ।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अगर एक गृहस्थ भागकर संन्यासी हो जाए तो और बड़ा महागृहस्थ हो जाता है। उसकी गृहस्थी के जाल और भी ज्यादा हिपोक्रेट, पाखंडी हो जाते हैं। फिर भी वह पैसा इकट्ठा करता है, लेकिन कल वह कमाकर इकट्ठा करता था, अब वह कमानेवालों को फंसाकर इकट्ठा करता है । अब उसका जाल जरा गहरा, सूक्ष्म, चालाकी का हो जाता है । कल भी वह मकान बनाता था, अब भी बनाता है ! कल बनाए हुए मकानों को मकान कहता था; अब उनको आश्रम, मंदिर और सब नाम देता है ! कल जो करता था, वही अब करता है । कल भी अदालत में खड़ा होता था, अब भी अदालत में खड़ा होता है। कल भी अदालत में लड़ता था, अब भी अदालत में लड़ता है । लेकिन लड़ने का···कल व्यक्तिगत संपत्ति थी उसकी, आज आश्रम की संपत्ति है, उसके झगड़े हैं ।

भागा हुआ व्यक्ति और नीची सीढ़ियों पर उतर जाता है ।

लेकिन ऊपर की सीढ़ी पर जो जाएगा, उसकी भी सीढ़ी छूटती है । यह बारीक है, पहचान और ख्याल से हमें देखनी चाहिए । लेकिन यह हमें समझ में भी तब आएगी, जब हम अपनी जिंदगी में इसकी पहचान करें कि हम कहीं से भागे हैं या कहीं गए हैं ?

यहां आप सब मित्र आए हैं, कोई आ भी सकता है, कोई भागा हुआ भी हो सकता है । एक आदमी सिर्फ इसलिए भागा हुआ हो सकता है कि बेचैन हो गए, परेशान हो गए । पत्नी सिर खाए जाती है, दफ्तर में मुश्किल है, काम ठीक नहीं चलता है, चलो पंद्रह दिन के लिए सब भूल जाओ । ऐसा आदमी भी आ सकता है यहां मेरे पास, वह भागा हुआ आदमी है । वह आया हुआ दिखाई

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पड़ेगा, आ नहीं सकता । क्योंकि जिससे वह भागा है, वह उसका पीछा करेगा। वह सब भय, वे सब चिंताएं इस पहाड़ पर भी उसे घेरे रहेंगी। हाँ, थोड़ी-बहुत देर के लिए बातचीत में मुझसे भूल जाएगा, लेकिन फिर लौटकर सब पकड़ लेगा। और पन्द्रह दिन बाद, जिस उलझन से वह आया था, वह उलझन पंद्रह दिन में कम नहीं हो जाने वाली, पंद्रह दिन में और बढ़ गई होगी उसकी गैर-मौजूदगी में। पंद्रह दिन बाद वह उसी उलझन में फिर खड़ा हो जाएगा, और भी दुगनी परेशानी लेकर वहीं पहुंच जाएगा।

लेकिन कोई आया हुआ भी हो सकता है, कहीं से भागा हुआ नहीं है वह। कहीं कोई ऐसी बात न थी, जिससे भाग रहा है; बल्कि कहीं कुछ पाने जैसा लगा है, इसलिए चला आया है। यह आदमी आ सकेगा यहां सच में। और यहां आकर वह पीछे को सब भूल गया होगा, क्योंकि कहीं आया है, कहीं से भागा नहीं है। और यहां से लौटकर दूसरा आदमी भी होकर जा सकता है। और आदमी बदल जाए तो सारी परिस्थितियां बदल जाती हैं। मैं महावीर को पलायनवादी नहीं कहता हूं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर : अस्तित्व की गहराइयों में

प्रवचन : १५, दिनांक : २५ सितंबर १९६९, श्रीनगर

महावीर ने न तो नियंता को स्वीकार किया है, न किसी समर्पण को, न किसी गुरु को, न शास्त्र को, न परंपरा को, तो यह प्रश्न बिल्कुल ही स्वाभाविक उठ सकता है कि क्या यह महावीर का घोर अहंकार नहीं था ? क्या महावीर अहंवादी नहीं थे ?

यह प्रश्न स्वाभाविक है। और जो व्यक्ति परमात्मा को स्वीकार करता है; नियंता को, नियंता के प्रति समर्पण करता है, गुरु को स्वीकार करता है, गुरु के प्रति समर्पण करता है, शास्त्र-परंपरा के प्रति झुकता है, साधारणतः हमें विनम्र, विनीत निरहंकारी मालूम पड़ेगा। इन दोनों बातों को ठीक से समझ लेना उपयोगी है।

पहली तो बात यह कि परमात्मा के प्रति झुकने वाला भी अहंकारी हो सकता है। और यह अहंकार की चरम घोषणा हो सकती है उसकी कि मैं परमात्मा से एक हो गया हूं। अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा अहंकार की चरम घोषणा भी हो सकती है। यानी ऐसा हो सकता है कि मैं साधारण मनुष्य होने को राजी नहीं हूं। मेरा अहंकार इस बात के लिए राजी नहीं है कि मैं साधारण मनुष्य हूं, मैं परमात्मा होने की घोषणा के बिना राजी ही नहीं हो सकता हूं।

नीत्शे ने कहा है कि यदि ईश्वर है तो फिर एक ही उपाय है कि मैं ईश्वर हूं, और यदि ईश्वर नहीं है तो बात चल सकती है। अगर ईश्वर है तो फिर मेरे अहंकार को इसके नीचे उपाय नहीं है कोई कि मैं ईश्वर हो जाऊं। ईश्वर के प्रति समर्पण भी ईश्वर होने की अहंता से पैदा हो सकता है, एक बात।

दूसरी बात यह ख्याल रखनी चाहिए कि समर्पण में अहंकार सदा मौजूद ही है, समर्पण करने वाला सदा मौजूद ही है। समर्पण कृत्य है अहंकार का ही।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एक आदमी कहता है कि मैंने परमात्मा के प्रति स्वयं को समर्पित कर दिया है— यहां हमें लगता है कि परमात्मा ऊपर हो गया और यह नीचे, यह हमारी गलती है। समर्पण करने वाला कभी भी नीचा नहीं हो सकता, क्योंकि कल चाहे तो समर्पण वापिस लौटा सकता है, कल कह सकता है कि अब मैं समर्पण नहीं करता हूं। असल में कर्ता कैसे नीचे हो सकता है ? समर्पण में भी कर्ता सदा ऊपर है, वह कहता है, मैंने समर्पण किया है परमात्मा के प्रति। और अगर 'मैं' नहीं है तो समर्पण कोई कैसे करेगा ? किसके प्रति करेगा ? इसे समझ लें तो महावीर की स्थिति समझ में आ सकती है।

महावीर नितांत ही निरहंकार हैं। यानी उतना अहंकार भी नहीं है कि मैं समर्पण करूं। वह 'मैं' तो चाहिए न समर्पण करने को ! वह समर्पण करने का कर्तृत्व भाव चाहिए। और जैसा मैंने कहा कि जो व्यक्ति समर्पण करता है, वह समर्पण मांगता है। वह मांग एक ही सिक्के का हिस्सा है दूसरा। महावीर अगर समर्पण मांगते, करते न, तो अहंकारी होते, लेकिन महावीर ने समर्पण किया भी नहीं, मांगा भी नहीं। यह परम निरहंकारिता, अल्टीमेट इगोलेसनेस हो सकती है, और मेरी दृष्टि में है। यानी समर्पण करने योग्य भी तो अहंकार चाहिए। आखिर मैं ही समर्पित होऊंगा न ! नियंता को भी मैं ही स्वीकृत करूंगा न !

महावीर के अस्वीकार में ऐसा नहीं है कि नियंता नहीं है, ऐसा अस्वीकार है। अस्वीकार का कुल मतलब इतना ही है कि स्वीकार नहीं है। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है।

अस्वीकार का मतलब यह नहीं कि अस्वीकार पर जोर है, कि महावीर सिद्ध करते घूम रहे हैं कि कोई परमात्मा नहीं है, कोई ईश्वर नहीं है। न, यह भी सिद्ध करते नहीं घूम रहे हैं, उनके अस्वीकार का कुल इतना ही मतलब है—कि वे सिद्ध करते नहीं कि ईश्वर है, नियंता है—अस्वीकार जो है, वह फलित है। अस्वीकार घोषणा नहीं है, अस्वीकार पर जोर भी नहीं है वे सिर्फ स्वीकृति की बातें नहीं कर रहे हैं, न समर्पण की बात कर रहे हैं, न वे यह कह रहे हैं कि कोई गुरु नहीं है, घूम रहे हैं कोई शास्त्र नहीं हैं, कोई परंपरा नहीं है। यह भी वह नहीं कह रहे हैं। बस वे गुरु के प्रति समर्पित नहीं हैं, शास्त्र के प्रति समर्पित नहीं हैं, परंपरा के प्रति समर्पित नहीं हैं। यह फलित है। यह हमें दिखाई पड़ता है कि वे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समर्पित नहीं है, लेकिन समर्पण के लिए भी अहंकार चाहिए।

अगर कोई व्यक्ति नितांत अहंकारशून्य हो जाए तो कैसा समर्पण? कौन करेगा समर्पण? समर्पण कृत्य है, एक्शन है और कृत्य के लिए कर्ता चाहिए। और अगर कर्ता नहीं है तो समर्पण जैसा कृत्य भी असंभव है। फिर जब कोई कहता है मैंने समर्पण किया तो समर्पण से भी मैं को ही भरता है। समर्पण भी उसके मैं का ही पोषण है : मैं कोई साधारण नहीं हूं, मैं ईश्वर के प्रति समर्पित हूं।

एक संत के पास—तथाकथित संत कहना चाहिए—सम्राट अकबर ने खबर भेजी कि बड़ा उत्सुक हूँ दर्शन को, मिलने को, तुम्हें सुनने को। तथाकथित संत ने खबर भिजवाई वापिस कि हम तो सिर्फ राम के दरबार में झुकते हैं। हम ऐसे आदमियों के दरबारों में नहीं झुका करते, यह व्यक्ति क्या कह रहा है? यह कह रहा है कि हम तो सिर्फ राम के सामने झुकते हैं, ऐसे आदमियों के सामने नहीं झुका करते। और अब हम राम के दरबार के दरबारी हो गए, हम कोई आदमी के दरबार के दरबारी होंगे? ऊपर से दिखता है कि यह आदमी कितनी बढ़िया बात कह रहा है? लेकिन बड़े गहरे अहंकार से निकली हुई बात मालूम पड़ती है। अभी इसे आदमी और राम में फर्क है। और यह निरंतर यह भी कहे चला जा रहा है कि सब में राम हैं—अकबर भर को छोड़ देता है, अकबर भर में राम नहीं हैं! सबमें राम-सीता को देखा चला जा रहा है, लेकिन अकबर में अटक जाता है! और वहां उसका अहंकार घोषणा कर देता है कि मैं कोई ऐसा आदमी थोड़े ही हूं कि कोई आदमियों के दरबारों में बैठूं। मैं तो राम के दरबार में··· ! राम के दरबार में होने की यह घोषणा भी बड़े गहरे अहंकार की सूचना है।

इससे यह मत समझ लेना कि जिन्होंने भगवान को स्वीकार किया है, वे अहंकारशून्य होंगे। हो सकता है यह अहंकार की अंतिम चेष्टा हो। अहंकार भगवान को भी मुट्ठी में ले लेना चाहता है। उसकी तृप्ति नहीं होती संसार को मुट्ठी में लेने से, तो आखिर में भगवान को भी ले लेना चाहता है।

महावीर के पास एक सम्राट गया और उस सम्राट ने कहा कि सब है आप की कृपा से। राज्य है, संपदा हैं, अंतहीन विस्तार है, सैनिक हैं, सुख है, सुविधा है, शक्ति है, सब है, लेकिन इधर मैंने सुना है कि मोक्ष जैसी भी कोई चीज है, तो मैं उसको भी विजय करना चहता हूं! क्या उपाय है? कितना खर्च पड़ेगा?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सम्राट ने कहा, उपाय क्या है, खर्च इत्यादि क्या पड़ेगा ? सब लगा सकता हूं। हंसे होंगे महावीर क्योंकि एक आदमी ने···वह सम्राट है, उसने जीता है, उसने बहुत इतजाम कर लिया है, अब इधर खबर मिली है कि मोक्ष जैसी भी एक चीज है और ध्यान जैसी भी एक अनुभूति है तो उसके लिए भी खर्च करने को तैयार है ! यानी ऐसा न रह जाए कि कोई कहे कि इस आदमी को मोक्ष भी नहीं मिला, ध्यान भी नहीं मिला।

तो महावीर ने उससे कहा, जब खरीदने को ही निकले हो तो तुम्हारे ही गांव में एक श्रावक है, उसके पास चले जाना। उससे पूछ लेना कि एक सामायिक कितने में बेचेगा ? एक ध्यान कितने में बेचता है ? खरीद लेना। उसको उपलब्ध हो गया है। नासमझ सम्राट उस आदमी के घर पहुँच गया और बड़ा हैरान हुआ देखकर कि वह अत्यंत दरिद्र आदमी है। तो उसने सोचा इसको तो पूरा ही खरीद लेंगे, सामायिक का क्या सवाल है ! यानी इसमें कोई झंझट ही नहीं है। इस पूरे आदमी को ही चुकता खरीदा जा सकता है। यह तो कोई बात ही नहीं है, यह तो बड़ी सरल बात है। तो उससे उसने पूछा है कि एक सामायिक, महावीर ने कहा है कि खरीद लो उस आदमी से जाकर ! तो वह आदमी हंसने लगा, उसने कहा, चाहो तो मुझे खरीद लो, लेकिन सामायिक खरीदने का कोई उपाय नहीं है। सामायिक तो पानी होती है, उसे खरीदा नहीं जा सकता। लेकिन अहंकार उसको भी खरीदने निकलता है, भगवान को भी खरीदने निकलता है।

अहंकार भगवान को भी छोड़ नहीं देना चाहता मुट्ठी के बाहर। ऐसा कोई न कहे कि बस तुम्हारे पास धन ही धन है और कुछ भी नहीं, धर्म बिल्कुल नहीं है। अहंकार धर्म को भी खरीदना चाहता है ! लेकिन हमें यह दिखाई पड़ना बहुत मुश्किल होता है ! असल में कठिनाई क्या है ?

हमारे मन में दो चीजें हैं, या तो विनम्रता है या अहंकार है। विनम्रता अहंकार का ही रूप है, यह हमारे ख्याल में नहीं है। निरहंकार का हमें पता ही नहीं है।

अहंकार अहंकार की विधायक घोषणा है।

विनम्रता अहंकार की निषेधात्मक, निगेटिव घोषणा है।

और निरहंकार की कोई घोषणा नहीं है। विनम्रता की भी नहीं। इसलिए कोई महावीर को विनम्र नहीं कह सकता। यह बड़ा मुश्किल होगा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कहना। महावीर को विनम्र नहीं कहा जा सकता, क्योंकि विनम्र होता ही वही है, जिसके भीतर अहंकार होता है। हां, अहंकार को दबाता है, झुकाता है, मिटाता है, गलाता है। वह कहता है, मैं तो धूल से भी…पैरों में हूँ। लेकिन होता है? इससे फर्क नहीं पड़ता। उसके होने में रत्ती भर फर्क नहीं है। वह कहेगा, मैं धूल से भी…तेरे चरणों की धूल भी नहीं हूं—धूल से भी नीचे हूं, लेकिन हूं। होने की घोषणा जारी रहती है!

इसलिए हम अहंकारी को समझ सकते हैं, जो कहे कि सब कुछ मैं हूं। हम विनम्र को समझ सकते हैं, जो कहे कि मैं कुछ भी नहीं, आपके चरणों की धूल हूं। लेकिन निरहंकारी को हम नहीं समझ सकते। क्योंकि न तो वह यह घोषणा करने आएगा कि मैं सब कुछ हूं, और न वह यह घोषणा करने आएगा कि मैं आप के पैरों की धूल हूं। वह घोषणा ही नहीं करेगा, क्योंकि निर-हंकार की कोई घोषणा ही नहीं है, वह अघोषणा है।

तो महावीर जो नियंता, परमात्मा, गुरु, कोई चरण झुकने के लिए, इन सबके प्रति कोई…कोई संबंध नहीं रखते हैं। उसका कारण यह नहीं है कि अहंकारी हैं, उसका कारण कुल इतना है कि न वे अहंकारी हैं, न विनम्र हैं। और विनम्र न होने से हमको कठिनाई होती है, क्योंकि हम दो ही तल पर सोच सकते हैं, या तो विनम्र या अहंकारी। और हम भूल जाते हैं कि वे दोनों एक ही चीज की मात्राएं हैं। निरहंकारी को तौलना एकदम मुश्किल हो जाएगा। मुश्किल इसलिए हो जाएगा कि हमारे पास तौल ही नहीं है, तराजू ही दो का है, हमारे पास तराजू ही अहंकार का है। यानी हमें ऐसा लगता है कि जिस आदमी में कम अहंकार है, वह विनम्र है, जिसमें ज्यादा अहंकार है, वह अहंकारी है। लेकिन निरहंकार का मतलब ही और होता है। वह विनम्र भी नहीं होता, अविनम्र भी नहीं होता, असल में इस भाषा में वह होता ही नहीं है। और तब उसकी घोषणाएं इन तलों पर प्रकट नहीं होतीं। फिर फलित अर्थ हम लेते हैं।

महावीर नियंता के प्रति, गुरु के प्रति, परंपरा के प्रति न तो विनम्र हैं, न अविनम्र हैं। ठीक से समझा जाए तो ये बातें असंगत हैं महावीर के लिए, इससे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं इस बड़े वृक्ष के पास से निकलूं और नमस्कार न करूं तो आप कोई भी मुझे अविनम्र नहीं कहेंगे। लेकिन एक महात्मा के पास से निकलूं और नमस्कार न करूं तो आप कहेंगे अविनम्र है! लेकिन यह भी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हो सकता है कि मेरे लिए दरख्त और महात्मा बिल्कुल बराबर हों। यानी मेरे लिए असंगत हों, यह बात असंगत हो, इस बात से मुझे कुछ लेना-देना न हो। लेकिन आपकी तौल में मैं एक स्थिति में विनम्र हो जाऊंगा और एक स्थिति में अविनम्र हो जाऊंगा जबकि मुझे इसका कुछ पता ही न था।

एक फकीर एक गाँव से निकल रहा है और एक आदमी ने एक लकड़ी उठाकर उसको मारी है पीछे से। चोट लगने से लकड़ी उसके हाथ से छूट गई है और एक तरफ गिर गई। उस फकीर ने पीछे लौटकर देखा, लकड़ी उठाकर उस आदमी के हाथ में दे दी और अपने रास्ते चला गया। एक दुकानदार यह सब देख रहा है, उसने फकीर को बुलाया कि कैसे पागल हो! तुम्हें उसने लकड़ी मारी, उसकी लकड़ी छूटकर गिर गई तो तुमने सिर्फ इतना ही कृत्य किया की उसकी लकड़ी उसको उठाकर वापिस देकर अपने रास्ते पर चल दिए? तो उस फकीर ने कहा, एक दिन मैं एक झाड़ के नीचे से गुजरा था, उसकी एक शाखा गिर पड़ी मेरे ऊपर तो मैंने कुछ न किया। मैंने कहा, संयोग की बात कि जब शाखा गिरनी थी, हम उसके नीचे आ गए। तो शाखा सरकाकर, रास्ते के किनारे करके मैं चला गया था। संयोग की बात इस आदमी को लकड़ी मारनी होगी, हम पड़ गए। तो अब इसकी लकड़ी छूट गई थी तो उसको उठाकर देकर —और हम क्या कर सकते हैं—हम अपने रास्ते चल पड़े। जो मैंने वृक्ष के साथ व्यवहार किया था, वही मैंने इस आदमी के साथ भी किया।

एक स्थिति ऐसी हो सकती है, जहां हमारे प्रश्न असंगत हो जाते हैं, इर्रिलेवेंट हो जाते हैं। क्योंकि हम जब सोचते हैं तो दो ही में सोच सकते हैं, द्वंद्व में सोच सकते हैं। और जो लोग भी द्वंद्व के बाहर होते हैं, वे हमेशा मिसअंडरस्टुड होते हैं। यह उनका भाग्य है, यह उनकी नियति है कि उनको कभी नहीं समझा जा सकेगा। क्योंकि जिस तल पर हम समझ सकते थे, उस तल पर उनका कोई भी रूप नहीं बनता है कि वे कैसे आदमी हैं। महावीर अविनम्र हैं, इगोइस्ट हैं, विनम्र हैं, हंबल हैं, कुछ तय करना मुश्किल है। क्योंकि ऐसा कोई प्रसंग ही नहीं, जिसमें वे कोई भी घोषणा करते हों। तब हमारे ऊपर ही निर्भर रह जाता है कि हम निर्णयकर लें। और हमारे निर्णय वे ही होने वाले हैं, जो हमारी तौल है, हमारा मापदंड है। महावीर उस तौल के बाहर हैं।

इसलिए मैं कहना चाहूंगा कि महावीर से ज्यादा निरहंकारी थोड़े ही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लोग हुए हैं। हां, महावीर से ज्यादा विनम्र लोग हुए हैं, महावीर से ज्यादा अहंकारी लोग हुए हैं, लेकिन महावीर से ज्यादा निर-अहंकारी लोग मुश्किल से हुए हैं। महावीर से ज्यादा विनम्र आदमी मिल जाएगा जो झुक-झुककर, जमीन पर झुक-झुककर नमस्कार करेगा। महावीर झुकेंगे ही नहीं, क्योंकि कौन झुके, किसके लिए झुके ? वह बात ही व्यर्थ है। वह बात ही व्यर्थ है। फिर जब कोई आदमी झुकता है तो हम कहते हैं, विनम्र। लेकिन किसलिए झुकता है किसी अहंकार की पूजा में ? किसी अहंकार की पूजा में ही झुकता है। किसी अहंकार के पोषण में ही झुकता है। और महावीर तो कहते हैं कि मेरा अहंकार तो बुरा है ही, किसी का भी अहकार बुरा है। मैं झुकूं और आपकी बीमारी बढ़ाऊं, यह बेमानी है। यानी अगर इसे हम ठीक से समझें तो मैं झुकूं आपके चरणों में और आपके दिमाग को फिराऊं, यह भी पाप है। मैं तो झुकूंगा, आपको बड़ा रस भी आएगा कि यह आदमी बड़ा विनम्र है। लेकिन रस ही इसलिए आएगा कि आपके अहंकार को तृप्ति मिलती चली जाएगी। तो महावीर से तो कोई पूछे तो वे कहेंगे कि देवताओं का दिमाग भी आदमियों ने खराब कर दिया है। अगर कहीं भगवान भी है तो अब तक पागल हो गया होगा। यह जो झुकना चल रहा है, यह दूसरे के अहंकार का पोषण चल रहा है...।

निर-अहंकारी न तो अहंकार में जीता, न अहंकार को पोषण देता, इसलिए उसके जीवन का तल, उसकी अभिव्यक्ति बिलकुल बदल जाती है। उसे पकड़ पाना मुश्किल हो जाता है कि हम उसे कहां पकड़ें और कहां तौलें। इसलिए महावीर के साथ भी कठिनाई मालूम हो सकती है।

दूसरा कपिल पूछते हैं—क्या पूछा तुमने ?

प्रश्न : प्रेम में भी कोई शर्त है क्या ? तो फिर महावीर की शर्तें क्यों ?

मैं कहता हूं कि प्रेम सदा बेशर्त है। प्रेम सदा बेशर्त है, क्योंकि जहां शर्त है, वहां सौदा है। जहां हम कहते हैं कि मैं तब प्रेम करूंगा, जब ऐसा हो। जब मैं कहता हूं कि मैं प्रेम करूंगा, जब तुम ऐसा करो या ऐसे हो जाओ, या ऐसा बनो, तब मैं तुम्हें प्रेम करूंगा, ऐसा आदमी प्रेम को शर्त से बांध रहा है और ऐसा आदमी प्रेम को खो रहा है।

महावीर की जिन शर्तों की बात की है, वे प्रेम के संबंध में नहीं हैं। महावीर यह नहीं कहते कि जगत ऐसा करे तो मैं प्रेम करूंगा, जगत मुझे भोजन दे तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मैं प्रेम करूंगा। नहीं, यह बात ही नहीं है, प्रेम का मामला ही नहीं है। महावीर तो यह कहते हैं कि अगर जगत को मेरे प्रति प्रेम हो अगर अस्तित्व को मेरे प्रति प्रेम हो तो मुझे कैसे पता चले? मैं कैसे जानूं कि यह सारा अस्तित्व मुझे बचाना चाह रहा है और उपयोगी मान रहा है और समझ रहा है कि मैं जिऊं एक क्षण और तो इसके लिए फायदा हो जाए? यह मुझे कैसे पता चले, इसे मैं कैसे जानूं? तो महावीर कहते हैं कि मैं कुछ शर्तें लगाए देता हूं, जिनकी पूर्ति मुझे खबर दे देगी कि अभी जीना है, अभी काम का हूं। मेरा मतलब समझे न? महावीर यह नहीं कह रहें हैं कि ये शर्तें जगत पूरी करेगा तो मैं प्रेम करूंगा। जगत के प्रति प्रेम तो है ही, यह सवाल ही नहीं है शर्त का कोई। शर्त प्रेम पाने के लिए नहीं बांधी जा रही है, सिर्फ इस बात की जानकारी के लिए बांधी जा रही है कि अगर मुझे जिलाना हो तो जगत मुझे जिलाए, मैं नहीं जिऊंगा। महावीर यह कह रहे हैं कि मैं अपनी तरफ से जीने का उपक्रम नहीं करूंगा, यह मेरी चेष्टा नहीं होगी कि मैं जिऊं। असल में हो भी यही सकता है। क्योंकि जिसका मैं ही मिट गया हो, अब उसे जीने की लालसा, जिजीविषा क्या हो सकती है। अब तो यह ही हो सकता है कि अगर जरूरत हो···।

जैसे समझो मैं बोल रहा हूं। बोलने के दो कारण हो सकते हैं। या तो बोलना मेरी भीतरी वासना हो कि मैं बिना बोले न रह सकूं, यानी मुझे बोलना ही पड़े अगर इस कमरे में कोई न हो तो दीवाल से बोलना पड़े, तब बोलना मेरी विक्षिप्तता होगी। क्योंकि तब बोलने से मैं···बोलने वाले से मेरा कोई संबंध ही नहीं है। मैं भीतर बेचैन हूं और मुझे कुछ बोलना है, निकालना है···जैसा पागल बोलता है, रास्ते पर अकेले में भी बोलता है, दीवाल से भी बोलता है। इससे फर्क नहीं पड़ता कि सुनने वाले बैठे हों तो जरूरी नहीं है कि बोलने वाला आदमी पागल न हो, यह कोई जरूरी नहीं है। यह तो पता तब चलेगा, जब हम उसे अकेली दीवाल के पास छोड़ दें और वह न बोले। अगर बोलना भीतरी पागलपन है तो सुनने वाला सिर्फ बहाना है, निमित्त है, उस पर जबरदस्ती थोपा जा रहा है।

लेकिन अगर बोलना भीतरी पागलपन नहीं है और मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है, और मुझे लगता है कि तुम्हारी जरूरत है, तुम्हारे काम आ जाऊं, तब मैं शर्तें लगा दूंगा। ताकि मुझे पता तो चल जाए कि मैं तुम्हारे लिए बोल

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रहा हूं कि अपने लिए बोले जा रहा हूं ? तो मैं कहूंगा, चुप बैठना तो ही मैं बोलूंगा। यानी मुझे यह तो पता चल जाए कि तुम सुनने को तैयार हो, तुम सुनने को आए हो। अगर तुम सुनने को ही नहीं हो, तब भी मैं बोले चला जा रहा हूं, तब वह मेरा भीतरी पागलपन हो गया। तो मैं एक शर्त लगा दूंगा कि तुम चुप होकर सुनना, तुम बैठकर सुनना तो मैं बोलूंगा, और जिस क्षण तुम उठकर खड़े हो जाओ या बोलने लगो, मैं बोलना बंद कर दूंगा, विदा हो जाऊंगा। मेरा मतलब समझ रहे हैं न आप ?

महावीर यह कह रहे हैं इस पूरे अस्तित्व से कि अगर जरूरत हो दरख्तों को, अगर हवाओं को, सूरज को, चांद-तारों को, परमात्मा को, टोटल को—परमात्मा महावीर के लिए व्यक्ति नहीं है—समग्र को अगर जरूरत हो मेरी तो बताए जाना कि मेरी जरूरत है, तो मैं चलता चला जाऊंगा। जिस दिन तुम कह दोगे कि जरूरत नहीं है, तो अब मेरी कोई जरूरत नहीं है एक इंच भी आगे जाने की।

तो महावीर की जो शर्त है, वह प्रेम के लिए लगाई गई शर्त नहीं है; वह शर्त अपने होने के लिए लगाई गई शर्त है; शर्त है कि अभी मैं बिखर जाऊंगा इसी क्षण। एक क्षण भी मैं नहीं कहूंगा कि और मुझे रुक जाने दो। और भी मुझे कुछ कहना था, अभी मुझे कुछ करना था, यह सवाल नहीं है। तुम्हारी खबर आ जाए, तो मैं अभी बिखर जाऊंगा।

प्रश्न : दुबारा उनका आना भी जगत की जरूरत थी ?

बिलकुल ही, जगत की जरूरत है। जगत की ही जरूरत है। लेकिन जैसे ही किसी व्यक्ति को आनंद उपलब्ध होता है—जैसे ही किसी व्यक्ति को आनंद उपलब्ध होता है, वैसे ही सारे जगत के प्राण उससे पुकार करने लगते हैं कि बांटो। क्योंकि जगत इतना दुख में है, इतनी पीड़ा में है, इतने कष्ट में है कि जब भी कभी कोई एक व्यक्ति भी आनंद को उपलब्ध हो जाता है तो सारे जगत के प्राणों से यह पुकार घूम-घुमाकर उसके पास पहुंचने लगती है कि बांटो। वह बांटना ही लौटता है। वह बांटने की जो···जो चारों तरफ से उठा हुआ दबाव है, वही लौटता है। यह एकदम से हमें दिखाई नहीं पड़ता है।

मुझे लोग पूछते हैं, आप किसलिए बोलते हैं ? तो उनका सवाल ठीक ही है क्योंकि बोलता मैं हूं तो सवाल मुझसे ही पूछा जाएगा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह ख्याल में आना कठिन है कि कोई सुनने को आतुर हो गया है, इसलिए बोलता हूं। जगत की स्थिति में तो घटनाएं उल्टी ही घटेंगी कि मैं बोलूंगा, तब सुनने वाला आएगा, लेकिन अंतस् जगत में घटना इससे बिलकुल भिन्न है। कोई सुनने वाला पुकारेगा, तभी मैं बोलूंगा। जैसे कि नदी के किनारे हम खड़े हो जाएं तो नदी में दिखाई पड़ता है कि सिर नीचे है और पैर ऊपर हैं, लेकिन वस्तुतः जो किनारे पर खड़ा है, उसका सिर ऊपर है और पैर नीचे हैं। लेकिन नदी में जो प्रतिबिंब बनता है, वह उल्टा बनता है। जीवन में जो प्रतिबिंब बनते हैं, वे उल्टे बनते हैं, अंतस्तल पर जो प्रतिबिंब हैं, वे बिलकुल उल्टे हैं। अंतस्तल में सुनने वाला पहले मौजूद हो जाता है, तब बोलने वाला आता है। बाहर के जगत में बोलने वाला पहले दिखाई पड़ता है, तब सुनने वाला इकट्ठा होता है। यह हमें ख्याल में न आए तो मुश्किल हो जाती है।

महावीर को नहीं कह सकोगे जाकर कि आप क्यों बोल रहे हो? क्योंकि महावीर कहेंगे कि तुम क्यों सुन रहे हो? तुम सुनने पहले आ गए हो, तब मैं बोलने आया हूं। मगर हमें यह दिखाई नहीं पड़ेगा, क्योंकि जिस जगत में हम जीते हैं वह छाया का, प्रतिफलन का, रिफ्लेक्शन का जगत है। वहां चीजें सीधी नहीं हैं, वहां चीजें उल्टी हैं। वहां चीजें बिलकुल उल्टी हैं। वहां हमें सब चीजें उल्टी दिखाई पड़ती हैं, जैसी वे नहीं हैं। और तब हम उसी हिसाब से सब सोचते हुए चलते हैं। अगर महावीर तुम्हारे गांव में भी आएंगे तो तुम कहोगे कि क्यों आए हैं आप यहां? और मजा यह है कि तुम्हीं ने बुलाया था। लेकिन तुम्हारे बुलाने के प्रति भी तो तुम चेतन नहीं हो, उतने भी तो तुम कांशस नहीं हो। और महावीर को यह पीड़ा भी झेलनी पड़ेगी कि तुम्हीं ने बुलाया था, तुम्हीं पूछोगे कि कैसे आप आए हैं यहां?

बुद्ध एक गांव में जा रहे हैं, सुबह-सुबह का वक्त है, वे उस गांव में प्रवेश करने को हैं और एक लड़की, एक ग्रामीण लड़की, एक किसान लड़की अपने पति के लिए भोजन लेकर खेत की तरफ जाती है, तो रास्ते में बुद्ध को कहती है कि मैं जब तक न लौट आऊं, बोलना शुरू मत कर देना। तो बुद्ध उससे कहते हैं, तेरे लिए ही तो मैं आ रहा हूं भागा हुआ, अगर तू न होगी तो बोलना शुरू करके भी क्या करूंगा? आनंद बहुत मुश्किल में पड़ जाता है, वह पूछता है, आप यह क्या कहते हैं? इस लड़की के लिए भागे चले आ रहे हैं दूसरे गांव से! उन्होंने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कहा, इसी लड़की के लिए। और देखो, वही लड़की मुझसे कहती है कि बोलना शुरू मत कर देना, जब तक मैं न आ जाऊं। और मैं उसी के लिए आ रहा हूं।

फिर वह लड़की चली गई है। गांव में बुद्ध पहुंच गए हैं, भीड़ इकट्ठी हो गई है। लोग कहते हैं अब आप बोलें, अब आप शुरू करें। और बुद्ध चारों तरफ देखते हैं, वह लड़की अभी तक नहीं लौटी। और आनंद कहते हैं कि लोग क्या कहेंगे कि आप उस लड़की के लिए रुके हैं। आप बोलिए। तो बुद्ध ने कहा, मैं जिसके लिए आया हूं, और जब वह रास्ते में कह भी गई कि रुकना, यह कैसे हो सकता है कि मैं बोल दूं। सांझ घिरने लगी, लोग विदा होने लगे, तब वह लड़की भागी हुई आई और वह कहती है कि बड़ी मुश्किल में पड़ गई। पति बीमार हो गया। उसको कोई कीड़ा काट गया, कुछ हो गया। मैं वहां उलझ गई और मैं बड़ी परेशान थी कि कहीं आप बोलना शुरू न कर दें। बुद्ध कहते हैं, लेकिन तेरे बिना बोलकर करता भी क्या ? तेरे लिए भागा हुआ आया हूं। तुझे पता नहीं, तूने मुझे पहले बुलाया है, मैं पीछे चला हूं।

लेकिन हमारी दुनिया में जहां हम जीते हैं, वहां चीजें बिलकुल उलटी हैं। वहां बुद्ध पहले आए हैं, पीछे लड़की सुनती है। और तब हमारे सब सवाल उलटे हैं। क्योंकि हमारे सब सवाल जहां से उठते हैं, वहां चीजें बिलकुल उलटी हैं।

और महावीर के प्रेम में कोई शर्त नहीं है। शायद उतना बेशर्त प्रेम ही कभी नहीं हुआ, बिलकुल बेशर्त है प्रेम। लेकिन महावीर अपने अस्तित्व के लिए शर्तें बांध रहे हैं। वे जो शर्तें हैं, वे अपने अस्तित्व के लिए हैं; वे तुम्हारे प्रेम के लिए नहीं हैं। वे यह हैं कि कहीं ऐसा न हो जाए कि तुम्हारा प्रेम भी विदा हो चुका है, अस्तित्व को जरूरत नहीं है और मैं जिए चला जाऊं, तब बेमानी हो जाएगी बात। एक क्षण भी नहीं, एक क्षण भी मुझे खबर कर देना। और कोई परमात्मा को महावीर मानते नहीं हैं जो कि खबर कर दे। कोई भगवान नहीं है जो कह दे कि अब बस लौट आओ। यह तो पूरा अस्तित्व ही, समग्र खबर करे तो ही पता चलने वाला है, और कोई उपाय नहीं है। महावीर अगर किसी भगवान को मानने वाले हों तो यह कह देंगे कि मुझे कह देना कि मैं विदा हो जाऊं। लेकिन यह समग्र अस्तित्व कैसे कहेगा ? हवाएं कैसे कहेंगी ? फूल कैसे कहेंगे ? वृक्ष कैसे कहेंगे ? चांद-तारे कैसे कहेंगे ? एक्जिस्टेंस कैसे कहेगा ? तो महावीर कहते हैं कि मैं शर्त लगा लेता हूं, ताकि मुझे पता चलता जाए कि बस अब

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसके आगे नहीं जाना, अब बात खतम हो गई, मेरी जरूरत विदा हो गई, मैं चुकता हो गया।

इस करुणा को हम नहीं समझ सकते कि एक क्षण भी वे हम पर बोझ की तरह नहीं जीना चाहते हैं। वे एक क्षण को भी बोझ नहीं बनना चाहते हैं, क्योंकि जो मुक्ति बनने की कामना लेकर खड़ा हो, वह बोझ नहीं बन सकता है। शर्त जो है, वह अपने अस्तित्व के लिए है, वह प्रेम के लिए नहीं है। प्रेम तो सदा बेशर्त है, लेकिन अपना अस्तित्व सदा सशर्त होना चाहिए। अपना अस्तित्व बेशर्त हो जाए तो बहुत मुश्किल की बात है। वह प्रेम के ऊपर भारी पड़ेगा, बहुत भारी पड़ जाएगा।

प्रश्न : एक और बात है, मेहरबाबा की बता रहे थे आप, कि उनका एक्सीडेंट जब होने लगा तो वह बच गए। उन्हें पहले पता चल गया। लेकिन आप पत्ते की भांति अपने आपको खुला छोड़ना चाहते हैं। और जब दलाई लामा तिब्बत से आए तो आपने उनको ठीक कहा, यह कैसे ?

मेहरबाबा को मैं कहूंगा गलत, क्योंकि वे खुद बचना चाहते हैं। प्रेरणा परमात्मा की होती तो उस हवाई जहाज में किसी को भी न बैठने दिया होता। वह हवाई जहाज तो गिरा ही, मेहरबाबा ही बच गए न ! उस हवाई जहाज के लोग मरे ही। प्रेरणा परमात्मा की होती तो वह कहते हवाई जहाज को नहीं जाने दूंगा। चाहे मुझे मार डालो, इसको आगे नहीं बढ़ने दूंगा। प्रेरणा अपने ही जीवन अस्तित्व की है। तो खुद तो बच गए हैं, हवाई जहाज तो चला गया है। उस मकान में, जिसमें वह ठहरने गए थे, खुद तो नहीं ठहरे, लेकिन किसी को उन्होंने नहीं कहा कि इसमें कोई मत ठहरे। मकान रात गिर गया, कोई ठहर भी सकता था। मेहरबाबा को मैं गलत कहूंगा, क्योंकि बचने की आकांक्षा अपनी है।

और दलाई को मैं गलत नहीं कहूंगा, क्योंकि अपने बचने की कोई आकांक्षा ही नहीं है। दलाई के लिए बचना तो यही सरल हुआ होता कि वह वहीं रह जाता और चीनियों के साथ हो जाता। तो दलाई को बचना ज्यादा सरल था, वह ज्यादा सुविधापूर्ण था। दलाई तो मुश्किल में पड़ा, अपने लिए तो मुश्किल में पड़ गया, बचा रहा है कुछ जो सबके काम का है। इस फर्क को समझ लेना। मेहरबाबा बच रहे हैं खुद; दलाई बचा रहा है कुछ, जो सबके काम का है। और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उस बचाने में दलाई अपनी जान को दांव पर लगा रहा है। मेरा ख्याल ले रहे हो तुम ? दलाई अपनी जान को दांव पर लगा रहा है। दलाई का भागना दाँव पर लगाना है जान को। और एक अर्थ में शायद वह कभी नहीं लौट सकेगा अब। वह रुक जाता, सुलह कर लेना, वह राजा भी बना रह सकता था, वह पद पर भी हो सकता था। इसमें कोई कठिनाई न थी, सारा यश, वैभव, सब चल सकता था। बात कुल इतनी थी कि वह चीन को स्वीकृति दे देता कि तुम हमारे मालिक हो, हम तुम्हारे उपनिवेश हैं, बात खतम होती थी। नहीं, इसने अपने को नहीं बचाना चाहा, यह सब खोकर, सब बरबाद करके, सारी जिंदगी को कष्ट में डालकर भागा है कुछ और बचाने को, जो इसके अपने बचने से भी ज्यादा मूल्यवान है। जो यह मरेगा तो भी कोई हर्ज नहीं, लेकिन कुछ बच जाएगा जो आगे काम पड़ सकता है। इसका हमें ख्याल नहीं है।

तो मैं जब कहता हूं अहंकार के लिए बचाना, अपने लिए बचाना, तो दो कौड़ी की बात है। उस अर्थ में तो आदमी को पत्ते की तरह जीना चाहिए। सूखे पत्ते की तरह, हवाएं जहां ले जाएं। लेकिन जहां तक सबके हित में आने वाली कोई बात हो, सबके कल्याण में आने वाली कोई बात हो और कुछ ऐसी संपदा हो, जो कि मेरे होने न होने से संबंधित नहीं है, पीछे भी काम पड़ सकती है, उसके बचाने के लिए जरूर कुछ श्रम किया जा सकता है। महावीर भी वह श्रम कर रहे हैं। यह जो मैं फर्क कर रहा हूं, वह फर्क सिर्फ इतना है कि अपने स्वार्थ के लिए उपयोग कर रहे हो कि तुम्हारा कोई भी स्वार्थ नहीं है ? उसी दृष्टि से एक को गलत कहूंगा, एक को सही कह दूंगा। निर्णायक बात यह होगी कि उसका अपना कोई स्वार्थ है निजी या कि बृहत्तर···

दलाई को कोई छाती में छुरा मार दे तो कोई दिक्कत नहीं है, कठिनाई नहीं है, लेकिन जो उसके पास है—और निश्चित एक ऐसी इज़ोटेरिक साइंस उसके पास है, जो इस समय पृथ्वी के दो-चार लोगों की समझ में आ सकती है, पास होने की तो बात दूर है। क्योंकि पिछले डेढ़-दो हजार वर्ष से सारी दुनिया से टूटकर तिब्बत एक प्रयोग कर रहा है। हमें ख्याल में नहीं होता यह। हमें ख्याल में नहीं होता।

दूसरा महायुद्ध हुआ, दूसरा महायुद्ध जर्मनी जीत सकता था सिर्फ एक आदमी जर्मनी छोड़कर भाग गया और हारना पड़ा, वह था आइंस्टीन। जर्मनी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जीत सकता था। जर्मनी के हारने का कोई कारण न था, लेकिन जो सीक्रेट्स थे, वे एक आदमी के हाथ में थे—आइंस्टीन के। और वह था यहूदी। और यहूदियों को सताए जाने के कारण आइंस्टीन ने जर्मनी छोड़ दिया। जो एटम बम अमेरिका में बना, वह बर्लिन में बना होता। सीक्रेट एक आदमी के पास था, एक ही आदमी के पास था बस। वह सीक्रेट जाकर अमेरिका में उपयोगी हो गया। एटम वहां बना, हिरोशिमा पर गिरा। वह हो सकता था कि लंदन पर गिरता कि न्यूयार्क पर गिरता कि मास्को पर गिरता, कुछ पक्का नहीं था। एक बात पक्की थी कि आइंस्टीन के बिना वह कहीं भी नहीं गिर सकता था। जहां आइंस्टीन होता, वह वहीं, उसके ही काम में आने वाला था। आज तो तुम हैरान होओगे कि इतनी कीमत कभी नहीं थी लोगों में। आज दुनिया में दस-बारह वैज्ञानिकों की इतनी कीमत है कि अरबों रुपए देकर एक वैज्ञानिक को चुरा लेना काफी बड़ी बात है। खरबों खर्च हो जाएं, कोई फिक्र नहीं है, एक वैज्ञानिक को फुसला लेना काफी बड़ी बात है। एक वैज्ञानिक से एक सीक्रेट लेना काफी बड़ी बात है। क्योंकि वह दस-बारह ही लोगों की आज हाथ में सारी बात है दुनिया की।

जिस तरह पदार्थ के विज्ञान के संबंध में यह स्थिति हो गई है, ठीक वैसी स्थिति अध्यात्म विज्ञान की भी है। आज मुश्किल से दुनिया में दो-चार लोग हैं, जो इस गहराई पर समझते हैं। लेकिन उनके पास भी पूरा का पूरा हजारों वर्षों के अनुभव का सार नहीं है।

एक घटना तुम्हें बताऊं। एक आदमी था मुरजियफ़। मुरजियफ़ ने अपनी जिंदगी के पहले वर्ष एक अद्भुत खोज में लगाए, जैसा कि इस सदी में किसी आदमी ने नहीं किया, पिछली सदियों में भी किसी ने नहीं किया। पंद्रह-बीस मित्रों ने यह निर्णय लिया कि दुनिया के कोने-कोने में जो भी आध्यात्मिक सत्य छिपे हैं, वे सब अलग-अलग कोनों में चले जाएं और उन सत्यों को खोज कर, जब खोज लें तो लौट आएं और बीसों मिलकर सब अपने अनुभव बता दें, ताकि एक सुनिश्चित विज्ञान बन सके।

ये बीस आदमी दुनिया के कोनों-कोनों में चले गए। इनमें कोई तिब्बत जाने वाला था, कोई भारत, कोई ईरान, कोई इजिप्त, कोई यूनान, कोई चीन, कोई जापान; ये सारे दुनिया में फैल गए। इन बीसों आदमियों ने बहुत खोज की,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पूरी जिंदगी लगा दी। क्योंकि एक-एक आदमी की जिंदगी बहुत छोटी थी, जो जानने को था, वह बहुत ज्यादा था। अब अगर एक आदमी सूफियों के पास सीखने जाए तो पूरी जिंदगी लग जाती है। क्योंकि सूफियों की व्यवस्था यह है कि एक फकीर एक सूत्र सिखाएगा, वर्ष लगा देगा, दो वर्ष लगा देगा; फिर कहेगा कि अब तुम फलां आदमी के पास चले जाओ, इसके आगे वह तुमसे बात करेगा। तो दूसरे फकीर के पास चले जाओगे। और वर्ष-दो वर्ष सेवा करो उसकी, हाथ-पैर दाबो उसके, वह जो कहे मानो। क्योंकि कुछ बातें ऐसी हैं, कुछ बातें ऐसी हैं कि वे तुम्हें तभी दी जा सकती हैं, जब तुम इतना धैर्य दिखलाओ, नहीं तो तुम उसके योग्य नहीं, पात्र नहीं। तो वह धैर्य अगर उतना न हो तो तुम्हारा पात्र टूट जाएगा, वे चीजें तुम्हें नहीं दी जा सकतीं।

उन बीस लोगों ने सारी दुनिया में खोज बीन की और वे बीस लोग बूढ़े होते-होते करीब लौटकर मिले। उनमें से कुछ तो मर गए। कुछ कभी नहीं लौटे, कहां खो गए, पता नहीं चला। लेकिन चार-छः जो मित्र लौटे, उन्होंने जो, जो सूचनाएं दीं, उन सूचनाओं के आधार पर मुरजियफ़ ने एक पूरी साइंस खड़ी की। उसमें उन सूत्रों की पकड़ उसके हाथ में आ गई, जो सारी दुनिया में फैले हुए हैं।

आध्यात्मिक विज्ञान के संबंध में तिब्बत के पास सबसे बड़ी संपदा है। और दलाई लामा के लिए उपयोगी है कि वह सबकी फिक्र छोड़ दे, तिब्बत की भी फिक्र छोड़ दे, तिब्बत का भी बनना-मिटना उतना कीमत का नहीं है। तिब्बत के लोग इस राज्य में रहते हैं कि उस राज्य में, यह भी बड़े मूल्य की बात नहीं है। वे किस तरह की व्यवस्था बनाते हैं समाज की, शासन की, वह भी मूल्यवान नहीं है। मूल्यवान यह है कि इन डेढ़ हजार वर्षों में एक प्रयोगशाला की तरह तिब्बत ने जो काम किया है, वे सूत्र नष्ट न हो जाएं; उनको भागकर बचाना जरूरी है।

मेरा मतलब कुल इतना है। न मेहरबाबा से कोई मतलब है मुझे, न दलाई लामा से कोई मतलब है। मेरा मतलब कुल इतना है कि एक तो दिशा वह है, जहां हम परम कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं और एक दिशा वह है, जहां हम अपने कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं। दोनों में फर्क करना जरूरी है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रश्न : अहिंसा का विधायक स्वरूप क्या है ? और महावीर ने किसी की शारीरिक सहायता क्यों नहीं की ?

अहिंसा शब्द से ही निगेटिव का, निषेध का, नकारात्मक का बोध होता है। बोध होता है : हिंसा नहीं। तो अहिंसा शब्द ही नकारात्मक है। महावीर ने क्यों उस शब्द को चुना ? वे प्रेम भी चुन सकते थे, प्रेम विधायक शब्द है, वह पाजिटिव है।

अहिंसा का मतलब होता है, किसी को दुख नहीं देना है।

प्रेम का मतलब होता है, किसी को सुख देना है।

अहिंसा का मतलब है, किसी को दुख नहीं देना है, इसलिए निषेधात्मक है। यानी अगर मैंने आपको दुख नहीं दिया तो मैं अहिंसक हो गया। प्रेम विधायक शब्द है। प्रेम का मतलब है, किसी को सुख देना है। तो मैंने आपको दुख नहीं दिया, इतने से ही काफी बात नहीं हल होती, मैंने आपको सुख दिया कि नहीं ? अगर सुख दिया तो ही प्रेम पूरा होता है। प्रेम तो विधायक शब्द है। जीसस ने प्रेम का उपयोग किया। अहिंसा निषेधात्मक शब्द है और महावीर ने अहिंसा का उपयोग किया। इसलिए समझना बहुत जरूरी है।

महावीर क्यों ऐसा प्रयोग करते हैं कि किसी को दुख नहीं देना है ?

इसमें बड़ी गहराइयां छुपी हुई हैं। ऊपर से देखने पर यही लगेगा कि प्रेम शब्द का प्रयोग ही ज्यादा ठीक हुआ होता। और जहां तक समाज का संबंध है, शायद ज्यादा ही ठीक हुआ होता। क्योंकि जिन लोगों ने महावीर का अनुगमन किया, उन्होंने किसी को दुख नहीं देना, इसको सूत्र बना लिया ! और एक अर्थ में किसी को दुख न देने के कारण वे सिकुड़ते चले गए, क्योंकि किसी को सुख तो देना नहीं है, बस दुख नहीं देना है। चींटी पैर से न दबे, इतना काफी हो गया ! चींटी भूखी मर जाए, इससे क्या लेना-देना है ? यानी चींटी अपने कर्मों का फल भोगती होगी। चींटी भूखी मर जाए, इससे कोई प्रयोजन नहीं है हमारा ? हमने चींटी को पैर से दबाकर नहीं मारा, हमारा काम पूरा हो गया !

महावीर का निषेधात्मक शब्द समाज के लिए महंगा पड़ा। और जो लोग अनुगमन किए, उनके लिए तो भारी महंगा पड़ा। इसलिए हिंदुस्तान में जैनियों से ज्यादा स्वार्थी लोग खोजने मुश्किल हैं—सेल्फिश। क्योंकि वह अहिंसा का जो अर्थ पकड़ा गया, वह यह था कि किसी को दुख नहीं देना, बस बात खतम हो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गई। अपने को इससे ज्यादा किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। और प्रयोजन तो तब बनता है, जब हम किसी को सुख देने जाएं, तब हमारे रास्ते बनते हैं। तो रास्ते सब टूट गए। तो आइलैंड्स की तरह, महावीर के पीछे जो लोग गए, वे एक-एक द्वीप की तरह हो गए—अपने में बंद। हम किसी को दुख न दें, बात पूरी हो गई! यह निषेधात्मक रूप खतरनाक सिद्ध हुआ। अच्छा हुआ होता, अनुयायियों के लिए तो अच्छा हुआ होता कि महावीर ने प्रेम का ही प्रयोग किया होता। लेकिन महावीर ने प्रेम का प्रयोग नहीं किया, यह बहुत कीमती बात है। और महावीर की दृष्टि बहुत गहरी है।

अहिंसा शब्द का प्रयोग करना बड़ा अद्भुत है। उसके कारण हैं। पहला तो कारण यह है कि किसी को दुख नहीं देना, यह कोई साधारण बात नहीं है। इसका मतलब इतना ही नहीं होता कि हम किसी को चोट न पहुंचाएं। अगर बहुत गहरे में देखें तो किसी क्षण में किसी को सुख न देना भी उसको दुख देना हो सकता है। उतने दूर तक अनुयायी की पकड़ नहीं हो सकी। मैं आपको दुख न दूं, यह तो ठीक है; बहुत मोटा सूत्र हुआ कि आपको चोट न पहुचाऊं, आपकी हिंसा न करूं, तलवार न मारूं। लेकिन किसी क्षण में यह भी हो सकता है कि मैं आपको सुख न पहुंचाऊं तो निश्चित रूप से आपको दुख पहुंचे। लेकिन यह पकड़ में आना साधारणतः मुश्किल था।

लेकिन महावीर इसको साफ कह सकते थे। वह भी उन्होंने साफ नहीं कहा और उसके भी कारण हैं। क्योंकि महावीर की गहरी समझ यह है कि कभी-कभी किसी को सुख पहुंचाने से भी उसको दुख पहुंच जाता है। यानी कभी-कभी आक्रामक रूप से किसी को सुख पहुंचाने की चेष्टा भी उसको दुख पहुँचा सकती है। यानी यह जरूरी नहीं कि आप सुख पहुंचाना चाहते हैं, इससे दूसरों को सुख पहुंच जायेगा। इसलिए सुख पहुंचाने में भी आक्रामक चित्त न हो, यानी सुख पहुंचाना भी चेष्टा का हिस्सा न हो, क्योंकि सुख पहुंचाने में भी दुख पहुंचाया जा सकता है।

सच तो यह है कि अगर कोई अति कोशिश करे किसी को सुख पहुंचाने की तो उसको दुख पहुंचाता ही है। अगर बाप अपने बेटे को सुख पहुंचाने की बहुत कोशिश में रत हो जाएं; उसके सुधार, उसकी नीति, उसकी व्यवस्था की ज्यादा रखने लगे और सोचें कि इससे इसे सुख पहुंचेगा तो संभावना इसी बात की है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कि बेटे को दुख पहुंचे। और संभावना इसी बात की है कि दुख के कारण बाप जो भी चाहता है, बेटा उसके विपरीत चला जाए। इसलिए अच्छे बाप अच्छे बेटों को पैदा नहीं कर पाते। बुरे बाप के घर अच्छा बेटा पैदा भी हो सकता है, अच्छे बाप के घर पैदा होना बड़ा अपवाद है। अच्छा बाप अनिवार्यत: बेटे को बिगाड़ने का कारण बनता है। क्योंकि वह उसे इतना सुख पहुंचाना चाहता है, और इतना शुभ बनाना चाहता है—सुख के लिए ही, कि बेटे पर उसका यह सुख पहुंचाना भी बोझ हो जाता है। यह भी भार हो जाता है, यह भी वजन हो जाता है।

यह बड़े मज़े की बात है कि हम यदि किसी से सुख लेना चाहें तो ही ले सकते हैं, कोई हमको पहुंचा नहीं सकता। इसे समझ ही लेना चाहिए। अगर मैं किसी से सुख लेना चाहूं तो ही ले सकता हूं। सुख इतनी सूक्ष्म चित्त दशा है कि कोई मुझे पहुंचाना चाहे तो नहीं पहुंचा सकता, मैं लेना चाहूं तो ही ले सकता हूं। इसलिए महावीर ने पहुंचाने पर जोर ही नहीं दिया, बात ही छोड़ दी। हां, जो लेना चाहे, उसे दे देना, क्योंकि नहीं दोगे तो उसे दुख पहुंचेगा। जोर है इस बात पर कि तुम किसी को दुख भर मत पहुंचाना। बस तुम्हारा काम इतना ही काफी है कि तुम किसी को दुख मत पहुंचाना। कोई अगर तुमसे सुख लेना चाहे तो दे देना, वह भी सिर्फ इसीलिए कि अगर तुम न दोगे तो उसे दुख पहुंचेगा। लेकिन तुम सुख पहुंचाने भी मत चले जाना, क्योंकि तुम अगर कहीं सुख पहुंचाने गए तो तुम सिवाय दुख पहुंचाने के और कुछ भी नहीं कर पाओगे। क्योंकि एग्रेसिव, आक्रामक सुख पहुंचाने वाला आदमी दु:ख ही पहुंचाता है। उसका कारण है कि असल में आक्रमण दुख पहुंचाता है। अगर जबरदस्ती हम किसी को सुखी करना चाहें तो जितना दुखी हम उसे कर देंगे, उतना दुखी हम कभी भी उसे नहीं कर सकते। इसका मतलब यह हुआ कि जबरदस्ती किसी को भी सुखी नहीं किया जा सकता है। और जबरदस्ती में हिंसा शुरू हो जाती है।

तो महावीर की पकड़ तो बहुत गहरी है, बात तो वह ठीक कह रहे हैं। और भी एक गहराई है जो मैं समझता हूं कि आज तक महावीर को समझने वाले लोगों की समझ में नहीं आई, और वह यह है: अंतत: परम स्थिति में जहां अहिंसा पूर्ण रूप से प्रकट होती है या प्रेम प्रकट होता है—कोई भी नाम दें, क्योंकि परम स्थिति में न विधेय है, न नकार है। निगेटिव और पाज़िटिव का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

द्वंद्व प्राथमिक स्थितियों में है, परम स्थितियों में दोनों नहीं हैं। तो परम स्थिति तो···महावीर जैसा व्यक्ति, महावीर जैसी स्थिति का व्यक्ति—वह प्रश्न भी पूछा है—कि उन्होंने कभी किसी के शरीर को क्यों सहायता नहीं पहुंचाई? उन्होंने कभी क्यों किसी गिरे हुए को नहीं उठाया? उन्होंने कभी क्यों किसी भूखे को पानी नहीं पिलाया, रोटी नहीं खिलाई? उन्होंने कभी किसी बीमार के पास बैठकर पैर क्यों नहीं दाबे? महावीर ने कभी किसी के शरीर की कोई सेवा नहीं की। सवाल तो पूछने जैसा है। उसका भी कारण है।

परम अहिंसा की स्थिति में व्यक्ति किसी को दुख तो पहुंचाना ही नहीं चाहता, सुख भी नहीं पहुंचाना चाहता। क्यों? बहुत गहरे में देखने पर सुख और दुख एक ही चीज के दो रूप हैं। जिसे हम सुख कहते हैं, वह दुख का ही एक रूप है और जिसे हम दुख कहते हैं, वह भी सुख का ही एक रूप है। बहुत गहरे जो देखेगा, वह पाएगा कि जिसे हम सुख कहते हैं, अगर उसकी मात्रा थोड़ी बढ़ा दी जाए तो वह दुख में बदल जाती है। आप भोजन कर रहे हैं, बड़ा सुखद है। और आप ज्यादा भोजन करते चले जाते हैं, और एक सीमा आती है कि सुख दुख में बदलना शुरू हो गया। आप मुझे प्रेम से आकर मिले, मैंने आपको गले से लगा लिया, बड़ा सुखद है—एक क्षण, दो क्षण। लेकिन मैं हूं कि छोड़ता ही नहीं हूं, तब आप तड़पने लगे हैं कि अब इन बांहों से कैसे छूट जाएं। और पांच मिनिट और सुख दुख में बदल गया है। और अगर आधा घंटा हो गया तो आप पुलिस वाले को चिल्लाते हैं कि मुझे बचाइये, क्योंकि यह आदमी मुझे छोड़ता नहीं है।

किस क्षण पर सुख दुख में बदल गया, बताना बहुत मुश्किल है।

एक क्षण तक झलक थी सुख की, दूसरे क्षण दुख शुरू हो गया।

एक प्रेमी है, एक प्रेयसी है, दोनों घड़ी भर को मिलते हैं, बड़ा सुखद है। फिर पति-पत्नी हो जाते हैं। और बड़ा दुखद हो जाता है।

पश्चिम में, सारी दुनिया में जहां प्रेम विवाह आया, वहां एक अनुभव हुआ कि प्रेमी जितना प्रेयसी को सुखी करता है, उतना ही दुखी कर देता है। यह बड़ी अजीब बात है। सुख कब दुख में बदल जाता है, यह बड़ी अजीब बात है। सुख कब दुख में बदल जाता है, कहना मुश्किल है।

सब सुख दुख में बदल सकते हैं।

और ऐसा कोई दुख नहीं है, जो सुख में न बदल सके।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सब दुख भी सुख में बदल सकते हैं।

सुख और दुख एक-दूसरे में रूपांतरित हो सकते हैं। जैसे आपको कोई एक दुख है, कैसा ही दुख है, कितना ही गहरा दुख है, उस दुख में भी आप संभावनाएं देख सकते हैं सुख की। एक मां है, वह नौ महीने पेट में बच्चे को रखती है, दुख ही उठाती है : प्रसव है, बच्चे का जन्म है, असह्य दुख उठाती है। लेकिन सब दुख सुख में बदलता जाता है। आशा आगे सुख की, दुख को झेलने में समर्थ बना देती है। बल्कि प्रसव पीड़ा भी एक सुख की तरह ही आती है। बच्चे का बोझ भी सुख की तरह ही आता है। उस बच्चे को बड़ा करना लंबे दुख की प्रक्रिया है, लेकिन मां का मन उसे सुख बना लेता है।

दुख को हम सुख बना ले सकते हैं अगर आशा, संभावना, आकांक्षा, कामना तीव्र हो तो दुख सुख बन जाता है।

सुख को हम दुख बना ले सकते हैं, अगर सुख में सब आशा, सब संभावना क्षीण हो जाए तो सुख एकदम दुख बन जाता है।

यानी इसका मतलब यह हुआ कि सुख और दुख में कोई मौलिक भेद नहीं है, हमारी दृष्टि का भेद है।

हम कैसे देखते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है।

हम कैसे देखते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है। हमारे देखने पर ही सुख दुख का रूपांतरण हो जाता है। एक आदमी के पैर में घाव है और डाक्टर आपरेशन करता है, आपरेशन का दुख भी सुख बन जाता है, क्योंकि एक पीड़ा से छुटकारे की आशा काम कर रही है। आदमी जहरीली से जहरीली दवाई, कड़वी से कड़वी दवाई पी जाता है, क्योंकि बीमारी से दूर होने की आशा काम कर रही है।

आशा भर हो तो दुख को सुख बनाया जा सकता और आशा क्षीण हो जाए तो सब सुख फिर दुख हो जाते हैं।

महावीर कहते यह हैं कि बहुत गहरे में, अंतिम चरम स्थिति में न तो तुम किसी को सुख पहुंचाना, न तुम किसी को दुख पहुंचाना। लेकिन इसका क्या मतलब है ? इसका मतलब यह कि तुम सबसे टूट जाना, सबसे दूर खड़े हो जाना, मिट जाना तुम सबके लिए ? तुम्हारे उनके बीच एक अंतहीन फासला पैदा कर लेना ?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नहीं, यह मतलब नहीं है। बहुत अद्‌भुत बात है। जिस दिन कोई व्यक्ति उस स्थिति में पहुंच जाता है, जहां न वह किसी को सुख पहुंचाना चाहता, न दुख पहुंचाना चाहता, वहीं से वह व्यक्ति अनिवार्यरूपेण सबको आनंद पहुंचाने का कारण बन जाता है। इसे समझ लेना जरूरी है। आनंद पहुंचाने का कारण ही तभी कोई व्यक्ति बनता है, जब वह सुख और दुख के चक्कर से मुक्त होता है खुद, और उस दृष्टि को उपलब्ध होता है, जहां सुख और दुख का कोई मूल्य नहीं रह जाता। पर आनन्द को हम जानते नहीं। हमें कोई दुख पहुंचाए तो हम पहचान जाते हैं कि यह आदमी बुरा, हमें कोई सुख पहुंचाए तो हम पहचान जाते हैं कि यह आदमी अच्छा; लेकिन हमें कोई आनंद पहुंचाए तो हम बिलकुल नहीं पहचान पाते कि यह आदमी कैसा ?

पहली तो बात यह कि हम आनंद ही नहीं पहचान पाते। पहली तो बात यह कि हम आनंद को ही नहीं पकड़ पाते कि कैसा आनंद पहुंचाया जा रहा है ! और आनंद उस चेतना से सहज ही विकीर्णित होने लगता है, जो चेतना अब सुख और दुख के द्वंद्व के पार चली जाती है—न खुद की दृष्टि से, न दूसरे की दृष्टि से अब किसी को सुख पहुंचाना है, न दुख पहुंचाना है। ऐसे व्यक्ति के जीवन से सहज ही आनंद की किरणें चारों तरफ फैलने लगती हैं।

निश्चित ही, जिनके पास आंखें होती हैं, वह उस आनन्द को देख लेते हैं; जिनके पास आंखें नहीं होतीं, अंधे होते हैं, वे नहीं देख पाते हैं। लेकिन चाहे सूरज को कोई देख पाए, चाहे न देख पाए; जो देखता है उसको भी सूरज गर्मी पहुंचाता है और जो नहीं देखता, उसको भी गर्मी पहुंचाता है। फर्क इतना पड़ता है कि नहीं देखने वाला कहता है कैसा सूरज, कहां का सूरज ? गर्मी में फर्क नहीं पड़ता सूरज की। जो जीवन अंधे को मिलता है, वही आंख वाले को मिलता है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता; लेकिन अंधा कहता है, कैसा सूरज ? किस सूरज को धन्यवाद दूं ? कोई सूरज कभी देखा नहीं, किसी ने कभी कोई गर्मी पहुचाई नहीं। गर्मी अगर पहुंची है तो वह मेरी अपनी है। क्योंकि उसे तो सूरज का कोई पता नहीं है। आंख वाला जानता है कि गर्मी सूरज से आई है और इसीलिए अनुगृहीत भी है, धन्यवाद भी करता है, कृतज्ञ भी है, एक ग्रेटीट्यूट का भाव भी है। लेकिन बहुत मुश्किल है।

हम तो यही देख पाते हैं कि महावीर किसी के पैर दाब रहे हों तो हमें

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समझ में आए कि वह किसी की सेवा कर रहे हैं। यह ऐसा ही है, जैसे घर में छोटे बच्चे होते हैं, और अगर एक भिखमंगा आए और मैं उसे सौ रुपए का नोट उठा कर दे दूं और बच्चा मुझसे बाद में पूछे कि आपने एक भी पैसा उसको नहीं दिया। क्योंकि सौ रुपए के नोट का उसको कोई अर्थ ही नहीं होता, वह पहचानता है पैसों को। वह कहता है, एक पैसा उसको नहीं दिया, आप कैसे कठोर हैं। आया था मांगने, कागज पकड़ा दिया ? भूखा था, कागज से क्या होगा ? एक पैसा दे देते कम से कम। और वह लड़का जाकर गांव में कहे कि बड़ी कठोरता है मेरे घर में। एक भिखमंगा आया था तो उसको कागज का टुकड़ा पकड़ा दिया। कागज के टुकड़े से किसी की भूख मिटी ? एक रोटी भी दे देते, एक पैसा दे देते कम से कम। लेकिन पैसे का सिक्का बच्चा पहचानता है, रुपए के सिक्के का उसे कोई मतलब नहीं है, और सौ रुपए के नोट का कोई अर्थ नहीं है।

महावीर निकल रहे हैं एक रास्ते से, एक आदमी किनारे पर समझो लंगड़ा होकर पड़ा है। हम पैसे के सिक्के पहचानने वाले लोग हैं। अगर महावीर उतर जाएं और उसके पैर दबाएं तो हम एक फोटो निकाल लें, अखबार में छापें कि बड़ा अद्भुत सेवक है। लेकिन महावीर निकलते वक्त और क्या उसको चुपचाप दान करते हुए चले गए हैं, वह हमें दिखाई नहीं पड़ सकता, उसको भी नहीं दिखाई पड़ सकता। वह जो, जो लंगड़ा पड़ा है किनारे, वह भी यह कहेगा, कैसा दुष्ट आदमी है कि मैं यहां लंगड़ा पड़ा हूं और वह चुपचाप चला जा रहा है।

लेकिन किसी के चुपचाप चलने में इतनी किरणें भर सकती हैं, इतनी तरंगें पैदा हो सकती हैं, इतना दान हो सकता है कि हाथ का महावीर उपयोग भी न करना चाहें। हाथ के उपयोग का कोई मतलब भी नहीं है। क्योंकि महावीर की गहरी दृष्टि यह है कि जो शरीर नहीं है, उसे शरीर से कोई सहायता नहीं पहुंचाई जा सकती। वह जो लंगड़ा पड़ा है, वह पैर से लंगड़ा है, लेकिन हमें ख्याल नहीं है इस बात का कि दुख पैर के लंगड़े होने से नहीं पहुंचता, दुख तो लंगड़ा हूं इस चित्त के भाव से, इस आत्मभाव से पहुंचता है। और जरूरी नहीं है कि उस लंगड़े का आप पैर ठीक कर दें तो कोई लाभ ही हो जाए, यह भी जरूरी नहीं है। महावीर के तल पर क्या जरूरी है, वह वे जानते हैं। जानने का मतलब यह है कि कितनी करुणा वे उस पर फेंक सकते हैं, वे फेंककर चुपचाप गुजर जाएंगे। और यह भी क्या बात करनी कि कोई जाने कि करुणा किसने फेंकी !

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मैंने सुना है कि एक सूफी फकीर को एक रात किसी फरिश्ते ने दर्शन दिए और कहा कि परमात्मा बहुत खुश है और चाहता है कि तुम कुछ मांग लो, तो मैं वरदान दे दूं। पर उसने कहा, जब परमात्मा खुश है तो इससे बड़ा और वरदान क्या हो सकता है ? बात खत्म हो गई। मिल गया सब, जो मिलना था। लेकिन उस फरिश्ते ने कहा, नहीं, ऐसे काम नहीं चलेगा। कुछ मांगो ! कुछ भी मांगो !

उसने कहा कि अब कोई कमी ही न रही। जब परमात्मा खुश है, अब कमी क्या रही ? और जब परमात्मा ही खुश हो गया तो अब खुशी ही खुशी है, अब दुख आएगा कहां से ? तो अब मैं मांगू क्या ? अब मुझे भिखारी मत बनाओ, अब तो मैं सम्राट हो गया। जब परमात्मा मुझ पर खुश है तो अब मुझे भिखारी मत बनाओ, अब मुझे क्षमा कर दो, अब मुझे मांगने को मत कहो।

लेकिन फरिश्ता है कि नहीं मानता है। तो उसने कहा कि अब तुम नहीं मानते हो तो तुम्हीं दे जाओ, मैं नहीं मांगूंगा। तुम्हें जो देना हो, दे जाओ। फरिश्ते ने कहा कि मैं तुम्हें यह वरदान देता हूं कि तुम जिसको छू दो मरा हो तो जिंदा हो जाए, बीमार हो तो स्वस्थ हो जाए, वृक्ष सूख गया हो तो हरे पल्लव निकल आएं, हरे फूल निकल आएं।

उसने कहा, वह देते हो तो वह तो ठीक है; लेकिन सीधा मुझे मत दो। सीधा मुझे मत दो। कहीं ऐसा न हो कि मुझे लगने लगे कि मेरे हाथ से यह बीमार ठीक हुआ। सीधे मत दो। क्योंकि बीमार को तो फायदा पहुंच जाएगा, मुझे नुकसान पहुंचेगा। उस फरिश्ते ने कहा, और क्या उपाय हो सकता है ?

उस फकीर ने कहा कि मेरी छाया को दे दो, कि मैं जहां से निकलूं अगर छाया पड़ जाए किसी वृक्ष पर और वह सूखा हो तो हरा हो जाए; लेकिन मुझे दिखाई भी न पड़े, क्योंकि मैं तब तक निकल ही चुका होऊंगा। मैंने सूखा ही वृक्ष देखा था। मुझे पता भी नहीं चलेगा कि कब हरा हो गया। अगर किसी मरीज पर पड़ जाए तो वह स्वस्थ हो जाए, लेकिन मुझे पता न चले। मैं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता। मैं "मैं" के झंझट ही में नहीं पड़ना चाहता।

फिर कहते हैं, उस फरिश्ते ने उसे वरदान दे दिया। फिर वह सूखे खेतों के पास से निकलता तो वे हरे हो जाते। और सूखे वृक्षों पर उसकी छाया पड़ जाती तो वर्षों के सूखे वृक्षों में पत्ते निकल आते। और बीमार ठीक हो जाते और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मुर्दे जिंदा हो जाते, अंधों को आंख मिल जाती, बहरों को कान मिल जाते। यह सब उसके आस-पास घटित होने लगा, लेकिन उसे कभी पता नहीं चला। उसे पता चलने का कोई कारण न था, क्योंकि उसकी छाया से ये घटित होते थे। सीधा उसका कोई इनवाल्वमेंट, सीधा कुछ भी संबंध न था।

असल में जो परम स्थिति को उपलब्ध होते हैं, उनका होना मात्र करुणा है, उनकी मौजूदगी, प्रिजेंस मात्र।

जो भी होता है, वह उनकी छाया से हो जाता है, उन्हें सीधा कुछ करना नहीं पड़ता। असल में जिनके पास वैसी छाया नहीं है, उन्हें सीधा कुछ करना पड़ता है। लेकिन वे पैसे के सिक्के हैं। हमें हिसाब मिल जाता है उनका कि इस आदमी ने कितनी सेवा की, कितने कोढ़ियों की मालिश की, कितने बीमारों का इलाज किया, कितने अस्पताल खोलकर पैर दबाए बीमारों के। ये बिलकुल कौड़ियों की बातें हैं, इनका कोई भी मूल्य नहीं है बहुत गहरे में।

श्री अरविंद को आजादी के शुरू के दिनों में, आंदोलन में वह अति आतुर थे, और शायद उनसे प्रतिभाशाली कोई व्यक्ति हिंदुस्तान की आजादी के आंदोलन में कभी नहीं था। लेकिन अचानक एक मुकदमे के बाद वे सब छोड़कर चले गए। मित्र उन्हें घेरे हुए पहुंचे कि जिससे प्रेरणा मिलती थी, वह आदमी चला गया। जाकर अरविंद से कहा कि आप भाग आए? अरविंद ने कहा, मैं भाग नहीं आया। पैसे-कौड़ी का काम तुम्हीं कर लो, वह तुम कर सकोगे। मैं कुछ और बड़े काम में लगता हूं, जो मैं कर सकता हूं। क्या काम आप बड़ा करोगे? उन्होंने कहा, तुम उसकी चिंता मत करो।

और यह जानकर कठिनाई होती है हमें कि मुल्क में भारत की स्वतंत्रता के लिए जितना काम अरविंद ने किया, उतना किसी ने भी नहीं किया। लेकिन भारत की स्वतंत्रता के इतिहास में अरविद का नाम शायद ही लिखा जाए। क्योंकि कौड़ियों से हिसाब रखने वाले लोग, अरविंद ने जो किया, उसका कोई हिसाब नहीं रख सकते। वह आदमी चौबीस-चौबीस घंटे जागकर सारे प्राणों से इस मुल्क को जिस भांति आंदोलन करने की चेष्टा कर रहा है, उसका हम कोई हिसाब नहीं रख सकते! कैसे रखेंगे?

यानी यह हो सकता है कि गांधी में जो बल है, वह बल अरविंद का है, लेकिन इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। इसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सुभाष में जो ताकत है, वह ताकत अरविंद की है। हिंदुस्तान की पूरे इस बगावत के और विद्रोह के और स्वतंत्रता के इतिहास में जो सबसे कीमती आदमी है वह, कभी हिंदुस्तान की आजादी के इतिहास में उसका नाम उल्लेख नहीं होगा, यह पक्का मानो। लेकिन वह इस तल पर काम कर रहा है, जिस तल पर हमारी कोई पकड़ नहीं है। वह उन तरंगों को पैदा करने की कोशिश कर रहा है, जो मुल्क की सोई तंद्रा को तोड़ दें, जो विद्रोह के भाव को जगाएं, जो क्रांति की एक हवा लाएं, लेकिन हमें ख्याल में नहीं है। और जिस दिन कभी हजार-दो हजार साल बाद विज्ञान समर्थ होगा इन सूक्ष्म तरंगों को पकड़ने में, शायद उस दिन हमें इतिहास बिलकुल बदल कर लिखना पड़े। जो लोग हमें बहुत बड़े-बड़े दिखाई पड़ते हैं इतिहास में, वे दो कौड़ी के हो सकते हैं और जिन्हें हम कभी नहीं गिनते थे, वे एकदम परम मूल्य पा सकते हैं। क्योंकि वह जब तक सिक्का, सौ रूपए का नोट पहचान में न आए, तब तक बड़ी कठिनाई है।

अब अभी वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर एक फूल खिल रहा है, समझ लो एक फूल खिल रहा है, माली सुबह पानी डाल जाता है, खाद डाल देता है और घर चला जाता है। और एक संगीतज्ञ उसी के पास बैठकर वीणा बजाता है। कल जब बड़े-बड़े फूल खिलें तो संगीतज्ञ को कौन धन्यवाद देने जाएगा? संगीतज्ञ से मतलब क्या है फूल का? माली को लोग पकड़ेंगे कि तूने इतना बड़ा फूल खिला दिया—तेरे खाद और पानी और तेरी सेवा ने। लेकिन अब ध्वनि शास्त्र कहता है कि माली कुछ भी क्या कर सकता है। उसके करने का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। लेकिन अगर व्यवस्था से संगीत पैदा किया जाए तो फूल उतना बड़ा हो जाएगा, जितना कभी भी नहीं हुआ था। जितनी उसकी बीज की संभावना ही थी पूर्ण, मेक्जिमम; उतनी संभावना को प्रकट हो जाएगा। ऐसा संगीत भी बजाया जा सकता है कि फूल सिकुड़कर छोटा रह जाए। अब वह सिर्फ ध्वनियों का खेल है। जब ध्वनियां फूलों को बड़ा कर सकती हैं, कोई वजह नहीं कि विशिष्ट चित्त की तरंगें देश की चेतना को ऊपर उठाती हों; बगावत, स्वतंत्रता की गति पैदा करती हों। लेकिन हम उसे नहीं पहचान सकेंगे। हम कैसे पहचानेंगे?

अब ये रूस और अमेरिका, दोनों के वैज्ञानिक इस चेष्टा में संलग्न हैं कि क्या इस तरह की ध्वनि-तरंगें पैदा की जा सकती हैं कि पूरे मुल्क में लिथार्जी छा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जाए ? और इसमें वे काफी दूर तक सफल होते चले आ रहे हैं। कोई कठिनाई नहीं है कि आने वाला युद्ध बमों का युद्ध ही न हो, वह सिर्फ ध्वनि-तरंगों का युद्ध हो, आलस्य छा जाए। यानी रूस के रेडियो स्टेशंस इस तरह की ध्वनि लहरियां पूरे भारत पर फेंक दें कि पूरे भारत का आदमी एकदम आलस्य में पड़ जाए। यानी उसको कुछ लड़ने का सवाल ही न रहे, कोई भाव ही न रहे। सैनिक एकदम सो जाएं। और हमारी कुछ समझ में न आए कि यह क्या हो गया, या धीरे-धीरे पहुंचाने पर हमें पता ही न चले कि यह कब हो गया। यह धीरे-धीरे होता चला जाए। और हमारे भीतर जो सक्रियता है, वह सारी की सारी छीन ली जा सके। इस पर बड़ा काम चलता है। क्योंकि आखिर चारों तरफ ध्वनि की तरंगें हमें घेरे हुए हैं, उन पर निर्भर है कि हम क्या करें। लेकिन उससे भी गहरी तरंगें हैं, जिनका अभी विज्ञान को ठीक-ठीक पता नहीं हो पाता। उन तरंगों पर काम करने वाले लोग हैं।

महावीर ने कभी किसी की सेवा नहीं की और यह एक उनके ऊपर इल्जाम रहेगा। लेकिन तब तक यह इल्जाम रहेगा, जब तक हम पैसे के सिक्के पहचानते हैं। जिस दिन हम सौ रुपये के नोट पहचानना शुरू कर देंगे, उस दिन यह इल्जाम नहीं रह जाएगा। बल्कि हमको पता चलेगा जो पैर दबा रहे थे, वे इस-लिए दबा रहे थे कि और बड़ा कुछ वे नहीं कर सकते थे, इसलिए पैर दबाकर तृप्ति पा रहे थे। लेकिन पैर दबाने से होना क्या है ? महावीर की अहिंसा उस तल पर है, जिस तल पर सुख-दुख पहुंचाने का भाव भी विदा हो गया है, जहां सिर्फ महावीर जीते हैं—एक प्रिजेंस। विज्ञान में इन्हीं तत्त्वों को कैटालिटिक एजेंट कहते हैं। कैटालिटिक एजेंट कहते हैं इन्हीं तत्वों को। ऐसे तत्वों को जिनकी मौजूदगी कुछ करती है, जो खुद कुछ नहीं करते हैं—कैटेलिस्ट। जो खुद कुछ करते ही नहीं, यानी जिनका कोई दान ही नहीं होता काम में, लेकिन जिनकी मौजूदगी के बिना भी कुछ नहीं हो सकता, जिनकी मौजूदगी से ही कुछ हो जाता है।

अब जैसे कि हाइड्रोजन और आक्सीजन, इन दोनों को आप पास ले जाएं तो वे मिलते नहीं, अलग-अलग ही रहे आते हैं, पानी नहीं बनता। लेकिन बीच से बिजली चमक जाए, वे दोनों मिल जाते हैं। और विज्ञान बहुत खोज करता है, बिजली की चमक कोई भी कांट्रिब्यूशन नहीं करती, उन दोनों के मिलाने में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उसका कोई दान नहीं है, सिर्फ उसकी प्रिजेंस, उसकी मौजूदगी में बस वह मिल जाते हैं। उससे न कुछ जाता है, न कुछ आता है; न कुछ मिलता है, न कुछ छूटता है; बस वह मौजूद हो जाती है और वे मिल जाते हैं।

जिस भांति भौतिक तल पर कैटेलिक एजेंट हैं, कैटेलिस्ट हैं, हमारे ख्याल में नहीं है कि आध्यात्मिक तल पर भी कुछ लोगों ने उस स्थिति को छुआ है, जहां उनकी मौजूदगी सिर्फ काम करती है, जहाँ वह कुछ भी नहीं करते। यानी महावीर की मौजूदगी इतने काम कर देगी उस जगत में, जब वे मौजूद हैं उस लोक में, उस युग में, और महावीर कुछ भी नहीं करेंगे, वह सिर्फ हो जाएंगे, उनका होना काफी है। चेतना के तल पर उनकी मौजूदगी हजारों, लाखों चेतनाओं को जगा देगी, स्वस्थ कर देगी; यह सब हो जाएगा।

लेकिन अभी इसकी खोज-बीन होनी बाकी है वैज्ञानिक तल पर। आध्यात्मिक तल पर तो खोज-बीन पुरानी है, पूरी हो चुकी है, लेकिन विज्ञान की भाषा में समझाया जा सके, यह कभी हमने सोचा ही नहीं है। इस तरफ हम कभी सोचते नहीं हैं। यह कभी आप सोचते ही नहीं हैं कि आप हर हालत में वही नहीं होते, आप हर उपस्थिति में बदल जाते हैं। अगर आप मेरे सामने हैं तो आप वही आदमी नहीं हैं, जो घड़ी भर पहले थे; और मेरे सामने नहीं हैं तो आप वही आदमी नहीं होंगे, जो आप मेरे सामने थे। आपके भीतर कुछ ऐसा उठ आएगा, जो आपके भीतर कभी नहीं उठा था। और मैं उसमें कुछ भी नहीं कर रहा हूं। वह उठ सकता है, मौजूदगी में ही उठ सकता है। तो बहुत गहरे तल पर काम करने वाले लोग हैं, बहुत गहरे तल पर सेवा है। लेकिन हम चूंकि पैसों के सिक्के पहचानते हैं, इसलिए कठिनाई हो जाती है।

महावीर पर यह इल्जाम रहेगा, इसको अभी मिटाया नहीं जा सकता। लेकिन मैं मानता हूं कि जिस दिन यह मिटेगा, उस दिन जिनकी वजह से यह इल्जाम था, वे एकदम दो कौड़ी के हो जाने वाले हैं। और महावीर एक नए अर्थ में प्रकट होंगे, जिसका हिसाब लगाना अभी मुश्किल है।

अरविंद ने जरूर एक चेष्टा की है इस युग में, भारी चेष्टा की है, बड़ा श्रम उठाया है इस दिशा में, लेकिन उनको भी पहचानना मुश्किल पड़ता है और उनको भी साथ और सहयोग नहीं मिल पाता। यह हमारी कल्पना के बाहर है कि एक
CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गांव में एक आदमी के हट जाने से पूरा गांव बदलता है। वह कुछ भी नहीं करता था आदमी, बस था, तो भी गांव बदलता है।

जबलपुर में एक फकीर थे—कल ही मां उनकी बात करती थी—एक फ़कीर थे मग्घा बाबा। तो वह ऐसे अद्भुत आदमी हैं कि उनकी चोरी भी हो जाती है—उनकी ! उन्हें कोई अगर उठाकर ले जाए तो वे चले जाते हैं ! उनकी कई दफे चोरी हो चुकी, वर्षों के लिए खो जाते हैं ! क्योंकि कोई गांव उनको चुराकर ले जाता है। क्योंकि उनकी मौजूदगी के भी परिणाम हैं। अभी वे दो साल से चोरी चले गए हैं। इधर दो साल से बड़ी मुश्किल हो गई है, उनका कोई पता नहीं चलता, कौन ले गया उनको उठाकर ?

ऐसा कई दफा हो चुका है कि उनको किसी ने उठाकर गाड़ी में रख लिया है तो वह यह भी नहीं कहते कि क्या कर रहा है ? वे यह भी नहीं कहते, वे बैठ जाते हैं। वे यह भी नहीं पूछते कि कहां ले जा रहा है, काहे के लिए ले जा रहा है ? यह सब बात ही नहीं करते।

मगर उनकी मौजूदगी के परिणाम हैं। और यह लोगों को पता चल गया है तो उनको लोग चुराकर ले जाते हैं। और जिस गांव में वे होते हैं, जिस घर में वे होते हैं, वहां की सब हवा बदल जाती है। और वे कुछ भी नहीं करते, वे पड़े रहते हैं, सोए रहते हैं ज्यादातर ! न वे कुछ कभी बोलते, न कुछ चालते; लोग आकर उनकी सेवा करते रहते हैं। ऐसा अक्सर हो जाता है कि उनको चौबीस घंटे ही नहीं सोने देते। क्योंकि उनके कोई पांव दबा ही रहे हैं दो-चार लोग। एक दफे मैं रात उनके पास से गुजरा, कोई दो बजे रात थी, मैंने उनको कहा तो उन्होंने मुझसे कहा कि मुझ पर कुछ कृपा करो, लोगों को समझाओ। चौबीस घंटे दबाते रहते हैं। और दो-चार आदमी इकट्ठे दबा रहे हैं ! और वह बेचारा बूढ़ा आदमी लेटा है, कोई पैर दबा रहा है, कोई सिर दबा रहा है। क्योंकि उनकी सेवा का आनंद भी है और उनके पास होने का भी आनंद है। कोई जरूरत नहीं कि वे कुछ कहें। वे कभी आमतौर से बोलते नहीं यह हमे ख्याल में ही नहीं है।

और इसलिए दूसरी बात भी जो किसी प्रश्न में पूछी है, वह मैं ले लूं, इससे संबंधित है, वह यह पूछी है कि जैसे जैनों के चौबीस तीर्थंकर···बहुत बड़ी, विशाल पृथ्वी है, इस विशाल पृथ्वी पर इस छोटे-से भारत में और इस

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

छोटे-से भारत में भी दो-तीन प्रदेशों में ही, ये चौबीस तीर्थंकर क्यों हुए ? ये हर कहीं क्यों नहीं हो गए ?

ये हर कहीं नहीं हो सकते। क्योंकि प्रत्येक की मौजूदगी दूसरे के होने की हवा पैदा करती है। यह चेन है। इसमें ऐसा नहीं है मामला, यानी इसमें वह जो एक मौजूद था, उसने उस क्षेत्र की, उस प्रदेश की, उस व्यवस्था की चेतना को एकदम ऊंचा उठा दिया। इस ऊंची उठी चेतना में ही दूसरा तीर्थंकर पैदा हो सकता है, एक श्रृंखला है उसमें।

और यह भी जानकर आप हैरान होंगे कि जब दुनिया में महापुरुष पैदा होते हैं, तो करीब-करीब एक श्रृंखला की तरह सारी पृथ्वी को घेरते हैं, और उसका कारण होता है चेन। जैसे कि समझें जरथुस्त्र, लाओत्से, मेंशियस, च्वांगत्से चीन में हुए—पांच सौ साल के घेरे में ! महावीर, बुद्ध, गोशालक, अजित, संजय ये सब हुए; पूर्ण, ये सब हुए। उसी पांच सौ वर्ष के बीच में बिहार में ! सिर्फ बिहार में, छोटे से प्रदेश में ! उन्हीं पांच सौ वर्षों में एथेंस में सुकरात, अरस्तू, प्लेटो—उन्हीं पांच सौ वर्षों में ! इन पांच सौ वर्षों में सारी पृथ्वी पर एक चेन घूम गई।

क्योंकि जब एक···जैसे कि अब विज्ञान समझता है चेन एक्सप्लोजन : कि अगर हम एक हाइड्रोजन बम के एटम को फोड़ दें तो उसकी गर्मी से पड़ोस का दूसरा हाइड्रोजन एटम फूट जाएगा; उसकी गर्मी से तीसरा; उसकी गर्मी से चौथा। और एक हाइड्रोजन बम के फूटने पर पृथ्वी नहीं बचेगी, क्योंकि चेन-एक्शन में सारे पृथ्वी के हाइड्रोजन एटम्स टूटने लगेंगे।

सूरज इसी तरह गर्मी दे रहा है। सिर्फ पहली दफा एक हाइड्रोजन एटम एक्सप्लोड हुआ होगा कभी, अरबों-खरबों वर्ष पहले। वह कैसे हुआ होगा, यह दूसरी बात है। वह भी हुआ होगा किसी बड़े तारे की मौजूदगी से, जो करीब से गुजर गया होगा। इतना गर्म रहा होगा वह तारा कि उसके करीब से गुजरने से एक एटम टूट गया होगा; उसके टूटने से उसके पड़ोस का एटम टूटा, उसके टूटने से उसके पड़ोस का। और तब से सूरज के आसपास जो हीलियम गैस इकट्ठी है, उसके एटम्स टूटते चले जा रहे हैं, उन्हीं से हमको रोज गर्मी मिल रही है।

और इसीलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि चार हजार साल बाद सूरज ठंडा हो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जाएगा। क्योंकि अब जितने एटम्स बचे हैं, वे चार हजार साल में खतम हो जाएंगे। वह चेन एक्सप्लोजन चल रहा है। जैसा पदार्थ के तल पर शृंखलाबद्ध एक्सप्लोजन होता है कि इस मकान में आग लग गई तो पड़ोस के मकान में आग लग जाए; पड़ोस के मकान में आग लग गई तो उसके पड़ोस में आग लग जाए। और हो सकता है यहां किसी ने एक दीया जलाया था और उस दीए से आग पकड़ गई और पूरा गांव जल जाए—चेन पकड़ जाए।

तो जब कभी एक्सप्लोजन होता है चेतना का तो चेन पकड़ जाती है एकदम। यानी एक आदमी महावीर की कीमत का पैदा होता है तो वह संभावना पैदा कर देता है उस कीमत के सैकड़ों लोगों के पैदा होने की। ऊपर से दिखता है कि बुद्ध और महावीर दुश्मन हैं, लेकिन महावीर के एक्सप्लोजन का फल हैं बुद्ध। फल इन अर्थों में कि अगर महावीर न हो तो बुद्ध का होना मुश्किल है। ऊपर से लगता है कि अजित, पूर्ण, काश्यप, गोशालक, सब विरोधी हैं; लेकिन किसी को ख्याल नहीं है इस बात का कि वे सब एक ही चेन के हिस्से हैं। वह एक का एक्सप्लोजन जो हुआ है, तो हवा बन गई है, उसकी प्रिजेंस ने सारी चेतनाओं को एक, इकट्ठा कर दिया है और आग पकड़ गई है। अब इस आग पकड़ने में जिनकी संभावना ज्यादा होगी, वे उतनी तीव्रता से फूट जाएंगे।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि एक युग में एक तरह के लोग सारी पृथ्वी पर पैदा हो जाते हैं। एक वक्त में, एक प्रदेश में एकदम से प्रतिभा प्रकट होती है। ये प्रतिभा के भी आंतरिक नियम और कारण हैं। तो चौबीस तीर्थंकरों का पैदा होना सीमित क्षेत्र में, वहीं-वहीं, एक ही देश में, उसका कारण है। उस तरह की प्रतिभा के एक्सप्लोजन के लिए, विस्फोट के लिए हवा चाहिए, इसलिए चेन।

प्रश्न : चेन में चौबीस ही क्यों होते हैं? पच्चीस नहीं होते, तीस नहीं होते?

हां, उसका भी कारण है। उसका कारण—संख्या से कुछ भी संबंध नहीं है। असल में पच्चीस होते हैं, छब्बीस होते हैं, सत्ताईस होते हैं, कितने ही हो सकते हैं, इसका कोई संबंध नहीं है। लेकिन जब किसी चेन में एक बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हो जाता है—एक चेन में; यानी चौबीस तीर्थंकरों की चेन में महावीर सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली व्यक्ति है। वह इतना प्रतिभाशाली है कि उसके आस-पास के लोगों को लगा कि अब किसी की कोई जरूरत नहीं है इस चेन में। परम बात हमें उपलब्ध हो गई है। जो जानना था, वह जान लिया

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गया है, जो पहचानना था, वह पहचान लिया गया है, जो कहना था, वह कह दिया गया है।

और अनुयायी तो हमेशा डरा होता है। वह डरा होता है कि अगर प्रतिभा के लिए आगे द्वार रखो खुले, तो प्रतिभा हमेशा विद्रोही है और प्रतिभा हमेशा अस्त-व्यस्त कर देती है, अराजक है। तो अनुयायी भयभीत होता है, वह अपनी सिक्यूरिटी के लिए व्यवस्था कर लेता है। वह कहता है, अब बस ठीक।

प्रश्न : बीस तलक क्या कम है ?

हाँ, कम ही हैं। महावीर के मुकाबला का कोई आदमी नहीं हैं। महावीर के मुकाबले कोई आदमी ही नहीं है, उन चौबीस में ही। यह अकारण नहीं है कि महावीर केंद्र बन गए। अकारण नहीं है। उन चौबीस में महावीर के मुकाबले कोई आदमी नहीं है। ज्ञान तो वही उपलब्ध होता है सबको, लेकिन महावीर के बराबर टीचर नहीं है कोई, अभिव्यक्त नहीं कर पाता है कोई।

प्रश्न : समझा नहीं पाता ?

समझा नहीं पाता है, खबर नहीं पहुंचा पाता है।

प्रश्न : महावीर की प्रतिभा का कोई हो सकता है ?

होता ही रहता है। वह तो अगर जैन मना कर देते हैं तो पच्चीसवां जो है, वह नंबर एक बन जाता है, किसी दूसरी शृंखला का। उसका कोई कारण नहीं है। अगर पच्चीसवा होता तो बुद्ध को अलग शृंखला की जरूरत न पड़ती, बुद्ध पच्चीसवें हो जाते।

कठिनाई जो है—कठिनाई जो है कि जब भी कोई परंपरा अपनी अंतिम पुरुष को पा लेती है, ऊंचाई से ऊंचाई, तो फिर वह उसके बाद दूसरों के लिए द्वार बंद कर देती है—स्वाभाविक रूप से, क्योंकि फिर उपद्रव वह नहीं लेना चाहती। क्योंकि नई प्रतिभा नया उपद्रव लाती है। इसलिए वह सुनिश्चित हो जाती है। वह कहती है हमारी बात पूरी हो गई, हमारा शास्त्र पूरा हो गया, अब हम शृंखलाबद्ध हो जाते हैं, अब हम दूसरे को मौका नहीं देते। इसलिए फिर वह जो पच्चीसवां—व्यक्ति तो निरंतर पैदा हो रहे हैं—उस पच्चीसवें को नई शृंखला का पहला होना पड़ता है। बुद्ध पच्चीसवें हो गए होते, कोई कारण न था, कोई बाधा न थी, अगर इन्होंने द्वार खुले रखे होते।

लेकिन एक और कारण हो गया कि बुद्ध मौजूद थे उसी वक्त और द्वार

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बंद कर देना एकदम जरूरी हो गया—अनुयायी को जरूरी हो गया। क्योंकि अगर बुद्ध आते हैं तो सब अस्त-व्यस्त हो जाएगा। अस्त-व्यस्त यह हो जाएगा कि बहुत कुछ जो महावीर कह रहे हैं, उसको अस्त-व्यस्त कर देंगे, नई व्यवस्था देंगे। वह नई व्यवस्था मुश्किल में डाल देगी। इसलिए एकदम बुद्ध की मौजूदगी की वजह से एकदम दरवाजा बंद कर दिया कि चौबीस से ज्यादा हो ही नहीं सकते, और चौबीसवां हमारा हो चुका है।

प्रश्न : यह अनुयायियों ने किया ?

अनुयायियों की व्यवस्था है सारी। अनुयायी बहुत भयभीत है, एकदम भयभीत है। समझ लें कि आप मुझे प्रेम करने लगें और मेरी बात आपको ठीक लगने लगे तो आप एकदम दरवाजा बंद कर देंगे, क्योंकि आपको यह लगेगा कि दूसरा आदमी अगर आता है और फिर वह ये सब इनकी बातें गड़बड़ कर दे तो आपको पीड़ा होगी उससे। तो आप दरवाजा ही बंद कर देंगे कि बस, अब कोई जरूरत नहीं। इसलिए मुहम्मद के बाद मुसलमानों ने दरवाजा बंद कर दिया ! उनकी शृंखला में मुहम्मद अद्वितीय आदमी आ गया। जीसस के बाद ईसाईयों ने दरवाजा बंद कर दिया ! जीसस के पहले बहुत पैगंबर हुए, लेकिन जीसस के बाद उन्होंने एकदम बंद कर दिया ! यह जो बंद करना है···। बुद्ध के बाद बौद्धों ने बंद कर दिया, अब कोई बुद्ध पुरुष नहीं पैदा होगा ! एक मैत्रेय की कल्पना चलती है कि कभी बुद्ध एक और अवतार लेंगे मैत्रेय का, लेकिन वह भी बुद्ध ही लेंगे, कोई दूसरा आदमी नहीं होने वाला है।

प्रश्न : हिंदुस्तान में अभी कोई आध्यात्मिक तल पर ऐसी कोई शृंखला रामकृष्ण, विवेकानंद या अरविंद, इनके जैसे व्यक्तियों की कोई शृंखला चल रही है ? इन दो सौ-तीन सौ वर्षों में ऐसा कुछ हुआ है ?

हां, यहां सबसे ज्यादा प्रभावशाली आदमी इन दो-तीन सौ वर्षों में रमण और कृष्णमूर्ति हैं पीछे। लेकिन न तो रमण के पीछे शृंखला बन सकी, और कृष्णमूर्ति के पीछे भी नहीं बनेगी। कृष्णमूर्ति बनाने के विरोध में हैं। और रमण के पीछे बन नहीं सकी। उस कीमत का आदमी नहीं मिला जो बढ़ा सके आगे बात को या कुछ जोड़ दे सके।

रामकृष्ण को विवेकानंद मिले, विवेकानंद बहुत शक्तिशाली व्यक्ति हैं, अनुभवी नहीं। तो शक्तिशाली होने की वजह से उन्होंने चक्र तो चला दिया,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेकिन चक्र में ज्यादा जान नहीं है, इसलिए वह जाने वाला नहीं है। रामकृष्ण बहुत अनुभवी हैं, लेकिन टीचर होने की, तीर्थंकर होने की कोई स्थिति उनकी नहीं है। शिक्षक वह नहीं हो सकते।

इसलिए पहली दफा···ऐसा कई दफा होता है कि जब कोई व्यक्ति शिक्षक नहीं हो सकता तो वह दूसरे व्यक्ति के कंधे पर रखकर शिक्षण का काम करता है। तो रामकृष्ण ने विवेकानद के कंधे पर रखकर हाथ—शिक्षण का काम विवेकानंद से ले लिया।

लेकिन गड़बड़ हो गई। गड़बड़ यह हो गई कि रामकृष्ण अपने आप शिक्षक हो नहीं सकते, वह संभावना ही नहीं है। और विवेकानंद अनुभवी नहीं हैं, इसलिए विवेकानंद माऊथपीस हो गए रामकृष्ण के, और विवेकानंद ने जो कहा, उससे रामकृष्ण का कौड़ी भर संबंध नहीं है। बहुत गड़बड़ हो गई। इतना अस्त-व्यस्त हो गया सब मामला।

और फिर रामकृष्ण की मृत्यु हो गई, फिर विवेकानंद रह गए। और विवेकानंद ने जो शक्ल दे दी उस पूरी व्यवस्था को, वह विवेकानंद की है। विवेकानंद एक बहुत बड़े आर्गनाइजर हैं, बड़े व्यवस्थापक हैं। अगर विवेकानंद का ही अनुभव होता खुद, तो एक चेन शुरू हो जाती, लेकिन वह नहीं हो सकी। क्योंकि विवेकानंद का खुद का कोई अनुभव नहीं है और जिसका अनुभव है, वह व्यवस्थापक नहीं है! वह टूट गई।

रमण के साथ हो सकती थी घटना, क्योंकि वह उसी कीमत के आदमी हैं, जितने बुद्ध या महावीर; लेकिन वह नहीं हो सका, क्योंकि कोई आदमी नहीं उपलब्ध हो सका। कृष्णमूर्ति उसके विरोध में हैं, इसलिए कोई सवाल उठता नहीं।

प्रश्न : पश्चिम में है कि नहीं चेन?

पश्चिम में भी चेन है, पश्चिम में भी फकीरों की चेन है, जैसे जीसस की चेन चली थोड़े दिन तक, फिर उस चेन का द्वार बंद हो गया। उसके बाद दूसरी चेन चली।

प्रश्न : आज इन दो सौ वर्षों में कोई नाम है पश्चिम में।

हां, हां, अभी है न! जैसे एकहार्ट जर्मनी में हुआ, तो अद्‌भुत कीमत का आदमी हुआ, लेकिन शिक्षक नहीं है। हज़ार संभावनाएं इकट्ठी हों, तब कहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एक चेन गति पकड़ती है; नहीं तो नहीं पकड़ती। एकहार्ट बहुत कीमत का आदमी है, जीसस की कीमत का आदमी है; लेकिन चेन नहीं पकड़ सकी; क्योंकि वह कोई शिक्षक नहीं है। वह बातें कहता है, वे बेबूझ हो जाती हैं, वह समझा नहीं पाता।

और बातें बेबूझ हैं। समझाने की बहुत समझ न हो तो उनको समझाया ही नहीं जा सकता। एकदम कंट्राडिक्टरी बातें हैं, बहुत समझ हो तो ही उनके कंट्राडिक्शंस को मिटाया जा सकता है और समझ के करीब लाया जा सकता है।

बोहमे हुआ जर्मनी में, वह भी चेन बना सकता था, लेकिन नहीं बना सका।

कैथलिक चेन कुछ अर्थों में जिंदा धीरे-धीरे चल रही है; लेकिन कोई बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं है; जो कि उसको गति दे सके।

सब चेन धीरे-धीरे मर जाती हैं। जैसे जापान में झेन की चेन चलती है, उसमें अभी भी एक प्रतिभाशाली आदमी था सुजुकी, लेकिन वह मर गया। उसने बड़ी कोशिश की कि वह गति दे दे, लेकिन वह गति नहीं हो पाई।

और फिर होता क्या है, कठिनाई क्या होती है?

जब कोई महापुरुष एक श्रृंखला को जन्म दे जाता है तो अगर उसके पास बहुत छोटे-मोटे लोग इकट्ठे हो जाएं और वे उसके दावेदार हो जाएं तो दुहरा नुकसान पहुंचता है। वे तो खुद चला नहीं सकते कुछ, सिर्फ मार सकते हैं। दूसरा नुकसान यह पहुंचता है कि कोई अगर प्रतिभाशाली व्यक्ति उस चेन में पैदा भी हो जाए तो उसे चेन के बाहर कर देते हैं वे फौरन! वह जो नासमझों की भीड़ है, वह उसे एकदम बाहर कर देती है!

असल में जीसस यहूदी चेन का हिस्सा हो सकता था। तो यहूदियों के तीर्थंकर हुए हैं बहुत अद्भुत। खुद जॉन था, जिसने जीसस को बपतिस्मा दिया। वह बड़ा कीमती व्यक्ति था, जीसस की कीमत का आदमी था। और उसने जीसस को निकट लेकर सत्संग दिया। लेकिन यहूदी भीड़ जीसस को बर्दाश्त नहीं कर सकी। इतने कीमती आदमी को, तो उसने, भीड़ ने बाहर कर दिया उनको? इसलिए यहूदियों का बेटा यहूदियों के बाहर हो गया और ईसाइयत शुरू हो गई!

ईसाइयत—अब ईसाइयत के बीच जो भी कीमती आदमी पैदा होता है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ईसाइयत उसको बाहर कर देती है फौरन ! होता क्या है कि वह जो भीड़ नासमझों की इकट्ठी हो जाती है, वह फिर किसी प्रतिभा को बर्दाश्त नहीं करती। और जो प्रतिभा चेन को जिंदा रख सकती है, उसको वह बाहर कर देती है, तब नई चेनें शुरू हो जाती हैं। ऐसे दुनिया में कोई पचास चेनें चली हैं, मरी हैं। थोड़ा बहुत चलती हैं, टूटती हैं, मिट जाती हैं।

और इसलिए मेरा कहना है कि दुनिया को जितना आध्यात्मिक लाभ पहुंच सकता था इन सबसे, वह नहीं पहुंच पाया, और अब हमें चाहिए कि हम सारी व्यवस्था तोड़ दें सम्प्रदाय की, ताकि प्रतिभा को बाहर निकालने का उपाय भी न रह जाए कहीं से भी। वह निकालने की आत ही नहीं रह जाती है।

अब जैसे मैं मानता हूँ कि किसी भी, किसी भी···जैसे थियोसोफी की चेन थी; बड़ी कीमती चेन थी, उसे ब्लावट्स्की ने शुरू किया और कृष्णमूर्ति तक वह आई। लेकिन कृष्ण मूर्ति इतने ज्यादा बोल्ड साबित हुए, इतने साहसी, कि थियोसोफिस्ट ही बर्दाश्त नहीं कर सके ! तो थियोसोफिस्टों ने बाहर कृष्णमूर्ति को कर दिया ! थियोसोफिस्ट चेन मर गई। वह मर गयी इसलिये कि जो कीमती आदमी उसको आगे गति दे सकता था, उसको तो बाहर निकाल दिया।

अगर दुनिया से संप्रदाय मिट जाएं, सीमाएं मिट जाएं, तो विस्फोट ज्यादा व्यापक हो सकता है।

विस्फोट छू नहीं पाता—जैसे समझो, इस मकान में आग लगी है तो पड़ोस के मकान में इसीलिए आग लग सकती है कि वह इससे जुड़ा हुआ है, और अगर बीच में एक गली है तो नहीं लग सकती—गैप है बीच में।

अब अगर रमण पैदा भी हो जाएं तो ईसाई से उनका कोई संबंध नहीं जुड़ता, क्योंकि एक गैप है, मकान अलग-अलग ही हैं।

तो चेन बहुत दफे पैदा होती है, श्रृंखला आग की, लेकिन अलग-अलग टुकड़े बनाकर रखे हुए हैं, वह उसी में भटककर मर जाती है, बाहर जाने का उपाय नहीं। और दुबारा अगर कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति हो तो वह खुद ही भीड़ जो है घरों की, वह उसे निकाल बाहर कर देती है कि हमारे घरों में इसे रहने नहीं देना, यह आग लगवा देगा। और उसको फिर नया घर बनाना पड़ता है। और नया घर मुश्किल पड़ता है। मुश्किल पड़ने का मतलब यह होता है कि वह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मुश्किल से जिंदगी भर में थोड़े-बहुत लोग इकट्ठे कर पाता है, और फिर उसके साथ यही होता है।

तो अब तक आध्यात्मिक जगत में जो नुकसान पहुंचता रहा है मनुष्य को वह इसलिए पहुंचता रहा है कि संप्रदाय हैं, सीमाएं हैं—वे बहुत सख्त और मजबूत हो जाती हैं। पच्चीसवां तीर्थंकर पैदा हो सकता है निरंतर, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। छब्बीसवां होगा, इसमें कोई सवाल ही नहीं है। कोई सीमा नही है, कोई संख्या नहीं है।

प्रश्न : महावीर का कुछ काम बाकी रहे, तब पच्चीसवां होगा ?

काम तो खतम होता ही नहीं यहां। महावीर का थोड़े ही कोई काम है! महावीर का कोई काम नहीं है। काम तो यहां अज्ञान और ज्ञान की लड़ाई का है। काम तो यहां मूर्च्छा और अमूर्च्छा का है। महावीर का थोड़े ही कोई काम है।

प्रश्न : मोहम्मडंस में भी हुए है मुहम्मद के बाद ?

हां न ! मुहम्मद के वाद बहुत लोग हुए, लेकिन उनको निकाल दिया मुसलमानों ने बाहर। जैसे बायजीद हुआ, बाहर निकाल दिया फौरन ! जैसे कि मंसूर हुआ, तो गर्दन उड़ा दी उसकी ! तो मुहम्मद के बाद जो भी कीमती आदमी हुए, वह अलग हिस्सा हो गया सूफियों का। वह एक अलग ही टुकड़ा हो गया, वह उसको···उसको मुसलमान फिक्र नहीं करता, उसको मानने की ! वह उसको फौरन अलग कर देंगे। वह कीमती जो आदमी हुआ, वह अलग हो जाएगा। और फिर सूफियों में भी सिलसिले बढ़ते चले जाएंगे ! जैसे कि मंसूर हुआ तो मंसूर को जो मानने वाला है, वह अगर उसके बीच में कोई आदमी पैदा हुआ जो मंसूर···

प्रश्न : सूफी किसे कहते हैं ?

सूफी मुसलमानों के बीच में क्रांतिकारी रहस्यवादियों का वर्ग है। जैसे कि बौद्धों में झेन फकीरों का वर्ग है, ऐसा वह वर्ग है। जैसे यहूदियों में हसीद फकीरों का वर्ग है। ये सब बगावती लोग हैं, जो परंपरा में पैदा होते हैं, लेकिन इतने कीमती हैं कि उनको बगावत करनी पड़ती है।

जैसे कि मुहम्मद के पीछे नियम बना कि एक ही अल्लाह है और उस अल्लाह का एक ही पैगंबर है मुहम्मद।

सूफियों ने कहा कि एक ही अल्लाह है, यह तो बिलकुल सच है; लेकिन एक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ही पैगंबर नहीं है मुहम्मद, पैगंबर हजार हैं। बस झगड़ा शुरू हो गया।

सूफियों ने कहा, पैगंबर हजार हैं, पैगंबरों की क्या गिनती है ? यानी ईश्वर एक है, यह तो ठीक है।

तो मुसलमान जब मस्जिद में नमाज पढ़ता है तो वह कहता है, एक ही परमात्मा है और एक ही उसका पैगंबर, मुहम्मद।

सूफी भी मस्जिद में नमाज पढ़ता है, लेकिन वह कहता है, एक ही परमात्मा है, लेकिन पैगंबर तो हजार हैं। यानी पैगंबर का क्या हिसाब है ? संदेश लाने वाले तो हजार हैं।

लेकिन यह मुसलमान इसको बर्दाश्त नहीं कर सकता। क्योंकि वह कहता है महावीर भी ठीक, बुद्ध भी ठीक, जीसस भी ठीक, ये सभी पैगंबर हैं ! इसमें कोई बाधा नहीं है। एक की ही खबर लाने वाले ये अनेक लोग हैं। मगर यह मुसलमान की बर्दाश्त के बाहर है।

अभी मैंने एक किताब···कोई मेरा वक्तव्य था, वह छापा। तो उसमें मैं महावीर के साथ मुहम्मद और ईसा का नाम लिया। तो एक बड़े जैन मुनि हैं, जिनके बहुत भक्त हैं, उनको वह किताब किसी ने दी तो उन्होंने उसको उठाकर फेंक दिया और कहा कि मुहम्मद का नाम और महावीर के साथ ? कहां मुहम्मद और कहां महावीर ! महावीर सर्वज्ञ, तीर्थंकर और मुहम्मद साधारण अज्ञानी ! कहां इसका मेल बिठा दिया ! दोनों का नाम साथ ले दिया, यही पाप हो गया ! फिर उन्होंने कहा, इसको मैं पढ़ ही नहीं सकता आगे !

तो वही मुहम्मद का मानने वाला भी कहेगा न कि महावीर का नाम मुहम्मद के साथ ले दिया ? कहां मुहम्मद पैगंबर और कहां महावीर ! क्या रखा है महावीर में ? तो वह जो सूफी कहेगा कि सब पैगंबर उसी के, वह बर्दाश्त के बाहर हो जाएगा।

अज्ञानियों की भीड़ में ज्ञान सदा बर्दाश्त के बाहर है, इसलिए कठिनाई हो जाती है।

और शृंखलाएं चलती हैं और मर जाती हैं। अब तक कोई शृंखला ऐसी नहीं बन पायी···

प्रश्न : आप जो कहते हैं कि जीसस क्राइस्ट, कृष्ण, मोहम्मद, इन सबका नाम साथ लें तो आपका मानना यह है कि सबकी चेतना सरीखी है, या सब

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कौमों को साथ में करना है इसलिए आप कहते हैं ?

नहीं, नहीं सबको साथ करना ही नहीं है, सबकी सरीखी हैं, वे साथ हैं ही।

प्रश्न : चेतनाएं सबकी सरीखी हैं ?

बिलकुल सरीखी हैं, साथ करने का सवाल ही नहीं है। साथ करके भी क्या फर्क...?

प्रश्न : इसलिए कड़ी का भी आप नाम नहीं लेते ?

जरा भी नहीं, जरा भी नहीं। उनकी चेतना बिलकुल सरीखी है।

प्रश्न : अभिव्यक्ति सबकी अलग-अलग है ?

अभिव्यक्ति बिलकुल अलग-अलग है, होने ही वाली है। मुहम्मद मुहम्मद हैं, महावीर महावीर हैं, अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी। मुहम्मद जो बोलेंगे, वह मुहम्मद का बोलना है, अपनी भाषा होगी, अपनी परंपरा के शब्द होंगे। महावीर की अपनी भाषा होगी, अपनी परंपरा के शब्द होंगे। अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी, अनुभूति बिल्कुल एक है।

प्रश्न : सबकी एक-एक अभिव्यक्ति है, उनके सुनने वाले वही साधना मेंलग जाते हैं। आपकी तो सब अभिव्यक्तियां अलग-अलग हैं, तो आपके सुनने वालों का क्या होगा ?

हूं ! सुनने वालों को बड़ी कठिनाई है। मेरे—मेरे सुनने वालों को बड़ी कठिनाई है। क्योंकि अगर मैं कोई एक ही बात कहता, तब तो बहुत आसान था मेरे पीछे चलना।

एक तो पहली बात, मैं पीछे नहीं चलाना चाहता, तो जरूरत ही नहीं पीछे चलने की मेरे।

दूसरी बात यह है कि मैं चीजों को इतनी आसान भी नहीं बनाने देना चाहता, जितनी कि आसान बनाकर नुकसान हुआ है। संप्रदाय इसीलिए बने हैं। तो मैं तो उन सारी धाराओं की बात करूंगा और उन सारे नियमों की बात करूंगा, उन सारी पद्धतियों की उन, सारे रास्तों की जो मनुष्य ने कभी भी अख्तियार किए हैं। शायद इस तरह की कोशिश कभी भी नहीं की गई।

रामकृष्ण ने थोड़ी-सी कोशिश की थी, लेकिन रामकृष्ण समझाने में बिलकुल असमर्थ हैं। तो रामकृष्ण ने सभी साधना पद्धतियों का प्रयोग किया और इस नतीजे पर पहुंचे कि सब रास्ते अलग हैं, पहाड़ की चोटी पर सब एक हो जाते

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हैं। लेकिन उनके पास कोई नहीं था उपाय कि वह इसको कह सकते। फिर
उन्होंने जो साधन पद्धतियां भी अख्तियार की थीं, वे भी बंगाल में जो उन्हें
उपलब्ध थीं; सारे जगत के बाबत उनका विचार भी उतना विस्तीर्ण नहीं था।

मैं तो एक प्रयोग करना ही चाहता हूं कि सारी दुनिया में अब तक जो भी
किया गया है परम जीवन के पाने की दिशा में, उस सबकी सार्थकता को एक
साथ इकट्ठा ले आऊं। निश्चित ही मैं कोई संप्रदाय नहीं बना सकता। लेकिन
मैं चाहता ही हूं कि संप्रदाय मिट जाएं। मैं अनुयायी भी नहीं बना सकता,
क्योंकि मैं चाहता ही हूं कि अनुयायी हो ही न।

चाह मेरी यह है कि मनुष्य ने जो अब तक खोजा है और जो इस तरह
बिखर गया है और ऐसा मालूम होता है कि उल्टा बिखर गया है, वह एकदम
निकट आ जाए। इसलिए मेरी बातों में बहुत बार विरोधाभास मिलेंगे, क्योंकि
मैं कभी किसी मार्ग की बात जब कर रहा होता हूं तो उस मार्ग की बात कर
रहा होता हूं; जब दूसरे मार्ग की बात कर रहा होता हूं तो उस मार्ग की बात कर
रहा होता हूं। और इन दोनों मार्गों पर अलग-अलग वृक्ष मिलते हैं, अलग-
अलग चौराहे मिलते हैं, इन दोनों मार्गों पर अलग-अलग मंदिर का आवास है,
इन दोनों मार्गों पर अलग-अलग रास्ते की अनुभूतियां हैं—अलग-अलग।

रास्ते की अनुभूतियां अलग-अलग हैं, परम अनुभूति समान है।

तो वह तो मैं जिंदगी भर जब बोलता रहूंगा, धीरे-धीरे जब तुम्हें सब साफ
हो जाएगा कि मैं हजार रास्तों की बातें कर रहा हूं, तब तुम्हें ख्याल में आएगा
और फिर तुम्हें जो ठीक लगे रास्ता, उससे तुम चले जाना। लेकिन एक फर्क
पड़ेगा, मेरी बात सोचकर, समझकर जो गति करेगा—उसे एक फर्क पड़ेगा कि
वह किसी भी रास्ते पर जाए, जो उसे अनुकूल हो; लेकिन वह दूसरे की दुश्मनी
की बात नहीं करेगा। क्योंकि वह इतना ही कहेगा कि यह मेरे लिए अनुकूल है।
यही रास्ता सत्य है, ऐसा नहीं—यह रास्ता मेरे लिए अनुकूल है, इतना ही सत्य
है। पड़ोसी के लिए दूसरा रास्ता अनुकूल हो सकता है।

तब यह हो सकता है कि पति फकीर, मुसलमान, सूफियों को मानता हो;
पत्नी मीरा के रास्ते पर जाती हो; बेटा हिंदू हो कि जैन हो कि बौद्ध हो।
तब एक परम स्वतंत्रता हो रास्तों की। और हर घर में रास्तों के बाबत
थोड़ा-सा परिचय हो, ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए रास्ता चुन सके कि उस

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लिए क्या उचित हो सकता है, उसके अनुकूल क्या हो सकता है।

अभी क्या कठिनाई है—एक आदमी जैन घर में पैदा हो जाता है और हो सकता है महावीर का रास्ता उसके लिए अनुकूल ही नहीं है, बिलकुल ही अनुकूल नहीं है और वह कभी कृष्ण के रास्ते पर नहीं जाएगा, जो कि उसके लिए अनुकूल हो सकता था ! एक आदमी कृष्ण के मानने वाले के घर में पैदा हो गया तो वह महावीर के बाबत कभी सोचेगा ही नहीं ! और हो सकता है, उसे कृष्ण का रास्ता बिलकुल अनुकूल न हो और वह महावीर के रास्ते से जा सकता था।

तो मेरा काम ही यह है, इतना भी काम अगर पूरी जिंदगी में हो जाए कि मैं सारे रास्तों को निकट खड़ा कर सकूं, एक पर्सपेक्टिव में, एक दृष्टि में वे दिखाई पड़ने लगें, एक झलक में आदमी उन्हें देख सके, पहचान सके और निष्पक्ष होकर सोच सके और फिर अपनी स्थिति के साथ तौल कर सके कि कौन-सा रास्ता मेरे लिए है ! लेकिन तब वह दूसरे की दुश्मनी नहीं है। तुमने जो कपड़े पहने हुए हैं, वह तुम्हारी मौज है···

प्रश्न : रास्तों का भी विश्लेषण किसी वक्त करें ?

करना है, जरूर करना है, जरूर करना है। ऐसे तो होते ही चला जाता है। अब जैसे महावीर की मैंने बात की तो इसमें महावीर के रास्ते का पूरा विश्लेषण हो जाएगा। कल मुहम्मद की बात करूंगा तो उनका हो जाएगा। परसों क्राइस्ट की बात करूंगा तो उनका हो जाएगा। कृष्ण की करूंगा तो उनका हो जाएगा। वह होता चला जाएगा। व्यक्तियों को चुनकर भी मैं बात कर लेना चाहता हूं और फिर शास्त्र को चुनकर भी बात कर लेना चाहता हूं। जैसे गीता को, कुरान को, बाइबिल को—उनको भी चुनकर बात कर लेना चाहता हूं। अगर एक पूरी जिंदगी में इतनी भी बात हो सके तो बड़ा तृप्तिदायी है।

प्रश्न : अब तो एक निवेदन है !

हां।

प्रश्न : आप इस जिंदगी के बारे में जानते हैं, कितने दिन आपको रहना है। कहीं ऐसा न हो कि जो कुछ आप सोच रहे हैं, वह अधूरा रह जाए। इसे किसी दूसरे को देने वाली बात भी आपके ध्यान में रहनी चाहिए।

यह तो आप ठीक कहते हैं। यह तो आप ठीक कहते हैं। यह भी बात ठीक है जिंदगी का कोई भरोसा नहीं। और यह भी बात ठीक है कि इतना बड़ा काम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है, उसे एक आदमी जिंदगी में कर पाए, न कर पाए। भरोसा एक ही है कि काम में मेरा कोई स्वार्थ नहीं है, अगर जिंदगी की मर्जी होगी तो पूरा काम ले लेगी, मर्जी नहीं होगी तो नहीं लेगी। यानी उस···उसकी मुझे कोई जिद्द भी नहीं कि पूरा होना ही चाहिए। इसमें जिद्द की भी क्या बात है? वह पूरा होना ही चाहिए यह भी कोई बात नहीं है।

और आप जो कहते हैं, वह ठीक ही कहते हैं; पर वह भी इन्हीं लोगों में से धीरे-धीरे जो मेरे करीब आते हैं, वे लोग खड़े हो सकेंगे कि थोड़ी साधना में गति करें, तो निश्चित ही उनसे काम लिया जा सकता है—उनसे काम लिया जा सकता है। और वह भी जिंदगी को लेना होगा तो ही। उसको भी···उसको भी···मेरे मन में कल के लिए भी हिसाब नहीं है। यानी जब आप मुझसे बात करते हैं तो मैं कहता हूं, लेकिन मेरे मन में कल का भी हिसाब नहीं है। कल आएगा तो जो काम जिंदगी को लेना होगा, वह ले लेगी। और नहीं लेना होगा तो ठीक है, कल नहीं आएगा। इसमें मेरा कोई आग्रह जरा भी नहीं है। इसलिए अत्यंत निश्चिंत हूं। कोई तनाव भी नहीं है उसका।

अब जैसे महावीर के संबंध में यह कह रहा हूं, यह मैं कभी बैठकर सोचा नहीं हूं। आप से बात हो रही है तो सोचता चलता हूं। कल क्राइस्ट के बाबत क्या कहूंगा, मुझे खुद पता नहीं है, सोचता चलूंगा।

इधर मेरी अपनी भीतरी जो स्थिति है, वह यह है कि बिलकुल छोड़ा हुआ हूं, और जहां परमात्मा ले जाए, जहां बहा दे और जो करवा ले। और न करवाना हो तो उसकी मर्जी है, उसमें भी मेरी तरफ से कोई, कोई आग्रह नहीं किसी तरह का। और उसे काम लेना होता है तो वह हजार तरह से काम ले लेता है। उसके उपयोग का है तो हजार तरह से वह पूरा करवा लेता है।

और आप जो कहते हैं, वह भी ठीक कहते हैं, कुछ लोग तैयार भी करवा ले सकता है। वह भी उसके ही हाथ की बात है।

एकाध प्रश्न और कर लें फिर···

प्रश्न : एक बात है··· ?

हां।

प्रश्न : आपने कहा कि, इसलिए कि शृंखला नहीं चले तथा संप्रदाय ही—आपका जो कहना है कि मैं हर धर्म को आपके सामने पेश करूंगा, तो इससे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संप्रदाय तो खड़ा रहेगा—जो हर धर्म का आदमी नए ढंग से पकड़ेगा और उसमें हर धर्म वाले आदमी होंगे। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि सब एक जैसा पकड़ें ऐसा एक धर्म का नया स्वरूप आ जाए?

अपने आप आ जाएगा।

प्रश्न : आप जोर क्यों नहीं देते ?

अपने आप आ जाएगा। अगर हम, सब धर्मों को समझने की सद्‌बुद्धि हममें आ जाए तो अपने आप आ जाएगा, उसमें जोर देने की जरूरत नहीं है। यानी अभी तक जो झगड़ा है, वह इसी बात का है कि प्रत्येक धर्म वाला समझता है कि सत्य का मेरा ठेका है और बाकी सब असत्य हैं। अगर मैं सबके भीतर सत्य को तुम्हें बता सकूं तो यह बात टूट जाती है, इसको जोर देने की जरूरत नहीं है। यह तो तुम, सुनते-सुनते टूट जाएगी। सुनते-सुनते तुम उस जगह पहुंच जाओगे कि तुम्हें कहना मुश्किल हो जाएगा कि मैं हिंदू हूं, कि मैं मुसलमान हूं कि ईसाई हूं। अगर तुम सुनते-सुनते न पहुंच जाओ और मुझे जोर देना पड़े तो वह जोर तो जबरदस्ती हो जाएगी। यानी मेरा कहना यह है कि अगर मेरी बात सुनते-सुनने ही तुम कहीं पहुंच गए तो ठीक, अब पीछे से जोर भी देना पड़े, तो फिर तो ठीक नहीं है।

प्रश्न : आपके तरीके से तो ठीक है, मगर समझ लें, यानी जज्बाती एक आदमी इस बाजू हो जाए ?

किस बाजू ?

प्रश्न : इस बाजू संभव है—इस बाजू। नए-नए ढंग से पकड़े तो आपका कहना ठीक है, आप इस स्टेज तक सोच सकते हैं ?

नए ढंग से पकड़ा ही अगर, तो नया ढंग क्या है मेरा, कि पकड़ें न। समझे न मेरी बात ? यानी मेरा कहना यह है कि जब तक पकड़ता है, तब तक पुराना ढंग है, नहीं पकड़ता तो ही नया ढंग है। और मेरी बात सुनते-सुनते उसकी पकड़ छूट जाए, क्लिगिंग छूट जाए, तो बात खतम हो गई। भय तो सदा है। जो तुम कहते हो, भय तो सदा है। भय इसलिए सदा है कि लोग भयभीत हैं, और कोई कारण नहीं है। तो उनको सब जगह भय दिख जाता है। भय चित्त में है तो सब जगह भय दिखता है,भय चित्त में न हो तो फिर कहीं भय नहीं दिखता।

प्रश्न : क्या मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से पशु-हिंसा न्यायसंगत है ?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हूं, यह प्रश्न बहुत बढ़िया है। क्या मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से पशु-हिंसा न्याय-संगत है?

सिर्फ मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से ही न्यायसंगत नहीं है, और सब दृष्टि से न्यायसंगत हो सकती है। पशु-हिंसा जो है वह सिर्फ मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से ही न्यायसंगत नहीं है, बाकी सब दृष्टि से न्यायसंगत है। इसलिए मनुष्य से नीचे के तलों पर हम पशु-हिंसा को अन्याय नहीं कहते और न कह सकते हैं। उस तल पर जीवन ही सब कुछ है और जीवन के लिए जो भी किया जा रहा है, वह सब ठीक है।

पशु और मनुष्य में फर्क ही क्या है? पशु और मनुष्य में फर्क एक ही है कि मनुष्य सचेत हुआ है, जाग्रत हुआ है, सचेतन हुआ है, सेल्फ-कांशस हुआ है, उसने चीजों में देखना शुरू किया है। इसके लिए भोजन इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना भोजन का साधन महत्वपूर्ण है। एक बार वह भोजन से चूक सकता है, लेकिन मनुष्यता से नहीं चूक सकता। मनुष्य होने का मतलब यह है कि मनुष्यता कुछ इतनी कीमती चीज हो गई है···।

मैंने एक कहानी पढ़ी है, हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा हुआ। एक गांव में उपद्रव हो गया, दंगा हो गया। एक परिवार भागा, पति है, उसकी पत्नी है, एक बच्चा साथ है। दो बच्चे कहीं खो गए हैं। गायें थीं, भैंसें थीं, वे सब खो गईं, सिर्फ एक गाय साथ में बचा पाए। लेकिन उस गाय का छोटा बछड़ा था, वह भी खो गया। वे सब जंगल में छिपे हैं। दुश्मन हैं आसपास, मशालें दिखाई पड़ रही हैं। कहीं पता न चल जाए! वह बच्चा रोना शुरू करता है। वह मां घबड़ा जाती है। वह पहले उसका मुंह बंद करती है, उसे दबाती है, रोकती है, लेकिन वह जितना दबाती, उतना रोता है। फिर वह मां और बाप उसकी गर्दन दबा देते हैं, क्योंकि जान बचाने के लिए अब कोई उपाय नहीं है। वह अगर चिल्लाता है तो अभी दुश्मन आवाज सुन लेगा और मौत हो जाएगी। उसकी गर्दन दबा दी।

लेकिन तभी उस गाय के बछड़े की आवाज कहीं दूसरे दरख्तों के पास से सुनाई पड़ती है और वह गाय जोर-जोर से चिल्लाने लगती है और उस गाय को चिल्लाते सुनकर दुश्मन पास आने लगता है। बच्चे की गर्दन दबानी आसान थी, गाय की गर्दन भी नहीं दबती। गाय को मारो कैसे? कोई उपाय भी नहीं मारने का। तो वह औरत अपने पति से कहती है कि तुमसे कितना कहा कि इस हैवान

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को साथ मत ले चलो ! वह औरत अपने पति से कहती है, तुमसे कितना कहा कि इस पशु को साथ मत ले चलो ! अब मुश्किल में डाल दिया है।

और वह पति कहता है कि मैं यह विचार कर रहा हूं कि पशु कौन है—हम या वह गाय ! पशु कौन है ? हमने अपने बच्चे को मार डाला है अपने को बचाने के लिए ! हैवान कौन है ? मैं इस चिंता में पड़ गया हूं। वे दुश्मनों की मशालें करीब आती चली जाती हैं, वह गाय भागती है, क्योंकि उसी तरफ उसके बछड़े की आवाज आ रही है। वह दुश्मनों के बीच घुस जाती है, लोग उसे आग लगा देते हैं। वह जल जाती है, लेकिन बछड़े के लिए चिल्लाती रहती है ! तो वह पति कहता है कि मैं पूछता हूं कि पशु कौन है ? आज मेरी तरफ से पहली दफा जिंदगी में ख्याल उठा कि किसको हम मनुष्य कहें, किसको हम पशु कहें ?

यह सवाल बड़ा बढ़िया है। यह पूछता है, मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से—शायद उसका ख्याल यह है कि मनुष्य के लिए जरूरी है कि वह पशुओं को मारे, नहीं तो मनुष्य बच नहीं सकेगा।

एक अर्थ में यह बात बिलकुल ठीक है। यह इस अर्थ में ठीक है कि मनुष्य अगर शरीर के तल पर ही बचना चाहता हो तो शायद पशुओं को मार ही रहा है, मारता ही रहेगा। लेकिन मनुष्य अगर मनुष्यता के आत्मिक तल पर बचना चाहता हो तो पशुओं को मारकर तो कभी नहीं बच सकता है, वह तो असंभव है। एक बार हमें यह ख्याल में आ जाए कि देहधारी मनुष्य को बचाना है, सिर्फ उसके शरीर को बचा लेना है या मनुष्यता को बचाना है, अदेहधारी मनुष्यता को ? तो सवाल बिलकुल अलग-अलग हो जाएं। देहधारी मनुष्य को बचाते हैं तो हम हैवान से ऊपर नहीं हैं, पशु से ऊपर नहीं हैं और अगर हम उसके भीतर की मनुष्यता को बचाने के लिए कुछ सोचते हैं तो शायद पशु-हिंसा—किसी भी तरह समर्थन नहीं की जा सकती।

लेकिन कहा जाएगा, फिर आदमी बचेगा कैसे ? आदमी बचने के उपाय खोज लेता है, जैसे ही उसका बचना मुश्किल में पड़ जाए। सिंथेटिक फूड्स बनाए जा सकते हैं, समुद्र के पानी से जितना पृथ्वी भोजन देती है, इससे करोड़ गुना भोजन निकाला जा सकता है, हवाओं से सीधे भोजन पाया जा सकता है। एक बार यह तय हो जाए कि मनुष्यता मर रही है तो फिर हम मनुष्य को बचाने के हजार उपाय खोज सकते हैं। यह तय न हो तो फिर ठीक है। फिर हम मनुष्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को बचा लेते हैं देहधारी दिखाई पड़ने वाले, लेकिन भीतर कुछ गहरा तत्व खो जाता है। वह गहरा तत्व तभी खो जाता है, जब हम किसी को दुख देने को तत्पर और उत्सुक हो जाते हैं। किसी को दुख देने का जो भाव है, वही हमें नीचे गिरा देता है। तो किसी को हम दुख दें और मनुष्य बने रहें, इन दोनों बातों में कठिनाई है।

यह बात सच है कि आज तक ऐसी स्थिति नहीं बन सकी कि एकदम से मांसाहार बंद कर दिया जाए, एकदम से पशु-हिंसा बंद कर दी जाए तो आदमी बच जाए। लेकिन नहीं बन सकी तो इसीलिए नहीं बन सकी ··इसीलिए नहीं बन सकी कि हमने उस बात को ख्याल में नहीं लिया है, अन्यथा बन सकती है, कोई कठिनाई नहीं है। और आने वाले दो-चार सौ वर्षों में बन सकती है, क्योंकि अब हमारे पास वे वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो गए हैं, जिनसे अब पशुओं को मारने की कोई जरूरत नहीं है, उसके बिना काम चल सकता है। अब तो जिसको हम कहें, कृत्रिम मांस भी बनाया जा सकता है। आखिर गाय घास खाकर करती क्या है ? घास खाकर मांस बनाती है। मशीन क्यों नहीं हो सकती जो घास खाए और मांस बनाए ? इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

दूध कृत्रिम बन सकता है, मांस कृत्रिम बन सकता है, सब कृत्रिम बन सकता है। जब सब बन सकता है तो अब मैं कहता हूं कि अतीत की बात मैं छोड़ देता हूं, जबकि सब नहीं बन सकता था, लेकिन अब जबकि सब बन सकता है तो मनुष्य के सामने एक नया चुनाव फिर खड़ा हो गया है और वह चुनाव यह है कि अब जब सब बन सकता है, तब पशु-हिंसा का क्या मतलब ?

पीछे कठिनाइयां थीं। आदमी को बचाना भी मुश्किल था, यह भी मैं समझता हूं। शायद अतीत में आदमी नहीं बचाया जा सकता था। शरीर ही नहीं बचाया जा सकता था, जब शरीर ही नहीं बचता तो आत्मा क्या बचाते आप ? शरीर बिलकुल सारभूत था, जिसे बचाएं तो पीछे आत्मा भी बच सकती है, मनुष्यता भी बच सकती है। शरीर नहीं बचाया जा सकता था।

इसलिए बुद्ध ने थोड़ा-सा समझौता किया। समझौता यह किया कि मरे हुए पशु का मांस खाया जा सकता है। यह समझौता, सिर्फ उस स्थिति का समझौता था। समझौता विचारपूर्ण था, लेकिन इस कारण बुद्ध पशु-जगत से संबंध स्थापित करने में असमर्थ हो गए—जैसा मैंने पीछे कहा। महावीर समझौते के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लिए राजी नहीं हुए, उसका कारण यह नहीं था, उसका कारण कुल इतना था कि अगर पशु-जगत तक संदेश पहुंचाना था तो यह समझौता नहीं माना जा सकता। बुद्ध ने समझौता माना कि मरे हुए जानवर को खाया जा सकता है। लेकिन बड़ी मुश्किल हो गई, क्योंकि आदमी को समझौते देना बहुत महंगा है। आज चीन में, जापान में सब दुकानों पर लगा रहता है कि यहां मरे हुए जानवर का ही मांस मिलता है, जैसा हमारे यहां लिखा रहता है, यहां सब शुद्ध घी मिलता है।

प्रश्न : प्लांट-लाइफ और पशु-लाइफ में क्या अंतर है?

जी ?

प्रश्न : गहरे में प्लांट-लाइफ और पशु-लाइफ में क्या अंतर है ?

अंतर बहुत है। अंतर बहुत है। पशु विकसित है, बहुत विकसित है पौधे से। बहुत विकसित है। विकास के दो हिस्से उसने पूरे कर लिए हैं। एक तो पौधे में गति नहीं है, मूवमेंट नहीं है। थोड़े-से पौधों को छोड़कर जो पशुओं और पौधों के बीच में हैं यात्रा के। कुछ पौधे हैं, जो जमीन में चलते हैं, जो जगह बदल लेते हैं, जो आज यहां हैं तो कल सरक जाएंगे थोड़ा। साल भर बाद आप उनको उस जगह न पाएंगे, जहां साल भर पहले पाया था। साल भर में वे यात्रा कर लेंगे थोड़ी। पर वे पौधे सिर्फ बहुत दलदली जमीन में होते हैं। जैसे अफ्रीका के कुछ दलदलों में पौधे होते हैं, जो रास्ते बनाते हैं अपना, चलते हैं, जो अपने भोजन की तलाश में इधर-उधर जाते हैं। नहीं तो पौधा ठहरा हुआ है। ठहरे हुए होने के कारण बड़े गहरे बंधन उस पर लग गए हैं। ठहरे हुए होने के कारण वह कोई खोज नहीं कर सकता किसी चीज की। जो आ जाए, बस वही ठीक है, उसके अन्यथा कोई उपाय नहीं है उसके पास। पानी नीचे हो तो ठीक है, हवा ऊपर हो तो ठीक, सूरज निकले तो ठीक, नहीं तो गया वह। यह जो उसकी जड़ स्थिति है, ठहरी हुई, उसमें प्राण तो प्रकट हुआ है, जैसा पत्थर में उतना प्रकट नहीं हुआ है।

वैसे पत्थर भी बढ़ता है, बड़ा होता है। और दुख की भी संवेदना पत्थर को किसी तल पर होती है।

लेकिन पौधे को दुख की संवेदना बहुत बढ़ गई है। चोट भी खाता है तो दुखी होता है। शायद प्रेम भी करता है, शायद करुणा भी करता है। लेकिन बंधा है जमीन से तो परतंत्रता बहुत गहरी है। उस परतंत्रता के कारण चेतना

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जितनी विकसित हो सकती है···

अभी हमें ख्याल नहीं है कि मूवमेंट से चेतना विकसित होती है। जितनी हम गति कर सकते हैं, जितनी स्वतंत्रता से; उतनी चेतना को नई चुनौतियां मिलती हैं; नए अवसर, नए मौके; नए दुख, नए सुख; उतनी चेतना जगती है। नए का साक्षात्कार करना पड़ता है।

वृक्ष के पास इतनी चेतना नहीं है। तो वृक्ष करीब उस हालत में हैं, जिस हालत में आप भी क्लोरोफार्म में हो जाते हैं। उस हालत में है वृक्ष की चेतना। जैसे कि जानवरों को क्लोरोफार्म दे दें, या एक आदमी को क्लोरोफार्म दे दें, तो जिस वक्त क्लोरोफार्म में दस मिनिट आप बेहोश हों, उस वक्त आप वृक्ष की स्थिति में हैं। आप मूव नहीं कर सकते, हाथ नहीं उठा सकते, चल-फिर नहीं कर सकते, कोई गर्दन काट जाए तो कुछ नहीं कर सकते। तो प्रकृति उतनी ही चेतना देती है, जितना आप कर सकते हों। अगर पौधे को इतनी चेतना दे दी जाए कि उसकी कोई गर्दन काटे, वह उतना ही दुखी हो, जितना आदमी होता है तो पौधा बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। क्योंकि गर्दन तो कोई रोज काटेगा उसकी। इसलिए इतनी मूर्च्छा चाहिए क्लोरोफार्म वाली कि कोई गर्दन भी काटे तो···

पशु पौधे के आगे का रूप है, जहां पशु ने गति ले ली है। अब उसकी गर्दन काटो तो वह उस हालत में नहीं है, जिसमें कि पौधा है। अब उसकी पीड़ा बढ़ गई है, संवेदना बढ़ गई, उसका सुख भी बढ़ गया है। और गति ने उसको विकसित किया है। लेकिन पौधा भी एक तरह की निद्रा में चल रहा है, सोम्नैंबूलिजम में है। क्लोरोफार्म की हालत नहीं है, लेकिन एक निद्रा की हालत है। उसे अपना कोई पता ही नहीं है। यानी वह जीता है हमेशा चैलेंज और स्टिमुलस और रिस्पांस में।

जैसे एक कुत्ता है, उसको आपने झिड़का तो वह भागता है। उसका, जो भी वह कर रहा है कर्म, वह कोई भी नहीं करता, सिर्फ रिएक्ट करता है, सिर्फ प्रतिकर्म करता है, कर्म नहीं करता। अपनी तरफ से कुत्ता कुछ नहीं करता, कोई जानवर नहीं करता अपनी तरफ से, बस जो होता रहता है, उसमें वह भागीदार होता रहता है। भूख लगती है तो घूमने लगता है, प्यास लगती तो घूमने लगता है। कोई कुत्ता फास्ट नहीं कर सकता। भूख न लगे तो बात दूसरी है; तो फिर वह खा नहीं सकता। जैसे अगर कुत्ता बीमार है तो फास्ट कर जाएगा फौरन,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

फिर उस दिन भर नहीं खाएगा और घास खाकर वोमिट भी कर देगा। कुत्ते को अगर खाने की स्थिति नहीं है तो कुत्ता खा नहीं सकता। आदमी खाने की स्थिति में नहीं है तो भी खा सकता है। कुत्ते को अगर खाने की स्थिति है तो उपवास नहीं कर सकता, करना पड़े वह बात दूसरी है। आदमी पूरा भूखा है तो भी उपवास कर सकता है। यानी इसका मतलब यह है कि आदमी एक्ट कर सकता है, कुत्ता सिर्फ रिएक्ट करता है। कुत्ता सिर्फ प्रतिक्रिया करता है और आदमी कर्म करता है।

लेकिन सभी आदमी कर्म भी नहीं करते। इसलिए बहुत कम आदमी आदमी की हैसियत में हैं। अधिकतम आदमी प्रतिकर्म ही करते हैं। यानी किसी ने आपको प्रेम किया तो आप प्रेम करते हैं। और किसी ने गाली दी, फिर आप प्रेम करें तो कर्म हुआ। किसी ने आपको प्रेम किया और आपने प्रेम किया तो यह प्रतिकर्म हुआ। यह वैसे ही है, जैसे कुत्ता पूंछ हिलाता है उसको रोटी डालो तो; इसमें उसमें कोई बुनियादी फर्क नहीं है। हां, कोई आदमी आपको गाली दे, और आप प्रेम कर सकें तो कर्म हुआ।

तो मैं यह कह रहा हूं कि कुछ पौधे सरकने लगे हैं, वे जानवर की दिशा में प्रवेश कर रहे हैं। कुछ जानवर भी थोड़ा-बहुत रिएक्ट करते हैं—बहुत थोड़ा; कुछ जानवर, वे आदमी की दिशा में सरक रहे हैं। कुछ आदमी भी कर्म करते हैं, वे और ऊपर के चेतना लोकों की तरफ सरक रहे हैं। फर्क है स्वतंत्रता का।

जितने हम नीचे जाते हैं, पत्थर सबसे ज्यादा परतंत्र है, पौधा उससे कम, पशु उससे कम, तथाकथित मनुष्य उससे कम, महावीर-बुद्ध जैसे लोग बिलकुल कम।

अगर हम ठीक से समझें तो सारे विकास को हम स्वतंत्रता के हिसाब से नाप सकते हैं।

और इसलिए मेरा निरंतर जोर स्वतंत्रता पर है।

कौन व्यक्ति कितनी स्वतंत्रता अर्जित करे जीवन में, उतनी चेतना की तरफ जाता है।

और स्वतंत्रता बहुत प्रकार की है। बहुत प्रकार की है—गति की स्वतंत्रता, विचार की स्वतंत्रता, कर्म की स्वतंत्रता, चेतना की स्वतंत्रता; यह सब होनी चाहिए। जितनी ये पूर्ण होती चली जाती हैं, उतना वह मोक्ष की तरफ बढ़ा जा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रहा है। धर्म की भाषा में कहें तो जीवन मुक्त होने की तरफ जा रहा है। तो जितना हम नीचे जाते हैं, उतना अमुक्त हैं।

पत्थर कितना अमुक्त है ! एक ठोकर आपने मार दी तो कुछ भी नहीं कर सकता, रिएक्ट भी नहीं कर सकता। यानी आप एक ठोकर मार देते हैं तो प्रति-कर्म करने में भी असमर्थ है, कि उसको दिल आ जाए कि किसी की खोपड़ी खोल दें तो भी नहीं कर सकता कुछ। लात सह लेता है, पड़ा रह जाता है। जहां पड़ गया, वहीं पड़ गया। कोई उपाय नहीं है उसके पास। तो सबसे ज्यादा बुद्ध अवस्था है। पत्थर जो है, वह बुद्ध आत्मा है। महावीर जो हैं, वह प्रबुद्ध आत्मा हैं, मुक्त आत्मा हैं।

बुद्ध होने से और मुक्त होने तक, बंधन से और मुक्ति तक की यात्रा है, उसी में तल हैं। और मोटी सीढ़ियां हमने बांट ली हैं, लेकिन सब सीढ़ियों पर अपवाद हैं।

जैसे समझ लें कि पचास सीढ़ियां हैं और आदमी चढ़ रहे हैं उस पर। कोई आदमी पहली सीढ़ी पर खड़ा है, कोई आदमी दूसरी सीढ़ी पर खड़ा है, कोई आदमी पहली सीढ़ी से उठ गया है, लेकिन अभी दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा नहीं, तो वह बीच में है। कोई आदमी दूसरी सीढ़ी पर खड़ा है, कोई आदमी तीसरी सीढ़ी पर खड़ा है, और कोई आदमी दूसरी और तीसरी के बीच में है अभी। अभी पार कर रहा है, दूसरी से पैर उठा लिया है, तीसरी पर अभी रखा नहीं है।

तो इस तरह मोटे में देखें तब तो हमको ऐसा लगता है, पत्थर है, पौधा है, लेकिन कुछ पत्थर पौधे की हालत में पहुंच रहे हैं। इसलिए कुछ पत्थर जो हैं, वे बिलकुल पौधे जैसे हैं। उनकी डिजाइन, उनके पत्ते, उनकी शाखाएं, वे बिलकुल पौधे जैसे हैं। वे पौधे की तरफ बढ़ रहे हैं।

कुछ पौधे बिलकुल पशुओं जैसे हैं। कुछ पौधे अपना शिकार भी खोजते हैं। पक्षी उड़ रहा है आकाश में तो वे चारों तरफ से पंखे बंद कर लेते हैं, तो फांस लेते हैं। फिर कुछ पौधे प्रलोभन भी डालते हैं। उनके ऊपर की डालियों पर बहुत मीठा, बहुत सुगंधित रस भर लेते हैं वे, ताकि पक्षी आकर्षित हो जाएं। और वे जैसे ही उस पर बैठते हैं कि चारों तरफ के पत्ते बंद हो जाते हैं। कुछ पौधे अपने पत्तों को पक्षियों के शरीर में प्रवेश कर देते हैं और वहां से खून खींच लेते

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हैं। वे पौधे अब पौधे की हालत में नहीं हैं, वे अब पशु की तरफ गति कर रहे हैं।

कुछ पशु मनुष्य की तरफ गति कर रहे हैं। इन पशुओं में मनुष्य जैसी बहुत-सी बातें दिखाई पड़ जाएंगी। बहुत-से कुत्तों में, बहुत-से घोड़ों में, बहुत-से हाथियों में, बहुत-सी गायों में बहुत मनुष्य जैसी बातें दिखाई पड़ जाएंगी। जिन-जिन जानवरों से मनुष्य संबंध बनाता है, उन-उन जानवरों से संबंध बनाने का कारण ही यही है। सभी जानवरों से मनुष्य संबंध नहीं बनाता। जिनको हम पैट एनीमल्स कहते हैं, उनसे संबंध बनाने का कारण यही है कि वे कहीं किसी तल पर हमसे मेल खाते हैं, कहीं किन्हीं भावनाओं में हमसे उनका मेल है। लेकिन फिर भी सभी, उसी जाति के सभी पशु भी एक तल पर नहीं होते हैं, कुछ आगे बढ़े होते हैं, कुछ पीछे हटे होते हैं।

प्रश्न : एक बात···?

हां।

प्रश्न : ये देखने में ऐसा आता है कि जो लोग आमतौर पर नान-वेजिटेरियन हैं, उनमें यह करुणा की भावना और यह मनुष्यता की भावना देखने में ज्यादा आती है। जैसे वेस्टर्न कंट्रीज में, वे ही लोग मनुष्य की सेवा ज्यादा करते हैं। हम इधर हिंदुस्तान में वेजिटेरियन होते हुए भी हमारे में कोई करुणा की भावना, कोई मनुष्यता की भावना—देखने में ऐसा लगता है, रह ही नहीं गई ?

हां, उसके कारण हैं। उसके कारण हैं। क्योंकि अगर आप करुणा के कारण वेजिटेरियन हुए हैं, शाकाहारी हुए हैं, तब तो बात अलग है। और जन्म के कारण शाकाहारी हैं तो इससे कोई संबंध ही नहीं है। इससे कोई संबंध ही नहीं है करुणा का। यानी आप क्या खाते हैं इससे करुणा का संबंध नहीं है। आपकी करुणा क्या है, इससे आपके खाने का संबंध हो सकता है।

तो इस मुल्क में जो शाकाहारी है, वह जबरदस्ती शाकाहारी है। उसके चित्त में शाकाहार नहीं है, उसके चित्त में कोई करुणा ही नहीं है। फिर मांसाहारी जो है, उसके मन की कठोरता बहुत कुछ उसके भोजन, उसकी जीवन-व्यवस्था में निकल जाती है और वह मनुष्य के प्रति ज्यादा सदय हो सकता है। और आपको वह भी मौका नहीं है, आपकी कठोरता निकलने को कोई मौका ही नहीं है, वह मौका सिर्फ मनुष्य की तरफ है।

यानी मेरा कहना यह है कि एक शाकाहारी आदमी है उसमें आधा पाव

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कठोरता है, समझ लें; और एक मांसाहारी आदमी है, उसमें भी आधा पाव कठोरता है। तो मांसाहारी आदमी ज्यादा करुणावान सिद्ध होगा जीवन में बजाय शाकाहारी के। क्योंकि वह जो आधा पाव कठोरता है उसको, और दिशाओं में बह जाती है और आपकी आधा पाव कठोरता है, वह कहीं बहने का उपाय नहीं है, वह सिर्फ आदमी की तरफ ही बहती है, वह फिर आदमी को ही चूसती है।

इसलिए पूरब के मुल्कों में जहां शाकाहार बहुत है, बड़ा शोषण है, बड़ी कठोरता है और आदमी-आदमी के बीच संबंध बहुत तनावपूर्ण हैं। और आदमी-आदमी के प्रति ऐसा दुष्ट मालूम पड़ता, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और बाकी मामलों में बड़ा हिसाब लगाता है वह कि चींटी पर पैर न पड़ जाए, पानी छानकर पीता है! वह जो कठोरता बहने के और इतर उपाय थे, वे सब बंद हो जाते हैं, फिर एक ही रह जाता है कि वह आदमी से आदमी का उसका संबंध बिगड़ जाता है।

तो मेरा कहना है, शाकाहार का मैं पक्षपाती हूं इसलिए नहीं कि आप शाकाहारी हों, बल्कि इसलिए कि आप करुणावान हों, बल्कि इसलिए कि आप उस चित्त-दिशा में पहुंचें, जहां से जीवन के प्रति कठोरता क्षीण होती है। जब कठोरता क्षीण हो जाएगी आपकी तो वह पशु के प्रति भी क्षीण होगी, मनुष्य के प्रति भी क्षीण होगी। कठोरता तो क्षीण नहीं होती, जन्म के साथ शाकाहारी हो जाता है आदमी तो मुश्किल पड़ जाती है। इसलिए एक दफे हमें दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि जीवन एक तरह की बहुत-सी शक्तियों का तालमेल है। उसमें अगर कोई भी शक्तियां भीतर पड़ी रह जाती हैं तो मुश्किल पड़ जाती है।

जैसे उदाहरण के लिए, इंग्लैंड भर में विद्यार्थियों का कोई विद्रोह नहीं है! सारी जमीन पर आज इंग्लैंड अकेला मुल्क है, जहां विद्यार्थियों की कोई बगावत, कोई उपद्रव नहीं है! और उसका कुल कारण यह है कि इंग्लैंड के बच्चों को तीन घंटे से कम खेल नहीं खेलना पड़ता। तीन घंटे हाकी, फुटबाल; इस तरह थका डालते हैं कि जब तीन घंटे में उसकी सारी की सारी जितनी उपद्रव की प्रवृत्ति है, वह सब निकास पा जाती है, वह घर शांत लौट आता है। इंग्लैंड के लड़कों को उपद्रव करने को कहो तो उपद्रव की हालत में वे नहीं हैं। जिन मुल्कों में खेल बिलकुल नहीं है, जैसे हमारा मुल्क है, जैसे फ्रांस है, खेल करीब-करीब न के बराबर है, तो उपद्रव बहुत ज्यादा है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और उसके सामने कारागृह में जिसको उसने दस साल की सजा दे दी उस आदमी की शक्ल देखें, तो आप दस साल वाले को ज्यादा इन्नोसेंट पाएंगे ! और यह जो मजिस्ट्रेट है, जिसने कभी चोरी नहीं की, कभी हत्या नहीं की, बड़ा कठोर मालूम पड़ेगा। अब हो सकता है कि दस साल सजा देने में इस आदमी के भीतरी रस—कानून तो ठीक ही है, कानून सिर्फ बहाना हो, तरकीब हो, खूंटी हो—इस आदमी के भीतर रस हैं और आदमियों को सताने का यह उपाय खोज रहा है।

मनोवैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि हर आदमी मजिस्ट्रेट क्यों नहीं होता ? कुछ आदमी मजिस्ट्रेट होने के लिए आतुर रहते हैं। हर आदमी शिक्षक क्यों नहीं होता ? कुछ आदमी शिक्षक होने के लिए आतुर रहते हैं !

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, शिक्षक वे लोग होना चाहते हैं, जो बच्चों को सताना चाहते हैं, उनके भीतर टार्चर करने की वृत्ति है। और उनको इकट्ठे बच्चे कहां मिलेंगे ? बहुत मुश्किल है। किसी के बच्चे को सताओ तो दिक्कत है, अपनों को सताओ तो भी दिक्कत है। तीस बच्चे मुफ्त मिल जाते हैं, तनख्वाह भी मिलती है, और उनको ढंग से टार्चर करते हैं ! वे कुछ कर भी नहीं सकते, बिलकुल निहत्थे हैं।

अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इसकी—मैं तो यह मानता ही हूं कि दुनिया अच्छी होगी तो पहले आदमी का शिक्षक होने के पहले पूरी साइको-एनलिसिस होनी चाहिए कि यह आदमी कहीं सताने वाला तो नहीं है ? और सौ में सत्तर शिक्षक सताने वाले मिलेंगे ! यानी जिनको अगर आप शिक्षक न होने देते तो वे और कहीं सताते, वे इधर सताएंगे। अच्छा दिन-भर सताकर शिक्षक बड़ा सीधा-सादा हो जाएगा। जब वह लौटता है घर, तब वह बड़ा अच्छा आदमी मालूम पड़ता है। तो बच्चों के मां-बाप को वह बहुत भला आदमी मालूम पड़ता है कि कितना भला आदमी है ! वह भला आदमी है, क्योंकि उसका सब बुरापन तो वह निकाल लेता है पांच घंटे में। तो मां-बाप कहते हैं तेरा शिक्षक बहुत भला आदमी है। उसका बेटा कहता है, कैसे मानें ? चौबीस घंटे सता रहा है। और उसके कारण हैं, उसके कारण हैं, वे दिखाई नहीं पड़ते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर : अनादि, अनीश्वर और स्वयंभू अस्तित्व

प्रवचन : १६, दिनांक २५ सितंबर १९६९, श्रीनगर

कपिल ने पूछा है कि इस जगत का, इस जीवन का प्रारंभ कब हुआ, कैसे हुआ ?

यह महावीर के प्रसंग में भी बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि महावीर उन थोड़े-से चिंतकों में से एक हैं, जिन्होने प्रारंभ की बात को ही अस्वीकार कर दिया है। महावीर यह कहते हैं कि प्रारंभ संभव नहीं है। अस्तित्व का कोई प्रारंभ नहीं हो सकता। अस्तित्व सदा से है और कभी ऐसा नहीं हो सकता कि अस्तित्व नहीं हो जाएगा, ऐसा कभी नहीं हो सकता। प्रारंभ की और अंत की बात ही वे इनकार करते है। और मैं भी उनसे सहमत हूं।

प्रारंभ की धारणा ही हमारी नासमझी से पैदा होती है। क्योंकि हमारा प्रारंभ होता है और अंत होता है, इसलिए हमें लगता है, सब चीजों का प्रारंभ होगा और अंत होगा ! लेकिन अगर हम हमारे भीतर भी गहरे में प्रवेश कर जाएं तो हमें पता चलेगा कि हमारा भी कोई प्रारंभ नहीं है और कोई अंत नहीं है। एक चीज बनती है और मिटती है, तो हमें यह ख्याल हो जाता है कि जो भी बनता है, वह मिटता है। यह ठीक है, लेकिन बनना और मिटना, प्रारंभ और अंत नहीं है। क्योंकि जो चीज बनती है, वह बनने के पहले किसी दूसरे रूप में मौजूद होती है और जो चीज मिटती है, वह मिटने के बाद फिर किसी रूप में मौजूद हो जाती है।

तो महावीर कहते हैं, जीवन में सिर्फ रूपांतरण होता है, न तो प्रारंभ है और न कोई अंत है।

प्रारंभ असंभव है, क्योंकि अगर हम यह मानें कि कभी प्रारंभ हुआ तो यह भी मानना पड़ेगा, उसके पहले कुछ भी न था। फिर प्रारंभ कैसे होगा ? अगर कुछ भी न था उसके पहले तो प्रारंभ होने का उपाय भी नहीं है। अगर हम यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अब वह ख्याल में नहीं आता है कि उसका एक बैलेंस है, उसकी एक नियत व्यवस्था है कि एक लड़के को कितना उपद्रव करना जरूरी है। चाहे उपद्रव आप व्यवस्था से करवा लें—खेल का मतलब है व्यवस्थित उपद्रव। उसका और कोई मतलब नहीं है। एक लट्ठ मार रहा है एक गेंद में एक आदमी, वह उतना ही जैसा कि खोपड़ी में मारे, उतना ही रस उसमें आ जाता है। उसमें कोई फर्क नहीं है। व्यवस्थित उपद्रव अगर करवाते हैं तो उपद्रव कम हो जाएगा। और अगर व्यवस्थित उपद्रव नहीं करवाते तो फिर अव्यवस्थित उपद्रव बढ़ेगा। और इन सबके भीतर हमारी एक निश्चित मात्रा है, जो निकलनी चाहिए एक उम्र में। एक उम्र में उसका निकलना बहुत जरूरी है।

अब जैसे हमारा सारा काम है, एक आदमी जंगल में लकड़ी काटता है; यह आदमी एक दुकान पर बैठे आदमी से ज्यादा करुणावान हो सकता है। उसका कारण है कि काटने-पीटने का इतना काम करता है वह, कि काटने-पीटने की जो वृत्ति है, वह रिलीज हो जाती है। वह ज्यादा दयालु मालूम पड़ेगा। और एक दुकान पर बैठा आदमी है, काटना-पीटना कुछ नहीं हो पाता, तो वह आदमी को जितना काट-पीट सकता है, उसका उपाय खोजता है। वह जंगल में भी कर सकता था।

एक चरवाहा है, वह आप के देखे भेड़ों को चरा रहा है, उसके चेहरे पर एक शांति दिखाई पड़ेगी। उसका कारण है कि वह जानवरों के साथ जो व्यवहार कर रहा है—डंडा मार रहा है, गाली दे रहा है, कुछ भी कर रहा है; जानवर कुछ नहीं कर रहे हैं। वह व्यवहार आप भी करना चाहते हैं, लेकिन कोई नहीं मिलता। किससे करें? पत्नी से करते हैं—बेटे से करते हैं—नए-नए बहाने खोजते हैं कि बेटे का सुधार कर रहे हैं कि यह कर रहे हैं, वह कर रहे हैं, लेकिन भीतरी कारण बहुत दूसरे हैं!

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि एक किसान है गांव का, वह ज्यादा आप को शांत मालूम पड़ता है। उसका और कोई कारण नहीं है, उसका कारण है कि काट-पीट के इतने काम उसको मिल जाते हैं दिन भर में, वृक्षों को काट रहा है, पौधों को काट रहा है, जानवरों को मार रहा है, कि वह हल्का हो जाता है। इतना ही आपको भी मिल जाए तो आप भी हल्के हो जाएं। यह मिल नहीं पाता तो ये आप को नए रास्ते निकालने पड़ते हैं इसके लिए। कोड़ा आप भी किसी को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मारना चाहते हैं। कैसे मारें ? तो हमारे मन की जो ये सारी वृत्तियां हैं, फिर ये नए रास्ते खोजती हैं, ये नए उपाय खोजती हैं। और वे नए उपाय और खतरनाक सिद्ध हो जाते हैं।

इसलिए मेरा कहना है कि वृत्तियां जानी चाहिए। आचरण बदलने का जोर गलत है। कि मैं किसी को नहीं कहता कोई शाकाहारी हो। मैं कहता हूं, अगर मांसाहार करना है तो मांसाहार करो। इतना कहता हूं कि यह कोई बहुत ऊंची चित्त की अवस्था न हुई, कुछ और ऊंची चित्त की अवस्थाएं हैं, जो तुम खोजो। उनको खोजने से मांसाहार हो सकता है चला जाए, वह ठीक होगा, लेकिन मांसाहार चला जाए और आपकी स्थिति वही रहे, तो आप दूसरी तरह के मांसाहार शुरू करेंगे, जो ज्यादा महंगे साबित होने वाले हैं।

तो हिंदुस्तान कठोर हो गया है। और हिंदुस्तान में जो लोग गैर-मांसाहारी हैं, बहुत दुष्ट हैं। हम कहते हैं एक आदमी को कि एक मुसलमान बहुत दुष्ट होता है। वह कभी-कभी दुष्ट होता है, मगर कभी-कभी दुष्ट होकर ऐसा हल्का और शांत होता है। ऐसे एक साधारण मुसलमान को लगता है कि दुष्ट होता है, लेकिन कभी-कभी। जब मौका आता है तो ठीक से दुष्टता कर लेता है, लेकिन फिर रिलीज हो जाता है।

और एक जैनी है, मौका ही नहीं आता कभी दुष्टता करने का, चौबीस घंटे दुष्टता करता रहता है। फैली हुई दुष्टता है, इंटेंस नहीं है। इंटेंस नहीं निकल पाती तो फैल जाती है। और फैली हुई दुष्टता ज्यादा खतरनाक है। एक आदमी कभी दो-चार साल में एक दफा दुष्ट हो जाए, ठीक है। एक आदमी चौबीस घंटे दुष्ट रहे और चौबीस घंटे शरारत करता रहे कुछ न कुछ, और शरारतें ऐसी खोजे कि जिसमें आप उसको कुछ कह भी न सकें, वह ज्यादा, ज्यादा महंगा पड़ जाएगा।

इसलिए बड़े आश्चर्य की बात है कि बारबेरियंस हैं, जो कच्चे आदमी को खा जाएं, लेकिन बड़े सरल हैं, बहुत सरल हैं। एकदम सरल हैं और खा जाएं कच्चा आदमी को पकड़कर ! मगर बड़े सरल हैं और सरलता बड़े इन्नोसेंट हैं।

आप जाकर कारागृह में देखें कैदियों को। मैं जब भी कारागृह में गया तो बहुत हैरान हुआ हूं। कैदी एकदम सरल मालूम पड़ता है, उन लोगों की बजाय जो मजिस्ट्रेट बने बैठे हैं। बड़ी हैरानी की बात है ! एक मजिस्ट्रेट की शक्ल देखें

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और उसके सामने कारागृह में जिसको उसने दस साल की सजा दे दी उस आदमी की शक्ल देखें, तो आप दस साल वाले को ज्यादा इन्नोसेंट पाएंगे ! और यह जो मजिस्ट्रेट है, जिसने कभी चोरी नहीं की, कभी हत्या नहीं की, बड़ा कठोर मालूम पड़ेगा। अब हो सकता है कि दस साल सजा देने में इस आदमी के भीतरी रस—कानून तो ठीक ही है, कानून सिर्फ बहाना हो, तरकीब हो, खूंटी हो—इस आदमी के भीतर रस हैं और आदमियों को सताने का यह उपाय खोज रहा है।

मनोवैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि हर आदमी मजिस्ट्रेट क्यों नहीं होता ? कुछ आदमी मजिस्ट्रेट होने के लिए आतुर रहते हैं। हर आदमी शिक्षक क्यों नहीं होता ? कुछ आदमी शिक्षक होने के लिए आतुर रहते हैं !

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, शिक्षक वे लोग होना चाहते हैं, जो बच्चों को सताना चाहते हैं, उनके भीतर टार्चर करने की वृत्ति है। और उनको इकट्ठे बच्चे कहां मिलेंगे ? बहुत मुश्किल है। किसी के बच्चे को सताओ तो दिक्कत है, अपनों को सताओ तो भी दिक्कत है। तीस बच्चे मुफ्त मिल जाते हैं, तनख्वाह भी मिलती है, और उनको ढंग से टार्चर करते हैं ! वे कुछ कर भी नहीं सकते, बिलकुल निहत्थे हैं।

अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इसकी—मैं तो यह मानता ही हूं कि दुनिया अच्छी होगी तो पहले आदमी का शिक्षक होने के पहले पूरी साइको-एनलिसिस होनी चाहिए कि यह आदमी कहीं सताने वाला तो नहीं है ? और सौ में सत्तर शिक्षक सताने वाले मिलेंगे ! यानी जिनको अगर आप शिक्षक न होने देते तो वे और कहीं सताते, वे इधर सताएंगे। अच्छा दिन-भर सताकर शिक्षक बड़ा सीधा-सादा हो जाएगा। जब वह लौटता है घर, तब वह बड़ा अच्छा आदमी मालूम पड़ता है। तो बच्चों के मां-बाप को वह बहुत भला आदमी मालूम पड़ता है कि कितना भला आदमी है ! वह भला आदमी है, क्योंकि उसका सब बुरापन तो वह निकाल लेता है पांच घंटे में। तो मां-बाप कहते हैं तेरा शिक्षक बहुत भला आदमी है। उसका बेटा कहता है, कैसे मानें ? चौबीस घंटे सता रहा है। और उसके कारण हैं, उसके कारण हैं, वे दिखाई नहीं पड़ते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर : अनादि, अनीश्वर और स्वयंभू अस्तित्व

प्रवचन : १६, दिनांक २५ सितंबर १९६९, श्रीनगर

कपिल ने पूछा है कि इस जगत का, इस जीवन का प्रारंभ कब हुआ, कैसे हुआ ?

यह महावीर के प्रसंग में भी बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि महावीर उन थोड़े-से चिंतकों में से एक हैं, जिन्होंने प्रारंभ की बात को ही अस्वीकार कर दिया है। महावीर यह कहते हैं कि प्रारंभ संभव नहीं है। अस्तित्व का कोई प्रारंभ नहीं हो सकता। अस्तित्व सदा से है और कभी ऐसा नहीं हो सकता कि अस्तित्व नहीं हो जाएगा, ऐसा कभी नहीं हो सकता। प्रारंभ की और अंत की बात ही वे इनकार करते है। और मैं भी उनसे सहमत हूं।

प्रारंभ की धारणा ही हमारी नासमझी से पैदा होती है। क्योंकि हमारा प्रारंभ होता है और अंत होता है, इसलिए हमें लगता है, सब चीजों का प्रारंभ होगा और अंत होगा ! लेकिन अगर हम हमारे भीतर भी गहरे में प्रवेश कर जाएं तो हमें पता चलेगा कि हमारा भी कोई प्रारंभ नहीं है और कोई अत नहीं है। एक चीज बनती है और मिटती है, तो हमें यह ख्याल हो जाता है कि जो भी बनता है, वह मिटता है। यह ठीक है, लेकिन बनना और मिटना, प्रारंभ और अंत नहीं है। क्योंकि जो चीज बनती है, वह बनने के पहले किसी दूसरे रूप में मौजूद होती है और जो चीज मिटती है, वह मिटने के बाद फिर किसी रूप में मौजूद हो जाती है।

तो महावीर कहते हैं, जीवन में सिर्फ रूपांतरण होता है, न तो प्रारंभ है और न कोई अंत है।

प्रारंभ असंभव है, क्योंकि अगर हम यह मानें कि कभी प्रारंभ हुआ तो यह भी मानना पड़ेगा, उसके पहले कुछ भी न था। फिर प्रारंभ कैसे होगा ? अगर कुछ भी न था उसके पहले तो प्रारंभ होने का उपाय भी नहीं है। अगर हम यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मान लें कि कुछ भी नहीं था तो समय भी नहीं था, टाइम भी नहीं था; स्पेस भी नहीं थी, स्थान भी नहीं था; प्रारंभ कैसे होगा ? प्रारंभ होने के लिए कम से कम समय तो पहले चाहिए ही, ताकि प्रारंभ हो सके। और अगर समय पहले है, स्थान पहले है तो सब पहले हो गया। क्योंकि इस जगत में मौलिक रूप से दो ही तत्त्व गहराई में हैं : टाइम और स्पेस।

तो महावीर कहते हैं, प्रारंभ की बात ही हमारी नासमझी से उठी है। अस्तित्व का कभी कोई प्रारंभ नहीं हुआ। और जिसका कभी कोई प्रारंभ न हुआ हो, उन्हीं कारणों से उसका कभी अंत नहीं हो सकता। क्योंकि अंत होने का मतलब होगा, एक दिन सब न हो जाए, कुछ भी न बचे। यह कैसे होगा ?

इसलिए अस्तित्व अनादि है और अनंत है—न तो कभी शुरू हुआ है, न कभी अंत होगा; सदा है, सनातन है।

लेकिन रूपांतरण रोज है। कल जो रेत था, आज वह पहाड़ है, आज जो पहाड़ है, कल वह रेत हो जाएगा। लेकिन होना नहीं मिट जाएगा। रेत में भी वही था, पहाड़ में भी वही होगा। आज जो बच्चा है, कल वह जवान होगा, परसों बूढ़ा होगा, बाद विदा हो जाएगा। लेकिन जो बच्चे में था, वही जवान में होगा, वही बुढ़ापे में होगा, वही मृत्यु के क्षण में विदा भी ले रहा होगा। वह जो था, वह निरंतर होगा। अस्तित्व का अनस्तित्व होना असंभव है। और अनस्तित्व से भी अस्तित्व नहीं आता है।

इसलिए महावीर ने स्रष्टा की धारणा ही इनकार कर दी। इसलिए महावीर ने कहा कि जब सृष्टि प्रारंभ ही नहीं होती, जब कभी शुरुआत ही नहीं होती तो शुरुआत करने वाले की फिजूल धारणा को क्यों बीच में लाना ? जब शुरुआत ही नहीं होती तो स्रष्टा की कोई जरूरत ही नहीं है। यह बड़े साहस की बात थी उन दिनों।

महावीर ने कहा, सृष्टि है और स्रष्टा नहीं है। क्योंकि अगर स्रष्टा होगा तो प्रारंभ मानना पड़ेगा। और महावीर कहते हैं, स्रष्टा भी हो तो भी शून्य से प्रारंभ नहीं हो सकता।

और फिर मजे की बात यह है कि अगर स्रष्टा था तो फिर शून्य कहना व्यर्थ है। तब था ही कुछ, और फिर उस होने से ही कुछ होता रहेगा। जिसे, साधारणत: जिसको हम आस्तिक कहते हैं, वस्तुत: वह आस्तिक नहीं होता,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

साधारणत: आस्तिक की दलील यही है कि सब चीजों का बनाने वाला है तो परमात्मा भी होना चाहिए जगत को बनाने के लिए।

लेकिन नास्तिकों ने और गहरा सवाल पूछा और उसका जवाब आस्तिक नहीं दे पाए। वे ये पूछते हैं कि अगर सब चीजों को बनाने वाला है तो फिर परमात्मा को बनाने वाला भी होना चाहिए। और तब बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती है। अगर हम परमात्मा को बनाने वाला भी मानें तो इनफिनिट रिग्रेस हो जाएगी। फिर तो अंतहीन विवाद हो जाएगा, क्योंकि फिर उसका बनाने वाला चाहिए, फिर उसका, फिर उसका, फिर उसका, फिर उसका···इसका अंत कहां हो ? किसी भी कड़ी पर यह सवाल उठेगा कि इसका बनाने वाला ?

तो महावीर कहते हैं कि आस्तिक मूल में है और इसलिए आस्तिक का उत्तर नहीं दे पा रहे हैं, क्योंकि आस्तिक बुनियादी भूल कर रहा है। महावीर परम आस्तिक हैं खुद भी, लेकिन वह कह रहे हैं, बनाने वाले को बीच में लाने की जरूरत नहीं है, अस्तित्व पर्याप्त है। न कोई बनाने वाला है, इसलिए यह भी सवाल नहीं कि उसका बनाने वाला कहां है।

महावीर के परमात्मा की धारणा अस्तित्व की गहराइयों से निकलती है; अस्तित्व के बाहर से नहीं आती, सुपर इंपोज्ड नहीं है। अस्तित्व अलग और परमात्मा अलग बैठकर उसको जैसे कि कुम्हार घड़ा बना रहा हो, ऐसा नहीं है कोई परमात्मा।

इसी अस्तित्व में जो सारभूत विकसित होते-होते अंतिम क्षणों तक विकास को उपलब्ध हो जाता है, वही परमात्मा है।

तो परमात्मा की धारणा में महावीर के लिए विकास है। यानी परमात्मा की धारणा अस्तित्व का सारभूत अंश है, जो विकसित हो रहा है।

साधारण अस्तित्व की धारणा : परमात्मा अलग बैठा है और जगत को बना रहा है, तब प्रारंभ की बात है। उसी आस्तिक की नासमझी को वैज्ञानिक भी पकड़े हुए चला जाता है ! हालांकि, वह ईश्वर को इनकार कर देता है, लेकिन फिर भी वह सोचता है कि बिगनिंग कब हुई ? प्रारंभ कब हुआ ?

हां, यह हो सकता है, इस पृथ्वी का प्रारंभ कब हुआ, इसका पता चल जाएगा। यह पृथ्वी कब अंत होगी, यह भी पता चल जाएगा। लेकिन पृथ्वी जीवन नहीं है, जीवन का एक रूप है। जैसे मैं कब पैदा हुआ पता चल जाएगा,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मैं कब मर जाऊंगा यह भी पता चल जाएगा, लेकिन मैं जीवन नहीं हूं, जीवन का सिर्फ एक रूप हूं। जैसे हम एक सागर में जाएं, एक लहर कब पैदा हुई पता चल जाएगा, एक लहर कब गिरी, यह भी पता चल जाएगा; लेकिन लहर सिर्फ एक रूप है सागर का। सागर कब शुरू हुआ ? सागर कब अंत होगा ? और अगर सागर का भी पता चल जाए तो फिर सागर भी एक लहर है और बड़े विस्तार की। अंततः जो है गहराई में, वह सदा से है, उसकी ऊपर की लहरें आई हैं, गई हैं, बदली हैं, आएंगी, जाएंगी, बदलेंगी, पर जो गहराई में है जो केंद्र में है, वह सदा से है।

और यह हमारे ख्याल में आ जाए तो प्रारंभ का प्रश्न समाप्त हो जाता है। अंत का प्रश्न भी समाप्त हो जाता है। सूरज ठंडा होगा, क्योंकि सूरज गरम हुआ है। जो गरम होगा, वह ठंडा होगा—वक्त कितना लगता है, यह दूसरी बात है। एक दिन सूरज ठंडा था, एक दिन सूरज फिर ठंडा हो जाएगा। एक दिन पृथ्वी ठंडी होगी। उनके भी जीवन हैं। असल में हमें ख्याल में नहीं है। पृथ्वी भी……।

इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा। हम कहते हैं कि मैं जीवित हूं, लेकिन हम कभी ख्याल नहीं करते कि हमारे शरीर में करोड़ों कीटाणु भी जीवित हैं। उन कीटाणुओं का अपना जीवन है और उन सारे कीटाणुओं से मिले हुए शरीर में एक और जीवन है, जो हमारा है। पृथ्वी का अपना एक जीवन है। इसलिए महावीर कहते हैं उसकी अपनी, यह पृथ्वी काया है उस जीव की, उसका अपना जीवन है। उस पृथ्वी पर पौधे, पक्षियों, मनुष्यों इन सबका अपना जीवन है; लेकिन पृथ्वी का अपना जीवन है, पृथ्वी की खुद अपनी जीवन-धारा है। उसका जन्म हुआ है, वह मरेगी। सूरज का अपना जीवन है, चांद का अपना जीवन है, वह भी शुरू हुआ है, उसका भी अंत होगा। लेकिन जीवन का, अस्तित्व का, एग्जिस्टैंस का कोई अंत नहीं है। ऐसा ही समझ लें कि अस्तित्व का एक सागर है, उस पर लहरें उठती हैं, आती हैं, जाती हैं; लेकिन पूरे अस्तित्व का कभी प्रारंभ हुआ हो ऐसा नहीं है। ऐसा हो ही नहीं सकता।

इसे ऐसा समझना चाहिए, हमारे सारे तर्क एक सीमा पर जाकर व्यर्थ हो जाते हैं। हम यहां लकड़ी के तख्तों पर बैठे हुए हैं, कोई हमसे पूछ सकता है, आपको कौन संभाले हुए है ? तो हम कहेंगे, लकड़ी के तख्ते। फिर कोई पूछ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सकता है लकड़ी के तख्तों को कौन संभाले हुए है ? तो हम कहेंगे कि जमीन। और कोई पूछ सकता है, जमीन को कौन संभाले हुए है ? तो शायद हम कहें कि ग्रहों-उपग्रहों का ग्रेविटेशन है, वह जमीनको संभाले हुए है ? फिर कोई पूछे कि ग्रह-उपग्रहों को कौन संभाले हुए है ? तो शायद हम और खोजते चले जाएं। लेकिन अंततः कोई पूछे कि इस टोटल को इस समग्र को, इस पूरे को जिसमें सब आ गया है : ग्रह, उपग्रह, तारे, पृथ्वी—सब; इस सबको कौन संभाले हुए है ? तो हम उससे कहेंगे, अब बात जरा ज्यादा हो गई। इस सबको कौन संभाले हुए है, यह प्रश्न असंगत है। क्योंकि हमने कहा, सबको कौन संभाले हुए है, अगर संभालने वाले को हम बाहर रखते हैं तो सब अभी हुआ नहीं, और अगर उसे भीतर कर लेते हैं तो बाहर कोई बचता नहीं जो उसे संभाले। सबको कोई भी नहीं संभाले हुए है, सब स्वयं संभला हुआ है। एक-एक चीज को एक-एक दूसरा संभाले हुए है, लेकिन 'दि टोटल', उसे कोई भी नहीं संभाले हुए है, वह स्वयं संभला हुआ है, वह स्वयंभू है।

इसलिए महावीर कहते हैं : जीवन स्वयंभू है—न इसका कोई बनाने वाला, न कोई इसको मिटाने वाला; यह स्वयंभू है।

क्योंकि वे यह कहते हैं कि इससे क्या फायदा कि तुम एक आदमी को और लाओ बीच में, फिर कल यही सवाल उठे कि उसको कौन बनाने वाला है ? फिर तुम किसी और को लाओ, फिर वही सवाल उठे। फिर परमात्मा का प्रारंभ कब हुआ, यह सवाल उठे। फिर परमात्मा की मृत्यु कब होगी, यह सवाल उठे। इन सवालों में जाने का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए महावीर उस हाइपोथिसिस को, उस परिकल्पना को एकदम इनकार कर देते है।

और मेरी अपनी समझ यह है कि जो लोग भी अस्तित्व की गहराई में गए हैं, वे स्रष्टा की धारणा को इनकार ही कर देते हैं। उनकी परमात्मा की धारणा स्रष्टा की, क्रियेटर की धारणा नहीं होगी, उनकी परमात्मा की धारणा जीवन के विकास की, चरम-बिंदु की धारणा होगी। यानी सामान्यतया जिसको हम आस्तिक कहते हैं, उसका परमात्मा पहले है। महावीर की जो आस्तिकता है, जो महावीर की···, उसमें परमात्मा चरम विकास है। और इसलिए रोज होता रहेगा ऐसा। एक लहर गिर जाएगी और सागर हो जाएगी, लेकिन दूसरी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लहरें उठती रहेंगी। तो इसलिए कोई कभी अंत नहीं हो जाएगा। लहरें उठती रहेंगी, गिरती रहेंगी, सागर सदा होगा।

इसलिए आस्तिक वह है, जो लहरों पर ध्यान नहीं देता, उस सागर पर ध्यान देता है, जो सदा है। आस्तिक वह है, जो बदलाहट पर ध्यान नहीं देता; उस पर ध्यान देता है, जो कभी भी नहीं बदला है। आस्तिक वह है, जो अपरिवर्तनीय पर जिसकी दृष्टि चली जाती है, फिर परिवर्तन सब सपना हो जाता है। क्योंकि क्या मतलब है ? फिर जीवन का यथार्थ विलीन हो जाता है और जीवन के यथार्थ की जगह स्वप्न की सत्ता खड़ी हो जाती है। क्या मतलब है ?

मरते वक्त, एक आदमी मर रहा है, उससे हम पूछें कि सच में ही तूने जिस स्त्री को प्रेम किया था, वह तूने किया ही था या कि कोई सपना देखा था ? तो मरते आदमी को तय करना बहुत मुश्किल है, कि जिंदगी में उसने जो लाखों कमाए थे, वे कमाए ही थे या कि कोई सपना देखा था ? बट्रैंड रसेल ने एक मजाक की है। बट्रैंड रसेल ने यह मजाक की है कि मरते वक्त मैं तय नहीं कर पाऊंगा कि जो हुआ, वह सच में हुआ था या कि मैंने एक सपना देखा है। और कैसे तय करूंगा ? दोनों में फर्क क्या करूंगा कि वह सच में हुआ था ?

आप ही पीछे लौटकर देखिए जो बचपन गुजर गया, वह आपका एक सपना था कि सच में था ? आज तो आपके पास सिवाय एक स्मृति के कुछ भी नहीं रह गया है। और मजे की बात यह है कि जिसे हम जीवन कहते हैं, उसकी स्मृति भी वैसी ही बनती है, जैसा हम सपना कहते हैं, उसकी स्मृति बनती है। इसलिए छोटे बच्चे तय भी नहीं कर पाते। छोटा बच्चा रात में अगर सपना देख लेता है कि उसकी गुड्डी किसी ने तोड़ दी तो सुबह रोता हुआ उठता है और पूछता है, मेरी गुड्डी तोड़ डाली गई है। उसे अभी साफ नहीं है कि उसने जो सपना देखा उसमें और जागकर जो गुड्डी देख रहा है उसमें, फर्क है। उसके लिए एक कन्टिन्युटी है। दिन में वह देखता है, वह एक सपना है; रात जो देखता है, वह एक सपना है ! या रात जो देखता है, वह एक सत्य है; सुबह जो देखता है, वह एक सत्य है ! अभी उसे फासला, फर्क नहीं है। इसलिए हो सकता है सपने में डरा हो और जागकर रोता रहे। और समझाना मुश्किल हो जाए, क्योंकि हमें पता ही नहीं है उसके कारण का कि वह डरा किस वजह से है। हो सकता है सपने में उसे किसी ने मार दिया हो और वह रोए चला जा रहा है जागकर। उसके

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लिए फासला नहीं है अभी। जो लोग थोड़े जीवन की गहराई में उतरेंगे, वे अंत में फिर इस जगह पर पहुंच जाते हैं कि फासले फिर खो जाते हैं।

च्वांगत्से चीन में एक अद्भुत विचारक हुआ। एक रात सपना देखा, सुबह उठा और बहुत परेशान था! मित्रों ने पूछा, आप इतने परेशान? हमारी परेशानी होती है, हम आप से सलाह लेते हैं। आज आप परेशान हैं! क्या हो गया है आपको? उसने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। रात मैंने एक सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं और फूल-फूल पर भटक रहा हूं। तो मित्रों ने कहा, इसमें क्या परेशान होने की बात है। सपने सभी देखते हैं। उसने कहा नहीं, इससे परेशान होने की बात नहीं। अब मैं इस चिंता में पड़ गया हूं कि अगर रात च्वांगत्से नाम का आदमी सोया और तितली हो गया सपने में, तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह सपने में—कि तितली अब सो गई है और सपना देख रही है च्वांगत्से हो जाने का? क्योंकि जब आदमी सपने में तितली हो सकता है तो तितली सपने में आदमी हो सकती है। अब मैं सच में हूं या कि तितली सपना देख रही है—अब यह मैं कैसे तय करूं? कैसे तय करूं? उसने खूब मजाक में डाल दिया है। और वह जिंदगी भर लोगों से पूछता रहा कि मैं कैसे तय करूं? कैसे तय हो इस बात का?

जैसे ही कोई आदमी गहरे जीवन में उतरेगा—वहीं से सपने आते हैं, वहीं से जीवन भी आता है। सब लहरें वहीं से आती हैं। इसलिए सब लहरें एक अर्थ में समानार्थी हो जाती हैं। और तब सुख और दुख बेमानी है; तब प्रारंभ और अंत बेमानी हैं; तब ऐसा होना और वैसा होना बेमानी है; तब एक स्थिति है कि सब स्थितियों में आदमी राजी है। लेकिन चूंकि हम लहरों का हिसाब रखते हैं, इसलिए परम सत्य के बाबत भी पूछना चाहते हैं कि वह कब शुरू हुआ, कब अंत होगा!

सूरज बनेगा, मिटेगा और वह भी लहर है। जरा देर चलने वाली है: अरब-दो अरब, दस अरब वर्ष चलेगी। पृथ्वी भी मिटेगी, बनेगी; वह भी एक लहर है। हजारों पृथ्वियां बनी हैं और मिट गई हैं। हजारों सूरज बने हैं और मिट गए हैं। और प्रतिदिन कहीं किसी कोने पर कोई सूरज ठंडा हो रहा है, और किसी कोने पर कोई सूरज जन्म ले रहा है। अभी भी, इस वक्त भी, अभी जब हम यहां बैठे हैं तो कुछ सूरज बूढ़े हो रहे हैं, कोई सूरज मर रहा होगा कहीं;

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कोई सूरज अभी मरा होगा, कहीं सूरज नया जन्म ले रहा होगा; कई सूरज बच्चे हैं अभी, कई जवान हो रहे हैं। हमारा सूरज भी बूढ़ा होने के करीब पहुंचा जा रहा है, उसकी उम्र ज्यादा नहीं है। वह चार-पांच हजार वर्ष लेगा कि वह ठंडा हो जाएगा। हमारी पृथ्वी भी बूढ़ी होती चली जाएगी, वह भी बूढ़ी होती चली जा रही है। जगत में कोई ऐसी चीज नहीं है···

पर होता क्या है, एक छोटी-सी इल्ली है, वह समझो कि वर्षा में ही पैदा होती है, वह वृक्ष पर चढ़ रही है, वृक्ष उसको बिलकुल सनातन मालूम पड़ता है। उसके बाप भी इसी पर चढ़े थे, उसके बाप भी इसी पर चढ़े थे, उसके बाप भी इसी पर चढ़े थे, यह वृक्ष बिलकुल सनातन मालूम होता है। यह बिलकुल शाश्वत मालूम होता है। यह कभी मिटता हुआ नहीं मालूम होता। इल्ली की हजारों पीढ़ियां गुजर जाती हैं और यह वृक्ष है कि ऐसे ही खड़ा रह जाता है। तो ये इल्लियां सोचती होंगी कि वृक्ष सनातन हैं, ये कभी नहीं मिटते। वृक्ष न कभी पैदा होते, न मरते; इल्लियां पैदा होती हैं और मर जाती हैं, वृक्ष सदा होते हैं। क्योंकि वृक्ष की उम्र है दो सौ वर्ष और इल्ली एक मौसम में जीती और मर जाती है। उसकी दो सौ पीढ़ियां एक वृक्ष पर गुजर जाती हैं। दो सौ पीढ़ियों में इतना लंबा फासला है। हमारी दो सौ पीढ़ियों में कितना लंबा फासला है, आपको हिसाब है? महावीर से हमारा फासला कितना है? पच्चीस सौ वर्ष ही न? अगर हम पचास वर्ष की भी एक पीढ़ी मान लें तो कितना-सा फासला है, कितनी-सी पीढ़ियां गुजरीं। कोई बहुत ज्यादा नहीं।

न तो कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है।

जो है—उसका न कोई प्रारंभ है, न अंत है।

और जिसका प्रारंभ और अंत है, वह केवल एक रूप है, एक आकार है। आकार बनेंगे और बिगड़ेंगे, आकृति उठेगी और गिरेगी, सपने पैदा होंगे और खोएंगे।

लेकिन जो है सत्य, वह सदा है, और सदा है, और सदा है।

उसे हम कभी ऐसा भी नहीं कह सकते कि था, सत्य के लिए ऐसा नहीं कह सकते कि था, सत्य के लिए ऐसा नहीं कह सकते कि होगा, सत्य के लिए तो एक ही बात कह सकते हैं कि है, और है, और है। और अगर बहुत गहरे जब कोई

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जाता है तो वह पाता है कि यह कहना भी गलत है कि सत्य है, क्योंकि जो है, वही सत्य है।

तो सत्य के साथ 'है' को भी जोड़ना बेमानी है; क्योंकि 'है' उसके साथ जोड़ा जा सकता है, जो 'नहीं है' हो सकता हो। हम कह सकते हैं यह मकान है, क्योंकि मकान 'नहीं है' भी हो सकता है। लेकिन सत्य 'है'—इस कहने में कठिनाई है थोड़ी; क्योंकि सत्य "नहीं है" कभी नहीं हो सकता। इसलिए सत्य और 'है' पर्यायवाची हैं, सिनानिमस हैं; इनका दोहरा उपयोग करना एक साथ पुनरुक्ति है। 'सत्य है' : इसका मतलब है कि जो 'है', वह है। इसका और कोई मतलब नहीं है। 'है' यानी है, इसका इतना मतलब है। एग्जिस्टेंस इज, ऐसा कहना गलत है; इज़नैस इज़ एग्जिस्टेंस। वह जो होना है, जो इज़नैस है, जो है, वही सत्य है। इसलिए 'सत्य है', इस कहने में भी पुनरुक्ति हो गई, दो शब्द आ गए हैं। 'है' अलग से आ गया है। और 'है' उन चीजों के लिए काम में आता है जो "नहीं है" भी हो जाती हैं।

इस दृष्टि का थोड़ा-सा ख्याल आ जाए तो सब बदल जाता है—सब बदल जाता है। तब पूजा और प्रार्थना नहीं उठती, तब मंदिर और मस्जिद नहीं खड़ी होती, लेकिन सब बदल जाता है। आदमी मंदिर बन जाता है। आदमी का उठना, चलना, बैठना, सब पूजा और प्रार्थना हो जाती है। जब इतना विस्तार का बोध आता है तो अपनी क्षुद्रता एकदम खो जाने का अर्थ रखने लगती है। फिर उसका कोई मतलब नहीं रह जाता, उसका कोई अर्थ नहीं है।

मैं हूं, इसका अर्थ नहीं है; मैं था, इसका अर्थ नहीं है; मैं होऊंगा, इसका अर्थ नहीं है। लेकिन मेरे भीतर जो सदा है, वही सार्थक है। और वह सबके भीतर है, और वह एक ही है। तो व्यक्ति खो जाता है, अहंकार खो जाता है। तब जिसका जन्म होता है, उसी को हम कहें बदला हुआ चित्त, बदली हुई चेतना, ट्रांसफार्म्ड माइंड—जो भी नाम देना चाहें, उसे हम दे सकते हैं।

प्रश्न : जड़ और चेतन दो पृथक चीजें हैं या एक ही वस्तु के दो रूप हैं?

नहीं, बिलकुल पृथक चीजें नहीं हैं। पृथक दिखाई पड़ती हैं। पृथक दिखाई पड़ती हैं। जड़ का मतलब है इतना कम चेतन कि हम अभी उसे चेतन नहीं कह पाते। चेतन का मतलब है, इतना कम जड़ कि हम उसे अब जड़ नहीं कह पाते। वे एक ही चीज के दो छोर हैं। जड़ता ही निरंतर चेतन होती चली जा रही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है। और जड़ता चेतन होती चली जा रही है, इसीलिए कि जड़ता में भीतर कहीं चेतन छिपा है। फर्क सिर्फ प्रकट और अप्रकट का है, मैनिफेस्टेड और अनमैनिफेस्टेड का है। जिसको हम जड़ कहते हैं, वह अप्रकट चेतन है, जिसकी अभी चेतना प्रकट नहीं हुई है। जिसको हम चेतन कहते हैं, वह प्रकट हो गया जड़ है—जिसका पूरा सब प्रकट है।

एक बीज रखा है और एक वृक्ष खड़ा है, कौन कहेगा कि बीज और वृक्ष एक ही हैं ? क्योंकि कहां वृक्ष, कहां बीज ! लेकिन बीज में वृक्ष अप्रकट है बस, इतना ही फर्क है। ऐसे दो दिखाई पड़ते हैं, दो हैं नहीं। और जहां-जहां हमें दो दिखाई पड़ते हैं, वहां-वहां दो नहीं हैं। है तो एक ही, लेकिन हमारी क्षमता इतनी सीमित है कि हम दो में ही देख सकते हैं। वह सीमित क्षमता के कारण·· क्योंकि जड़ में हमें चेतन दिखाई नहीं पड़ता, और चेतन को हम कैसे जड़ कहें ?

और इसीलिए जो झगड़ा चलता आ रहा है निरंतर से, वह एकदम बेमानी था। जिन लोगों ने कहा कि पदार्थ ही है, वे भी ठीक कहते हैं। वे ठीक कहते हैं इसी अर्थ में कि चेतन यानी क्या ? सब पदार्थ ही तो आ रहा है। तो कहा जा सकता है कि पदार्थ ही है, इसमें झगड़ा कहां है ? कोई कहता है कि नहीं, पदार्थ है ही नहीं, बस चेतन ही है। वे भी ठीक ही कहते हैं। वे ऐसे ही लोग हैं, जैसे एक कमरे में आधा गिलास पानी रखा हो और एक आदमी बाहर आए और कहे आधा गिलास खाली है, और दूसरा आदमी बाहर आए और वह कहता है, गलत बोलते हो बिलकुल, गिलास आधा भरा है। और दोनों विवाद करें। और तब दो संप्रदाय बन जाएं और ऐसे लोगों के संप्रदाय बनते हैं, जो भीतर कभी जाते नहीं देखने कि गिलास कैसा है ! मकान के बाहर ही जो निर्णय करते हैं, वे संप्रदाय बनाते हैं। दो आदमी खबर लाए हैं कि मकान के भीतर जो गिलास है, वह आधा खाली है एक कहे; और एक कहे कि बिलकुल ही खाली है यह बात···मैंने अपनी आंख से देखा, गिलास आधा भरा है। वे दोनों ही ठीक कहते हैं। और दोनों एक साथ ही ठीक हैं। नहीं तो एक भी ठीक नहीं हो सकता उनमें से। सिर्फ उनकी एंफेसिस, उनका जोर भिन्न है। एक खाली पर जोर देकर चला आया है, एक भरे पर।

जो लोग पदार्थ पर जोर दे रहे हैं, वे भी ठीक हैं। उनके जोर में गलती नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि पदार्थ ही है, सब पदार्थ है। यह भी कहा जा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सकता है, सब चेतन है। क्योंकि पदार्थ और चेतन दो चीजें नहीं हैं, पदार्थ चेतन की अप्रकट स्थिति है और चेतन पदार्थ की प्रकट स्थिति है।

तो मेरी दृष्टि में जिस दिन दुनिया और ज्यादा संप्रदायों से उठकर, मतों से उठकर देखना शुरू करेगी; उस दिन मैंटेरियलिस्ट और स्प्रीचुएलिस्ट में कोई झगड़ा नहीं रह जाना चाहिए; उस दिन भौतिकवादी और अध्यात्मवादी में कोई झगड़ा नहीं रह जाना चाहिए। वह आधे गिलास का झगड़ा है। हां, लेकिन फिर भी मैं पसंद करूंगा कि जोर सब चेतन है, इस पर दिया जाए। यह मैं क्यों पसंद करूंगा, जब कि वह बात भी ठीक है? पसंद इसलिए करूंगा कि जब हम इस बात पर जोर देते हैं कि सब पदार्थ है, तो हमारी चेतना के प्रकट होने में बाधा पड़ती है—इस जोर से। जब हम यह कह सकते हैं, सब पदार्थ है, इस बात में कोई भूल नहीं है। यह बात बिलकुल ठीक हो सकती है, है ही ठीक, लेकिन जब हम इस बात पर जोर देते हैं कि सब पदार्थ है तो हमारी चेतना के विकास में बाधा पड़ती है, क्योंकि हम सोचते हैं, सब पदार्थ है, ठीक है। लेकिन जब हम इस बात पर जोर देते हैं कि सब चेतन है तो हमारी चेतना पर बल पड़ता है और विकास की संभावना उद्भूत होती है। इसलिए अध्यात्मवाद में और पदार्थवाद में बुनियादी भेद नहीं है। भेद सिर्फ इस बात का है कि पदार्थवाद आदमी को रोक सकता है विकास से, क्योंकि जब सब पदार्थ ही हैं तो बात खतम हो गई। और अध्यात्मवाद विकासशील बना सकता है आदमी को। लेकिन जब कोई पहुंचता है सत्य पर जीवन के, तो वह पाता है, दोनों बातें ठीक थीं, बातों में कोई झगड़ा न था, लेकिन एम्फेसिस में फिर फर्क भीं पड़ता था। और फर्क उपयोगी था, बहुत उपयोगी था।

एक, भोज के जीवन में एक उल्लेख है कि एक ज्योतिषी आया। भोज का हाथ देखा और ज्योतिषी ने कहा, तुम बड़े अभागे हो। तुम अपनी पत्नी को भी मरघट पहुंचाओगे, अपने बेटों को भी मरघट पहुंचाओगे। तुम्हें घर के एक-एक सदस्य को मरघट पहुंचाना पड़ेगा, सबके बाद में तुम मरोगे। भोज तो बहुत नाराज हो गया और उसने ज्योतिषी को हथकड़ियां डलवा दीं और कहा कि इसको बंद कर दो। आदमी कैसा है, कैसी अपशकुन की बातें बोलता है!

कालीदास चुपचाप बैठा था, वह खूब हंसने लगा। उसने कहा, ज्योतिषी कुछ अपशकुन नहीं बोलता, सिर्फ बोलने की समझ नहीं है, जोर गलत चीज पर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देता है। कालीदास ने जब यह कहा तो भोज ने कहा कि क्या मतलब ? तो कालीदास ने कहा कि मैं आपका हाथ देखूं ? हाथ देखकर कालीदास ने कहा कि बहुत धन्यभागी हैं आप ! आपकी उम्र बहुत ज्यादा है। और धन्यभागी इन अर्थों में हैं कि न तो आपकी मृत्यु से आपकी पत्नी दुखी होगी, न आपकी मृत्यु से आपके बेटे कभी दुखी होंगे, कोई दुखी नहीं होगा। आप बड़े धन्यभागी हैं। और भोज ने कहा कि जितना इनाम चाहिए लो, ऐसी शकुन की बात करनी चाहिए, अप-शकुन की नहीं।

अब यह जो···एंफेसिस का फर्क है, लेकिन चित्त पर इसके परिणाम भिन्न होने वाले हैं। पहली बात बड़ा उदास कर गई होगी, दूसरी बात बड़ा प्रसन्न कर गई होगी। और बात बिलकुल एक थी। पहले आदमी ने कुछ भी गलत न कहा था, दूसरे आदमी ने कुछ ज्यादा सही न कह दिया था ,लेकिन उनके कहने के ढंग उनका जोर बदल गया था।

पदार्थवाद मनुष्य को एकदम उदास कर जाता है, बात वही है।

अध्यात्मवाद उसे एक पुलक देता है, एक गति देता है, विकास के द्वार खोलता है, कुछ होने की संभावना प्रकट करता है।

इसलिए मैं फिर भी जारी रखूंगा यह बात कहना कि अध्यात्मवाद ही ठीक कहता है, यद्यपि भौतिकवादी गलत नहीं कहता है।

कहिए ?

प्रश्न : यह शब्द हाइपोथिसिस है, यह मानकर चलते हैं। और महावीर स्वामी ने जो कहा कि दीज आर द लिमिटेशंस आफ द नालेज आफ वन मैन, दैट वी कैन नाट रियलाइज द थिंग।

नहीं, यह सवाल ही नहीं है। यह मनुष्य के ज्ञान की सीमा का सवाल नहीं है, मनुष्य का ज्ञान कितना ही असीम हो जाए तो भी प्रारंभ की संभावना नहीं है।

प्रश्न : जानने की ?

नहीं, नहीं। जानने की नहीं, प्रारंभ के होने की, जानने का तो सवाल ही नहीं है। अगर प्रारंभ है तो जाना जा सकता है। जो है, वह जाना जा सकता है। जो नहीं है, उसके लिए क्या करिएगा ? प्रारंभ असंभव है। ज्ञान की सीमा का सवाल ही नहीं है। यानी ऐसा नहीं है कि महावीर यह कहते हैं कि मुझे पता नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है कि प्रारंभ है कि नहीं। मैं भी ऐसा नहीं कह रहा हूं कि यह हमारे ज्ञान की सीमा है कि हमें पता नहीं चल सकता कि प्रारंभ कब हुआ। नहीं, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि प्रारंभ की अवधारणा, वह जो हाइपोथिसिस है प्रारंभ की, वह इंपासिबिल है, वह पासिबिल नहीं है। वह इसलिए असंभव है कि प्रारंभ के लिए भी पहले कुछ सदा से होना चाहिए, नहीं तो प्रारंभ भी नहीं हो सकता। यानी प्रारंभ के संभव होने के लिए भी प्रारंभ के पहले अस्तित्व चाहिए, नहीं तो प्रारंभ भी संभव नहीं हो सकता और जब पहले अस्तित्व चाहिए तो वह प्रारंभ नहीं रह गया। फिर इसको आप पीछे खींचते चले जाएं।

जैसे समझ लें कि कोई आदमी कहे कि दुनिया की, जगत की एक सीमा है और हम कहें, भई, हमें तो सीमा का कोई पता नहीं कि एक जगह जगत समाप्त हो जाता है, अस्तित्व एक जगह जाकर समाप्त हो जाता है। जिसके आगे कुछ भी नहीं है। तो हम कहें, हमें पता नहीं है। हो सकता है एक दिन आदमी उस जगह पहुंच जाए, जहां जगत समाप्त हो जाता है। क्योंकि हमारा ज्ञान अभी सीमित है, हम बहुत थोड़ा-सा ही तो जानते हैं। हम चांद पर भी तो पहुंच नहीं पाए; पहुंच पाए मुश्किल से और जगत तो, अस्तित्व तो बड़ा विस्तीर्ण है। कभी हम पहुंच पाएंगे, नहीं कह सकते। इसलिए अंत के संबंध में हम कैसे कहें?

नहीं, लेकिन मैं कहता हूं कि अंत नहीं हो सकता। अंत असंभव है। अंत इसलिए असंभव है कि किसी भी चीज का अंत सदा दूसरे का प्रारंभ होता है। यानी अगर हम किसी दिन एक ऐसी जगह पहुंच जाएं, जहां एक रेखा आ जाती हो; हम कह सकें जगत अंत हुआ तो रेखा बनेगी कैसे? रेखा बनती है दो के अस्तित्व से : एक शुरू होता हो और एक अंत होता हो। जहां आपका मकान खतम होता है, वहां पड़ोसी का शुरू हो जाता है। इसीलिए खतम होता है, नहीं तो ख.म होता ही नहीं। जहां कुछ अंत होता है, वहीं प्रारंभ हो जाता है। यानी प्रत्येक अंत प्रारंभ को जन्म देता है और प्रत्येक प्रारंभ अंत को जन्म देता है। जहां ऐसी स्थिति हो, वहां हम बिना किसी दिक्कत के यह कह सकते हैं कि चाहे कितना ही मनुष्य कहीं पहुंच जाए, ऐसा कभी नहीं होगा कि मनुष्य कह दे कि आ गई जगत की सीमा, अब इसके आगे कुछ भी नहीं। लेकिन आगे तो होगा। बात खतम हो गई। इतना भी अगर रहा कि उसने कहा, इसके आगे अब कुछ भी नहीं; पर आगे तो होगा, स्पेस तो होगी। और तब फिर आगे तो अभी जारी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रहा, खतम कहां हो गया ? यानी आप कंसीव नहीं कर सकते ऐसा कि एक जगह ऐसी आ गई, जिसके आगे आगे भी नहीं है। ऐसी जगह कैसे आएगी ? इसलिए इनकन्सीवेबल है, इम्पॉसिबल है। न तो अवधारणा हो सकती है और न संभावना है।

महावीर का दावा इसलिए जारी रहेगा। वह दावा किसी भी दिन खंडित नहीं हो सकता। यानी अगर किसी दिन हमने पता भी लगा लिया कि इस दिन पृथ्वी का प्रारंभ हुआ तो हम पाएंगे कि उसके पहले कुछ है, जिससे प्रारंभ हुआ। फिर उसका पता लगा लिया तो पता चलेगा उसके पहले कुछ है, जिससे प्रारंभ हुआ। यानी प्रारंभ चूंकि शून्य से नहीं हो सकता है, और अगर शून्य से प्रारंभ हो सके तो फिर शून्य को शून्य कहना गलत होगा। उसका मतलब हुआ कि शून्य में भी बीज की तरह कुछ छिपा है, जो प्रकट हो सकता है, फिर वह शून्य नहीं रहा। शून्य का मतलब है जिसमें कुछ भी नहीं छिपा है, जो है ही नहीं।

तो इसका जो कारण है, वह यह नहीं है कि मनुष्य का ज्ञान सीमित है, इसका कारण यह है कि ज्ञान कितना ही बढ़ जाए, प्रारंभ की धारणा असंभव है, प्रारंभ कभी हो ही नहीं सकता। यानी उस प्रारंभ होने की धारणा में ही उसका विरोध छिपा हुआ है। वह कैसे होगा ? और जहां से भी होगा, पूर्व स्थितियों की जरूरत पड़ेगी। और वे पूर्व स्थितियां प्रारंभ को खंडित कर देती हैं।

प्रश्न : जीवन की भिन्न-भिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में महावीर की मानसिक स्थिति का विश्लेषण उपलब्ध नहीं होता। आज जो साहित्य उपलब्ध है, उसके आधार पर उनकी अंतरंग स्थिति का स्पष्टीकरण क्या हो सकेगा ?

यह बहुत बढ़िया सवाल है। बढ़िया इसलिए है कि हम सबके मन में उठ सकता है कि भिन्न-भिन्न अनुकूल, प्रतिकूल परिस्थितियों में महावीर जैसे व्यक्ति की चित्त दशा क्या होती है ? कोई उल्लेख नहीं है। तो कोई सोच सकता है कि उल्लेख इसलिए नहीं है कि महावीर ने कभी कहा न हो। यह कारण नहीं है। उल्लेख न होने का कारण बहुत दूसरा है और बहुत गहरा, बुनियादी है।

महावीर जैसी चेतना के व्यक्ति में परिस्थितियों से कोई भेद नहीं पड़ता। इसलिए भिन्न-भिन्न परिस्थिति कहने का कोई अर्थ नहीं है। भिन्न-भिन्न परिस्थिति में, प्रतिकूल-अनुकूल में चित्त सदा समान है। जैसे कि किसी ने गाली दी, तो हम क्रोधित होते हैं और किसी ने स्वागत किया तो हम आनंदित होते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रत्येक स्थिति में हमारा चित्त रूपांतरित होता है ।
जैसी स्थिति होती है, वैसा चित्त हो जाता है। इसी को महावीर कहते हैं कि यह बंधन की अवस्था है।

स्थिति जैसी होती है, वैसा चित्त को होना पड़ता है तो फिर हम बंधे हुए हैं।

स्थिति दुख की होती है तो हमें दुखी होना पड़ता है, स्थिति सुख की होती है तो हमें सुखी होना पड़ता है। इसका मतलब यह हुआ कि चित्त की अपनी कोई दशा नहीं है। चित्त सिर्फ बाहर की स्थिति जो मौका दे देती है, वैसा हो जाता है। इसका अर्थ ही हुआ कि अभी चित्त उपलब्ध ही नहीं हुआ है, चेतना अभी उपलब्ध ही नहीं हुई है। अभी हम उस जगह नहीं पहुंचे, जहां कि क्रिस्टलाइजेशन हो जाता है, जहां कि हम कुछ हैं और स्थितियां कोई फर्क नहीं लातीं। सुख आए तो दुख आए तो, प्रतिकूल···हो रहा है।

किसी दिन बहुत शिष्य इकट्ठे हुए होंगे तो महावीर का मन कैसा है? किसी दिन कोई नहीं आया होगा गांव में सुनने तो महावीर का मन कैसा है? किसी दिन सम्राट आए होंगे सुनने और चरणों में लाखों रुपये रखे होंगे और किसी दिन कोई भिखारी भी नहीं आया, तो महावीर का मन कैसा है? किसी गांव में स्वागत-समारंभ हुए होंगे, फूलमालाएं पड़ी होंगी, ओर किसी गांव में पत्थर फेंके गए और गालियां दी गईं और गांव के बाहर खदेड़ दिया गया—तो महावीर का मन कैसा है? उस प्रश्न में यह पूछा है कि इन-इन स्थितियों में महावीर के भीतर क्या होता है?

असल में महावीर होने का मतलब ही यह है कि भीतर अब कुछ नहीं होता। जो होता है, वह सब बाहर ही होता है। भीतर अब कुछ नहीं होता है, यही महावीर होने का अर्थ है। यही क्राइस्ट होने का अर्थ है, यही बुद्ध होने का अर्थ है; यही कृष्ण होने का अर्थ है कि अब भीतर कुछ भी नहीं होता। जो भी होता है सब बाहर ही होता है। भीतर बिलकुल अस्पर्शित, अछूता छूट जाता है।

जैसे एक दर्पण है और दर्पण के सामने से कोई निकलता है—कोई सुंदर व्यक्ति, तो दर्पण में सुंदर तस्वीर बनती है। व्यक्ति निकल गया, तस्वीर मिट जाती है, दर्पण,दर्पण रह जाता है। फिर एक कुरूप व्यक्ति निकलता है, तस्वीर बनती है कुरूप की, फिर कुरूप व्यक्ति निकल जाता है, दर्पण फिर दर्पण रह जाता है। दर्पण कुछ पकड़ता नहीं। और दर्पण सुंदर को भी वैसे ही झलकता है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जैसे कुरूप को; इसमें भी फर्क नहीं करता। इसमें भी फर्क नहीं करता कि सुंदर को कुछ ज्यादा रस से झलका दे, कुरूप को जरा कम रस से झलकाए, या कहे कि हटो भी! ऐसा कुछ भी नहीं करता। सुंदर है कि कुरूप है, कौन गुजरता है सामने से इसने मतलब नहीं है। दर्पण का काम है, झलका देता है। गुजर जाता है, मिट जाता है। लेकिन फोटो-प्लेट है, वह भी दर्पण का काम करती है, लेकिन बस एक ही बार, क्योंकि जो भी उस पर अंकित हो जाता हैं, उसे पकड़ लेती है फिर उसे छोड़ नहीं पाती। इसका मतलब यह हुआ कि दर्पण की घटनाएं सब बाहर ही घटती हैं, भीतर कुछ घटता नहीं। भीतर कुछ घट जाए तो जकड़ जाए। फोटो-प्लेट में भीतर घटना घट जाती हैं बाहर से कोई निकलता हैं और भीतर घट जाता है। बाहर से तो निकल ही जाता है, वह आदमी जा भी चुका, लेकिन फोटो-प्लेट फंस गई, वह तो पकड़ गई भीतर से। हम भीतर से पकड़े जाते हैं।

और दो तरह के चित्त हैं जगत में : फोटो-प्लेट की तरह काम करने वाले या दर्पण की तरह काम करने वाले। फोटो-प्लेट की तरह जो काम कर रहे हैं, उन्हीं को महावीर राग-द्वेष से ग्रस्त कहते हैं। असल में फोटो-प्लेट बड़ा राग-द्वेष रखती है। राग-द्वेष का मतलब यह कि जकड़ती है जल्दी से, पकड़ती है जल्दी से, फिर छोड़ती नहीं।

राग भी पकड़ता है, द्वेष भी पकड़ता है, दोनों पकड़ते हैं।

एक मित्र की तरह पकड़ता है, एक शत्रु की तरह पकड़ता है और दोनों पकड़ लेते हैं। और चित्त की जो दर्पण की निर्मलता है, वह खो आती है। हम सब फोटो-प्लेट की तरह काम करते हैं, इसलिए बड़ी मुसीबत में पड़े होते हैं। एकदम चित्त भरता जाता है, भरता जाता है, खाली कभी होता नहीं। और फिर हर स्थिति पकड़ी जाती है। और कोई स्थिति ऐसी नहीं है जो हमारे पास से अस्पर्शित निकल जाए।

महावीर जैसा व्यक्ति दर्पण की तरह जीते हैं। असल में समाधिस्थ व्यक्ति दर्पण की तरह हो जाता है। कोई गाली देता है तो वह सुनता है, जैसे कोई सम्मान करता है तो सुनता है, लेकिन जैसे सम्मान विदा हो जाता है सुनते ही, ऐसे ही गाली भी विदा हो जाती है; भीतर कुछ पकड़ा नहीं जाता। इसलिए महावीर के अंतरंग चित्त की अलग-अलग स्थितियां नहीं है, जिनका वर्णन किया जाए। इसलिए वर्णन नहीं किया गया है। कोई स्थिति ही नहीं है। अब क्या दर्पण का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वर्णन करो बार-बार ? इतना ही कहना काफी है कि दर्पण है। जो भी आता है तो झलकता है, जो भी चला जाता है, झलक बंद हो जाती है। अब इसको रोज-रोज क्या लिखो ! इसको रोज-रोज क्या कहो ! इसे कहने का कोई भी अर्थ नहीं है। न महावीर की, न क्राइस्ट की, न बुद्ध की, न कृष्ण की—किन्हीं की अंतर्परिस्थिति का कोई उल्लेख कभी नहीं किया गया। नहीं किए जाने का कारण है : उल्लेख योग्य कुछ है ही नहीं। एक समता आ गई है चित्त की, वह वैसी ही रहती है।

जैन मैं निरंतर कहता रहता हूं कि महावीर को कुछ लोग पत्थर मार रहे हैं, या कान में कीलें ठोंक रहे हैं, या गांव के बाहर खदेड़ रहे हैं, तो महावीर को मानने वाले कहते हैं कि बड़े क्षमावान थे वे। उन्होंने लौटकर गाली न दी, क्षमा कर दिया और आगे बढ़ गए ! लेकिन वे भूल जाते हैं कि क्षमा तभी की जा सकती है, जब मन में क्रोध आ गया हो। क्षमा अकेली बेमानी है। वह क्रोध के साथ ही सार्थक है, नहीं तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है। हम क्षमा कैसे करेंगे, जब हम क्रुद्ध न हुए हों ? और वे कहते हैं कि उन्होंने लौटकर गाली न दी, लौटकर क्षमा दी और आगे बढ़ गए, लेकिन लौटकर कुछ दिया ! और लौटकर तभी कुछ दिया जा सकता है, जब भीतर कुछ हो गया हो, नहीं तो लौटकर कुछ भी नहीं दिया जा सकता।

तो मैं आपसे कहता हूं, महावीर क्षमावान नहीं थे, क्योंकि महावीर क्रोधी नहीं थे। और महावीर न लौटकर क्षमा भी नहीं किया। चाहे देखने वालों को लगा हो कि हमने गाली दी और इस आदमी ने गाली नहीं दी, बड़ा क्षमावान है। बस इतना ही कहना चाहिए कि इस आदमी ने गाली नहीं दी, बड़ा क्षमावान है, गलती हो जाती है। उस आदमी ने गाली सुनी, जैसे एक शून्य भवन में आवाज गूंजे और फिर निकल जाए—चाहे गाली की, चाहे भजन की। आवाज गूंजे और निकल जाए, भवन फिर शून्य हो जाए।

इस तल पर, इस चेतना में जीने वाले व्यक्ति सूने भवन की तरह हैं, जिनमें जो भी आता है, वह गूंजा; गूंजता जरूर है, हमसे ज्यादा गूंजता है स्पष्ट; क्योंकि हमारी संवेदनशीलता इतनी तीव्र नहीं होती। क्योंकि हमने इतनी चीजें पहले से भर रखी होती हैं। जैसे खाली कमरा देखा न ? खाली कमरे में आवाज गूंजती है और बहुत फर्नीचर भरा हो तो फिर नहीं गूंजती। हम फर्नीचर भरे हुए लोग हैं, जिसमें बहुत भरा हुआ है। फोटो-प्लेट ने बहुत इकट्ठा कर लिया है। आवाज

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गूंजती ही नहीं, कई दफा तो सुनाई ही नहीं पड़ती कि क्या सुना, क्या दे वह कुछ पता नहीं चलता। सेंसिटिविटि भी कम है। लेकिन महावीर जैसे व्य की संवेदनशीलता तो बड़ी प्रगाढ़ है, सब गूंजता है। जरा सी आवाज होती सुई भी गिरती है तो गूंज जाती है। लेकिन बस गूंजती है। और जितनी देर सकती है, गूंजती है, और विदा हो जाती है। महावीर सके प्रति कोई प्रतिक्रि नहीं करते : न क्षमा की, न क्रोध की। असल में महावीर कहते ही यह है महावीर का सारा का सारा योग अप्रतिक्रिया योग है : प्रतिक्रिया मत करो देखो, जानो, सुनो; लेकिन प्रतिक्रिया मत करो। देखो, जानो, सुनो, खूब देखे खूब जानो, खूब सुनो; लेकिन प्रतिक्रिया मत करो।

प्रश्न : एक इडियट भी प्रतिक्रिया नहीं करता ?

वह इसलिए नहीं करता, क्योंकि न वह सुनता है, न वह जानता है, न व देखता है।

प्रश्न : इडियट एक आदमी है···?

हां, हां, वह भी इसीलिए प्रतिक्रिया नहीं करता, क्योंकि देख भी नहीं पात सुन भी नहीं पाता, समझ भी नहीं पाता। और इसलिए, यह बात इसने ठी पूछी है, इडियट, मंदबुद्धि, बुद्धिहीन, जड़ नहीं प्रतिक्रिया करता। इसीलिए परम स्थिति में अक्सर जड़ जैसी अवस्था मालूम होने लगती है।

प्रश्न : तो मालूम कैसे पड़े ? ख्याल में कैसे आए ?

तुम्हें मालूम करने की जरूरत नहीं है। हां, तुम अपनी फिक्र करो कि हम कहां हैं। यानी बहुत कठिन है फर्क करना। परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति हमें जड़ जैसा मालूम पड़ेगा, क्योंकि हमने जड़ को ही जाना है। अगर आप एक जड़ को गाली दे दें तो हो सकता है, बैठा हुआ सुनता रहे। इसलिए नहीं कि उसने गाली सुनी, बल्कि सिर्फ इसलिए कि वह सुना ही नहीं उसने कि क्या हुआ। महावीर को गाली दो तो हो सकता है, वह भी वैसे बैठे सुनते रहें, इसलिए नहीं कि उन्होंने गाली नहीं सुनी, पूरी तरह सुनी, जैसे किसी आदमी ने न कभी न सुनी होगी, सुनी; लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं है। क्योंकि गाली की प्रतिक्रिया क्या करनी है। प्रतिक्रिया करने का फल क्या है। प्रतिक्रिया से लाभ क्या है, प्रयोजन क्या है ?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो अक्सर ऐसा होता है कि परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति ठीक जड़ जैसा मालूम पड़ने लगता है—हमें, क्योंकि हमारी भाषा में, हम जड़ को ही पहचानते हैं। लेकिन फर्क तो बहुत होंगे, फर्क तो बहुत गहरे होंगे। वक्त लगेगा पहचानने में। और शायद हम ठीक से कभी पहचान भी न सकें। जब तक हमारे भीतर फर्क होने शुरू न हो जाएं, तब तक शायद ठीक से पहचानना भी मुश्किल है कि क्या हो गया है उस व्यक्ति को।

यह जो कुछ अद्भुत-सी बात है, लेकिन दो विरोधी अतियां कभी-कभी बिलकुल समान ही मालूम होती हैं। जैसे एक बच्चा सरल मालूम होता है, निर्दोष मालूम होता है; लेकिन अज्ञानी है, ज्ञान बिलकुल नहीं है। परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति भी बच्चे जैसा मालूम होने लगेगा; इतना ही सरल, इतना ही निर्दोष। शायद बच्चे जैसा व्यवहार भी करने लगे। शायद हमें तय करना मुश्किल हो जाएगा कि इस आदमी ने बुद्धि खो दी? यह कैसा बच्चों जैसा व्यवहार कर रहा है! कैसी बाल-बुद्धि का हो गया है! घूमकर वृत्त वापस लौट आया है।

लेकिन दोनों में बुनियादी फर्क है। बच्चा अभी निर्दोष दिखता है, लेकिन कल निर्दोषता खोएगा। अभी सरल दिखता है, लेकिन कल जटिल होगा। यह आदमी जटिल हो चुका, निर्दोषता खो चुका; यह पुनः उपलब्धि है, सरलता वापस लौट आई है, निर्दोष फिर हो गया है। अब खोने का सवाल नहीं है, यह जानकर, जीकर वापस लौट आया है। यह उन अनुभवों से गुजर गया है, जिनसे बच्चों को गुजरना पड़ेगा।

बच्चे की सरलता अज्ञान की है, एक संत की सरलता ज्ञान की है।

लेकिन दोनों सरलताएं अक्सर एक-सी मालूम पड़ेंगी! एक-सी मालूम पड़ेंगी—एक संत भी उतना ही सरल हो सकता है, ऐसे ही बच्चों जैसा सरल हो सकता है। और अगर संत बच्चों जैसा सरल न हो सके तो अभी वृत्त पूरा नहीं हुआ, अभी बात वापस नहीं लौटी—अभी बात वापस नहीं लौटी, जटिलता शेष रह गई है, कठिनाई शेष रह गई है। कहीं कोई चालाकी, कहीं कोई कनिंगनेस, कोई केलकुलेशन शेष रह गया है।

जड़ और परम प्रज्ञावान में भी इसी तरह का वृत्त दिखाई पड़ेगा, जड़ जैसा ही मालूम पड़ेगा। और इसलिए कभी-कभी बहुत भूलें हो जाती हैं। जैसे मैं फकीर नसरुद्दीन की निरंतर बात करता हूं। वह ऐसा ही आदमी था। जो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देखने में परम जड़ मालूम पड़े, जिसका व्यवहार परम जड़ का हो, जिसकी भी चीज ऐसे मालूम पड़े कि इडियट की है, मूढ़ की है, लेकिन जिसमें जो सके तो परम ज्ञान भी दिख जाए। एकाध बात मैं बताना चाहूं।

फकीर नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है। एक तोते को बेचने वा बाजार में तोता बेच रहा है और जोर से चिल्ला कर कह रहा है कि व कीमती तोता है, बड़े सम्राट के घर का तोता है, इस-इस तरह की वाणि जानता है, इस-इस भाषा को पहचानता है, इस-इस भाषा को बोलता है और सैकड़ों लोग इकट्ठे हैं। नसरुद्दीन भी उस भीड़ में खड़ा हो गया है। कई रूपये में वह तोता नीलाम हुआ और बिक गया !

नसरुद्दीन ने कहा कि लोगो, ठहरो ! मैं इससे भी बढ़िया तोता लेकर आ आता हूं। भागा हुआ घर आया, अपने तोते के पिंजड़े ले जाकर उसने जाक बाजार में खड़ा कर दिया और उसने कहा कि वह क्या तोता था ! अब दा इसके बोलो। ओर जहां से उसकी बोली खतम हुई, वहां से शुरू करो। लोगों समझा कि उससे भी बढ़िया कोई तोता आ गया है। तो उन्होंने बोली शुरू की लेकिन तब धीरे-धीरे किसी ने कहा कि वह तोता जो था, पहला तोता जो था बार-बार बोलता था, जवाब देता था। कई दफे बोली भी बढ़ाता था, खुद भी बोली बढ़ाता था, अनेक भाषाएं बोलता था, लेकिन यह बिलकुल चुप ही था, यह कुछ बोलता-बालता नहीं था।

थोड़ी देर में लोगों ने कहा कि लेकिन यह तोता कुछ बोलता है कि नहीं? नसरुद्दीन ने कहा कि बोलने वाले तोतों का क्या मूल्य ! यह मौन तोता है, बिलकुल सायलेंट है। यह परम स्थिति को उपलब्ध हो गया है। लोगों ने कहा, हटाओ इसको, एक पैसे में इसे कोई नहीं खरीदेगा। उसने कहा कि बड़े पागल लोग हो तुम ! लोगों ने कहा कि अरे, मूढ़ है यह नसरुद्दीन ! इसकी बातों में क्यों पड़ते हो ? यह पागल है, इसको कुछ अक्ल नहीं। इसको निकाल बाहर करो अपने तोते सहित। इसको बाहर निकालो, यह नसरुद्दीन है, वही पागल !

लोगों ने नसरुद्दीन को तोते सहित बाहर निकाल दिया। रास्ते पर लोगों ने पूछा, कहो नसरुद्दीन, तोता बिका कि नहीं ? उसने कहा कि क्या बिकता ! क्योंकि वहां खरीदार बस वाणी को ही समझ सकते थे, मौन को नहीं समझ सकते थे; इसलिए हम पीटे गए और बाहर निकाले गए, इसलिए हम पीटे गए और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बाहर निकाले गए, क्योंकि वहां कोई मौन को समझने वाला न था। मैंने तो सोचा कि जब वाणी के इतने दाम लग रहे हैं तो मौन का तो मजा आ जाएगा

लेकिन···लेकिन वह आदमी इडियट, इडियट लगेगा न बिलकुल ! इडियट है कि कैसा पागल आदमी है ! जो तोता बोलता ही नहीं, उसको कौन खरीदेगा ?

यह आदमी···नसरुद्दीन निरंतर अपने गधे पर यात्राएं करता है, गधे पर शक्कर भरकर जा रहा है। नदी पड़ी है, गधा नदी में बैठ गया, सारी शक्कर बह गई। नसरुद्दीन ने गधे से कहा कि तू हमसे भी ज्यादा बुद्धिमानी हमको दिखला रहा है ? ठहर बेटे ! तुझे आगे बतलाएंगे। क्योंकि हम भी कोई साधारण आदमी नहीं हैं, हम भी तर्क जानतें हैं। गधे से कहा, हम भी तर्क जानते हैं ! तू हमको तर्क सिखला रहा है !

गधे को वापस लौटाकर लाया, उस पर रुई लादी, उसे नदी के पास ले गया। गधा फिर बैठा। रूई भारी हो गई, गधे का उठना मुश्किल हो गया। उसने आस-पास के लोगों को बुलाकर कहा, देखो, नसरुद्दीन जीत गया, गधा हार गया ! लोगों ने कहा कि तुम बिलकुल जड़बुद्धि हो। तुम गधे से विवाद कर रहे हो ? नसरुद्दीन ने कहा, विवाद गधे के सिवाय और किससे करना पड़ता है ? इस आदमी ने कहा, और किससे विवाद करना पड़ता ? सब गधों से ही तो झगड़ा है, गधों से ही बकवास है। मगर लोगों ने कहा, छोड़ो उसे; गधे को और उसको, वे दोनों एक-से हैं, उनकी बातों का कोई मतलब नहीं !

इस आदमी की जिंदगी में ऐसे बहुत मौके हैं, जबकि एकदम समझना मुश्किल हो जाता है कि यह आदमी क्या पागलपन कर रहा है ! क्या कर रहा है यह ? लेकिन पीछे नहीं कोई बात है !

निकल रहा है रास्ते से, जोर की वर्षा हो रही है, एक मकान के पास बैठ गया है। गांव का जो मौलवी हैं, वह भी भाग रहा है वर्षा से। नसरुद्दीन दालान में बैठा हुआ चिल्लाता है कि अरे मौलवी ! भागते हो ? सारे गांव को बता दूंगा। तो मौलवी ने कहा कि मैंने कोई अपराध किया ? क्योंकि मौलवी, पंडित, साधु सदा डरे रहते हैं कि गांव को कोई न बता दे। उसने कहा, मैंने कौन-सा पाप किया है ?

पाप तुम कर रहे हो। भगवान पानी गिरा रहा है और तुम भाग रहे हो, यह भगवान का अपमान है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो मौलवी धीरे-धीरे गया। लेकिन सर्दी पकड़ गई, बुखार हो गया। तीसरे दिन मौलवी अपने घर के बाहर दुलाई वगैरह ओढ़े हुए सर्दी से परेशान बैठा और पानी गिरा, नसरुद्दीन भागा जा रहा है। तो मौलवी ने कहा कि ठहर नसरुद्दीन मुझे तो तूने धीरे चलने को कहा था, तू क्यों भाग रहा है?

उसने कहा कि भगवान के पानी पर कहीं मेरा पैर न पड़ जाए। और वह भागा।

समझे न? दूसरे दिन जब मौलवी मिला तो उसने कहा कि तू तो बड़ा बेईमान है। तो उसने कहा कि सब समझदार बेईमान पाए जाते हैं। सब समझदार बेईमान हैं। क्योंकि अगर ईमानदारी करो तो नासमझ हो जाते हैं, अगर समझदारी हो तो आदमी बेईमान कहते हैं।

और फिर व्याख्या हमेशा अपने अनुकूल करनी पड़ती है।

नसरुद्दीन ने कहा, और व्याख्या हमेशा अपने अनुकूल करनी पड़ती है। शास्त्रों का क्या भरोसा! अपने पर भरोसा रखना पड़ता है। व्याख्या सदा अपने अनुकूल करनी पड़ती है। सब बुद्धिमान यही करते रहे हैं, मुझ पर क्यों नाराज होते हो? अपने मतलब से व्याख्या करते हैं। तुम जब पानी में थे तो हमने यह व्याख्या की, जब हम पानी में थे तो हमने दूसरी व्याख्या की। सभी बुद्धिमान यही व्याख्या करते रहे हैं।

यह जो आदमी है, यह जाहिर इडियट था। लेकिन परम प्रज्ञा को जो लोग उपलब्ध होते हैं, उनमें से एक है वह आदमी। मगर उसे पकड़ना मुश्किल हो जाए। और कई बार उसकी बातें बड़ी बेहूदी हो जाएं, बिलकुल समझ के बाहर हो जाएं।

घर लौट रहा है, एक मित्र ने कुछ मांस दिया है भेंट, और साथ में एक किताब दी है जिस किताब में मांस बनाने की तरकीब लिखी है। किताब बगल में दबाकर मांस हाथ में लेकर बड़ी खुशी से भागा चला आ रहा है। चील ने झपटा मारा, मांस ले गई। नसरुद्दीन ने कहा, अरे मूर्ख! जा, क्योंकि बनाने की तरकीब तो किताब में लिखी है।

घर पहुंचा, घर जाकर अपनी पत्नी से कहा, सुनती हो? आज एक चील बड़ी बेवकूफ निकल गई। क्या हुआ? उसने कहा, मैं मांस लेकर आ रहा था,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वह मांस तो ले गई, लेकिन तरकीब तो किताब में लिखी है। उसकी औरत ने कहा, तुम बड़े बुद्धू हो। चील इतनी बुद्धू नहीं है।

उसने कहा, सभी बुद्धिमानों को मैंने किताब पर भरोसा करते पाया है, इसलिए मैं भी किताब पर भरोसा करता हूं।

यह जो आदमी है न, यह बिलकुल, एकदम से तो दिखेगा कि कैसा पागल है, एकदम जड़-बुद्धि। लेकिन कहीं कोई बात है, कहीं कोई गहरे में उसकी भी अपनी समझ है। और वह इतने बड़े व्यंग्य भी कर रहा है और इतनी सरलता से ! इतने इन्नोसेंट, कि किसी के ख्याल में आए तो प्राणों में घुस जाए। ख्याल में न आए तो वह आदमी बुद्धू है। बहुत बार ऐसा हो सकता है कि हमें पकड़ में ही न आ पाए कि क्या बात है। लेकिन उससे कोई···हमें पकड़ में भी तभी आएगा, जब हमारी समझ उतनी गहराई पर खड़ी हो, तभी पकड़ में आ सकता है।

एक प्रश्न और ले लें।

प्रश्न : क्या महावीर की अहिंसा पूर्ण विकसित है ? क्या महावीर के आगे अहिंसा का उत्तरोत्तर विकास नहीं हुआ है ? गीता और बाइबिल में महावीर से भी अधिक सूक्ष्म रूप हैं।

पहली बात तो यह कि कुछ चीजें हैं, जो कभी विकसित नहीं होतीं, विकसित हो ही नहीं सकती हैं। ये वे चीजें हैं, जहां हमारा विचार, हमारा मस्तिष्क, हमारी बुद्धि सब शांत हो जाती है और तब हमारे अनुभव में आती हैं। जैसे कोई कहे कि बुद्ध को जो ध्यान उपलब्ध हुआ था, पच्चीस सौ साल हो गए, अब जिन लोगों को ध्यान उपलब्ध होता है, वह आगे विकसित होता है या नहीं ? क्योंकि पच्चीस सौ साल हो गए, पच्चीस सौ साल में लोग और आगे विकसित हो गए हैं तो ध्यान और आगे विकसित होगा। नहीं, ध्यान है स्वयं में उतर जाना। स्वयं में चाहे कोई लाख साल पहले उतरा हो चाहे आज उतर जाए, स्वयं में उतरने का अनुभव एक है, स्वयं में उतरने की स्थित एक है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई भेद नहीं पड़ता।

महावीर को जो अहिंसा प्रकट हुई है, वह उनकी सहानुभूति का ही बाह्य परिणाम है। भीतर उन्होंने जाना है जीवन की एकता को और बाहर उनके व्यवहार में जीवन की एकता अहिंसा के रूप में प्रतिफलित हुई है। अहिंसा का मतलब ही जीवन की एकता का सिद्धांत है। इस बात का सिद्धांत कि जो जीवन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मेरे भीतर है, वही जीवन तुम्हारे भीतर है। तो मैं अपने को ही कैसे चोट पहुंचा सकता हूं ?

अगर मेरे भीतर वही जीवन है, जो तुम्हारे भीतर है तो मैं अपने को ही कैसे चोट पहुंचा सकता हूं ?

मैं ही हूं, तुममें भी फैला हुआ।

जिसे यह अनुभव हुआ हो कि मैं ही सब में फैला हुआ हूं या सब मुझसे ही जुड़े हुए जीवन हैं; जीवन एक है, जिसे ऐसा अनुभव हुआ हो, उसके व्यवहार में अहिंसा फलित होती है। ऐसा अनुभव कभी हो तो ऐसा ही होगा, इसमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। इसमें क्राइस्ट को हो कि किसी और को हो। यह अनुभव जीवन की एकता का, कम-ज्यादा कैसे हो सकता है ? यह थोड़ा समझने जैसा है।

अक्सर हम सोचते हैं कि सब चीजें कम-ज्यादा हो सकती हैं। समझ लें कि आपने एक वृत्त खींचा, एक सर्किल खींचा। कभी आपने सोचा कि कोई सर्किल कम और कोई सर्किल ज्यादा हो सकता है ? ऐसा हो सकता है कि जो वृत्त आपने खींचा है— एक वृत्त कुछ कम वृत्त हो, दूसरा वृत्त कुछ ज्यादा वृत्त हो; यह नहीं हो सकता। क्योंकि वृत्त का अर्थ ही है यह कि या तो वृत्त होगा या नहीं होगा, कम-ज्यादा नहीं हो सकता। जो वृत्त कम है, वह वृत्त ही नहीं है। वृत्त ही होता है—या तो होता है या नहीं होता है, इसमें कम-ज्यादा नहीं होता।

जैसे प्रेम है, कोई आदमी कहे कि मुझे थोड़ा कम प्रेम है या थोड़ा ज्यादा प्रेम है, तो शायद उस आदमी को प्रेम का कोई पता नहीं है।

प्रेम या तो होता है या नहीं होता है, उसका कोई खंड नहीं होता और उसके कोई टुकड़े नहीं होते।

और ऐसा भी नहीं होता कि प्रेम विकसित होता हो। क्योंकि विकसित तो तभी हो सकता है, जब थोड़ा-थोड़ा हो सकता हो। थोड़ा-थोड़ा हो सकता हो, ऐसा भी नहीं होता।

अक्सर हमारी लाइकिंग, पसंद विकसित हो जाती है। इसलिए हम सोचते हैं कि प्रेम विकसित हो रहा है। प्रेम कभी विकसित नहीं होता। पसंद और प्रेम में बहुत फर्क है।

प्रेम तो होता है या नहीं होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

फिर पसंद विकसित हो सकती है, और बहुत विकसित हो सकती है या कम हो सकती है, बहुत कम हो सकती है। लेकिन प्रेम न कम होता है, न ज्यादा होता है; या तो होता है या नहीं होता। ऐसा कोई नहीं कह सकता कि ऐसा वक्त आ जाएगा जब लोग ज्यादा प्रेम कर लेंगे। ऐसा नहीं हो सकता।

जीवन के जो गहरे अनुभव हैं, वे होते हैं, या नहीं होते हैं।

महावीर को जो जीवन की एकता का अनुभव हुआ, वही जीसस को हो सकता है, बुद्ध को हो सकता है, मुझे हो सकता है, आपको हो सकता है। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि उसमें किसी को ज्यादा हो जाए और किसी को कम हो जाए। होगा तो होगा, नहीं होगा तो नहीं होगा।

तो दुनिया में कुछ चीजें हैं आंतरिक, जो कभी विकसित नहीं होतीं। असल में विकास का कोई मतलब ही नहीं, क्योंकि जब वे उपलब्ध होती हैं तो पूर्ण ही उपलब्ध होती हैं, या नहीं ही उपलब्ध होती हैं।

समझ लें उदाहरण के लिए, पानी भाप बन रहा है, निन्यानबे डिग्री पर गर्मी हो गई है, अभी भाप नहीं बन गया है; अंठानबे डिग्री पर था, अभी भाप नहीं बना था; नब्बे डिग्री पर था, भाप नहीं बना था; सौ डिग्री पर आया कि भाप बन गया! गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है—अस्सी डिग्री, नब्बे डिग्री, पंचानबे डिग्री, निन्यानबे डिग्री। दस बर्तन रखे हैं, सब में अलग-अलग डिग्री का पानी है, उनमें पानी अभी भाप नहीं बन रहा है। गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है। कम होगी तो भाप नहीं बनेगा, पूरी हो जाएगी तो भाप बनेगा। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता—ऐसा नहीं हो सकता कि जब एक बूंद भी भाप बनती है तो या तो भाप बनती है या नहीं बनती। ऐसा नहीं होता, इससे बीच में, इसमें कोई डिग्री नहीं होती। भाप बनने और न बनने में कोई डिग्री नहीं होती। हां, भाप बनने की स्थिति आने तक पानी की डिग्रियां हो सकती हैं।

अज्ञान की डिग्रियां होती हैं, ज्ञान की कोई डिग्री नहीं होती।

हालांकि हम सब ज्ञान की डिग्रियां देते हैं! सिर्फ अज्ञान की डिग्रियां होती हैं। एक आदमी कम अज्ञानी, एक आदमी ज्यादा अज्ञानी, यह सार्थक है। लेकिन एक आदमी कम ज्ञानी, एक आदमी ज्यादा ज्ञानी, यह बिलकुल ही असंगत निरर्थक बात है। कम-ज्यादा ज्ञान होता ही नहीं। हां, अज्ञान कम-ज्यादा हो सकता है। और कम-ज्यादा होने का मतलब इतना ही है कि कम अज्ञानी हम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उसको कहते हैं, जिसके पास इनफर्मेशन ज्यादा होती है, ज्यादा अज्ञानी उसको कहते हैं, जिसके पास इनफमेंशन कम होती है। क्योंकि ज्ञान तो कम-ज्यादा हो ही नहीं सकता। इसलिए अज्ञानियों में भी दो अज्ञानियों में ज्ञान का फर्क नहीं होता, सिर्फ सूचना का फर्क होता है। एक आदमी युनिवर्सिटी से लौटता है, सूचनाएं इकट्ठी कर लाता है, उसका ही एक भाई गांव में, देहात में रह गया था, वह सूचनाएं इकट्ठी नहीं कर पाया। दोनों मिलते हैं तो एक ज्ञानी मालूम पड़ता है, एक अज्ञानी मालूम पड़ता है। दोनों अज्ञानी हैं। एक के पास सूचनाओं का ढेर है, एक के पास सूचनाओं का ढेर नहीं है। तो इसको हम कह सकते हैं कि यह ज्यादा अज्ञानी, एक कम अज्ञानी। मगर यह भी ज्ञान के हिसाब से नहीं है तौल।

जब ज्ञान आता है तो बस आता है। जैसे आंख खुल जाए और प्रकाश दिख जाए, जैसे दीया जल जाए और अंधेरा हट जाए।

तो ज्ञानी कभी छोटे-बड़े नहीं होते। लेकिन हम चूंकि अज्ञानी हैं सब, और छोटे-बड़े की भाषा में जीते हैं, तो हम ज्ञानियों के भी छोटे-बड़े होने का हिसाब लगाते रहते हैं! कोई कहता है कबीर बड़ा कि नानक, कि महावीर बड़े कि बुद्ध, कि राम बड़े कि कृष्ण, कि कृष्ण बड़े कि मुहम्मद; बड़े-छोटे का हिसाब लगाते रहते हैं अपने हिसाब से! कोई बड़ा-छोटा नहीं है वहां। वहां कोई बड़ा-छोटा होता ही नहीं।

उदाहरण के लिए आपको ख्याल दूं। आज से तीन सौ-चार सौ साल पहले तक सारी दुनिया में यह ख्याल था, अगर हम छत पर खड़े होकर एक बड़ा पत्थर गिराए और एक छोटा पत्थर साथ-साथ, तो बड़ा पत्थर पहले पहुंचेगा जमीन पर, छोटा पत्थर पीछे! बिलकुल ठीक गणित था, किसी ने गिराकर देखा नहीं। तो गणित बिलकुल साफ ही दिखता था, क्योंकि बड़ा पत्थर है, पहले गिरना चाहिए, छोटा पत्थर बाद में गिरना चाहिए!

जिस पहले आदमी ने पिसा के टॉवर पर खड़े होकर पहली दफा पत्थर गिराकर देखे, उसको खुद भी शक था कि यह बात तो गलत है, गिराना बेकार ही है, इसलिए किसी को खबर नहीं की उसने, पहली दफा अकेला गया चुपचाप एकांत में। और जब उसने देखा कि बड़ी हैरानी हुई, दोनों पत्थर साथ गिरे!

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो उसने दो-चार दफे गिराकर देखा, कि कहीं कुछ भूल-चूक जरूर हो रही है! क्योंकि बड़ा पत्थर, छोटा पत्थर साथ कैसे गिरेंगे?

फिर जब जाकर उसने युनिवर्सिटी में अपने प्रोफेसर्स को कहा, कि दोनों पत्थर साथ गिरते हैं तो उन्होंने कहा, तुम पागल हो गए हो! ऐसा कभी हुआ है? हालांकि ऐसा कभी किसी ने देखा नहीं था जरूर। फिर भी उसने कहा कि ऐसा हुआ है, दस बार मैंने गिराकर देख लिया। प्रोफेसर्स बामुश्किल तो देखने गए। क्योंकि पंडितों से ज्यादा जड़ कोई भी नहीं होता। वे जो पकड़े रखते हैं, उसको ऐसी जड़ता से वे पकड़ते हैं कि उसको इंच भर हिलने-डुलने नहीं देना चाहते। गए, बामुश्किल, सख्त, कि ऐसा हो नहीं सकता। जब पत्थर गिरे तो उन्होंने कहा, इसमें जरूर कोई शरारत है। यह···इसमें जरूर कोई ट्रिक और तरकीब की बात है; क्योंकि यह हो कैसे सकता है कि बड़ा पत्थर, छोटा पत्थर साथ-साथ गिर जाए? या तो कोई तरकीब है और या शैतान का इसमें हाथ है। तुम इस झंझट में मत पड़ो। तुम इस झंझट में पड़ो ही मत। इसमें शैतान कुछ पीछे शरारत कर रहा है, भगवान के नियम गड़बड़ कर रहा है।

असल में बड़े और छोटे पत्थर बड़े और छोटे के कारण गिरते ही नहीं, गिरते हैं जमीन की कशिश के कारण, और कशिश दोनों के लिए बराबर है। छत पर से गिर भर जाएं, फिर बड़ा और छोटा पत्थर का मूल्य नहीं है, मूल्य कशिश का है, वह सबके लिए बराबर है।

एक सीमा है मनुष्य की, उस सीमा के बाहर मनुष्य छलांग भर लगा जाए। बस, फिर परमात्मा की कशिश उसे खींचती है, फिर उसे कुछ नहीं करना पड़ता। बस उस सीमा के बाद फिर कोई छोटा-बड़ा नहीं रह जाता, फिर सब पर बराबर कशिश काम करती है।

एक सीमा है भर, उसी सीमा को मैं कहता हूं विचार। जिस दिन आदमी विचार से निर्विचार में कूद जाता है, उसके बाद फिर कोई छोटा नहीं है, कोई बड़ा नहीं है, कोई कमजोर नहीं है, कोई ताकतवर नहीं है; कोई फर्क ही नहीं है। बस, एक बार विचार से कोई कूद जाए निर्विचार में, फिर जो जीवन की, अस्तित्व की परम शक्ति है, वह खींच लेती है—एक-सा।

तो हमारे सब फ़र्क कूदने के पहले के फर्क हैं। जब तक हम नहीं कूदे, तब तक ही हमारे फर्क हैं। जिस दिन हम कूद गए, उस दिन कोई फर्क नहीं है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर ने जो छलांग लगाई है, वही कृष्ण की है, वही क्राइस्ट की है।

जो अनुभव है अहिंसा का, वही अनुभव है, उसमें कोई फर्क नहीं है। इसलिए कोई विकास अहिंसा में कभी नहीं होगा। महावीर ने भी कोई विकास किया, इस भूल में भी नहीं पड़ना चाहिए। महावीर के भी पहले जिन्होंने छलांग लगाई है, वह अनुभव वही है। उस अनुभव की अभिव्यक्तियों में भेद है, लेकिन न तो महावीर···

ऐसा कुछ नहीं है कि महावीर ने पहली दफा अहिंसा को अनुभव कर लिया है। लाखों लोगों ने पहले किया है, लाखों लोग पीछे करेंगे। वह अनुभव किसी की बपौती नहीं है। जैसे हम आंख खोलेंगे तो प्रकाश का अनुभव होगा, यह किसी की बपौती नहीं है। मेरे पहले लाखों, करोड़ों, अरबों लोगों ने आंख खोली है और प्रकाश देखा है और मैं भी आंख खोलूंगा, तो प्रकाश देखूंगा। और मेरी भी कोई इस पर बपौती नहीं है कि मेरे पीछे आने वाले आंख खोलेंगे तो मुझसे कम देखेंगे कि ज्यादा देखेंगे। आंख खुलती है तो प्रकाश दिखता है।

कोई विकास नहीं हुआ है। कोई विकास हो नहीं सकता है। कुछ चीजें हैं, जिनमें विकास होता है। परिवर्तनशील जगत का जो भी है, वह सब विकासमान है। या पतित होता है, या विकसित होता है।

शाश्वत, सनातन, अंतरात्मा के जगत की जो भी व्यवस्था है, वहां कोई विकास नहीं होता। वहां जो जाता है, वह परम, अंतिम, अल्टीमेट में पहुंच जाता है। वहां कोई विकास नहीं, कोई आगे नहीं, कोई पीछे नहीं। वहां सब समान और पूर्ण के निकट होने से, पूर्ण में होने से कोई विकास नहीं। कोई कहे कि परमात्मा में कितना विकास हुआ है! परमात्मा से मतलब समग्र जीवन के अस्तित्व में क्या विकास हुआ है! वहां विकास का अर्थ ही नहीं है।

लेकिन इसे उदाहरण से समझें। एक बैलगाड़ी जा रही है, चाक चल रहे हैं, बैलगाड़ी में बैठा हुआ मालिक भी चल रहा है, बैल भी चल रहे हैं। चाक जोर से घूमते जा रहे हैं, बैलगाड़ी प्रतिपल आगे बढ़ रही है, विकास हो रहा है। बैल भी बढ़ रहे हैं, मालिक भी आगे जा रहा है। लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि बढ़ते हुए चाकों के बीच में एक कील है, जो हिल भी नहीं रही, वह वहीं की वहीं खड़ी है! कील वहीं की वहीं है! चाक उसके ऊपर घूम रहा है, चाक आगे बढ़ता हुआ मालूम पड़ रहा है, गाड़ी आगे जा रही है, बिलकुल जा रही है; बैल

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आगे जा रहे हैं, मालिक आगे जा रहा है; मंजिल करीब आती जा रही है लेकिन कील ? कील ठहरी हुई है ! कील ठहरी है, चाक घूम रहा है। कोई कहे कि चाक ने कितनी यात्रा की ? तो सार्थक है। लेकिन कोई पूछे कि कील ने कितनी यात्रा की, तो क्या कहिएगा ? कहना होगा, कील तो यात्रा एक अर्थ में करती ही नहीं। कील तो वहीं है, वह सिर्फ चाक उसके ऊपर घूमता रहता है; कील स्थिर है। और मजे की बात यह है कि स्थिर जो कील है, उसी पर घूमते हुए चाक का अस्तित्व है। अगर कील भी चल जाए तो चाक गिर जाए। कील नहीं चलती, इसीलिए चाक चल पाता है। कील के न चलने में ही चाक के चलने का प्राण है। कील भी चली कि अभी गाड़ी गई। फिर कोई विकास नहीं होगा। जो विकास हो रहा है, वह किसी एक चीज के केंद्र पर हो रहा है, जिसमें कोई विकास नहीं हो रहा है। पूर्ण के चारों तरफ विकास का चक्र घूम रहा है और पूर्ण अपनी जगह खड़ा हुआ है। हो सकता है आपने कील पर ख्याल ही न किया हो, इसलिए चाक के घूमन को ही देखा हो। लेकिन जिसने कील पर ख्याल कर लिया, उसके लिए चाक का घूमना बेमानी हो जाता है।

कबीर ने एक पंक्ति लिखी है कि चलती हुई चक्की को देखकर कबीर रोने लगा और उसने लौटकर अपने मित्रों को कहा कि बड़ा दुख मुझे हुआ, क्योंकि दो पाटों के बीच में मैंने जितने दाने पड़े देखे, सब चूर हो गए, सब मर गए। और दो पाटों के बीच मे जो पड़ जाता है, वह चूर-चूर हो जाता है।

उसका लड़का कमाल बैठा था, वह हंसने लगा। उसने कहा, ऐसा मत कहो। क्योंकि एक कील भी है दो चाकों के बीच में; जो उसका सहारा पकड़ लेता है, वह कभी चूर होता ही नहीं। कबीर के बेटे ने कहा, ऐसा मत कहो। एक कील भी है दो चाको के बीच में—चक्की जिस कील पर चलती है—जो उस कील का सहारा पकड़ लेता है, वह कभी नष्ट होता ही नहीं !

इस पूरे अस्तित्व के विकास के चक्र के बीच में एक कील भी है। उस कील को कोई परमात्मा कहे, धर्म कहे, आत्मा कहे; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक कील है, जो उसके निकट पहुंच जाता है; उतना ही गतिमान चाकों के बाहर हो जाता है। और इस कील के तल पर कोई गति नहीं है। वह कील निरंतर सतत अगति में ठहरी हुई है, हालांकि सब गति उसी के ऊपर घूम रही है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो इतना अगर ख्याल में आ जाए तो महावीर जैसे व्यक्ति कील के निकट पहुंच जाते हैं, वहां, जहां सब थिर है, जहां कोई लहर भी नहीं उठती, कोई तरंग भी नहीं उठती। वहां जो भी उनका अनुभव है, उसमें कभी विकास नहीं होता। चाहे कोई दूसरा कभी भी वहां पहुंचे, अनुभव वही होगा। कोई तीसरा कभी वहां पहुंचे, अनुभव वही होगा।

कील के पास होने का एक अनुभव है और कील से दूर होने का एक अनुभव है।

कील से दूर होने का जो अनुभव है, वह दो पाटों के बीच का जो अनुभव है, जहां निरंतर गति है।

और कील के पास होने का जो अनुभव है, वह दो पाटों के बाहर हो जाने का अनुभव है, जहां कोई गति नहीं है।

जहां गति नहीं, वहां विकास कैसा? जहां गति नहीं, वहां प्रगति कैसी?

तो महावीर की अहिंसा में कोई प्रगति नहीं होगी, न महावीर ने कोई प्रगति की है। अहिंसा का अनुभव है एक, वह जब भी कोई उतरता है तो वह वही है, वह बिलकुल वही है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर के मौलिक योगदान

प्रवचन : १७, दिनांक : २६ सितंबर १९६९, श्रीनगर

प्रश्न : महावीर के सामने लाखों विरोधी थे, क्या उनके विरोध की चिंता महावीर को नहीं थी ? अहिंसक व्यक्ति के भी विरोधी पैदा होना अहिंसा के विषय में संदेह पैदा करता है।

ऐसी धारणा रही है कि जो अहिंसक है, पूर्ण अहिंसक है, उसका कोई विरोधी पैदा नहीं होना चाहिए। क्योंकि जिसके मन में कोई द्वेष, कोई विरोध, कोई घृणा, कोई हिंसा नहीं है; उसके प्रति किसी की घृणा, हिंसा, और द्वेष क्यों पैदा हो ?

ऊपर से देखे जाने पर यह बात बहुत सीधी और साफ मालूम पड़ती है। लेकिन जीवन ज्यादा जटिल है और जितने सरल सिद्धांत होते हैं, जीवन उतना सरल नहीं है। सच तो यह है कि पूर्ण अहिंसक व्यक्ति के जितने विरोधी पैदा होने की संभावना है, उतने हिंसक के विरोधी पैदा होने की संभावना नहीं है, उसके कारण हैं।

पहला कारण तो यह है कि हम सब हिंसक हैं, तो हिंसक से तो हमारा तालमेल बैठ जाता है। हम सब चूंकि हिंसक हैं, हिंसक व्यक्ति से हमारा तालमेल बैठ जाता है। अहिंसक व्यक्ति हमारे बीच एकदम अजनबी है, इतना ज्यादा अजनबी है कि उसे बरदाश्त करना भी मुश्किल है। बरदाश्त न करने के भी बहुत कारण हैं। पहली बात तो अहिंसक व्यक्ति की मौजूदगी में हम इतने ज्यादा निंदित प्रतीत होने लगते हैं, इतने ज्यादा दीन-हीन, इतने ज्यादा क्षुद्र, निम्न प्रतीत होने लगते हैं कि हम इस निंदित होने का बदला लिए बिना उस व्यक्ति से नहीं रह सकते। हम यह बदला लेंगे ही। तो पूर्ण अहिंसक व्यक्ति हिंसक व्यक्तियों के मनों में अनजाने ही तीव्र बदले कि भावना पैदा कर देता है। यह वह पैदा करता नहीं है, यह हमारी हिंसा के कारण पैदा होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर जैसे व्यक्ति को अनिवार्य है कि लाखों विरोधी मिल जाएं। लेकिन इससे उनकी अहिंसा पर संदेह नहीं होता। इससे उनकी अहिंसा पर संदेह कम होता है, इससे खबर मिलती है कि आदमी इतना अजनबी था, इतना स्ट्रेंजर था, कि हम सब उसे स्वीकार नहीं कर सकते थे। अस्वीकृति पहली बात होने ही वाली थी।

और जब हम उसे स्वीकार भी करेंगे तो हम उसे आदमी न रहने देंगे, हम उसे भगवान बना देंगे, तब स्वीकार करेंगे ! वह भी अस्वीकार की एक तरकीब है। किसी आदमी को भगवान बना देना अस्वीकार करने की सूक्ष्म तरकीब है। फिर हमने भगवान बनाकर यह कह दिया कि हम तो आदमी हैं, हम आदमी जैसे रहेंगे और चलेंगे; वह आदमी भगवान था, इससे हमें कुछ लेना-देना नहीं है ! पूजा कर सकते हैं उसकी, लेकिन चूंकि वह आदमी ही नहीं था, इसलिए आदमियों को अब उससे क्या लेना-देना रह जाता है !

पहले हम अस्वीकार करते हैं, निंदा करते हैं, विरोध करते हैं; फिर जब कोई उपाय नहीं पाते···और उपाय इसलिए नहीं पाते हैं कि अगर अहिंसक व्यक्ति भी हिंसा पर उतर आए तो हमारी उसकी भाषा एक हो जाती है, फिर उपाय मिल जाता है। और अगर वह अपनी अहिंसा पर खड़ा ही रहे और हमारी हिंसा उसमें कोई भी फर्क न कर पाए, तो फिर हमें कोई उपाय नहीं मिलता। हारे, थके, पराजित फिर हम उसे भगवान बना देते हैं ! यह दूसरी तरकीब है, आखिरी, जिससे हम उसे मनुष्य जाति के बाहर निकाल देते हैं। फिर हमें उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं रह जाती है, फिर हम निश्चिंत हो जाते हैं।

दूसरी बात यह भी समझनी जरूरी है कि मैं कितने ही जोर से बोलूं और मेरे बोलने में कितना ही प्रेम हो और मेरे बोलने में कितनी ही बड़ी आवाज और कितनी ही बड़ी ताकत हो; लेकिन जो बहरा है, उस तक मेरी आवाज नहीं पहुंचेगी। यानी जब मैं बोलता हूं तो दो बातें हैं : मेरा बोलना और आपका सुनना। अगर बहरे तक आवाज न पहुंचे तो यह नहीं कहा जा सकता कि मैं गूंगा था। मेरे बोलने पर इसलिए शक नहीं किया जा सकता कि बहरे तक आवाज नहीं पहुंची, इसलिए मैं गूंगा था। मैं बोला ही न होऊंगा, नहीं तो बहरे तक आवाज पहुंचनी चाहिए थी। महावीर के अहिंसक होने में इसलिए शक नहीं हो सकता कि हिंसक चित्तों तक उनकी आवाज नहीं पहुंच पाती। बहरे लोग

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हैं, बहुत-बहुत गहरे में हम बहरे हैं। न हम सुनते हैं, न हम संवेदन करते हैं, न हम देखते हैं।

इस संबंध में एक प्रश्न और किसी ने पूछा है कि महावीर के प्रेम में क्या कुछ कमी थी कि वह गोशालक को समझा न पाए ?

निश्चित ही समझाने में प्रेम काम आता है और पूर्ण प्रेम समझाने की पूरी व्यवस्था करता है। लेकिन इससे ही यह सिद्ध नहीं होता कि पूर्ण प्रेमी समझा ही पाएगा, क्योंकि दूसरी तरफ पूर्ण घृणा भी हो सकती है, जो समझने को राजी ही न हो। दूसरी तरफ पूरा बहरापन हो सकता है, जो सुनने को राजी ही न हो। महावीर के प्रेम या अहिंसा पर इसलिए शक नहीं हो सकता कि वे दूसरे को नहीं समझा पा रहे हैं, या दूसरे को नहीं बदल पा रहे हैं, या दूसरे की हिंसा नहीं मिटा पा रहे हैं। इसके तो हजार कारण हो सकते हैं।

महावीर की अहिंसा की जांच करनी हो तो दूसरे की तरफ से जांच करना गलत है, सीधे महावीर को ही देखना उचित है। सूरज की जांच करनी हो तो किसी अंधे आदमी से माध्यम बनाकर जांच करनी गलत है। हम अंधे आदमी से जाकर पूछें कि सूरज है? और वह कहे नहीं है तो हम कह सकते हैं, ऐसा कैसा सूरज है, जो एक अंधे आदमी को भी दिखाई नहीं पड़ पा रहा है? अगर कोई अंधे से सूरज की जांच करने जाएगा तो सूरज के साथ बहुत अन्याय हो जाएगा। सूरज की जांच करनी हो तो सीधा, कोई मध्यस्थ बीच में लेना खतरनाक है। क्योंकि तब जांच अधूरी हो जाएगी और मध्यस्थ महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। और मध्यस्थ के पास आंखें होंगी तो सूरज हो जाएगा; धीमी, मद्धिम आंखें होंगी तो सूरज का प्रकाश धीमा हो जाएगा; अंधा होगा तो सूरज दिखाई नहीं पड़ेगा! सीधे ही देखना जरूरी है।

महावीर को सीधे देखना जरूरी है तो हम पहचान सकते हैं कि उनकी अहिंसा, उनका प्रेम पूरा है या नहीं। लेकिन कई बार ऐसा होता है कि हमारी खुद की आंखें इतनी कमजोर होती हैं कि सूरज को सीधा देखना मुश्किल हो जाता है, तब हम अक्सर परोक्ष देखते हैं, किसी और से पूछते हैं। खुद की आंख की इतनी ताकत भी नहीं होती कि सूरज के सामने सीधा देख सकें। तो हम दूसरों से खबर जुटाने जाते हैं।

और यही कारण है कि महावीर, कृष्ण या क्राइस्ट जैसे लोगों के संबंध में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हम सीधे देखने से बचते हैं। वहां भी प्रकाश बहुत गरिमा में प्रकट होता है, वहां भी आंखें, साधारण कमजोर आंखें बंद हो जाती है; देख नहीं पातीं। इसलिए हम बीच के गुरुओं को खोजते हैं, आचार्यों को खोजते हैं, टीकाकारों को खोजते हैं, व्याख्याकारों को खोजते हैं, उनके माध्यम से हम देखना चाहते हैं! गीता हम सीधी नहीं देखना चाहते; टीकाकार से देखना चाहेंगे, कमेंटेटर्स से देखना चाहेंगे। ऐसे हम अपनी आंख सीधी उठाने से बचने की कोशिश करते हैं।

लेकिन इस जगत में किसी दूसरे की आंख से कुछ भी नहीं देखा जा सकता है। किसी दूसरे की आंख से देखने की बजाय तो बेहतर है कि देखना ही मत। यही समझना कि हमने देखा नहीं, हम दर्शन से वंचित रह गए हैं। वह भी उचित होगा, सत्य होगा, और शायद वह पीड़ा मन को पकड़ जाए कि हम नहीं देख पाए, तो शायद देखने की खोज भी शुरू हो जाए। लेकिन दूसरे की आंख से देखना ही मत।

लेकिन सदा हमने दूसरे की आंख से देखा है और उससे कठिनाई हो जाती है। महावीर को सीधे देखें तो वे प्रेम के पूरे अवतार हैं। सीधे देखें तो उन जैसा अहिंसक व्यक्ति शायद कभी भी नहीं हुआ है।

प्रश्न : महावीर ने जिन सिद्धान्तों की चर्चा की—जैसे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकांत—उनका प्रयोगात्मक-सा क्या हो सकता है ?

इस संबंध में भी बड़ी भूल हुई है। पहली तो बात यह है : सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अचौर्य—ये सिद्धांत नहीं हैं। और इसलिए इनके सीधे प्रयोग की बात ही गलत है। इनका सीधा प्रयोग हो ही नहीं सकता। जैसे एक आदमी भूसा इकट्ठा करना चाहता हो तो उसे गेहूं बोना पड़ता है खेत में—भूसा नहीं। और अगर वह पागल आदमी भूसा पैदा करने के लिए भूसा ही बो दे, तो जो पास भूसा था, वह भी खेत में सड़ जाएगा, कुछ पैदा नहीं होगा। क्योंकि भूसा है बाइ-प्रॉडक्ट, वह गेहूं के साथ पैदा होता है। गेहूं पैदा होता है तो उसके पीछे वह भी पैदा होता है, गेहूं पैदा न हो तो अकेला भूसा पैदा करने का कोई उपाय ही नहीं है। हां, गेहूं पैदा होता है तो भूसा पैदा होता ही है, इसको अलग से ध्यान देने की भी कोई जरूरत नहीं पड़ती।

अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अस्तेय—ये सब के सब सिद्धान्त नहीं हैं, ये बाइ-प्रॉडक्ट हैं, उपपत्तियां हैं। जहां समाधि पैदा होती है, वहां ये सब भूसे की तरह अपने आप पैदा हो जाते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और जो व्यक्ति इनको सीधा पैदा करने जाएगा, वह भूसे की पैदावार करने में लगा हुआ है ! भूसे से ! जो भूसा हमने खेत में······वह भी सड़ जाएगा। भूसा तो पैदा होने वाला नहीं है, गेहूं भी पैदा होने वाला नहीं है। कई बार ऐसी भूल हो जाती है कि चूंकि गेहूं और भूसा साथ-साथ पैदा होते हैं तो हम सोच सकते हैं कि गेहूं को बोओ तो भूसा हो जाता है, भूसा को बोओ तो गेहूं हो जाएगा। ऐसा नहीं है। साथ-साथ वे जरूर हैं, दिखाई पड़ते हैं, लेकिन भूसा पीछे है, गेहूं आगे है। गेहूं आएगा तो भूसा आएगा, वह उसकी छाया की तरह आता है।

अहिंसा, सत्य —सब छाया की तरह आते हैं समाधि के अनुभव में। समाधि पहले है, ध्यान पहले है। ध्यान आया कि उसके पीछे छाया की तरह ये सब आते हैं। लेकिन हमें ध्यान दिखाई नहीं पड़ता !

गेहूं भी दिखाई नहीं पड़ता, दिखाई तो भूसा ही पड़ता है पहले। अगर खेत में भी गए तो गेहूं छिपा है भूसे में। दिखाई तो पड़ता है भूसा पहले। आता है भूसा पीछे, दिखाई पड़ता है पहले। भूसे को उघाड़ें तो गेहूं दिखाई पड़ेगा। और पहले कभी भूसा आता नहीं, आगमन गेहूं का है। गेहूं से आगमन है गेहूं का, भूसा सिर्फ बीच की प्रॉडक्ट है, वह उसकी चारों तरफ से रक्षा है।

समाधि आती है पहले, लेकिन दिखाई नहीं पड़ती पहले।

महावीर के पास जाएंगे तो दिखाई पड़ेगा सत्य, दिखाई पड़ेगी अहिंसा, दिखाई पड़ेगा अचौर्य; समाधि दिखाई नहीं पड़ेगी !

वह भूसा है, वह चारों······सब आया है। हमको दिखाई पड़ेगा पहले तो हमारे साथ एक मुश्किल हो जाएगी, हमारी पूरी की पूरी गड़बड़ हो जाएगी। हमें अहिंसा पहले दिखाई पड़ेगी तो हम कहेंगे अहिंसा साधो, सत्यं, अस्तेय साधो; चोरी मत करो; ब्रह्मचर्य साधो, काम छोड़ो; हमें यह दिखाई पड़ेगा। और हम इस दौड़ में लग जाएंगे। हम भूसा बोने की दौड़ में लग गए। यह दिखता है, लेकिन जो नहीं दिखता, वह पहले है। वह जोअदृश्य भीतर घटना घटी है, वही पहले है।

महावीर न तो अहिंसा साध रहे हैं, क्योंकि जो अहिंसा साधेगा, वह करेगा क्या ? वह सिर्फ हिंसा को दबाएगा, और क्या कर सकता है ? और दबी हुई हिंसा से कोई अहिंसक नहीं होता। दबी हुई हिंसा से अगर कोई आदमी अहिंसा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भी करेगा तो भी उसकी अहिंसा में हिंसा के परिलक्षण होंगे। हिंसा उसके पीछे खड़ी होगी, उसकी अहिंसा में भी हिंसा का स्वर होगा, दबा होगा।

अगर किसी व्यक्ति ने काम को रोका और ब्रह्मचर्य साधा तो उसके ब्रह्मचर्य के भीतर अब्रह्मचर्य और व्यभिचार बैठा ही रहेगा। ब्रह्मचर्य की खोल ऊपर होगी, भीतर व्यभिचारी खड़ा रहेगा। अब यह बड़ी उल्टी बात है।

महावीर के पीछे है, भीतर है, समाधि और बाहर है ब्रह्मचर्य !

और अगर हमने ब्रह्मचर्य साधा तो ब्रह्मचर्य होगा बाहर, और भीतर होगा सेक्स—समाधि भीतर होगी नहीं। तब हम चूक जाएंगे, बिलकुल ही चूक जाएंगे। वह जो होने वाला था, वह हमें कभी भी नहीं हो पाएगा, बल्कि हम उल्टी स्थिति में पहुंच जाएंगे। इसलिए मेरा जोर इस बात पर है कि महावीर जैसे व्यक्ति को अगर समझना हो, तो बाहर से भीतर की तरफ समझना ही मत, भीतर से बाहर की तरफ समझना, तो ही समझ में आ सकता है, नहीं तो भूल हो जाएगी।

तो इनको मैं सिद्धांत नहीं कहता। इनका दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है, समाधि के मुकाबले। उतना ही मूल्य है, जितना भूसे का होता है। भूसे का भी मूल्य होता है, उतना ही मूल्य है। समाधि के मुकाबले इनका कोई भी मूल्य नहीं है।

महावीर की जो उपलब्धि है, वह है समाधि। उपलब्धि की जो उप-उत्पत्तियां हैं, बाइ-प्रॉडक्ट्स हैं, वे हैं—सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य। ये सिद्धांत नहीं हैं, और न इनको सीधा प्रयोग करने की कोई जरूरत है, न कोई इनका सीधा प्रयोग कभी कर सकता है, न कभी किसी ने किया है। हां, करने की कोशिश की है बहुत लोगों ने और सिर्फ कोशिश में वे असफल हुए हैं, विकृत हुए हैं, परवर्ट हुए हैं और कभी भी सत्य तक नहीं पहुंचे हैं।

इसलिए यह तो पूछें ही मत कि इनका प्रयोगात्मक रूप क्या है ? इनका कोई प्रयोगात्मक रूप नहीं है। प्रयोगात्मक रूप तो ध्यान का है, प्रयोग तो करना है ध्यान का, ये आएंगे छाया की तरह। आप आए हैं, तो मैं आपसे नहीं कहता कि अपनी छाया को भी अपने साथ ले आना। आज आपकी छाया को भी निमंत्रण दिया है, वह भी आए। तो आप कहेंगे, आप कैसी बातें करते हैं ? मैं आऊंगा तो मेरी छाया आ ही जाएगी। उसे अलग से निमंत्रण देने की भी कोई जरूरत

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नहीं है, वह आती ही है आपके आने से। लेकिन इससे उल्टा नहीं हो सकता है कि आपकी छाया को मैं ले आऊं और उसके साथ आप आ जाएं। पहली तो बात आपकी छाया को मैं ला ही नहीं सकता। और कोई धोखा खड़ा कर लूं तो आप उससे नहीं आ जाएंगे।

इसलिए अहिंसा नहीं साधनी है, साधना है ध्यान। अहिंसा फलित होती है, उसका परिणाम है, उसकी परिणिति है सहज। जब ध्यान आता है तो आदमी हिंसक नहीं रह जाता है। इसमें बुनियादी फर्क पड़ रहा है। जब ध्यान आता है तो अहिंसा साधनी नहीं पड़ती है, हिंसा तिरोहित हो जाती है। तो भीतर कुछ बचता नहीं।

यह भी समझ लेने की जरूरत है कि अहिंसा हिंसा का उल्टा नहीं है, अहिंसा हिंसा का अभाव है, एब्सेंस है।

लेकिन हमें उल्टा दिखाई पड़ता है, क्योंकि हमारे भीतर होती है हिंसा, अहिंसा हम साधते हैं, तो वह उल्टी मालूम पड़ती है। जो हिंसक करता है, वह हम न करें? ब्रह्मचर्य साधना है तो जो कामुक करता है, वह हम न करें, बस उससे उल्टा करें! तो हमारे लिए सेक्स से उल्टा होता है ब्रह्मचर्य; अहिंसा हिंसा से उल्टी होती है; अचौर्य चोरी से उल्टा होता है; सत्य असत्य से उल्टा होता है! जबकि ये बातें बिलकुल गलत हैं। ये कोई उल्टे नहीं होते, ये अभाव हैं।

अहिंसा उस दिन आती है, जिस दिन हिंसा होती नहीं। हिंसा के न होने पर जो स्थिति रह जाती है, उसका नाम अहिंसा है। वह विदाई है हिंसा की, उसके पीछे जो बच जाता है। सेक्स जहां विदा हो जाता है, काम जहां विदा हो जाता है; वहां जो शेष रह जाता है, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। इसलिए ब्रह्मचर्य सेक्स का उल्टा नहीं है, उल्टे में तो सेक्स की मौजूदगी रहेगी ही।

यह ध्यान में रहे कि हर उल्टी चीज में अपने से विरोधी की मौजूदगी उपस्थित रहती है, वह कभी मिटती नहीं।

अगर क्षमा क्रोध से उल्टी है तो क्रोध के भीतर क्षमा मौजूद है, क्षमा के भीतर क्रोध मौजूद रहेगा। अगर ब्रह्मचर्य सेक्स से उल्टा है तो ऊपर ब्रह्मचर्य होगा, भीतर सेक्स मौजूद रहेगा। क्योंकि जो उल्टा है, विपरीत है, वह अपने दुश्मन के बिना जी ही नहीं सकता, वह उसके साथ ही जी सकता है, वे अनिवार्य रूप से जुड़े हुए हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए कि जीवन के जो परम सत्य हैं, जो परम अनुभूतियां हैं, वे अभाव की हैं, निगेशन की अनुभूतियां हैं; अपोजीशन की, विरोध की नहीं।

जैसे ही समाधि फलित होती है, वैसे ही कुछ चीजें विदा हो जाती हैं। हिंसा विदा हो जाती है, क्योंकि समाधिस्थ चित्त के साथ हिंसा का कोई संबंध नहीं जुड़ता। तो मेरे देखे ये लक्षण हैं।

अगर एक आदमी हिंसक है तो वह इस बात का लक्षण है कि भीतर ध्यान को उपलब्ध नहीं हुआ। अगर एक आदमी अब्रह्मचारी है तो लक्षण है कि भीतर ध्यान को उपलब्ध नहीं हुआ। इसलिए अब्रह्मचर्य को, काम को, सेक्स को, हिंसा को, चोरी को मैं लक्षण मानता हूं भीतर की स्थिति के।

और जो लक्षण को बदलने में लगेगा, वह वैसा ही पागल है, जैसा किसी को बुखार आ गया, शरीर गरम हुआ और हम उसका शरीर ठंडा करने में लग गए, कि हमने कहा कि बुखार, गर्म है शरीर। गर्म होना सिर्फ लक्षण है। भीतर कहीं कोई बीसारी है, जिस बीमारी में शरीर के तत्व संघर्ष में पड़ गए हैं, संघर्ष के कारण शरीर उत्तप्त हो गया है। भीतर शरीर के एलीमेंट्स लड़ रहे हैं आपस में, इसलिए उत्पात में शरीर गर्म हो गया। शरीर की गर्मी, फीवर जो है, बुखार जो है, ताप जो है, वह सिर्फ सूचक है कि भीतर बीमारी है। और अगर वैद्य इसे ठंडक···इस गर्मी को ही ठंडक देने में लग गया, ठंडे पानी से नहलाने में लग गया तो बीमारी के मिटने की संभावना कम है, बीमार के मिट जाने की संभावना ज्यादा है। तो चिकित्सक गर्मी देखकर सिर्फ पहचानता है कि भीतर बीमारी है। बीमारी को मिटाने लग जाता है, गर्मी विदा हो जाती है। गर्मी सिर्फ सूचक है।

हिंसक चित्तवृत्ति, कामुक चित्तवृत्ति भीतर मूर्च्छा की सूचक है—निद्रा की, अ-ध्यान की, सोए हुए होने की, तंद्रा की, नशे की हालत की। उस नशे की हालत को भीतर तोड़ दें तो बाहर से हिंसा विदा हो जाएगी और अहिंसा फलित होने लगेगी।

इसलिए इन सिद्धांतों के सीधे प्रयोग की बात जरा भी उचित नहीं है। और जिन लोगों ने भी इन सिद्धांतों के सीधे प्रयोग का विचार किया है; वे केवल सप्रेशन, दमन, आत्म-उत्पीड़न और एक तरह की सेल्फ टार्चर, अपने को सताने की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लंबी प्रक्रिया में उतर गए हैं; जिसके परिणाम में कभी भी विमुक्ति तो उपलब्ध नहीं हुई, विक्षिप्तता, पागलपन जरूर उपलब्ध हो सकता है।

प्रश्न : आत्मा-परमात्मा कहीं बाहर नहीं, भटकने से कहीं कुछ मिलता नहीं, न वेश परिवर्तन में कुछ है, तो महावीर क्यों साधु बने और दूसरों को साधु बनने का उपदेश क्यों देते रहे ?

यह बात भी बहुत मजेदार है। अक्सर हमें ऐसा लगता है कि महावीर साधु बने हैं और दूसरों को भी साधु बनने के लिए कहते रहे। यह हमें लगता है, क्योंकि हम असाधु हैं, और अगर हमें साधु होना हो तो साधु बनना पड़ेगा। जबकि सचाई यह है कि साधुता आती है, बनना नहीं पड़ता, और जो बनेगा उसकी साधुता थोथी, झूठी, मिथ्या, आडंबर होगी।

एक युवक एक फकीर के पास गया था और उस फकीर से उसने पूछा कि मैं कैसे साधु, साधुता उपलब्ध करूं, मुझे बताएं। तो उस फकीर ने कहा, दो तरह की साधुताएं हैं : साधु बनना हो तो बहुत सरल है बात, साधु होना हो तो बहुत कठिन है बात।

साधु बनना हो तो एक अभिनय की बात है। तुम जो हो, रहे जाओ। कपड़े बदलो, वेश बदलो, भाषा बदलो, ऊपर से सब बदल डालो, साधु तुम बन जाओगे।

साधु होना हो तो मामला बहुत कठिन है, क्योंकि तब वेश बदलने से, वस्त्र बदलने से, आवरण बदलने से कुछ भी न होगा, तब तो तुम ही बदलोगे तो कुछ हो सकता है।

महावीर साधु बने, यह अत्यंत गलत शब्दों का प्रयोग है। महावीर साधु हुए।

बनना तो हो जाता है चेष्टा से, होना होता है आत्म-परिवर्तन से।

और महावीर ने किसी को कहा कि तुम साधु बनो तो भी बात गलत है। महावीर ने किसी को साधु बनने को नहीं कहा।

महावीर ने कहा कि जागो असाधुता के प्रति और तुम पाओगे कि साधुता आनी शुरू हो गई।

बनने की भाषा, प्रयास की भाषा है। प्रयास करके हम कुछ बन सकते हैं, लेकिन साधु नहीं बन सकते। साधुता तो ट्रांसफार्मेशन है, भीतर से आत्म-परिवर्तन है पूरा का पूरा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो साधुता कोई ऐसी चीज नहीं है कि कल एक आदमी असाधु था और आज साधु हो गया। साधुता कोई ऐसी चीज नहीं है कि कल तक एक आदमी असाधु था, आज दीक्षा ले ली, वस्त्र बदले, मुंह-पट्टी बांधी और साधु हो गया! कल तक असाधु था, आज साधु हो गया! और कल फिर मुंह पट्टी फेंक दे, वस्त्र बदल ले, फिर असाधु हो जाएगा! तो यह मुंह पट्टी और वस्त्र और गेरुए और ये सब का जो बाह्य आडंबर है, अगर यही किसी को साधु बनाता है, तब तो बड़ी आसान बात है। कोई साधु बन सकता है, फिर असाधु बन सकता है। लेकिन कभी सुना है ऐसा कि कोई साधु हो गया हो और फिर असाधु हो जाए? क्योंकि जिसने साधुता का आनंद जाना हो, वह कैसे असाधु होने के दुख में उतर सकता है? जिसने साधुता का आनंद चखा हो, वह फिर असाधु हो सकता है? नहीं, लेकिन साधु वह हुआ ही नहीं था, सिर्फ वस्त्र ही बदले थे, सिर्फ वेश बदला था, सिर्फ ढोंग बदला था, सिर्फ अभिनय बदला था। अभिनय कल फिर बदला जा सकता है। जो हमारे ऊपर की ही बदलाहट है, वह हमारे भीतर की बदलाहट नहीं है।

महावीर साधु नहीं बने। क्योंकि जो साधु बना है, वह कल असाधु बन सकता है। शायद महावीर को पता ही नहीं चला होगा कि वे साधु हो गए हैं। होने की जो प्रक्रिया है, अत्यंत धीमी, शांत और मौन है। बनने की प्रक्रिया अत्यंत घोषणापूर्ण है, बैंड-बाजे के साथ बनना होता है। बनने की जो प्रक्रिया है, भीड़-भाड़ के साथ है; जुलूस, प्रोसेशन के साथ है।

बनने की जो प्रक्रिया है, वह और है; होने की प्रक्रिया और है। जैसे रात कब कली खिल जाती है, फूल बन जाती है, शायद पौधे को भी पता न चलता होगा। कब एक छोटा-सा अंकुर बड़ा पत्ता बन जाता है, शायद पत्ते को भी पता न चलता होगा। आप कब बच्चे थे और कब जवान हो गए, आपको पता चला था? और कब आप जवान थे और कब बूढ़े हो गए, आपको पता चला? कब आप जन्मे, आपको पता चला था? और कब आप चुपचाप मर जाएंगे, पता चलेगा? यह सब चुपचाप, मौन हो रहा है। जीवन बड़े चुपचाप काम कर रहा है।

ठीक ऐसे ही अगर कोई अपनी असाधुता तो समझता चला जाए, समझता चला जाए, समझता चला जाए, तो एक दिन अचानक हैरान होता है कि कब वह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

साधु हो गया ! उसे भी पता नहीं चलता है कि किस क्षण पर यह रूपांतरण हो गया है। वेश वही होता है, वस्त्र वही होते हैं, सब वही होता है; लेकिन यह चुपचाप घटना घट जाती है।

महावीर कभी साधु नहीं बने और न महावीर ने कभी किसी को कहा कि साधु बनो।

हां, महावीर को देखने वाले लोग साधु बने और उन्होंने दूसरों को भी समझाया कि साधु बनो ! बस देखने में भूल हो जाती है। देखने में एकदम भूल हो जाती है। क्योंकि देखने में हमें कभी वह जो भीतरी क्रमिक विकास है, वह दिखाई नहीं पड़ता, सिर्फ बाहर की घटनाएं दिखाई पड़ती हैं। भीतर का क्रमिक विकास दिखाई नहीं पड़ता। बाहर कल एक आदमी ऐसा था, आज ऐसा हो गया, यह हमें दिखाई पड़ रहा है। भीतर का, बीच का सेतु छूट जाता है, वही सेतु मूल्यवान है। कोई आदमी कैसे साधु बनता है ?

कुछ वर्ष हुए, एक मुसलमान एडवोकेट मुझे मिलने आए और उन्होंने मुझे कहा कि मैं कई महीनों से मिलने आना चाहता था, लेकिन नहीं आता था। नहीं आता था इस ख्याल से, चित्त अशांत है मेरा, पूछना चाहता था आपसे कि कैसे शांत हो जाऊं ? लेकिन यह डर लगता था कि आप कहेंगे मांस खाना छोड़ो, चोरी करना छोड़ो, बेईमानी छोड़ो, शराब मत पिओ, जुआ मत खेलो, और ये सब मेरे पीछे लगे हैं। तो जब भी किसी साधु के पास गया, उसने यही कहा कि पहले छोड़ो, तब शांत हो सकते हो। ये मुझसे छूटते नहीं। फिर मैंने साधु के पास जाना ही बंद कर दिया। क्या मतलब ! वही कहेगा कि ये पहले छोड़ो। ये छूटते नहीं, शराब छूटती नहीं, जुआ छूटता नहीं, कुछ छूटता नहीं। तो इसलिए मैं आपके पास नहीं आया।

फिर मैंने कहा, आज आप कैसे आ गए ? उन्होंने कहा, आज किसी मित्र के घर खाना खाने गया था, उन्होंने मुझसे कहा कि आप कहते हैं कि कुछ छोड़ो ही मत। तो मुझे लगा कि इस आदमी के पास जाना चाहिए। आप कुछ भी छोड़ने को नहीं कहते ? शराब पी सकता हूं, जुआ खेल सकता हूं ?

मैंने कहा, मुझे तुम्हारे शराब और जुए से क्या मतलब। यह तुम्हारा काम है, तुम जानो। तो उन्होंने कहा, फिर आपसे मेरा मेल पड़ सकता है। फिर बोलिए मैं क्या करूं ? छोड़ना कुछ भी नहीं, फिर मैं क्या करूं ? अशांत बहुत हूं;

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दुखी बहुत हूं। तो मैंने उन्हें कहा कि आप ध्यान का छोटा-सा प्रयोग शुरू करें, आत्म-स्मरण का प्रयोग शुरू करें, स्वयं को स्मरण करने का प्रयोग शुरू करें, सेल्फ रिमेंबरिंग का थोड़ा प्रयोग शुरू करें। उन्हें मैंने कहा कि आधा घंटे रोज बैठकर बस अकेले स्वयं ही रह जाएं, सब भूल जाएं। उतनी देर मन में जुआ न खेलें, बाहर के जुए से मुझे कोई मतलब नहीं। उतनी देर मन में शराब न पिएं, बाहर की शराब से मुझे कोई मतलब नहीं, उतनी देर मांस न खाएं, बस इतना बहुत है। उतनी देर रिश्वत न लें।

उन्होंने कहा, यह हो सकता है, आधा घंटे बचा सकता हूं। साढ़े तेईस घंटे तो कोई बात ही नहीं है! उससे कोई संबंध ही नहीं है! वह आपका काम है, आप जानें! आधा घंटा मुझे दे दें। उन्होंने मुझे वचन दिया कि आधा घंटा मैं आपको देता हूं। और आपको दे सकता हूं, किसी को मैंने कभी नहीं वायदा किया कुछ। क्योंकि आप आदमी अजीब हैं, आप कहते हैं कि साढ़े तेईस घंटे कुछ भी करो! मैंने कहा, साढ़े तेईस घंटे के संबंध में मुझसे आप दुबारा बात ही मत करना। बस, मेरा आधा घंटा। इसका अभ्यास रखें।

छः महीने तक वह आदमी नहीं आया। और सच में अद्भुत आदमी था, हिम्मतवर आदमी था। मुझे जो वचन दिया था उसने आधा घंटे का, पूरा किया था। छह महीने बाद वह आदमी वापस आया। उसकी चाल बदल गई थी, वह आदमी बदल गया था। उसने मुझे आकर कहा कि आपने मुझे धोखा दिया। मैं क्यों आपको धोखा दूंगा? वह आधा घंटा तो ठीक था, लेकिन मेरे साढ़े तेईस घंटे दिक्कत में पड़ जाते। मेरे साढ़े तेईस घंटे मुश्किल में पड़ गए। कल मैंने शराब पी और वोमिट हो गई मुझे उसी वक्त! क्योंकि मेरा पूरा मन इनकार कर रहा था। वह आधा घंटा वजनी पड़ रहा है। वे साढ़े तेईस घंटे मुश्किल में पड़ गए हैं। रिश्वत लेने में एकदम हाथ खिंच जाते हैं, जैसे कोई जोर से कहता है कि क्या कर रहे हो? क्योंकि उस आधे घंटे में जो शांति और आनंद मुझे मिल रहा है, अब मैं चाहता हूं कि चौबीस घंटे पर फैल जाए। मैंने कहा, वह तुम्हारा काम! साढ़े तेईस घंटे—इससे मेरा कोई संबंध नहीं है। उसकी तुम मुझसे कभी बात ही मत करना। उसकी तुम मुझसे बात ही मत करना।

छह महीने बाद वह आदमी दुबारा आया और उसने कहा कि या तो आपको जो आधा घंटा दिया है, वह मैं वापस ले लूं; लेकिन अब नहीं ले सकता

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वापस भी, क्योंकि जो आनंद मैंने उस आधा घंटे में पाया है, पूरे जीवन में नहीं पाया। और या फिर साढ़े तेईस घंटे भी आपको दे जाता हूं, क्योंकि अब इसका कोई मतलब नहीं रहा। अब मैं मांस खा नहीं सकता। अब मुझे यह खयाल मुश्किल में डाल देता है कि मैं इतने दिनों तक कैसे खाता रहा? अब मुझे जो तकलीफ होती है, वह यह कि मैं इतने दिन, कोई पैंतालीस वर्ष, कितना संवेदन-हीन था कि खाता रहा। आज तो भीतर ले जाना मुश्किल हो गया है। आज मैं सोच भी नहीं पाता कि मैं इतने वर्षों तक शराब कैसे पीता रहा?

मैंने कहा, अब क्या दिक्कत है शराब पीने में? उसने मुझे कहा कि दिक्कत बहुत साफ हो गई है। पहले मैं अशांत था, शराब पीता था, अशांति मिट जाती थी। अब मैं शांत हूं, शराब पीता हूं, शांति मिट जाती है। और शांति मैं मिटाना नहीं चाहता, अशांति मैं मिटाना चाहता था।

फिर मैंने कहा, तुम्हारी मर्जी, अब तुम जो ठीक समझो करना। वह अभी भी मुझे मिलते हैं तो मुझे कहते हैं, आपने मुझे बहुत धोखा दिया। आप मुझे पहले नहीं कहे, नहीं तो मैं आधा घंटा भी शायद आपको न दे सकता। मैंने कहा, मुझे आपके साढ़े तेईस घंटे से कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन कठिनाई क्या होती है, उल्टा सब हो जाता है। उल्टा सब हो जाता है।

महावीर का ध्यान ऐसा है कि जो उस ध्यान से गुजरेगा, वह मांसाहार नहीं कर सकता है।

महावीर कहते नहीं किसी को कि मांसाहार मत करो। वह ध्यान ऐसा है कि उससे गुजरेंगे तो मांसाहार नहीं कर सकते। इतने संवेदनशील हो जाएंगे कि यह बात इतनी मूर्खतापूर्ण मालूम पड़ेगी, जड़तापूर्ण मालूम पड़ेगी कि भोजन के लिए और किसी का प्राण लिया जाए! यह असंभव मालूम पड़ने लगेगा। महावीर के जो ध्यान से गुजरेगा, वह शराब नहीं पी सकता है, क्योंकि वह ध्यान इतने जागरण में ले जाता है, इतने आनंद में, कि शराब पीना मतलब उस सबको नष्ट करना होगा।

लेकिन हमारी हालत उल्टी है। हम पकड़े हुए हैं कि मांस मत खाओ, शराब मत पियो; यह मत करो, वह मत करो; इनको हम जोर से पकड़े हुए हैं! इनको मत करो बस—फिर जो महावीर को है, वह आपको हो जाएगा! कभी नहीं होने वाला। क्योंकि आप गलत ही दिशा से चल पड़े हैं। आप भूसा बो रहे हैं, गेहूं की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आपको पता ही नहीं है।

प्रश्न : इस संबंध में इन्होंने पूछा है कि महावीर समानता के समर्थक थे फिर भी उनके संघ में साध्वी संघ उपेक्षित क्यों रहा ?

यह भी बहुत विचारणीय बात है, बहुत विचारणीय बात है। इसमें दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। महावीर के मन में स्त्री और पुरुष के बीच असमानता का कोई भाव नहीं है। समानता की तो उनकी पकड़ इतनी गहरी है कि मनुष्य में और पशु में भी; मनुष्य में और पौधे में भी वे असमानता का भाव नहीं रखते हैं। लेकिन फिर भी स्त्री और पुरुष के बीच साधु संघ में उन्होंने कुछ भेद किया है, और उसके कुछ कारण हैं। और वे कारण अब तक नहीं समझे जा सके। न समझे जाने का रहस्य खयाल में आपको आ सकता है।

महावीर स्त्री के विरोध में नहीं हैं, स्त्रैणता के विरोध में हैं। और इसको नहीं समझा जा सका। महावीर पुरुष के पक्ष में नहीं हैं; लेकिन पुरुष होने का एक गुण है, उसके पक्ष में हैं। इन दोनों बातों को हम समझेंगे तो खयाल में आ जाएगा। कई पुरुष हैं, जो स्त्रैण हैं और कई स्त्रियां हैं, जो पुरुष हैं।

स्त्रैणता का क्या अर्थ है ?

स्त्रैणता का अर्थ है : पैसिविटी। उसका अर्थ है : निष्क्रियता।

पुरुष का अर्थ है : एक्टिविटी। उसका अर्थ है : सक्रियता।

ऐसे भी स्त्री और पुरुष में आमतौर से स्त्री पैसिव है, पुरुष एक्टिव है। स्त्री सिर्फ प्रतीक्षारत है, पुरुष आक्रामक है। स्त्री अगर प्रेम भी करे तो भी आक्रमण नहीं करती, जाकर किसी को पकड़ नहीं लेती कि मुझे तुमसे प्रेम है। इतना भी नहीं करती। प्रेम भी करे तो चुपचाप बैठकर प्रतीक्षा करती है कि तुम आओ और उससे कहो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। स्त्री आक्रामक नहीं है। स्त्रैण चित्त आक्रामक नहीं है। इससे स्त्री का ही संबंध नहीं है, बहुत पुरुष ऐसे हैं, जो इसी भांति प्रतीक्षा करेंगे।

महावीर का कहना यह है···जैसा मैंने पीछे समझाया कि महावीर की पूरी साधना संकल्प की, श्रम की, श्रमण की साधना है। वे कहते यह हैं कि जिसे सत्य पाना है, उसे यात्रा पर निकलना होगा, उसे जाना पड़ेगा, उसे जूझना पड़ेगा, उसे चुनौती, साहस, संघर्ष में उतरना पड़ेगा। ऐसा बैठकर सत्य नहीं मिल जाएगा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो महावीर कहते हैं कि स्त्री को भी अगर सत्य पाना है तो पुरुष होना पड़ेगा ! इस बात को बहुत गलत समझा गया। और ऐसा समझा गया कि स्त्री योनि से मोक्ष असंभव है। स्त्री को भी एक जन्म लेना पड़ेगा, पुरुष का, फिर पुरुष योनि से मोक्ष हो सकेगा। बात बिलकुल और थी। पुरुष योनि से ही मोक्ष हो सकता है महावीर के मार्ग पर, लेकिन पुरुष योनि का मतलब पुरुष हो जाना नहीं है शरीर से, पुरुष योनि का मतलब ही केवल इतना है, वह पैसिविटी छोड़ देना, निष्क्रियता छोड़ देना।

जैसे एक स्त्री है, उसके मन को सहज यही लगता है कि वह कृष्ण का गीत गाए और कहे कि तुम्हीं ले चलो, जहां ले चलना हो, तुम्हीं हो मार्ग, तुम्हीं हो सहारे। मैं तो कुछ भी नहीं हूं, तुम्ही हो सब, अब जहां मुझे ले जाओ। जितने भक्ति मार्ग हैं, वे सब स्त्रैण चित्त की उत्पत्ति हैं—स्त्री की नहीं; इसको ख्याल में ले लेना, नहीं तो भूल हो जाएगी।

स्त्रैण चित्त की उत्पत्ति हैं—जितने भक्ति मार्ग हैं।

क्योंकि भक्त यह कह रहा है कि मैं क्या कर सकता हूं ? जैसे प्रेयसी अपने प्रेमी के कंधे पर हाथ रख ले, जैसे प्रेयसी अपने प्रेमी के हाथ में हाथ दे दे और अब प्रेमी जहां ले जाए, वह चली जाए। स्त्रैण चित्त यह कह रहा है कि कोई ले जाएगा तो मैं जाऊं। कोई पहुंचाए तो मैं पहुंच जाऊं। मैं समर्पण कर सकता हूं, मैं सब चरणों में रख दूं, लेकिन कोई मुझे ले जाए, मुझसे जाना होने वाला नहीं है।

जैसे एक लता है, वह सीधी खड़ी नहीं हो पाती, कोई वृक्ष का सहारा मिल जाए तो ही खड़ी हो सकती है। लता को वृक्ष का सहारा चाहिए। वह लता होने की उसके बीइंग में, उसके अस्तित्व में छिपी हुई बात है, उसे सहारा चाहिए।

स्त्री सहारा मांगती है।

और महावीर सहारे के एकदम खिलाफ हैं। वे कहते हैं, सहारा मांगा कि तुम परतंत्र हुए। सहारा मांगो ही मत, बिलकुल बेसहारा हो जाओ, टोटल हेल्पलेस। सहारा मांगना ही मत। जिस दिन तुम बिलकुल बेसहारा खड़े हो, तुम्हीं सहारे बन जाओगे। लेकिन तुमने सहारा मांगा कि तुम पंगु हुए, तुम दीन हुए, तुम हीन हुए, तुम किसी के परतंत्र हुए। तो सहारा भगवान का भी मत मांगना ! सवाल ही यह नहीं है कि किसका। सहारा ही मांगना दीन हो जाना है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो महावीर कहते हैं, सहारा मांगना ही मत।

यह अत्यंत पुरुष मार्ग है, यह बहुत पुरुष मार्ग है। इस पुरुष मार्ग पर स्त्री की कोई गति नहीं है—स्त्रैण चित्त की। शरीर से कोई स्त्री हो, गति हो सकती है।

एक तीर्थंकर हैं जैनों की, मल्लीबाई! वह स्त्री है, वह तीर्थंकर हो गई है। और दिगंबरों ने उसे मल्लीनाथ ही कहा, उसको मल्लीबाई भी नहीं कहा!

इसमें भी अर्थ है। इसमें भी सिर्फ इतना अर्थ है कि उसे स्त्री कहना बेमानी है। मल्लीबाई को स्त्री कहना बेमानी है, क्योंकि वह ठीक पुरुष जैसा बेसहारा खड़े होने की हिम्मत कर सकी। उसने कोई सहारा नहीं मांगा। स्त्री कैसी है? इसलिए मल्लीबाई कहा ही नहीं दिगंबरों ने, उन्होंने कहा, मल्लीनाथ!

और पीछे झगड़ा खड़ा हो गया कि मल्लीबाई स्त्री थी कि पुरुष? दिगंबर कहते हैं पुरुष, श्वेतांबर कहते हैं स्त्री। दोनों ठीक कहते हैं। मल्लीबाई स्त्री थी, लेकिन उसे स्त्री कहना बेमानी है। उसको स्त्री कहने का कोई मतलब ही नहीं है, उसे पुरुष ही कहना चाहिए। वह जो पुरुष कहने का अर्थ है, वह और है। वह यह अर्थ है कि उसके चित्त की पूरी दशा स्त्रैण नहीं है।

यहां काश्मीर में एक स्त्री हुई लल्ला। तो काश्मीर के लोग कहते हैं कि हम दो ही नाम पहचानते हैं: अल्ला और लल्ला। मगर लल्ला को स्त्री कहना मुश्किल है। लल्ला को स्त्री नहीं कहा जा सकता। अकेली स्त्री है जो नग्न रही। महावीर नग्न रहे सो ठीक है; पुरुष नग्न रह सकता है। पुरुष चित्त की वह व्यवस्था है।

पुरुष क्यों नग्न रह सकता है?

क्योंकि पुरुष चित्त का एक अनिवार्य लक्षण यह है कि वह इसकी फिक्र नहीं करता कि दूसरा उसके संबंध में क्या सोच रहा है। वह दूसरे की फिक्र ही नहीं करता। स्त्री चौबीस घंटे दूसरे की फिक्र में है। वह जो कपड़े पहन रही है इसलिए कि दूसरे को कैसा लगता है। वह सज-संवर कर जा रही है तो पूरे वक्त इसलिए कि दूसरे को कैसा लगता है। दूसरा एकदम महत्त्वपूर्ण है। चाहे वह पति हो, चाहे प्रेमी हो, चाहे समाज हो। स्त्री स्वयं में कभी खड़ी नहीं है, हमेशा दूसरे की नजर देख रही है: दूसरे को कैसा लगता है।

महावीर नग्न खड़े हो गए, यह कोई बड़ी बात न थी। लेकिन लल्ला नग्न खड़ी हो गई, यह बड़ी भारी बात है। कोई भी पुरुष नग्न खड़ा हो सकता है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसमें बड़ी घटना नहीं है। लेकिन पूरी पृथ्वी पर एक ही औरत नग्न रही—लल्ला! पूरे जीवन नग्न रही!

इसके पास एक पुरुष चित्त है। वह जो स्त्रैण भाव है—कि दूसरा क्या कहता है, वह इतना महत्त्वपूर्ण है स्त्री के लिए···! कि दूसरा क्या कहता है! दूसरे को मैं कैसी लगती हूं, यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। मैं कैसी हूं, यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है—दूसरे को कैसी लगती हूं।

एक···गांधी जी ठहरे हुए थे रवींद्रनाथ के पास शांति-निकेतन में। सांझ दोनों घूमने निकलने को हैं, तो रवींद्रनाथ ने गांधी जी को कहा कि रुकें दो मिनट, मैं जरा बाल संवार आऊं! वे भीतर गए हैं। एक तो गांधीजी को यह सुनकर ही बहुत बेमानी लगा कि बुढ़ापे में और बाल संवारने की इतनी चिंता! पर रवींद्रनाथ थे, कोई और होता तो शायद गांधी उसको वहीं कुछ कहते भी। एकदम से कुछ कहा भी नहीं जा सका।

रवींद्रनाथ भीतर चले गए हैं। दो मिनट क्या, दस मिनट बीत गए हैं! गांधी खिड़की से झांके हैं, वह आदमकद आईने के सामने खड़े हैं और बाल संवारे चले जा रहे हैं। वह खो ही गए हैं आईने में। पंद्रह मिनट बीत गए हैं, तब बरदाश्त के बाहर हो गया। भीतर गए और कहा कि क्या कर रहे हैं आप? रवींद्रनाथ ने चौंककर देखा। अरे! कहा, मैं भूल गया। चलता हूं।

चलने लगे हैं तो रास्ते में गांधीजी ने उनसे कहा कि मुझे बड़ी हैरानी होती है। इस उम्र में और आप ऐसा बाल संवारते हैं! रवींद्रनाथ ने कहा, जब जवान था, तब बिना संवारे भी चल जाता था। जब से बूढ़ा हो गया हूं, तब से बहुत संवारना पड़ता है। बड़ी चिंता मन में लगती है कि किसी को देखकर कैसा लगूंगा। और मुझे तो ऐसा भी लगता है कि अगर मैं कुरूप हूं तो वह भी हिंसा है, क्योंकि दूसरे की आंख को दुःख होता है। तो मुझे सुंदर होना चाहिए। दूसरे की आंख को दुःख पहुंचाना भी हिंसा ही है। तो उसको थोड़ा-सा सुख मिल जाए मुझे देखकर, तो अहिंसा है। मैं तो जितना बन सके, सुंदर होने की कोशिश करता हूं।

रवींद्रनाथ के पास स्त्रैण चित्त है। पुरुष हैं वे—अगर हिम्मत कोई करे तो जैसा मल्लीबाई को मल्लीनाथ कहा, ऐसा रवींद्रनाथ को रवींद्रबाई कहने में कोई हर्जा नहीं है। वह जो चित्त है न, वह जो चित्त है भीतर गहरे में, वह एकदम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्त्री का है। शायद सभी कवियों के पास वह होता है। असल में शायद काव्य का जन्म ही नहीं हो सकता पुरुष से।

वह जो काव्य का जगत है, वह ही शायद स्त्री के चित्त का जन्म है।

इसलिए दुनिया में जितना विज्ञान बढ़ता जा रहा है, काव्य पीछे हटता जा रहा है। उसका कारण है कि विज्ञान पुरुष चित्त का जन्म है। और पुरुष चित्त जीतता चला जाएगा तो काव्य पीछे हटता जाएगा।

स्त्री का पूरा चित्त काव्य का है—सपने का, कल्पना का। वह पैसिव है, कुछ कर तो नहीं सकती, सिर्फ कल्पना ही कर सकती है। उसके भी कारण हैं। असल में कवि का मतलब है, पैसिव माइंड। ऐसा बैठकर कल्पना कर सकता है, कर कुछ भी नहीं सकता। महल बहुत बना सकता है, लेकिन कल्पना में! बैठे-बैठे जो बना सकते हैं, वे ही महल बना सकता है। खड़े होकर, मिट्टी तोड़कर और पत्थर जमाकर जो महल बनाने पड़ते हैं, वह उसके बस की बात नहीं है। शब्दों के महल बना सकता है, क्योंकि वह बैठकर ही हो जाता है।

बल्कि और भी मजे की बात है।

विज्ञान में करना पड़ता है आविष्कार, तो वह पुरुष चित्त डिस्कवर करता है, खोलता है; जो ढका है, उसे उघाड़ता है। कवि डिस्कवर नहीं करता, वह तो ऐसा बैठा रह जाता चुपचाप। बल्कि सच यह है कि जब बड़ी कविता उसमें उतरती है, तब वह बिलकुल पैसिव होता है, बिलकुल वुमेन होता है, स्त्री होता है। उसमें उतरती है कोई चीज।

रवींद्रनाथ कहते हैं, मैंने क्या गाया! जब मैं नहीं था, तब हे परमात्मा! तू मुझसे गाता है। जब मैं नहीं होता हूं, तब तू ही उतर आता है और मुझसे गाता है। अब यह जो माइंड है न, यह बिलकुल पैसिव माइंड है। इसमें कुछ उतरता है, इससे कुछ बहता है। यह प्रतीक्षारत, राह देखता, अवसर खोजता—लेकिन अपनी जगह चुप और मौन। तो सभी कवि चित्त स्त्री चित्त होंगे।

महावीर का यह जो जोर है, इसके पीछे कारण है। यह स्त्री और पुरुष के बीच नीचे-ऊंचे की बात नहीं है। यह स्त्रैण चित्त और पुरुष चित्त क्या कर सकते हैं, इस बात की···इस बात के संबंध में विचार है। इसलिए महावीर कहते हैं स्त्री का मोक्ष नहीं। इसको समझना चाहिए। इसका मतलब है स्त्रैण चित्त को मोक्ष नहीं। स्त्री मोक्ष जा सकती है, लेकिन चित्त पुरुष का होना चाहिए—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर के मार्ग से। अगर मीरा के मार्ग से कोई जाना चाहे तो मीरा कहेगी, पुरुष को कोई मोक्ष नहीं। मीरा के मार्ग से जाना हो तो स्त्री चित्त ही चाहिए। उस मार्ग से पुरुष के लिए कोई···कोई मुक्ति हो नहीं सकती। क्योंकि पुरुष, पुरुष इस तरह की बात ही नहीं सोच सकता, जैसा मीरा सोच सकती है। और अगर कभी पुरुष सोचता है तो फौरन स्त्रैण हो जाता है।

जैसे देखें, अगर कबीर भी, या सूर अगर कृष्ण के प्रेम में पागल हो जाएं तो सोचते क्या हैं? तो फौरन स्त्रैण चित्त की बातें शुरू हो जाती हैं! तो कबीर कहते हैं, मैं राम की दुल्हनिया! मैं तो राम की दुल्हन हूं! वह जो भाव है न, वह फौरन स्त्री का आना शुरू हो जाएगा। तो कहेंगे कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं, सेज पर तुम्हारी, तुम कब आओगे! वह जो भाव है, वह स्त्री का शुरू हो जाएगा। सेज तैयार हो गई है, फूल छिड़क दिए गए हैं, सुगंध फैल गई, धूप जल गई, अभी तक तुम आए नहीं! वह प्रतीक्षा चलनी शुरू हो गई। वह स्त्री चित्त प्रतीक्षा करने लगा।

और जगत में दो ही तरह के चित्त हैं—स्त्री चित्त और पुरुष चित्त। इसलिए बहुत गहरे में मुक्ति के दो ही मार्ग हैं: स्त्री का और पुरुष का। महावीर का मार्ग पुरुष का मार्ग है, इसलिए महावीर के मार्ग पर स्त्री के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

प्रश्न : ज्यादातर लोग तो मिक्सचर होते हैं।

हां, तो इसलिए उनके लिए कोई बीच का मार्ग होता है। इसलिए मार्ग बहुत हैं, लेकिन मौलिक रूप से दो ही मूल मार्ग होंगे। क्योंकि पुरुष और स्त्री—मनुष्य जीवन में दो अति छोर हैं, जहां दो एक्सट्रीम्स पर, दो तरह का अस्तित्व है। अधिक लोग बीच में होते हैं। अधिक लोग बीच में होते हैं, इसलिए अधिक लोग बीच का रास्ता पकड़ते हैं, जिसमें वे ध्यान भी करते हैं और पूजा भी करते हैं। अब यह मजा है कि ध्यान पुरुष मार्ग का हिस्सा है और पूजा स्त्री मार्ग का हिस्सा है। जिसमें वे पूजा और ध्यान का तालमेल कर लेते हैं—और पूजा भी करते रहते हैं और ध्यान भी करते रहते हैं! वह घोलमेल है। और मेरा ख्याल अपना यह है कि घोलमेल से तो मुक्ति बहुत मुश्किल है। क्योंकि वहां कुछ, कभी हम इस रास्ते पर थोड़ा जाते, कभी उस रास्ते पर थोड़ा जाते। इसलिए बहुत ठीक चित्त का विश्लेषण जरूरी है कि किसी व्यक्ति के लिए कौन सा मार्ग?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो महावीर के मार्ग पर स्त्रियां—जैसा प्रश्न में पूछा है—उपेक्षित हैं, ऐसा नहीं, स्त्री चित्त उपेक्षित है। स्त्री चित्त उपेक्षित होगा ही। जैसा कि मीरा के मार्ग पर पुरुष चित्त उपेक्षित होगा।

मीरा गई वृंदावन और एक बड़ा साधु है, पुजारी है, संत है, वह उसके दर्शन के लिए जाकर उसके द्वार पर खड़ी हो गई। उसने खबर भेजी कि मैं तो स्त्रियों को देखता नहीं, तो स्त्रियों से मिलता नहीं हूं! मीरा ने उत्तर भिजवाया कि मैं तो सोचती थी कि एक ही पुरुष है जगत में, दूसरा पुरुष भी है इसका मुझे पता न था! तुम दूसरे पुरुष भी हो? वह भी कृष्ण का भक्त है। तो मीरा ने खबर भिजवाई कि मैं तो सोचती थी कृष्ण—एक ही पुरुष हैं और तुम कृष्ण के भक्त होकर तुम भी एक पुरुष हो! वह पुजारी भागा हुआ आया और उसने कहा कि माफ करना, भूल हो गई। भीतर चलो।

इसमें बड़ा अर्थ है। इसमें बड़ा अर्थ यह है कि एक तो पुजारी गलत बात कह गया। पुजारी को खुद स्त्रैण होना चाहिए, अगर वह कृष्ण का भक्त है तो। क्योंकि कृष्ण के साथ सखियों के सिवाय और किसी का निबाह नहीं। और किसी का कोई मार्ग नहीं वहां। वहां राधा जैसा चित्त ही चाहिए—पूर्ण समर्पित, पूरा सहारा लिए हुए; प्रतीक्षा करता हुआ; दूसरे के हाथ में हाथ डाले हुए—दूसरा ले जाए। वह भी मार्ग है। अगर कोई पूर्णरूप से उस तरफ जाए तो उधर से भी उपलब्धि है।

लेकिन महावीर का वह मार्ग नहीं है। इसलिए महावीर के मार्ग पर स्त्री चित्त उपेक्षित होगा ही, मगर वह स्त्री की उपेक्षा नहीं है। तो भूल हो जाएगी।

एक प्रश्न और उसने—आगे पूछा है—और वे एक साध्वी के ही पूछे हुए प्रश्न हैं—उसने यह पूछा है कि महावीर के मार्ग पर यह बड़ी, बेबूझ बात है कि एक दिन का दीक्षित साधु हो, सत्तर वर्ष की दीक्षित वृद्धा साध्वी हो, तो भी साध्वी को साधु को प्रणाम करना पड़ेगा! एक दिन के दीक्षित साधु को सत्तर वर्ष की वृद्धा साध्वी को—लेकिन प्रणाम साध्वी को ही साधु को करना पड़ेगा! तो उसने पूछा है, पुरुष के लिए इतना सम्मान और स्त्री के लिए इतना अपमान! जबकि महावीर समानता का ख्याल रखते हैं?

एक तो जो मैंने पूरी बात कही, वह ख्याल में रहे : महावीर के मन में स्त्री चित्त के लिए कोई जगह नहीं है, स्त्रैणता के लिए कोई जगह नहीं है। एक और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दूसरा भी मनोवैज्ञानिक कारण है, जो ख्याल में रहे। और वह बड़े मजे का है, वह कभी ख्याल में नहीं आ सका।

यह बड़ी अद्भुत बात है कि वृद्धा साध्वी एक दिन के दीक्षित जवान साधु को भी नमस्कार करे! कोई साधु किसी साध्वी को कभी नमस्कार न करे! स्वभावतः लगेगा कि पुरुष को बहुत सम्मान दे दिया गया, स्त्री को बहुत अपमानित कर दिया गया!

बात उल्टी है, लेकिन बड़ी मनोवैज्ञानिक है, इसलिए एकदम से ख्याल में नहीं आती। बात यह है कि स्त्रियों से संयम की संभावना ज्यादा है पुरुषों की बजाय, सदा। पुरुष के असंयमी होने की संभावना बहुत ज्यादा है, स्त्री के संयमी होने की संभावना बहुत ज्यादा है। उसके कारण हैं कि पुरुष आक्रामक है, उसका चित्त आक्रामक है। स्त्री को जब तक कोई असंयम में न ले जाए, वह अपने से जाने वाली नहीं है, यह ध्यान रहे। उसको कोई लीड करे—चाहे मोक्ष की तरफ और चाहे नरक की तरफ, कोई उसका हाथ पकड़े और ले जाए तो ही वह जाती है; अपनी तरफ से वह कहीं जाती नहीं।

पुरुष इनीसिएटिव लेता है हर चीज में—चाहे पाप हो चाहे पुण्य, चाहे मोक्ष हो और चाहे नरक, चाहे अंधकार हो चाहे प्रकाश, पुरुष पहल करने वाला है। अगर पाप में भी कोई ले जाता है तो पुरुष ही स्त्री को ले जाता है। ऐसा बहुत कम मौका है कि कभी कोई स्त्री किसी पुरुष को पाप में ले गई हो। कभी ले जाए तो उसका कारण यही होगा, उसके पास पुरुष चित्त है, और कोई कारण नहीं। लेकिन यह बहुत, बहुत मुश्किल घटना है कि स्त्री किसी को पाप में ले जाती हो, या पुण्य में या धर्म में, यह सवाल ही नहीं है। इसलिए स्त्री नेता मुश्किल से हो पाती है। नेतृत्व, पहल करने की उसमें संभावना कम होती है। या तो उसमें पुरुष चित्त की कोई न कोई बुनियादी आधारशिला होती है।

महावीर यहां बहुत अद्भुत मनोवैज्ञानिक सूझ का परिचय दे रहे हैं, जो कि फ्रायड के पहले किसी आदमी ने कभी दिया ही नहीं था। लेकिन सूझ इतनी गहरी है, एकदम से दिखाई नहीं पड़ती। चूंकि पुरुष ही पाप में ले जा सकता है, स्त्री कभी नहीं—और एक बात ध्यान रखें, इसके लिए महावीर ने बड़ा सुगम उपाय किया: स्त्री पुरुष को आदर दे। जब स्त्री जिस पुरुष को आदर देती है, उसके अहंकार को कठिनाई हो जाती है, उस स्त्री को पाप में ले जाने की। एक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्त्री अगर आप को आदर दे, पूज्य माने, सिर रख दे पैरों में, तो आप के अहंकार को कठिनाई हो जाती है, अब इसको नीचे···क्योंकि इतना जिसने आदर दिया है, इस आदर को आप अपनी तरफ से उतारकर खंडित करें और आप इसे पाप की तरफ ले जाएं, यह आपके अहंकार को मुश्किल हो गई। आपका अहंकार अब संभलकर बैठा रहेगा—क्योंकि जिसने इतना आदर दिया है, अब मैं नीचे उतरूं और उसके आदर-भाव को खंडित करूं, यह मुश्किल होगा।

महावीर ने बहुत साइकोलॉजिकल डिवाइस, एक बड़ा मनोवैज्ञानिक उपाय किया। पुरुष ले जा सकता है स्त्री को पाप में और इसलिए स्त्री को कहा कि कितनी ही वृद्धा स्त्री हो, पुरुष को आदर दे, उसका पैर छू ले, सिर लगा दे उसके पैरों में, ताकि उसके अहंकार को कठिनाई हो जाए कि वह किसी स्त्री को पाप में ले जाने की कल्पना भी न कर सके, वह असंभव हो जाए।

यहां अगर ध्यान से देखा जाए तो झुकती तो स्त्री है पुरुष के चरणों में, लेकिन वस्तुतः यहां पुरुष का पूरा अनादर हो गया है इस घटना में और स्त्री का पूरा आदर हो गया है। लेकिन यह देखना जरा मुश्किल मामला है। यहां स्त्री का पूरा सम्मान है इस मामले में। क्योंकि मामला यह है कि स्त्री पाप में किसी को अपनी तरफ से ले जाती ही नहीं।

इसलिए आप ध्यान रखें, महावीर के तेरह हजार साधु थे और चालीस हजार साध्वियां थीं। और यह अनुपात हमेशा ऐसा ही रहा है। और साध्वियां जितनी साध्वियां होती हैं, साधु उतने साधु नहीं होते—पैसिविटी के कारण। यानी वे चूंकि पहल नहीं करतीं किसी भी काम में, इसलिए वे जहां हैं, वहीं रुक जाती हैं।

यह भी बड़े मजे की बात है कि अगर स्त्री को काम-वासना में न ले जाया गया हो और उसे दीक्षित न किया जाए काम-वासना में, तो स्त्री पूरे जीवन ब्रह्मचर्य रह सकती है, उसमें कोई बाधा नहीं है, कठिनाई नहीं है। स्त्री को अगर काम-वासना में दीक्षित न किया जाए तो वह पूरे जीवन ब्रह्मचर्य से रह सकती है। लेकिन पुरुष नहीं रह सकता। पुरुष की बड़ी कठिनाई है।

स्त्री की सारी शरीर की और मन की जो व्यवस्था है, वह बहुत अद्भुत है, वह बहुत और तरह की है। पुरुष के व्यक्तित्व और शरीर की व्यवस्था बहुत और तरह की है। स्त्री को काम-वासना में भी दीक्षित करना पड़ता है, धर्म-साधना

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

में भी दीक्षित करना पड़ता है। वह पहल लेती ही नहीं। पहल उसके व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं है। शुरुआत वह नहीं करती। शुरुआत कोई करता है, वह पीछे चलती है। अगर शुरुआत न की जाए तो पूरे जीवन भी स्त्री बिलकुल निर्दोष रखी जा सकती है। इसलिए निर्दोष लड़कियां तो मिल जाती हैं, निर्दोष लड़के मिलना बहुत मुश्किल है। क्वांरी लड़कियां मिल जाती हैं, क्वांरे लड़के मुश्किल से होते हैं। उसका क्वांरापन तोड़ना पड़ता है। लड़की का क्वारापन तोड़ना पड़ता है, तभी टूटता है। और लड़के का क्वांरापन बहुत बचाना पड़े तो ही बच सकता है। यानी इन दोनों बातों में बुनियादी फर्क है।

और इसलिए लड़कियों पर जो हमें इतने नियंत्रण और बंधन मालूम पड़ते हैं, वे असल में लड़कियों पर नहीं हैं, लेकिन समझ बहुत कम है हमारी। लड़कियों को घर में रोका गया है, लड़कों से नहीं मिलने दिया गया है; नहीं दौड़ने-धूपने दिया गया है, उसका कारण यह नहीं है कि लड़कियों पर अविश्वास है, उसका कारण यह है कि उनको कभी भी इनीशिएट कहीं भी किया जा सकता है। लड़कों पर विश्वास नहीं है। वे जो लड़के बाहर हैं उनपर विश्वास नहीं है, वे विश्वास योग्य नहीं हैं। वे लड़कियों को पहल दे सकते हैं पाप की। और लड़कियां चूंकि कोई पहल दे नहीं सकतीं कभी भी···।

महावीर ने यह जो व्यवस्था की है कि हर स्थिति में साध्वी साधु को आदर दे, इसमें पुरुष के अहंकार की भी बड़ी तृप्ति हुई और साधुओं ने समझा होगा, हमारा बड़ा सम्मान भी हुआ, और आज भी वे यही समझ रहे हैं···!

प्रश्न : नमस्कार करने वाले का अहंकार टूटता है या जिसको नमस्कार किया जाता है, उसका अहंकार टूटता है ?

नहीं, नहीं, अहंकार तोड़ना नहीं है, यहां पुरुष का महावीर अहंकार पूरी तरह सुरक्षित कर रहे हैं। पुरुष का अहंकार ही सुरक्षित कर रहे हैं। साध्वी पुरुष को नमस्कार करे···।

प्रश्न : तो उसका अहंकार टूटता है ?

किसका ? साध्वी का टूटेगा अहंकार, पुरुष का मजबूत होगा। और मजबूत इसलिए कर रहे हैं वह कि पुरुष को अगर एक दफे पता चल जाए कि एक स्त्री ने मुझे आदर दिया, तो वह पुरुष उस स्त्री को पाप में इनिशिएट करने की व्यवस्था नहीं कर पाएगा। तो उसकी जो रुकावट खड़ी करे···मेरी बात आप समझे न?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अगर एक स्त्री आप का पैर छू ले और आप के पैर में सिर रख दे, तो आप इस स्त्री को सेक्स की दिशा में ले जाने में एकदम असमर्थ हो जाएंगे—'आप' असमर्थ हो जाएंगे। इसलिए असमर्थ हो जाएंगे कि आपके अहंकार को अब बड़ी बाधा हो गई। यानी जिसने इतना आदर दिया है, अब उसके सामने मैं इतना ओछा हो जाऊं, यह आपके लिए असंभव हो गया। आप अकड़ कर बैठ जाएंगे। आप अब आदर की रक्षा करेंगे। जो आदर आपको मिला है, उसकी आपको रक्षा करनी पड़ेगी। आप उस रक्षा को नहीं तोड़ सकते।

लेकिन स्त्री के मामले में उल्टी बात है। अगर यह कहा जाए कि स्त्री को पुरुष आदर दे, उसका पैर छुए, तो इसमें भी समझने जैसा मामला है। स्त्री का चाहे तुम पैर छुओ, चाहे कोई शरीर का अंग छुओ, स्त्री का सेक्स उसके पूरे शरीर पर व्याप्त है। पुरुष का सेक्स सिर्फ उसके सेक्स सेंटर के आसपास है, इससे ज्यादा नहीं। उसकी पूरी बॉडी सेक्सलेस है, सिर्फ सेक्स सेंटर को छोड़कर। लेकिन स्त्री का पूरा शरीर सेक्सुअल है। वह पूरे शरीर से कामुक है। इसलिए पुरुष को सिर्फ संभोग से आनंद आ जाता है, स्त्री को सिर्फ संभोग से आनंद कभी नहीं आता, जबतक कि उसके पूरे शरीर के साथ पुरुष न खेले, वह उसके पूरे शरीर को न जगाए, तब तक उसे कभी आनंद नहीं आता। और वह फ्रिजिड ही रह जाती है। वह कभी—जबतक उसका पूरा शरीर न जगाया जाए, उसका रोआं-रोआं न जग जाए, जबतक उसका पूरा शरीर न कंपने लगे और उसका पूरा शरीर ज्वरग्रस्त न हो जाए काम में, तब तक उसे रस नहीं आता। पुरुष को इस सबमें कोई मतलब नहीं, उसके पूरे शरीर का कोई संबंध नहीं है! उसका सेक्स सेंटर रिलीज कर देता है, मामला खत्म हो जाता है। तो अगर पुरुष को स्त्री का पैर भी छुआया जाए तो भी स्त्री में सेक्स की संभावना के जगने की शुरुआत हो सकती है। उसका पूरा शरीर सेक्सुअल है। उसका पूरा शरीर सेक्सुअल है और वह शुरुआत आगे बढ़ सकती है।

और पुरुष अगर पहले ही झुका दिया गया तो अब उसको और झुकने में डर नहीं है, इसका भी ख्याल रख लिया जाए। अगर उसको पहले ही पैर में झुका दिया गया तो अब और नीचे जाने की क्या बात है? पैर में तो वह है ही। यानी अब उसको कोई भय भी नहीं है। अब वह स्त्री को किसी भी पाप के मार्ग में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दीक्षित कर सकता है। इसलिए महावीर की बात तो बहुत अद्‌भुत है, लेकिन समझी—मैं नहीं जानता हूं पच्चीस सौ वर्ष में—कभी भी गई है ! और आम-तौर से समझा यही गया है कि वह स्त्री को अपमानित कर रहे हैं, पुरुष को सम्मानित कर रहे हैं ! मामला बिलकुल ही उल्टा है। पुरुष पूरी तरह अपमानित हुआ है इस घटना में और स्त्री पूरी तरह सम्मानित हुई है।

प्रश्न : इसका इंटरप्रिटेशन और किसी ने दिया है क्या—जैसा आपने…?

नहीं, अब तक तो मुझे ख्याल नहीं है कि किसी ने दिया है। अब तक तो मुझे ख्याल नहीं कि किसी ने दिया है।

प्रश्न : तो अभी तक जिन्होंने दिया इंटरप्रिटेशन—वह यही दिया है !

वह तो यही है, वह तो यही है कि स्त्री जो है, वह नीची योनि है; पुरुष जो है, वह ऊंची योनि है; इसलिए पुरुष योनि को वह नमस्कार करती है। लेकिन मैं उस व्याख्या को बिलकुल ही गलत मानता हूं। उससे कोई संबंध ही नहीं इस बात का।

प्रश्न : महावीर के जमाने में…?

हां, पूछो।

प्रश्न : …बहुत-से साधु और साध्वियां बन गए थे, लेकिन ध्यान में तो पीछे पड़ते होंगे वे, लेकिन पहले घर-बार छोड़कर उनके साथ क्यों हो गए ? आप तो ऐसी सलाह देते नहीं हैं ?

पहली बात तो यह कि महावीर की जो व्यवस्था है—उन्होंने मनुष्य के चार वर्गीकरण किए हैं : श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी। महावीर की जो साधना-पद्धति है, वह श्रावक से शुरू होती है या श्राविका से। एकदम से कोई साधु नहीं हो सकता। एकदम से साधु होने का कोई सवाल ही नहीं उठता। महावीर की साधना का पूरा व्यवस्था क्रम है। पहले उसे श्रावक होना पड़े। और श्रावक की साधना—ध्यान, सामायिक श्रावक की है। जब वह उससे गुजर जाए, जब उसकी उतनी उपलब्धि हो जाए, फिर वह साधु के जीवन में प्रवेश कर सकता है। सीधे महावीर उत्सुक नहीं हैं किसी को भी साधु की दीक्षा में लाने को। यानी जब साधु का जन्म हो जाए भीतर। श्रावक भूमिका है, जहां साधु का जन्म हो जाए, तो फिर वह जा सकता है। और तब भी उनका आग्रह नहीं है कि वह जाए ही, वह श्रावक रहकर भी मोक्ष पा सकता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह बड़े मजे की बात है, सिर्फ महावीर यह कहने की हिम्मत किए हैं कि श्रावक रहते हुए भी सीधा मोक्ष जा सकता है, साधु होना अनिवार्य भी नहीं है बीच में ? यानी श्रावक होते-होते भी वह साधु हो सकता है, इसमें भी कोई बाधा नहीं है। कोई मोक्ष में इससे बाधा नहीं है। लेकिन महावीर कहते यह हैं कि फिर उसको जैसा आनंदपूर्ण मालूम पड़े। अगर मान लीजिए आप ध्यान में गहरे गए और आपको वस्त्र पहने रखना ही ठीक मालूम पड़ता है तो आप जारी रखें। और कहीं आपको ऐसा भीतर लगने लगता है कि छोड़ दें, कोई अर्थ नहीं इनमें, तो इसको भी क्यों रोकें ? तो छोड़ दें। यानी महावीर मानते हैं सहज-भाव को कि अगर एक व्यक्ति को लगता है कि वह शांत हुआ, ध्यानस्थ हुआ, घर में रहकर ही अगर वह चल सकता है तो ठीक है; नहीं चलता, उसे लगता है कि यह व्यर्थ हो गया है, छोड़ देना है, तो महावीर उसको भी नहीं रोकते। वह छोड़ दे, जाए। लेकिन रुकावट नहीं है उनकी कोई।

प्रश्न : और आग्रह भी नहीं है ?

आग्रह भी नहीं है, कोई आग्रह नहीं है।

प्रश्न : श्रावक से पहले साधु बनने को नहीं बोले ?

नहीं, नहीं, वह बन ही नहीं सकता कोई। बनने का उपाय ही नहीं है। बनने का उपाय ही नहीं है। श्रावक की व्यवस्था से उसे गुजरना पड़े। फिर या तो वह श्रावक होने में ही साधु हो जाए और या वह जिसको हम साधु कहते हैं, वैसा हो जाए, इसमें कोई बाधा नहीं है। इसमें कोई बाधा नहीं है।

प्रश्न : परंपरा से प्रमाणित एवं निर्णीत महावीर के जीवन का बौद्धिक एवं तथ्यपूर्ण आपका विश्लेषण क्या समाज को स्वीकृत होगा ?

एक तो, कुछ समाज को स्वीकृत हो ऐसी आवश्यकता भी नहीं है। समाज को स्वीकृत हो इसका ध्यान भी नहीं है। समाज को स्वीकृत होने से ही वह ठीक है, ऐसा कोई कारण भी नहीं है। समाज को जो स्वीकृत है, वह वही है कि जैसा समाज है, उसको वह वैसा ही बनाए रखे। निश्चित ही समाज को जब भी बदलने का ख्याल आता है या सवाल उठता है कि समाज बदले, दृष्टि बदले, विचार बदले तो अस्वीकृति आती है। प्राथमिक रूप से तो जो मैं कह रहा हूं, उसकी अस्वीकृति की ही संभावना है—समाज से, बुद्धिमान से नहीं। लेकिन अगर जो मैं कह रहा हूं, वह बुद्धिमत्तापूर्ण है, वैज्ञानिक है, तथ्यगत है, तात्त्विक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है, तो अस्वीकृति को टूटना पड़ेगा। अस्वीकृति जीत नहीं सकती, उसको हारना पड़ेगा। और अगर वह तथ्यपूर्ण नहीं है, अवैज्ञानिक है: तात्विक नहीं है, तो अस्वीकृति जीत जाएगी और जीतना चाहिए।

तो पहली तो बात यह कि मेरे मन में यह सवाल ही नहीं उठता कि कौन उसे स्वीकार करे, कौन अस्वीकार करे। यह सवाल नहीं है। मुझे जो सत्य मालूम पड़ता है, वह मुझे कह देना है। अगर वह सत्य होगा तो आज नहीं कल स्वीकार करना ही पड़ेगा।

सत्य को अस्वीकार करना असंभव है।

लेकिन सत्य भी प्राथमिक रूप से अस्वीकार किया जाता है। बल्कि सत्य ही किया जाता है, क्योंकि हम जिस असत्य में जीते हैं, वह उससे विपरीत पड़ता है, तो वह अस्वीकृत होता है। सत्य पहले अस्वीकृत होता है। लेकिन अगर वह सत्य है तो टिक जाता है और स्वीकृति पाता है, और अगर असत्य है तो मर जाता है, गिर जाता है।

एक अद्भुत व्यक्ति थे महात्मा भगवानदीन। वे जब किसी सभा में बोलते और लोग ताली बजाते तो बहुत उदास हो जाते। मुझसे वह कहते थे, जब कोई ताली बजाता है तो मुझे शक होता है कि मैंने कोई असत्य तो नहीं बोल दिया? क्योंकि इतनी भीड़ सत्य के लिए ताली बजाएगी एकदम से, इसकी संभावना नहीं है। वे मुझसे कहते कि मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा करता हूं कि जब भीड़ एकदम से पत्थर मारे तो मैं समझूंगा, जरूर कोई सत्य बोला गया है। क्योंकि भीड़ असत्य में जीती है, समाज असत्य में जीता है। और सत्य पर पहले तो पत्थर ही पड़ते हैं। मगर वह सत्य की पहली स्वीकृति है—पत्थर भी। और पत्थर पड़ गया और सत्य अगर सत्य है और बच गया तो अस्वीकृति को आज नहीं कल मर जाना होता है। यह निरंतर की कथा यही है। सदा यही होगा।

अंधकार घना है, अज्ञान गहरा है। ज्ञान की पहली किरण उतरे, प्रकाश उतरे तो पहला तो काम हमारा यह होता है कि हमारी आंखें एकदम बंद हो जाती हैं। क्योंकि अंधेरे में जीने वाला व्यक्ति प्रकाश को देखने की क्षमता भी नहीं जुटा पाता। पहला काम तो आंख बंद हो जाती है। लेकिन आंख कितनी देर बंद रहेगी? आंख तो खोलनी ही पड़ेगी। और अगर प्रकाश सच में प्रकाश था तो पहचाना भी जा सकेगा। कभी हजार वर्ष भी लगते हैं, कभी दो हजार

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वर्ष भी लगते हैं।

मेरी अपनी समझ यह है कि महावीर या बुद्ध को या क्राइस्ट को, कृष्ण को जो दिखाई पड़ा, वह आज भी वहां स्वीकृत हो सका है? अभी भी प्रतीक्षा है। अभी भी वह खड़ा प्रतीक्षा कर रहा है कि वक्त आएगा, वक्त आएगा, वक्त आएगा! सत्य को अनंत प्रतीक्षा करनी पड़ती है, क्योंकि हमारा असत्य बड़ा गहरा है, हमारा अज्ञान बड़ा गहरा है। लेकिन उसकी चिंता सत्य को नहीं होती है। स्वीकृति की चिंता सिर्फ असत्य को होती है, यह ध्यान में रहे। क्योंकि असत्य स्वीकृति पर ही जी सकता है। सत्य तो बिना स्वीकृति के भी जीता है, उसका अपना जीवन है।

एक पुरानी कहानी है कि असत्य के पास अपने कोई पैर नहीं होते हैं। अगर उसे चलना भी हो तो उसे सत्य के पैर ही उधार लेने पड़ते हैं। अपने पैर उसके पास हैं ही नहीं। यानी असत्य अपने पैर खड़ा ही नहीं हो सकता। असत्य खड़ा हो सकता है, आप सब की स्वीकृति मिल जाए, तो वह सत्य जैसा भासने लगता है। असत्य को स्वीकृति मिले तो सत्य जैसा भासने लगता है। और सत्य को अस्वीकृति भी मिल जाए तो भी वह असत्य नहीं हो जाता, असत्य जैसा नहीं भासने लगता है! लेकिन सत्य सत्य है, असत्य असत्य है। और असत्य करोड़ों वर्ष तक चले तो भी असत्य है और सत्य बिलकुल भी न चल पाए तो भी सत्य है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

गैलीलियो जब पहली दफा यह कहा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता है, पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगाती है तो ईसाइयों में भारी क्रोध पैदा हो गया! क्योंकि बाइबिल तो कहती है कि पृथ्वी स्थिर है, सूरज चक्कर लगाता है। तो क्या जीसस को पता नहीं था? क्या हमारे पैगंबरों को पता नहीं था? सत्तर साल के बूढ़े गैलीलियो को हाथ में जंजीरें डालकर पोप की अदालत में लाया गया! उस बूढ़े आदमी से कहा गया कि तुम यह कहो कि तुमने जो कहा है, यह असत्य है, और कहो कि पृथ्वी स्थिर है और सूरज चक्कर लगाता है, पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती सूरज का!

गैलीलियो बढ़िया आदमी था। उसने कहा, जैसी आपकी मर्जी। उसने कागज पर लिख दिया कि आप कहते हैं तो मैं लिख देता हूं कि सूरज ही चक्कर लगाता है पृथ्वी का, पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती। लेकिन मैं कुछ भी लिखूं, इससे फर्क नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पड़ता, चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है। मैं क्या कर सकता हूं? यानी अब ऐसा है—ऐसा! मैं चक्कर लगाना थोड़े ही रोक सकता हूं। मैं इतना ही कह सकता हूं कि भई, मैं कह देता हूं, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है! इससे क्या फर्क पड़ता है? चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है। वह जिस पर उसने दस्तखत किए हैं, उसमें उसने यह लिखा है। गैलीलियो भी इनकार कर दे, उसने लिखा है उसमें, तो भी क्या फर्क पड़ता है? कोई गैलीलियो थोड़े ही चक्कर लगवा रहा है! और ठीक है, आज इनकार हो जाएगा, लेकिन कितने दिन इनकार करोगे? गैलीलियो बड़ा साधारण आदमी है, लेकिन बाइबिल हार गई, गैलीलियो जीत गया। क्योंकि सत्य जीतता है—न बाइबिल जीतती है, न गैलीलियो जीतता है; न क्राइस्ट जीतते, न कृष्ण; न महावीर, न मोहम्मद; जीतता सत्य है, हारता असत्य है। लेकिन वक्त लग सकता है।

असत्य अपने बचाने की सारी कोशिश करता है, अपनी सुरक्षा करता है। और सबसे बड़ी सुरक्षा है स्वीकृति, लोगों में स्वीकृति पैदा कर देना। इसलिए असत्य स्वीकृति पर जीता है। उसके पास और जीने के लिए कुछ भी नहीं है, पैर उसके पास स्वीकृति के हैं। सत्य स्वीकृति की चिंता भी नहीं करता, वह अस्वीकृति में भी जी लेता है। क्योंकि अपने पैर हैं, अपनी श्वास है, अपने प्राण हैं। और वह प्रतीक्षा करता है, अनंत काल तक प्रतीक्षा कर सकता है। कभी तो आंख खुलती है और चीजें दिखाई पड़ती हैं।

मुझे चिंता नहीं है जरा भी। मुझे कभी भी इस बात की चिंता नहीं हुई कि जो मैं कह रहा हूं, उसे कौन मानेगा, कौन नहीं मानेगा, जिस व्यक्ति को यह चिंता होती है, वह सत्य कभी बोल ही नहीं सकता है। क्योंकि तब वह पहले आपकी तरफ देख लेता है कि आप क्या मानोगे, वही बोलना चाहिए। उसको मान्यता ज्यादा मूल्यवान है। और मान्यता जिन लोगों से पानी है, अगर वे सत्य को ही उपलब्ध होते, तो बात करने की कोई जरूरत न थी। अंधेरे में खड़े लोगों से सूरज के लिए मान्यता लेनी है तो वे अंधेरे में खड़े लोग कहते हैं कि सूरज से अंधेरा निकलता है, प्रकाश निकलता ही नहीं है। तो या तो उनकी स्वीकृति लेनी हो तो कहो कि बहुत गहरा अंधेरा सूरज से निकलता है—वे ताली पीट देंगे! या उनसे कहो कि सूरज और अंधेरा—सूरज का अंधेरे से कोई संबंध ही नहीं है! सूरज से अंधेरा कभी निकला ही नहीं। सूरज तो अंधेरे को तोड़ता है। तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वे अंधे लोग कहेंगे, तो इसका मतलब है, तुम अकेले आंख वाले पैदा हुए हो ? हम सब अंधे हैं ?

और यह बात बड़ी अपमानजनक है कि कोई आदमी कहे कि मेरे पास आंख है और सब अंधे हैं, इससे बड़ा दुख होता है। तो फिर सब मिलकर अगर वह आंख वाले की आंख फोड़ने की कोशिश करें, तो उसमें कुछ हर्जा भी नहीं है, वे ठीक ही प्रतिकार ले रहे हैं। उनको चोट पहुंची है। उनके मन को—अपमान हुआ, उनके अहंकार को धक्का पहुंचा। लेकिन सत्य प्रतीक्षा करता है और प्रतीक्षा करने का धैर्य रखता है।

प्रश्न : आप कहते हैं, समाज असत्य पर जीता है, तो क्या असत्य समाज के लिए अनिवार्य है जीने के लिए ?

जैसा समाज है हमारा, उस समाज के जीने के लिए असत्य अनिवार्य है। जैसा समाज है हमारा…

प्रश्न : समाज तो सैकड़ों सालों से, लाखों सालों से चलता आ रहा है !

जैसा है अब तक का, जैसा हमारा समाज है : दुःख से भरा हुआ, पीड़ा से भरा हुआ, शोषण से भरा हुआ, अहंकार से भरा हुआ, ईर्ष्या से भरा हुआ, द्वेष से भरा हुआ। जैसा हमारा यह समाज है, इस समाज को अगर जिलाना हो तो यह असत्य पर ही जी सकता है। अगर इस समाज को बदलना हो और नया समाज बनाना हो—आनंद से, प्रकाश से भरा हुआ, प्रेम से भरा हुआ; ईर्ष्या न हो, महत्वाकांक्षा न हो; घृणा न हो, द्वेष न हो, क्रोध न हो; तो फिर सत्य लाना पड़ेगा।

प्रश्न : यह तो—सबकी इच्छा यही है !

यह सबकी इच्छा है, यह सबकी इच्छा है कि आनंद मिले, लेकिन मैं जैसा हूं, वैसा ही मिल जाए, मैं न बदलूं। सबकी इच्छा है आनंद मिले—लेकिन मुझे न बदलना पड़े, मैं जैसा हूं, वैसी हालत में आनंद मिले ! और आनंद वैसी हालत में नहीं मिलता और मैं अपने को बदलने की तैयारी नहीं दिखलाता ! बदलने की तैयारी दिखलाऊं तो ही आनंद मिल सकता है। यानी मैं यह कहता हूं कि प्रकाश तो मिले, लेकिन मुझे आंख न खोलनी पड़े, तो फिर मुश्किल है।

सबकी इच्छा है कि आनंद मिले, हर आदमी आनंद की ही कोशिश कर रहा है और जो कोशिश कर रहा है, उससे सिर्फ दुःख पा रहा है—यह बड़े मजे की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बात है ! यह ठीक ही आप पूछते हैं। हर आदमी आनंद पाना चाहता है, शांति पाना चाहता है, लेकिन जो कर रहा है शांति पाने के लिए, आनंद पाने के लिए, उस सबसे दुःख पाता है, अशांति पाता है ! लेकिन वह करने को नहीं बदलना चाहता है।

अब जैसे एक आदमी महत्वाकांक्षी है, एंबीशस है, और वह कहता है कि मुझे आनंद चाहिए ! लेकिन महत्वाकांक्षी चित्त कभी भी आनंदित नहीं हो सकता। क्योंकि जो भी मिल जाएगा, उससे वह असंतुष्ट हो जाएगा और जो नहीं मिलेगा, उसके लिए पीड़ित हो जाएगा। यह कितना ही कुछ मिल जाए उसको, हमेशा उसका महत्वाकांक्षी चित्त आगे के लिए पीड़ा से भर जाएगा। अब वह कहता है, मैं आनंदित होना चाहता हूं और वह यह भी कहता है कि मैं महत्वाकांक्षी भी हूं, सिर्फ इसीलिए हूं कि मुझे आनंद चाहिए ! अब महत्वाकांक्षा और आनंद में विरोध है—यह देखने को वह राजी नहीं है !

सिर्फ गैर-महत्वाकांक्षी, नान-एंबिशियस माइंड आनंद को उपलब्ध हो सकता है।

उसका कोई दुनिया में आनंद नहीं छीन सकता। और महत्वाकांक्षी चित्त को कोई आनंद दे नहीं सकता। लेकिन महत्वाकांक्षा चलाए रखना चाहते हैं हम और आनंदित होना चाहते हैं !

अब एक आदमी है और वह कहता है कि मैं प्रेम चाहता हूं—और प्रेम कभी देता नहीं ! वह आप बिलकुल ठीक कहते हैं कि वह प्रेम चाहता है। कहां कहता है कि हम प्रेम नहीं चाहते ? लेकिन प्रेम देता कभी भी नहीं, सिर्फ मांगता है—और सभी प्रेम मांगते हैं !

ऐसी हालत हो गई, जैसे एक गांव में सभी भिखमंगे हों और सभी एक-दूसरे के सामने हाथ जोड़े खड़े हों और सभी एक-दूसरे से भीख मांग रहे हों ! और सभी भिखमंगे हों, और सब मांगना चाहते हों—देना कोई भी न चाहता हो, तो उस गांव की जो हालत हो जाए, वैसी हम सब की हालत हो गई है !

प्रेम देना कोई भी नहीं चाहता, प्रेम मांगना चाहता है !

और यह भी ध्यान रहे, जो आदमी प्रेम देने की कला सीख जाता है, वह कभी मांगता ही नहीं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

क्योंकि वह तो मिलना शुरू हो जाता है, उसके मांगने का सवाल नहीं रह जाता ।

मांगता सिर्फ वही है, जो दे नहीं पाता है ।

तो अब बुनियाद यह है कि हम सब प्रेम चाहते हैं, ठीक है, इसमें कुछ बुरा भी नहीं है ।

लेकिन प्रेम सिर्फ उन्हें ही मिलता है, जो चाहते नहीं और देते हैं—यह सूत्र है पाने का । और यह सूत्र हमारी समझ में नहीं आता, इसलिए भूल हो जाती है, इसलिए भटकन हो जाती है !

हां, क्या कहते हैं, कहिए ?

प्रश्न : उसको अपने आपको बदलना पड़ता है, उस माहौल के हिसाब से, जो वह मांगता है ?

समझा नहीं मैं, क्या कह रहे हैं ?

प्रश्न : मतलब, अगर वह प्यार-मोहब्बत चाहता है, अगर वह सच्चाई चाहता है —उसको अपने आपको बदलना चाहिए माहौल के पहले ?

पहले अपने को ही बदलना पड़ेगा ।

प्रश्न : जब वह बदल जाएगा, फिर उसको मिल जाएगा वह ?

मिल जाएगा, बिलकुल ही मिल जाएगा । वही मैं कह रहा हूं—चाहते हम सब हैं, लेकिन जैसे हम हैं, वैसे ही में चाहते हैं ! यह असंभव है । यह असंभव है। हम सब जाना चाहते हैं—कि पहुंच जाएं आकाश में, लेकिन पृथ्वी से पांव नहीं छोड़ना चाहते ! बड़ी मुश्किल बात है । गड़े रहना चाहते हैं जमीन में, पहुंचना चाहते हैं आकाश में ! और अगर कोई यह कहे कि आकाश में जाना है—तुम आकाश की फिक्र छोड़ो, पहले जमीन छोड़ो ; तुम आकाश में पहुंचना शुरू हो जाओगे । क्योंकि जमीन छोड़ोगे तो जाओगे कहां ? सिवाय आकाश के कहीं नहीं जा सकते । लेकिन वह आदमी कहता है, जमीन हम पीछे छोड़ेंगे, पहले हम आकाश में पहुंचेंगे ! क्योंकि आप हमसे जमीन भी छीन लो और आकाश भी न मिले ! हम मुश्किल में पड़ जाएं । लेकिन बात यह है कि जमीन छोड़ने से आकाश मिल ही जाता है, क्योंकि जाओगे कहां ?

यह जो, हमारी जो कठिनाई है, हमेशा से हम यही चाहते रहे हैं कि आनंद हो, शांति हो, प्रेम हो—लेकिन जो हम करते रहे हैं, वह बिलकुल उलटा है, एकदम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उल्टा है ! उससे न शांति हो सकती है, न प्रेम हो सकता है, न आनंद हो सकता है। और प्रत्येक व्यक्ति के साथ यही कठिनाई है।

और प्रत्येक व्यक्ति द्वेष में जी रहा है, ईर्ष्या में जी रहा है, घनी जैलसि में जी रहा है और चाहता है कि आनंद हो जाए ! अब ईर्ष्यालु चित्त कैसे आनंद पा ले ? ईर्ष्यालु चित्त सदा दुःखी है, सड़क पर बड़ा मकान दिखता है तो दुःखी है, बगिया लगी दिखती है तो दुःखी है, कार दिखती है तो दुःखी है, किसी की स्त्री दिखती है तो दुःखी है, किसी के कपड़े दिखते हैं तो दुःखी है ! अब यह सब दिखेगा, यह जाएगा कहां ? यह चारों तरफ है। हर चीज उसे दुःख दे जाती है; जो भी दिखता है, वही दुःख दे जाता है ! और ऐसा भी नहीं है कि बड़ा ही मकान दुःख देता है। कभी-कभी यह भी दुख देता है कि आदमी झोंपड़े में रह रहा है और खुश है, यह भी दुःख दे देता है ! हद हो गई ! यह झोंपड़े में रह रहा है और खुश है ! कभी एक भिखारी भी आनंदित दिख जाता है, तो वह भी दुःख ही देता है, कि मेरे पास सब है और मैं सुखी नहीं ! और यह भिखारी—और आनंदित है, और सब···सब आनंद ले रहा है !

वह ईर्ष्यालु चित्त दुःख पैदा करने की कीमिया है—केमिस्ट्री है उसके पास।

ईर्ष्यालु चित्त दुःख पैदा करता है और ईष्यालु चित्त चाहता सुख है ! अब बड़ी मुश्किल हो गई। इस कंट्राडिक्शंस को अगर न देखा जाए, तो हम तो फंस गए, हम फिर जी नहीं सकते। चाहते रहेंगे सुख और पैदा करते रहेंगे दुःख ! और जितना दुःख पैदा होगा—उतना ज्यादा सुःख चाहेंगे; और जितना ज्यादा दुःख पैदा होगा, सुख की मांग बढ़ेगी; उतना ही जोर से ईर्ष्यालु होते चले जाएंगे—और दुःख पैदा होता चला जाएगा।

ऐसा एक-एक व्यक्ति इनर-कंट्राडिक्शंस में, भीतर विरोध में फंसा हुआ है। इस विरोध के प्रति सजग हो जाना ही साधना की शुरुआत है। इस विरोध के प्रति कि मैं जो चाह रहा हूं, मैं जो कर रहा हूं—वह वही है ? मैं तो चाह ही रहा हूं कि मकान के ऊपर चढ़ जाऊं और सीढ़ियां नीचे की तरफ उतर रहा हूं—इस कंट्राडिक्शन को देखना जरूरी है कि यह तो मैं उल्टा काम कर रहा हूं।

अगर मुझे सुखी होना है तो ईर्ष्या तो नीचे की तरफ ले जा रही है, ईर्ष्या तो दुःख दे रही है इसी वक्त। अगर मुझे सुखी होना है तो ईर्ष्या से तो मुक्त हो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जाना चाहिए, ताकि दुःख मुझे कोई दे न सके—बड़ा मकान भी न दे सके, आनंदित आदमी भी न दे सके, कार भी न दे सके, स्त्री भी न दे सके, कोई दुःख न दे सके। क्योंकि मेरे पास दुःख की, वह जो तरकीब थी दुःख पैदा करने की, वह विदा हो गई। अब मैं ईर्ष्यालु नहीं हूं। और जब मैं ईर्ष्यालु नहीं हूं तो हर चीज सुख दे सकती है। क्योंकि अब दुःख का कोई कारण ही नहीं रहा, वह केमिस्ट्री ही टूट गई, वह सीक्रेट ही टूट गया; वह व्यवस्था, यंत्र टूट गया, जो दुःख पैदा कर देता था।

जीवन के विरोध के प्रति जाग जाना—कि हम जो चाहते हैं, उससे उल्टा कर रहे हैं, साधना की शुरुआत है।

और जब हमें यह दिखाई पड़ जाए तो उल्टा हम कर न सकेंगे। हम कैसे उल्टा करेंगे ? जैसे उदाहरण के लिए, एक आदमी रात सोना चाहता है, नींद लेना चाहता है, नींद उसे आती नहीं तो वह नींद लाने की तरकीबें करता है। पैर, धोता है, आंख धोता है, पानी पीता है, राम-राम जपता है, माला फेरता है करवट बदलता है, टहलता है, भेड़-बकरियां गिनता है, हजार तरकीबें करता है कि किसी तरह नींद आ जाए। लेकिन उसे पता नहीं कि जितनी तरकीबें वह कर रहा है, वे सब नींद को न आने देंगी। क्योंकि कोई भी प्रयास नींद को तोड़ने वाला है। वह कुछ भी न करे तो शायद नींद आ जाए। उसने कुछ भी किया, फिर नींद नहीं आ सकती। क्योंकि करना नींद के बिलकुल उल्टा है।

नींद आती है न-करने में।

इसलिए एक दफे एक आदमी की नींद गड़बड़ हो गई, फिर एक व्हीशियस चक्कर में पड़ा वह। क्योंकि अब वह नींद लाने के उपाय करेगा ! उपाय नींद को तोड़ेंगे ! जितना नींद टूटेगी, उतने ज्यादा उपाय करेगा ! जितने ज्यादा उपाय करेगा, उतनी ज्यादा नींद टूटेगी ! अब वह एक चक्कर में पड़ गया है, जिसके बाहर खींचना मुश्किल है। उसको यह विरोध दिखाई पड़ जाए किसी दिन कि प्रयास से नींद कैसे आ सकती है ? प्रयत्न से नींद कैसे आ सकती है ? एफर्ट तो उल्टा है नींद के, प्रयास तो उल्टा है।

तो प्रयास न करे, पड़ा रह जाए; कह दे आए तो आए, न आए तो न आए; मैं कुछ नहीं करता। और वह थोड़ी देर में पाए कि नींद आ गई। क्योंकि जब कोई कुछ नहीं करता तो नींद आ ही जाती है, और जब कोई कुछ करता है तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नींद नहीं आती। चाहे वह मंत्र पढ़े, चाहे माला फेरे, चाहे कुछ भी करे—करना मात्र नींद का उलटा है। लेकिन हम पूरी जिंदगी कंट्राडिक्शंस में जीते हैं—पूरी जिंदगी ! और तब मुश्किल होती चली जाती है।

इस बोध को जैसे ही कोई उपलब्ध हो जाता है और अपने भीतर अपने विरोध देखने लगता है, वैसे ही क्रांति शुरू हो जाती है।

क्योंकि विरोध दिख जाएं तो फिर उनमें जीना मुश्किल है, फिर आप जी नहीं सकते। कैसे संभव है यह कि एक आदमी को जाना छत पर है और सीढ़ी से नीचे उतर रहा है—और उसे दिख जाए कि उतर रहा हूं नीचे की तरफ, जाना है ऊपर—तो क्या फिर नीचे उतर सकता है ? बात खतम हो गई। ऊपर जाएगा ही।

और जब विरोध मिटता है तो योग पैदा होता है जीवन में, हारमनी पैदा होती है। हम जो करना चाहते हैं, वही करते हैं; जो होना चाहते हैं, वही होते हैं। तब एक सरलता, सहजता आ जाती है; क्योंकि विरोध गए, चिंता गई। अपने ही भीतर खंड-खंड, उल्टे-उल्टे जा रहे थे, वह विदा हो गया।

हमारी हालत ऐसी है, जैसे किसी ने बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जोत दिए हों, और दोनों तरफ से बैलगाड़ी चलने की कोशिश कर रही है ! अब इसमें सिर्फ अस्थि-पंजर बैलगाड़ी के ढीले हुए चले जा रहे हैं। बैलगाड़ी कहीं जाती नहीं। कभी बैल इस तरफ के मजबूत पड़ जाते हैं तो दस कदम खींच लेते हैं, जब तक वे दस कदम खींचते हैं, तब तक थक जाते हैं; तब तक उल्टे बैल मजबूत हो जाते हैं, वे दस कदम फिर खींच लेते हैं। और यही चल रहा है। एक चौगड्ढे पर बैलगाड़ी, दोनों तरफ बैल जुते, यहीं-वहीं होती रहती है।

करीब-करीब हम उसी जगह मरते हैं, जहां हम पैदा होते हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता ! क्योंकि उन्हें विरोध ही नहीं दिखाई पड़ता कि बैल चार पास में हैं तो एक ही तरफ जोता दो, दो तरफ क्यों जोते हुए हो ? यह विरोध दिख जाए तो, तो एक नया जीवन शुरू होता है जो···जिसे हम पहचानते भी नहीं, जानते भी नहीं। तब आदमी वही करता है—वही, जो करना चाहिए। और वह उसी तरफ जाता है, जहां जाना है। तब स्वभावतः शांति आ जाती है, क्योंकि अशांति का कोई कारण नहीं रह जाता।

प्रश्न : आसक्ति अथवा राग जैसे कर्मबंध का कारण है, वैसे ही द्वेष और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

घृणा भी ? महावीर ने संसार, शरीर, इन सबके प्रति घृणा का भाव पैदा करके संसार-त्याग का उपदेश क्यों दिया ?

जो आप पूछते हैं न, जैसा राग-द्वेष दोनों एक ही तरह उपद्रव के कारण हैं। राग और द्वेष ऐसे ही हैं, जैसे एक आदमी सीधा खड़ा हो और एक आदमी शीर्षासन करता हुआ खड़ा हो; इन दोनों में कोई फर्क नहीं है। एक सिर नीचे करके खड़ा है, एक सिर ऊंचा करके खड़ा है। राग के ही उल्टा जो है, वह द्वेष है। राग शीर्षासन करता हुआ द्वेष है। दोनों फांसते हैं, दोनों बांध लेते हैं। क्योंकि जिससे हम राग करते हैं, उससे भी हम बंध जाते हैं; जिससे हम द्वेष करते हैं, उससे भी हम बंध जाते हैं। मित्र भी बांधता है और शत्रु भी बांध लेता है। शत्रु से भी हम···शत्रु को भी भूल नहीं पाते, मित्र को भी नहीं भूल पाते, वे दोनों हमें बांध लेते हैं !

अगर हमारा एक मित्र मरता है तो भी हममें कमी हो जाती है; ध्यान रहे, हमारा एक शत्रु मरता है तो भी हममें एक कमी हो जाती है ! एक खाली जगह वह भी छोड़ जाता है। शत्रु मर जाता है तो एक खाली जगह छोड़ जाता है भीतर। और कई दफे तो ऐसा हो सकता है कि आपकी सारी जान ही निकल जाए आपके शत्रु के मरने से। आपका बल ही खो जाए, क्योंकि बल ही उससे आता था, उसी के विरोध में बंधकर आता था। दोनों बांधते हैं, दोनों जिंदगी को भरते हैं। और जिसको बंधन से ही उठना हो···और ऐसा भी नहीं है कि शत्रु ही दुख देते हैं, मित्र भी दुख देते हैं और शत्रु भी सुख देते हैं। फर्क थोड़ा-सा पड़ जाता है। फर्क थोड़ा-सा पड़ जाता है। मित्र भी दुख देते हैं, शत्रु भी कभी सुख देते हैं। अलग-अलग ढंग से देते हैं, लेकिन बांधते दोनों हैं।

और जिसे बंधन ही दुख हो गया हो—वह न शत्रु बनाता है, न मित्र बनाता है; वह न राग बांधता है, न द्वेष बांधता है; वह न किसी के पक्ष में होता है, न किसी के विपक्ष में होता है—वह प्रत्येक चीज के प्रति एक साक्षी का भाव ले लेता है, वह एक विटनेस हो जाता है, दूर से खड़े होकर देखने लगता है। अपनी ही जिंदगी को दूर से खड़े होकर देखने लगता है। अपनी ही जिंदगी को भी एक दृश्य बना लेता है, खुद द्रष्टा हो जाता है।

और जैसे ही कोई दृष्टा हो गया—राग-द्वेष के बाहर हो जाता है।

जब तक कोई दृष्टा नहीं है, तब तक राग-द्वेष के बाहर नहीं होता। जो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

करता है, वह कभी राग द्वेष के बाहर नहीं हो सकता। क्योंकि करेगा कुछ; तो मित्र बनेंगे, शत्रु बनेंगे। करेगा कुछ, तो कुछ अपना लगेगा, कुछ पराया लगेगा। करेगा कुछ, तो किसी को बचाना चाहेगा, किसी को मिटाना चाहेगा। कर्ता हमेशा राग-द्वेष से घिर जाएगा। अकर्ता, साक्षी, जो कर नहीं रहा, सिर्फ देख रहा है। देखने की स्थिति में जो खड़ा हो जाता है, वह राग-द्वेष के बाहर हो जाता है।

यह जो प्रश्न पूछा है कि महावीर ऐसे तो कहते हैं कि राग-द्वेष बांध लेते हैं, लेकिन शरीर और संसार के प्रति वे घृणा सिखाते हैं, विराग सिखाते हैं। शरीर, संसार असार है, ऐसा सिखाते हैं। तो फिर यह तो द्वेष शुरू हो गया शरीर संसार के प्रति?

महावीर नहीं सिखाते हैं द्वेष संसार के प्रति या शरीर के प्रति, लेकिन महावीर को जिन्होंने नहीं समझा है, वे जरूर ऐसा ही सिखा रहे हैं। महावीर के शरीर को देखकर कोई कह सकता है कि ऐसा शरीर को प्रेम करने वाला व्यक्ति मुश्किल से पैदा हुआ होगा। महावीर के शरीर को ही देखकर कोई कह सकता है। ऐसा प्रेम करने वाला शरीर को मुश्किल से कभी कोई हुआ होगा। न वे संसार के प्रति द्वेष सिखाते हैं, क्योंकि वे तो कहते ही यह हैं कि द्वेष बांध लेता है, घृणा बांध लेती है—तो वे कैसे सिखा सकते हैं? यह तो दूसरों को दिखाई पड़ता है। और दूसरों को क्यों दिखाई पड़ता है, उसका कारण है।

हम अगर राग से भरे हैं तो हम राग से ऊब जाते हैं। हर चीज उबा देती है। जब राग ऊब जाता है तो घड़ी का पेंडुलम दूसरी तरफ जाना शुरू हो जाता है, वह द्वेष की तरफ चलना शुरू हो जाता है। जिस चीज से हम ऊब जाते हैं, उसको हम द्वेष करने लगते हैं, राग खतम हो जाता है। फिर उससे आप मुक्त होना चाहते हैं। कल तक आप उसको पकड़ना चाहते थे, आज आप हटना चाहते हैं। लेकिन कल तक जब आपने उसको पकड़ा था तो पकड़ने का अभ्यास हो गया, अब ऊब गए पकड़ने से, अब हटना चाहते हैं! अभ्यास बाधा डाल रहा है, पकड़ने की आदत बन गई है। अब भागना चाहते हैं! द्वंद्व खड़ा हो गया।

महावीर द्वेष नहीं सिखाते—न शरीर के प्रति, न संसार के प्रति। क्योंकि महावीर द्वेष सिखा ही नहीं सकते हैं, यह सवाल ही नहीं है कि किसके प्रति। द्वेष द्वेष है, घृणा घणा है—किसके प्रति यह सवाल नहीं है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर तो यह सिखाते हैं कि अपने द्वेष, अपने राग, अपने घृणा, अपने प्रेम, सबके प्रति जाग जाओ, विवेकपूर्ण हो जाओ।

सबको जागकर देख लो कि क्या-क्या है—यह द्वेष है, यह घृणा है, यह राग है, यह विराग है—इस सबको देख लो। और इसको तुम जिस दिन पूरी तरह देख लोगे, उस दिन तुम पाओगे कि राग और विराग एक ही चीज के दो छोर हैं, मित्रता शत्रुता एक ही चीज के दो छोर हैं।

और तब तुम समझ लोगे कि जैसे एक सिक्का किसी के पास हो रुपये का और वह चाहता हो कि एक पहलू बचा ले और दूसरे को फेंक दे, तो वह पागल है। चूंकि वे दोनों पहलू एक ही सिक्के के हैं—या तो दोनों फेंक सकता है या दोनों बच जाएंगे। हां, इतना फर्क हो सकता है कि कौन-सा पहलू आप ऊपर रखें। यह हो सकता है कि सिक्के के सिर वाला पहलू आप ऊपर रखें, तो पीठ वाला नीचे रहेगा; लेकिन मौजूद रहेगा, हाथ में ही रहेगा।

तो जो आदमी प्रेम करता है, उसके ठीक नीचे ही घृणा छिपी बैठी रहती है, मौके की तलाश में रहती है कि कब सिक्का उल्टे। जब इससे ऊब जाते हैं आप, सिक्का पलट लेते हैं, पीछे की तरफ देखने लगते हैं। इसलिए मित्र के शत्रु हो जाने में देर नहीं है। असल तो बात यह है कि मित्र अगर कोई न हो तो उसको शत्रु बनाना ही मुश्किल है। पहले इसका मित्र होना जरूरी है, तभी वह शत्रु बनाया जा सकता है। और शत्रु का मित्र बन जाने में भी कोई कठिनाई नहीं है। ये दोनों बातें घट सकती हैं, क्योंकि एक चीज के दो पहलू हैं।

राग है किसी को, वह विराग बन जाता है, अपने आप बन जाता है, कोई बनाना नहीं पड़ता।

और जिस चीज से विराग है, अगर आप विराग ही करते चले जाएं, आप विराग ही करते चले जाएं, आप थोड़े दिन में पाएंगे कि विराग शिथिल होने लगा, राग पकड़ने लगा।

असल में जैसे घड़ी का पेंडुलम बाईं तरफ गया, तो जब वह बाईं तरफ जा रहा है, तब आपको ख्याल में भी नहीं है कि वह दाईं तरफ जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है। जब वह बाईं तरफ जा रहा है, तब उसी वक्त, उसी जाने में वह दाईं तरफ जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है, यह हमारे ख्याल में नहीं आता। और जितने दूर बाईं तरफ जाएगा, उतनी ही शक्ति अर्जित करके फिर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दाईं तरफ जाएगा। और जब वह दाईं तरफ गया तो आंख देख रही है दाईं तरफ गया; लेकिन जो गहरे में देख रहे हैं, वे कह रहे हैं, वह बाईं तरफ जाने की तैयारी कर रहा है। अब वह फिर बाईं तरफ जाएगा। ऐसे चित्त द्वंद्व के बीच घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमता रहता है।

जिससे हम प्रेम करने जाते हैं, हमें ख्याल नहीं है कि हम उससे घृणा करने की शक्ति अर्जित कर रहे हैं। यह हमारे ख्याल में नहीं आता। इसलिए प्रेमी कितने जल्दी घृणा करने वाले बन जाते हैं, इसका बहुत मुश्किल है। कल तक जो प्रेयसी थी, परसों वही···कल तक हम कहते थे कि वह अगर न मिली तो जीवन व्यर्थ हो जाएगा, मर जाएंगे, आत्महत्या कर लेंगे। कल तक जिसके न मिलने से आत्महत्या कर लेते, हो सकता है कल उसके मिलने से ही आत्महत्या करनी पड़े।

मैंने सुना है, एक पागलखाने में एक मनोवैज्ञानिक देखने गया था। तो वह पागलखाने का जो प्रमुख डॉक्टर है, वह उसे एक कटघरे में एक आदमी को दिखलाता है कि बिलकुल पागल है, बाल नोंच रहा है, सिर फोड़ रहा है, रो रहा है। वह मनोवैज्ञानिक पूछता है, इसको क्या हो गया? तो डॉक्टर अपने रजिस्टर में उसकी हिस्ट्री निकालता है, केस-हिस्ट्री, और उसको कहता है, यह आदमी एक लड़की को प्रेम करता था, वह लड़की इसको नहीं मिल सकी, इसलिए यह पागल हो गया!

आगे बढ़ते हैं, दूसरी कोठरी में दूसरा जवान आदमी बंद है। वह भी सिर के बाल उखाड़ रहा है, सिर तोड़ रहा है। ठीक वैसा ही काम कर रहा है, जैसा पहला कर रहा था! वह मनोवैज्ञानिक पूछता है, इसको क्या हो गया? वह केस-हिस्ट्री उलटकर देखता है, वह कहता है कि इसको वह लड़की मिल गई, जो उसको नहीं मिली थी! और उसके मिलने से इसकी यह हालत हो गई! वह एक न मिलने से पागल हो गए हैं, एक यह मिलने से पागल हो गए हैं।

तो महावीर तो यह सिखा ही नहीं सकते। बाएं जाना वह नहीं सिखा सकते; क्योंकि वे जानते हैं कि जो बाएं जाएगा, उसे दाएं जाना पड़ेगा। वे दाएं जाना नहीं सिखा सकते; क्योंकि वे जानते हैं, जो दांए जाएगा, उसे बाएं जाना पड़ेगा। तो वे तो एक ही बात सिखा सकते हैं कि न तुम बाएं जाओ, न तुम दाएं जाओ, तुम ठहर जाओ, तुम बीच में खड़े हो जाओ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वीतराग का यही अर्थ है : न द्वेष, न घृणा; न राग, न विराग।

विराग भी नहीं। तो महावीर विरागी नहीं हैं। और जो विरागी उनके पीछे पड़े हैं, वह बिलकुल गलती में पड़े हुए हैं। महावीर से कुछ लेना-देना नहीं है उन वैरागियों का। क्योंकि वैरागी हुए कि उन्होंने राग अर्जित करना शुरू कर दिया। विरोध···विरोध नहीं है, इस सत्य का दिखाई पड़ना बाहर ले आता है।

तो महावीर कहते हैं : खड़े हो जाओ, ठहर जाओ; दोनों को देख लो; जाओ कहीं मत; दोनों को पहचान लो; फिर तुम कहीं भी नहीं जाओगे; फिर तुम अपने में आ जाओगे।

तीन दिशाएं हैं, एक ट्राइएंगल है। एक प्रेम की तरफ जाता, एक घृणा की तरफ; एक राग की तरफ, एक वैराग्य की तरफ; सारे द्वंद्व हैं। और जो द्वंद्वों से बच जाता है, वह ट्राइएंगल के, त्रिकोण के तीसरे बिंदु पर आ जाता है, जहां स्वयं का होना है।

वहां जाना नहीं है, आना नहीं है, वहां ठहर जाना है।

वहां प्रज्ञा थिर हो जाती है। वहां ठहरकर हम देख पाते हैं, या जो देखने लगता है, वह ठहर जाता है। क्योंकि देखने के लिए ठहरना अनिवार्य शर्त है। अगर राग और द्वेष को देखना है तो जाओ मत किसी की तरफ, ठहरकर देख लो कि राग क्या, द्वेष क्या, क्षमा क्या, क्रोध क्या !

प्रश्न : वह केवल-ज्ञान की भूमिका है ?

बिलकुल ही। वही केवल-ज्ञान की भूमिका है। जैसे ही कोई स्वयं में खड़ा हो जाता है, वह उस द्वार पर पहुंच जाता है, जहां से ज्ञान की शुरुआत है। लेकिन स्वयं में खड़ा होना पहला बिंदु है, वहीं से यात्रा फिर भीतर की तरफ हो सकती है।

और हम या तो राग में होते हैं या द्वेष में होते हैं—स्वयं के बाहर होते हैं। राग-द्वेष में होने का अर्थ है : स्वयं के बाहर होना, कहीं और होना। मित्र पर हो, चाहे शत्रु पर हो, लेकिन हमारी चेतना, अटेंशन कहीं और होगी—राग में भी, द्वेष में भी।

जो आदमी धन इकट्ठा करने में पागल है, उसका ध्यान धन पर होगा। जो धन त्याग करने में पागल है, उसका ध्यान भी धन पर ही होगा। वे दोनों—धन पर ही दृष्टि-बिंदु होगी उनकी।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और सब द्वंद्वों से जिसकी दृष्टि बिंदु पर लौट आती है, अपने पर खड़ी हो जाती है, चुपचाप देखने लगता है कि यह रहा त्याग, यह रहा भोग; न मैं भोग करता, न मैं त्याग करता; मैं खड़े होकर देखता हूं। ऐसी स्थिति में स्वयं का द्वार खुलता है, जहां से ज्ञान की परम भूमिका में जाया जा सकता है।

एक और ले लें तो पूरी बात हो जाए। हां, निगोद का कुछ था न कोई प्रश्न ?

प्रश्न : निगोद वाला ही ले लें।

क्या, निगोद के लिए ही पूछते थे न ?

प्रश्न : निगोद का मतलब क्या है ?

निगोद की धारणा महावीर की बिलकुल अपनी धारणा है—बड़ी मौलिक, जटिल भी है बहुत। हां, निगोद का अर्थ है…संसार है, मोक्ष है; ये दो शब्द हमारी समझ में है। मोक्ष का मतलब है : वे आत्माएं जो सब बंधनों के पार चली गईं। संसार का अर्थ है : वे आत्माएं जो अभी बंधनों में हैं, पार जा सकती हैं। निगोद का अर्थ है : वे आत्माएं जो बंधन में प्रसुप्त हैं—मोक्ष के उल्टा।

संसार मध्य में है, निगोद प्रथम है, मोक्ष अंतिम है। निगोद से आत्मा उठती है, संसार में आती है; संसार से उठती है, मोक्ष में जाती है।

मोक्ष है मुक्ति, निगोद है पूर्ण अमुक्ति।

जहां सब बिलकुल अंधकार है, जकड़ गहरी है, यानी जहां इसका भी होश नहीं है कि बंधन है, जहां बंधन ही सब कुछ है। बंधन का होश भी स्वतंत्रता की शुरुआत हो गई। इस बात का पता चलना कि हाथ में जंजीरें हैं, संघर्ष शुरू हो गया। अब जंजीरें बर्दाश्त नहीं की जाएंगी, तोड़नी पड़ेंगी। निगोद में इसका भी पता नहीं है।

निगोद का अर्थ है : मूच्छित आत्माओं का लोक।

उसी मूच्छित आत्माओं के लोक से धीरे-धीरे आत्माएं उठतीं और इस मध्य लोक में आतीं; जहां अर्ध मूर्च्छा, अर्ध अमूर्च्छा चलती है; कभी चित्त जागता, कभी सो जाता; कभी हम जगे लगते, कभी सोए; कभी होश आता, कभी बेहोशी; कभी विवेकपूर्ण होते, कभी अविवेकपूर्ण। यहां निद्रा और जागृति के बीच में हम डोलते रहते हैं। जैसे रात निद्रा है और दिन जागरण है, और दोनों के बीच में एक स्वप्न की अवस्था है, जहां न तो हम पूरी तरह सोए होते, न पूरी तरह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जागे होते।

स्वप्न का मतलब है; आधा जागना, आधा सोना।

इतने जागे भी होते कि सुबह याद रह जाता है कि सपना देखा, इतने सोए भी होते कि सपना चलता है और पता नहीं चलता कि सपना चल रहा है, लगता है कि सच चल रहा है—अर्ध-अवस्था।

संसार है स्वप्न, निगोद है निद्रा, मोक्ष है जागृति—ये तीन अवस्थाएं हैं।

जो सवाल उठा, वह इसलिए उठा कि सारी आत्माएं आती कहां से हैं? महावीर यह तो मानते नहीं कि इनका सृजन होता है, सृष्टि होती है। सृष्टि नहीं होती, आत्माएं सदा से हैं। तो आती कहां से? संसार में आत्माएं आती कहां से?

तो महावीर कहते हैं कि अमूर्च्छा का एक लोक है, जहां अमूर्च्छित आत्मा असंख्य, अनंत आत्माएं मौजूद हैं। अनंत—ध्यान में रहे। क्योंकि अगर अनंत न हो तो एक दिन वह चूक जाएगा।

और इस जगत में ऐसा कुछ भी नहीं, जो अनंत न हो। इस जगत में बिना अनंत हुए कोई चीज हो ही नहीं सकती। यह भी समझ लेना जरूरी है। इसमें इनफिनिट होना, अनंत होना अनिवार्य है। कोई भी चीज संख्या में हो ही नहीं सकती। क्योंकि संख्या में अगर चीजें हों तो फिर जगत की सीमा बन जाएगी, फिर जगत असीम नहीं हो सकेगा। और जगत सीमित हो नहीं सकता।

निगोद का अर्थ है: अनंत आत्माएं, जहां प्रसुप्त हैं अनंत काल से, वहां से आत्माएं एक-एक, एक-एक उठती हैं।

उठने वाली आत्माओं की संख्या है, संसार उनसे बनता है। फिर संसार से आत्माएं मुक्त होती चली जाती हैं दूसरे लोक में, जहां वे परम चैतन्य को उपलब्ध हो जाती हैं।

सवाल यह है कि क्या कभी ऐसा होगा कि सब आत्माएं मुक्त हो जाएं? ऐसा कभी नहीं होगा, क्योंकि आत्माएं अनंत हैं।

अब अनंत शब्द हमारे ख्याल में नहीं आता, क्योंकि हमारा मस्तिष्क जो है, वह अनंत को कंसीव नहीं कर पाता। हम बड़ी से बड़ी संख्या सोच सकते हैं, लेकिन अनंत नहीं। क्योंकि अनंत का मतलब है, जहां संख्या होती ही नहीं। हम यह भी सोच सकते हैं, असंख्य, लेकिन असंख्य का मतलब अनंत नहीं होता।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

असंख्य का मतलब होता है जिसकी संख्या गिनी न जा सके। असंख्य का मतलब होता है कि संख्या हम गिनें तो थक जाएं। जैसे कोई आपसे पूछे कि आपकी खोपड़ी के बाल कितने हैं ? तो आप कहें, असंख्य, कोई गिनती नहीं है। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता, बालों की गिनती है। गिनना कठिन हो सकता है थोड़ा-बहुत, लेकिन गिना जा सकता है। इसमें कोई ऐसी अड़चन नहीं है। सब गिना जा सकता है। असंख्य जिसको हम कहते हैं, वह कभी संख्य हो जाएगा।

अनंत का मतलब है कि जहां संख्या अर्थहीन है, जहां हम कितना ही गिनें तो भी गिनने को शेष रह जाएगा। कितना ही गिनें तो भी गिनने को शेष रह जाएगा ! जहां शेष रहना अनिवार्य है, जहां अशेष कभी कोई चीज होती ही नहीं।

तो निगोद है मूर्च्छित आत्माओं का लोक, संसार है अर्ध मूर्च्छित आत्माओं का लोक, मोक्ष है परम अमूर्च्छित, पूर्ण जाग्रत आत्माओं का लोक।

और हमारा मन चूंकि संख्याओं में ही सोचता है, इसलिए सवाल निरंतर उठते हैं कि कितनी अमूर्च्छित आत्माएं हैं ? कितनी का सवाल नहीं है। कितनी आत्माएं मुक्त हो गई हैं, इसका भी कोई सवाल नहीं है। क्योंकि अनंत काल से आत्माएं मुक्त होती हैं, अनंत आत्माएं मुक्त हो गईं।

अनंत के साथ एक मजा है कि उसमें से कितना ही निकालो, पीछे उतना ही शेष रहता है, जितना था। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि वह हमारा जो आम गणित है, वह गणित इस बात को राजी नहीं होता। कहता है इस कमरे में कितने ही लोग हों, अनंत हों समझ लें, लेकिन अगर दो आदमी बाहर निकल गए तो फिर पीछे उतने ही तो नहीं रहे, जितने थे। हमारा गणित कहता है, ऐसा कैसे हो सकता है कि पीछे उतने ही रह जाएं, जितने थे ? क्योंकि दो निकल गए। और अगर हम यह मान लें कि दो के निकलने से पीछे कुछ कम हो गए तो फिर संख्या हो सकती है, फिर कोई सवाल नहीं है। क्योंकि कम होते चले जाएंगे, कम होते चले जाएंगे, कम होते चले जाएंगे; एक वक्त आएगा कि शून्य भी कम हो सकता है। यह गणित की बड़ी पहेलियों में से एक है कि अनंत में से हम कुछ भी निकालें, अनंत ही शेष रहता है, उसमें कुछ फर्क नहीं पड़ता। इसलिए निगोद उतने का उतना ही है, जितना था। और उतना ही रहेगा, जितना था और उतना ही सदा है। उतना ही सदा रहेगा। मुक्त आत्माएं रोज होती

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चली जाएंगी, मोक्ष में कोई भीड़ नहीं बढ़ जाएगी। तो कुछ भीड़ बढ़ने का कोई सवाल नहीं है।

लेकिन हमारा जो गणित है संख्या का, उसे समझना बड़ा मुश्किल होता है। नॉन युक्लिडियन जो ज्यामेट्री है, युक्लिड के विरोध में जो नए तरह की ज्यामेट्री पैदा हुई है और गणित के विरोध में भी जो नए तरह की हायर मैथेमेटिक्स पैदा हो रही है, उसकी समझ में आ सकती है बात, साधारणत: समझ में नहीं आ सकती।

जैसे उदाहरण के लिए, हम एक सीधी रेखा खींचते हैं जमीन पर, युक्लिड कहता है कि दो बिंदुओं के बीच निकटतम जो दूरी है, वह सीधी रेखा बन जाती है। निकटतम दूरी सीधी रेखा बन जाती है। एक सीधी रेखा हम खींच सकते हैं।

लेकिन नॉन युक्लिडियन ज्यामेट्री, नई ज्यामेट्री जो युक्लिड के खिलाफ में विकसित हुई है, वह कहती है सीधी रेखा होती ही नहीं, क्योंकि जमीन गोल है। इसलिए कितनी ही सीधी रेखा खींचो, अगर तुम उसको दोनों तरफ बढ़ाते चले जाओ तो अंत में वह वृत्त बन जाएगी। इसलिए सब सीधी रेखाएं किसी बड़े वृत्त के खंड हैं। और वृत्त के खंड कभी सीधी रेखाएं नहीं हो सकते।

समझे न मेरा मतलब? मैं समझा रहा हूं यह, कि इसका मतलब हुआ कि सीधी रेखा होती ही नहीं। बस इतना ही होता है कि हमारी आंख कम है, इसलिए हमको सीधी लगती है। अगर हम फैलाते चले जाएं तो अंतत: वह एक बड़ा सर्किल बन जाएगी। और जब वह बड़ा सर्किल बन सकती है तो बड़े सर्किल का हिस्सा है। और सर्किल का हिस्सा, वृत्त का हिस्सा सीधा नहीं हो सकता, वह तिरछा है ही।

इसलिए कोई रेखा जगत में सीधी नहीं है। यह हमारे ख्याल में आना मुश्किल हो जाए। कोई भी रेखा जगत में सीधी नहीं? खींची ही नहीं जा सकती, खींचना ही असंभव है। क्योंकि जितना ही तुम खींचते चले जाओगे, अंत में वह मिल ही जाएगी। उसे कहां ले जाओगे? इसलिए कोई सीधी रेखा नहीं, सब वृत्त हैं, सब वृत्त-खंड हैं।

युक्लिड कहता है कि—एक बिंदु की व्याख्या में वह कहता है कि—बिंदु वह है, जिसमें लंबाई-चौड़ाई नहीं है। नॉन-युक्लिडियन ज्यामेट्री कहती है कि लंबाई-चौड़ाई जिसमें न हो, वह तो हो ही नहीं सकता। इसलिए कोई बिंदु नहीं है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सब रेखाओं के खंड हैं, छोटे खंड हैं।

समझ गए न ? रेखा है बड़े वृत्त का खंड और बिंदु है रेखा का खंड। और सब बिंदुओं में लंबाई-चौड़ाई है, क्योंकि बिना लंबाई-चौड़ाई के कोई चीज हो ही नहीं सकती। सबमें लंबाई-चौड़ाई है। लेकिन युक्लिड की बात जब तक मानी जाती रही, तब तक बिलकुल ठीक लगती थी, अब एकदम गड़बड़ हो गई, एकदम मुश्किल में पड़ गई।

गणित की जो व्यवस्थाएं हैं—जैसे कि हमारी संख्या की व्यवस्था है, हम सब मानते हैं कि नौ तक संख्या होती है, एक से नौ तक संख्या होती है। कोई कभी नहीं पूछता कि इससे ज्यादा क्यों नहीं होती ? और कोई कभी नहीं पूछता कि इससे कम में क्यों नहीं चल सकता ? बस एक ट्रेडीशन है। किसी पहले आदमी को फितूर सवार हो गया, उसने नौ का हिसाब बना डाला है, वह चल पड़ा ! और चूंकि गणित एक जगह पैदा हुआ, फिर सारी दुनिया में फैल गया, इसलिए कभी किसी ने नहीं सोचा !

लेकिन पीछे लोग पैदा हुए—जैसे लीबनिस हुआ, लीबनिस ने तीन के अंक से काम चला लिया ! उसने कहा, तीन से ज्यादा की जरूरत नहीं : एक, दो, तीन ! फिर तीन के बाद आता : दस, ग्यारह, बारह, तेरह ! फिर बीस आ जाता है ! बाकी सब विदा कर दिया उसने। उसने सब गणित हल कर लिए उतने ही से !

आइंस्टीन ने कहा, तीन की भी क्या जरूरत ? दो से ही काम चल जाता है : एक, दो; दस, ग्यारह, बारह; बीस, इक्कीस, बाइस- -ऐसा चलता चला जाता है। वह कहता, गिनती ही करनी है न ? तो यह अगर हम पुराना गणित मानते हैं तो एक, दो, तीन, चार. पांच होता है—यह। अगर आइंस्टीन का मान लेते तो एक, दो; दस, ग्यारह, बारह। यह बारह हो गए। ये पांच हैं नहीं, ये पांच सिर्फ हमारा गणित का हिसाब है। गणित का हिसाब बदल लें तो ये सब बदल जाएंगे।

तो हमारा संख्या का हिसाब है इस जगत में और हम सब चीजों को संख्या से तौलते हैं ! जबकि सचाई यह है कि संख्या बिलकुल ही झूठी बात है, आदमी की ईजाद है, काम-चलाऊ है। क्योंकि यहां कोई भी चीज ऐसी नहीं, जिसकी संख्या हो, प्रत्येक चीज असंख्य है। और अगर असंख्य का हम ख्याल करें तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मैथेमेटिक्स बेकार हो जाता है। क्योंकि गणित का कोई मतलब ही नहीं रहता। जब असंख्य है, गिना ही नहीं जा सकता, गिनने योग्य ही नहीं है, और कितना ही निकाल लो बाहर, उतना ही फिर भी पीछे रह जाता है तो जोड़-घटाने का क्या मतलब? भाग का क्या मतलब है? गुणा का क्या मतलब है? कोई मतलब नहीं है।

तो अगर हम जगत की पूरी असंख्य व्यवस्था, अनंत व्यवस्था को खयाल में लाएं तो सब गणित एकदम गिर जाता है, क्योंकि गणित बना है काम-चलाऊ हिसाब से, कि हम उसमें गिनती करके काम चला लें। और उसी काम-चलाऊ गणित से अगर हम जगत के सत्य को जानने जाएं तो हम मुश्किल में पड़ जाते हैं। तो महावीर की बात एकदम···इसलिए सब गणित गड़बड़ हो जाता है।

इसलिए उपनिषद भी कहते हैं कि वह पूर्ण ऐसा है कि उससे अगर तुम पूर्ण को भी बाहर निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है, उसमें जरा भी कमी नहीं पड़ती। मगर हमारे दिमाग में मुश्किल हो जाती है कि जब भी हम कुछ निकालते हैं तो पीछे तो कमी पड़ जाती है। क्योंकि हमने सीमित से ही कुछ निकाला है सदा, अगर हमने असीमित से कुछ निकाला होता तो हमको पता चलता। असीमित का हमें कोई अनुभव नहीं है।

इसलिए निगोद अनंत है, उसमें कभी कमी नहीं पड़ती। मोक्ष अनंत है, वहां कभी भीड़ नहीं होती। दोनों के बीच का संसार भी एक अर्थ में अनंत है, क्योंकि दो अनंतों को जोड़ने वाली चीज अनंत ही हो सकती है। वह भी, वह भी संख्या में नहीं हो सकती। क्योंकि दो अनंतों का जो सेतु बनता है, ब्रिज है, वह कैसे सांत हो सकता है? अनंतों को सांत जोड़ ही नहीं सकता। अनंतों को सिर्फ अनंत ही जोड़ सकता है। और तब सिर चकराने वाली सारी बात हो जाती है। उस तल पर जाकर गिनती का कोई मतलब नहीं है।

मोक्ष की धारणा तो बहुत लोगों को है खयाल में, निगोद की धारणा महावीर की अपनी है। और मैं मानता हूं, बिना निगोद की धारणा के मोक्ष की धारणा बेमानी है, हो नहीं सकती। क्योंकि वहां आत्माएं चलती चली जाएंगी। आएंगी कहां से?

प्रश्न : निगोद से आत्मा सीधे मोक्ष में नहीं पहुंच सकती?

नहीं, क्योंकि मूर्च्छित आत्मा कैसे पहुंच सकती है? उसे अमूर्च्छा के रास्तों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

से गुजरना पड़ेगा। आप जब सोने से जगते हैं तो एकदम नहीं जग जाते, बीच में तंद्रा का एक काल है, जिससे आप गुजरते हैं। जैसे सुबह आप उठ गए हैं, आपको लगता है उठ गए हैं, लेकिन फिर करवट बदलकर आंख बंद कर लिए हैं। फिर घड़ी की आवाज सुनाई पड़ी, फिर उसने कहा कि उठिए, किसी ने कहा है, तो आप फिर उठे हैं, फिर आंख खोली, फिर करवट बदलकर सो गए हैं। सोने और जागने के बीच में, चाहे कितना ही छोटा हो, तंद्रा का एक काल है। निद्रा और जागरण के बीच में—जब न तो आप ठीक जाग गए होते हैं, न ठीक सोए होते हैं; सोने की तरफ भी झुकाव होता है, जागने की तरफ भी मन होता है; इन दोनों के बीच तनाव होता है, एक टेंशन होता है।

निगोद से सीधा कोई मोक्ष नहीं जा सकता। संसार से गुजरना ही पड़ेगा। कितनी देर गुजरता, यह दूसरी बात है। कोई पंद्रह-बीस मिनट बिस्तर पर करवट बदलकर उठता है, कोई पांच मिनट, कोई एक मिनट, कोई एक सेकेंड। और जो बिलकुल छलांग लगाकर उठ जाता है, वह भी हमको सिर्फ दिखाई पड़ता है, बिलकुल काल का कोई सूक्ष्म अंश उसको भी बिस्तर पर गुजारना पड़ता है जागने के बाद। तो संसार छोटा-बड़ा हो सकता है, कम-ज्यादा। जीवन में कोई मुक्त हो सकता है, लेकिन संसार से गुजरना ही पड़े, वह अनिवार्य मार्ग है, जहां से मोक्ष का द्वार है।

प्रश्न : जैसे समुद्र है, समुद्र से बादल उठते हैं, उसका पानी बरसता है, बरफ बनती है, लेकिन फिर वह समुद्र में चली जाती है—तो एक चक्र है। इस तरह मुक्त आत्माएं फिर निगोद में भी किसी तरीके से आती रहती होंगी?

नहीं, नहीं। ऐसा चक्र नहीं है, ऐसा चक्र नहीं है। क्योंकि पानी, भाप, समुद्र, तीन चीजें नहीं हैं। तीन चीजें नहीं हैं, एक ही चीज का यांत्रिक चक्र है। यांत्रिक चक्र है। पानी के बीच से कोई बूंद मुक्त होकर पानी के बाहर नहीं हो पाती, चक्र घूमता रहता है।

जहां तक मोक्ष का संबंध है, वहां से लौटना मुश्किल है। क्योंकि यांत्रिकता टूट जाए, चित्त पूर्ण चेतन हो जाए, पूरा कांशस हो जाए, तो ही मोक्ष को जा सकता है। पूर्ण चेतना से लौटना असंभव है।

हां, संसार में कोई चक्कर लगा सकता है। कितने ही चक्कर लगा सकता है संसार के भीतर। संसार के भीतर कोई कितना ही चक्कर लगा सकता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एक मनुष्य हजार बार मनुष्य होकर चक्कर लगा सकता है, वही-वही चक्कर लगा सकता है, क्योंकि सोया हुआ है। अगर जग जाए तो चक्कर लगाना बंद कर दे, बाहर हो जाए चक्कर के। मोक्ष चूंकि समस्त चक्कर के बाहर हो जाने का नाम है, इसलिए वापस चक्कर नहीं लगाया जा सकता।

और पानी की बूंद तो चूंकि मूर्च्छित है, कहना चाहिए उसमें जो आत्माएं हैं, वे निगोद में ही हैं। पानी की बूंद में जो आत्माएं हैं, वे निगोद में ही हैं। पदार्थ का जो जगत है, कहना चाहिए, वह निगोद में ही है। वहां से अभी··· वहां तो बिलकुल ही पूरा चक्कर है, एकदम पूरा चक्कर है। इसीलिए प्रेडिक्टेबिल है। हम कह सकते हैं कि पानी को गरम करिएगा तो भाप बनेगा। ऐसा पानी कभी नहीं देखा गया जो इनकार करे कि भाप नहीं बनता हूं। तो उसके पास कोई चेतना नहीं है। हम प्रेडिक्ट कर सकते हैं पानी के बाबत।

लेकिन आदमी के बाबत प्रेडिक्शन मुश्किल है। ऐसा जरूरी नहीं है कि प्रेम करिएगा तो वह प्रेम करेगा ही। ऐसा बिलकुल जरूरी नहीं है। साधारणतः जरूरी है, लेकिन एकदम जरूरी नहीं है। और इसलिए आदमी प्रेडिक्शन के थोड़ा बाहर है, क्योंकि उसमें थोड़ी चेतना है। उसका पक्का नहीं बताया जा सकता कि वह क्या करेगा।

सारे पदार्थ के बाबत पक्का बताया जा सकता है, इसलिए पदार्थ का विज्ञान बन गया है। और आदमी का विज्ञान अभी तक नहीं बन पा रहा है! वह न बनने का कारण यह है कि पदार्थ की सारी व्यवस्था यांत्रिक है। नियम पक्का है: इतने पर गरम करो, पानी बनेगा भाप; इतने पर ठंडे करो, बनेगा बरफ। इसमें कोई शक-शुबहा ही नहीं, चाहे तिब्बत में करो, चाहे चीन में करो, चाहे ईरान में करो, कहीं भी करो; वह भाप बनेगा। उतने पर, उतने पर बर्फ बनेगा। वह नियम पक्का है, क्योंकि यांत्रिक है पूरी दौड़।

लेकिन जैसे-जैसे हम ऊपर आते हैं, यांत्रिकता टूटती चली जाती है। आदमी में आकर भी यांत्रिकता बहुत शिथिल हो जाती है। और आदमी के बाबत पक्का नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा, आप ऐसा करोगे तो वह क्या करेगा। बिलकुल ही प्रेडिक्शन के बाहर काम करने वाला आदमी मिल सकता है। तरह-तरह के लोग हैं और उनकी तरह-तरह की चेतना है। लेकिन मोक्ष में तो प्रेडिक्शन बिलकुल ही खतम हो गया। क्योंकि वहां तो चेतना पूर्ण मुक्त है, पूर्ण जाग्रत

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है। उसके बाबत तुम कुछ भी नहीं कह सकते। कुछ भी नहीं कह सकते कि ऐसा होगा। क्योंकि वहां कोई नियम का यंत्रवत् व्यवहार नहीं है।

मनुष्य में इसीलिए तकलीफ होती है कि मनुष्य का विज्ञान नहीं बन पाता पूरी तरह से। मनुष्य का पूरा विज्ञान बनाना मुश्किल है। किसी को हम गाली देंगे तो साधारणत: वह क्रोध करेगा। लेकिन कोई महावीर मिल सकता है, और तब आप गाली दे दें और वह चुपचाप खड़ा रहे, और क्रोध न करे। अनप्रेडिक्टेबिल है वह। क्योंकि वह आदमी जितना चेतन हो जाएगा, उतना ही उसके बाबत कुछ नहीं कहा जा सकता—कि गणित के हिसाब से ऐसा होगा।

सारी प्रकृति चक्र है बिलकुल। वर्षा आती है, सर्दी आती है, गर्मी आती है, एक चक्र घूम रहा है। नदियां हैं, पानी है, पर्वत हैं, पहाड़ हैं, बादल बने हैं, फिर लौट रहे हैं, फिर चक्कर चल रहा है। जितने नीचे उतरेंगे, चक्कर उतना सुनिश्चित है। जितने ऊपर उठेंगे, चक्कर उतना शिथिल है। जितना ऊपर उठते जाएंगे, चक्कर उतना शिथिल होता चला जाएगा। पूर्ण ऊपर उठ जाने पर चक्कर नहीं है, सिर्फ आप हैं। और कोई दबाव नहीं है, कोई दमन नहीं है, कोई जबरदस्ती नहीं है, सिर्फ आपका होना है। यही मुक्ति, स्वतंत्रता का अर्थ है।

अमुक्ति, बंधन, परतंत्रता का यही अर्थ है कि बंधे हुए चक्कर लगा रहे हैं, कुछ उपाय नहीं है। बटन दबाते हैं; बिजली को जलना पड़ता है। पंखा चलाते हैं, बटन दबाई, पंखे को चलना पड़ता है। कोई उपाय नहीं है, पंखे की कोई इच्छा नहीं है, कोई स्वतंत्रता नहीं है।

बंधन से मोक्ष की तरफ जो यात्रा है, वह अचेतन से चेतना की यात्रा है, क्योंकि जितनी अचेतना होगी, उतना बंधा हुआ क्रम होगा; जितनी चेतना होगी, उतना मुक्त क्रम हो जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वासना-चक्र के बाहर महावीर-छलांग

प्रवचन १८, दिनांक : २६ सितंबर १९६९, पहलगांव

प्रश्न : आपने कहा कि महावीर की आत्मा मुक्त होकर भी वापस आ गई थी— कृपया इसे स्पष्ट करें। क्या मुक्त आत्मा घूमकर फिर निगोद अवस्था में नहीं पहुंच जाती ?

महायान में एक बहुत मीठी कथा का उल्लेख है। बुद्ध का निर्वाण हुआ, वे मोक्ष के द्वार पर पहुंच गए, द्वारपाल ने द्वार खोल दिया, बुद्ध को कहा स्वागत है, आप भीतर आएं। लेकिन बुद्ध पीठ करके उस द्वार की तरफ खड़े हो गए और उन्होंने द्वारपाल से कहा, जब तक पृथ्वी पर एक व्यक्ति भी अमुक्त है, तब तक मैं भीतर कैसे आ जाऊं ? अशोभन है यह, उचित नहीं मालूम पड़ता। मेरे योग्य नहीं। लोग क्या कहेंगे कि अभी पृथ्वी पर बहुत लोग बंधे थे, बद्ध थे, दुखी थे और बुद्ध आनंद में प्रवेश कर गए ? तो मैं रुकूंगा। मैं उस द्वार से अंतिम ही प्रवेश कर सकता हूं।

ऐसी कहानी महायान बौद्धों में है। कहानी ही है, लेकिन अर्थ रखती है। अर्थ यह रखती है कि एक व्यक्ति मुक्त भी हो सकता है; लेकिन मुक्त हो जाना ही मोक्ष में प्रवेश नहीं है। यह बात समझ लेनी चाहिए। मुक्त होना मोक्ष का प्रवेश द्वार है। मुक्त होकर ही कोई व्यक्ति मोक्ष में प्रवेश पा सकता है। मुक्त हुए बिना प्रवेश नहीं पा सकता, लेकिन मुक्त हो जाना ही प्रवेश नहीं है। ठेठ द्वार पर भी खड़े होकर कोई वापस लौट सकता है। और जैसा मैंने पीछे कहा, एक बार वापस लौटने का उपाय है। वह मैंने पीछे समझाया कि क्यों वैसा उपाय है।

जो उपलब्ध हुआ है, वह अगर अभिव्यक्त न हो पाया हो; जो पाया है, अगर वह बांटा न जा सका हो; जो मिला है, अगर वह दिया न जा सका हो तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एक जीवन की वापस उपलब्धि की संभावना है। यह संभावना वैसी ही है, जैसा मैंने कहा कि कोई आदमी सायकिल चलाता हो, पैडिल चलाता हो, फिर पैडिल बंद कर दे चलाना तो भी सायकिल उसी क्षण नहीं रुक जाती है। एक मोमेंटम है गति का, प्रवाह है गति का कि पैडिल रुक जाने पर भी सायकिल थोड़ी दूर बिना पैडिल चलाई जा सकती है, लेकिन अंतहीन नहीं जा सकती, बस थोड़ी दूर जा सकती है। यह जो थोड़ी देर का वक्त है, जब पैडिल चलाना बंद हो गया तब भी सायकिल चल जाती है, ठीक ऐसे ही वासना से मुक्ति हो जाए तो भी थोड़े दूर जीवन चल जाता है। वह अनंत जीवन का मोमेंटम है। इस पैडिल चलाना बंद कर देने के बाद कोई चाहे तो थोड़ी देर सायकिल पर सवार रह सकता है, और कोई चाहे तो ब्रेक लगाकर नीचे उतर सकता है। सवार रहना ही पड़ेगा ऐसी भी कोई अनिवार्यता नहीं है। पैडिल चलाना बंद हो गया है तो व्यक्ति उतर जा सकता है, लेकिन न उतरना चाहे तो थोड़ी देर चल सकता है, बहुत देर नहीं चल सकता।

जैसा मैंने कहा कि जीवन की व्यवस्था में एक जीवन समस्त वासना के क्षीण हो जाने पर भी चल सकता है। जरूरी नहीं है, कोई व्यक्ति सीधा मोक्ष में प्रवेश करना चाहे तो कर जाए, लेकिन मुक्त व्यक्ति चाहे तो एक जीवन के लिए वापस लौट आता है। ऐसे जो व्यक्ति लौटते हैं—इन्हीं को मैं तीर्थंकर, अवतार पैगंबर, ईश्वरपुत्र, ऐसे व्यक्ति कह रहा हूं। ऐसा व्यक्ति जो स्वयं मुक्त हो गया है और अब सिर्फ खबर देने, वह जो उसे फलित हुआ है, घटित हुआ है, उसे बांटने, उसे बताने चला आया है। हम भोगने आते हैं, वह बांटने आता है, उतना ही फर्क है। और जो स्वयं न पा गया हो, वह न तो बांट सकता है, न इशारा कर सकता है।

एक जीवन के लिए कोई भी मुक्त व्यक्ति रुक सकता है। जरूरी नहीं है, सभी मुक्त व्यक्ति रुकते हैं, ऐसा भी नहीं है; लेकिन जो व्यक्ति रुक जाते हैं, इस भांति, वे हमें बिलकुल ऐसे लगते हैं, जैसे ईश्वर के भेजे गए दूत हों। क्योंकि वे पृथ्वी पर हमारे बीच से नहीं आते, वे उस दशा से लौटते हैं, जहां से साधारणतः कोई भी नहीं लौटता है। और इसीलिए अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग धारणा शुरू हो गई।

हिंदू मानते हैं कि वह अवतरण है परमात्मा का, ईश्वर स्वयं उतर रहा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है। क्योंकि यह जो व्यक्ति है, इसे अब मनुष्य कहना किसी अर्थ में सार्थक नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि न तो इसकी कोई वासना है, न इसकी कोई तृष्णा है, न इसकी कोई दौड़ है, न कोई महत्त्वाकांक्षा है, कोई एंबीशन नहीं है। यह अपने लिए जीता ही नहीं मालूम पड़ता, श्वास भी अपने लिए नहीं लेता है। तो सिवाय ईश्वर के यह कौन हो सकता है।

और मुक्त व्यक्ति करीब-करीब ईश्वर है।

तो हिंदुओं ने उसे अवतरण कहा है—उतरना, ऊपर से उतरना। अवतरण का मतलब है, ऊपर से उतरना। वहां से उतरना, जहां हम जाना चाहते हैं। अवतरण का मतलब ही यह होता है: जहां हम सब जाना चाहते हैं, वहां से कोई व्यक्ति उतर कर नीचे आ गया है। स्वभावतः, शायद जिन्होंने भी अवतरण की यह धारणा बनाई, उन्हें यह ख्याल नहीं है कि यह व्यक्ति भी यात्रा करके ऊपर गया होगा। ऊपर गया होगा तो ही वापस लौट सकता है। उस आधे हिस्से पर उनकी दृष्टि नहीं है, इसलिए हिंदुओं ने अवतरण कहा है।

जैनों ने अवतरण नहीं कहा। जैनों ने अवतरण की बात ही नहीं कही, उन्होंने तीर्थंकर कहा है।

तीर्थंकर का मतलब होता है: शिक्षक, दी टीचर, गुरु। तीर्थंकर का अर्थ होता है: जिसके मार्ग पर चलकर कोई पार जा सकता है, जिसके इशारे को समझकर कोई पार उतर सकता है।

लेकिन पार उतरने का इशारा वही दे सकता है, जो पार तक हो आया हो, नहीं तो इशारा कैसे दे सकता है? अगर मैं इस किनारे खड़ा होकर बता सकूं कि वह रहा दूसरा किनारा, तो अगर इसी किनारे से वह किनारा दिखता हो तो आपको भी दिखता होगा, तब मुझे बताने की कोई जरूरत नहीं है। किनारा कुछ ऐसा है कि दिखता नहीं है और जब भी कोई इशारा कर सकता है कि वह रहा किनारा, तो एक ही अर्थ है उसका, कि उस किनारे से होकर लौटा हुआ व्यक्ति है, अन्यथा उसकी तरफ इशारा कैसे कर सकता है? अगर दिखाई पड़ता तो हमको भी दिखाई पड़ जाता। हम सबको दिखाई नहीं पड़ता। उसका इशारा दिखाई पड़ता है, उस व्यक्ति की आंखों की शांति दिखाई पड़ती है, उसके प्राणों के चारों तरफ झरता हुआ आनंद दिखाई पड़ता है, उसकी ज्योति दिखाई पड़ती है, किनारा नहीं दिखाई पड़ता, वह तो बताता है। लेकिन उसका इशारा दिखाई

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पड़ता है और वह आदमी आश्वासन देता हुआ दिखाई पड़ता है, उसका सारा व्यक्तित्व आश्वासन देता हुआ मालूम पड़ता है कि किसी दूसरे किनारे का अजनबी है। कहीं और, किसी और तल को छूकर लौटा है, कुछ उसने देखा है, जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन यह व्यक्ति भी उस किनारे की तरफ इशारा कैसे कर सकता है, जहां यह हो न आया हो? यह असंभव है। तीर्थंकर का मतलब ही यह हुआ कि जो उस पार को छूकर लौट आया है इस पार खबर देने।

और मैं मानता हूं कि उचित ही है—कि जीवन में ऐसी व्यवस्था हो कि जो उस पार जा सके, वह कम से कम एक बार तो लौटकर खबर दे सके। अगर यह व्यवस्था न हो, अगर जीवन के अंतर्नियम का यह हिस्सा न हो, तो शायद हमें कभी भी खबर न मिले, तो शायद हमें कभी भी पता न चले। आज कोई व्यक्ति चांद पर होकर लौट आया है तो चांद के संबंध में हमें बहुत-सी खबर मिली है। चांद यहां से दिखाई भी पड़ता था, फिर भी खबर नहीं मिलती थी उसके बाबत। और परमात्मा तो यहां से दिखाई ही नहीं पड़ता है, उसकी खबर मिलने का तो कोई सवाल नहीं है यहां से। लेकिन कोई कभी उसे छूकर लौट आए तो ही खबर दे सकता है।

तो तीर्थंकर का अर्थ है : ऐसा व्यक्ति जो छूकर उस किनारे को लौट आया —शायद खबर देने ही, जो उसे मिला उसे बांटने, जो उसने पाया उसे बताने।

जैनों ने अवतरण की बात नहीं की, न करने का कारण है, क्योंकि ईश्वर की कोई धारणा उन्होंने स्वीकार न की। इसलिए एक ही रास्ता था कि जो व्यक्ति गया हो उस किनारे तक, वह वापस लौटकर खबर देने आ गया हो। इसलिए मैं कहता हूं।

जैसे कि जीसस—ईसाई हैं, वे न तीर्थंकर की बात की कोई धारणा करते, न अवतार की; वे तो सीधा ईश्वर-पुत्र की, ईश्वर के बेटे की! क्योंकि ईश्वर के संबंध में जो खबर देता हो, वह ईश्वर के इतना ही निकट होना चाहिए जितना कि बाप के बेटा हो। बेटे का और कोई मतलब नहीं है, उसका मतलब इतना है कि उसके प्राणों के प्राण का जो हिस्सा हो, उसका ही खून बहता हो जिसमें, वही तो खबर दे सकेगा।

या और जगत में इस तरह की धारणाएं हैं, लेकिन उन सबमें एक बात

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सुनिश्चित है और वह यह, कि जो जानता है, वही जना भी सकता है। जिसने जाना है, पहचाना है, देखा है, जिया है; वही खबर भी दे सकता है। उसकी खबर कुछ अर्थ भी रखती है।

मुक्त व्यक्ति एक बार लौट सकता है। महावीर के अब लौटने का कोई सवाल नहीं है, महावीर लौट चुके। लेकिन बुद्ध के लौटने का सवाल अभी बाकी है। बुद्ध के एक अवतरण की बात है। मैत्रेय नाम से कभी भविष्य में उनका एक अवतरण हो। क्योंकि बुद्ध को जो सत्य की उपलब्धि हुई है, वह इसी जीवन में हुई है, इसके पहले जीवन में नहीं। बुद्ध ने जो पाया है, वह इसी जीवन में पाया है। एक जीवन का उन्हें उपाय और मौका है अभी—वापस लौटने का। और बहुत सदियों से, जब से बुद्ध गए, तब से उनको प्रेम करने वाले, उन्हें जानने वाले प्रतीक्षा करते हैं उस अवसर की, जबकि बुद्ध अवतरित हो सकें, फिर आ सकें एक बार। बुद्ध के आने की एक बार उम्मीद है।

जीसस के भी एक बार आने की उम्मीद है। जीसस को भी जो उपलब्धि हुई है, वह इसी जन्म में हुई है, एक जन्म लिया जा सकता है। लेकिन एक ही लिया जा सकता है। और तब प्रतीक्षा भी की जा सकती है।

फिर हमें ऐसा कठिन मालूम पड़ता है कि बुद्ध को मरे पच्चीस सौ वर्ष होते हैं, या जीसस को मरे भी दो हजार वर्ष हो जाते हैं, तो दो हजार वर्ष तक वह जन्म नहीं हुआ दुबारा? हमारी समय की जो धारणा है, उसकी वजह से हमें ऐसी कठिनाई होती है। तो थोड़ी-सी समय की धारणा भी समझ लेनी जरूरी है।

आप रात सोए और आपने एक सपना देखा, सपने में आपने देखा कि सैकड़ों वर्ष बीत जाते हैं। नींद टूटती है और आप पाते हैं कि झपकी लग गई थी और घड़ी में अभी मुश्किल से एक मिनट हुआ। और सपने में वर्षों बीत गए। ऐसा सपना देखा, जिसमें सैकड़ों वर्ष बीत गए। और अभी आंख खुली है तो देखते हैं कि घड़ी में एक ही मिनट सरका है। झपकी लग गई थी कुर्सी पर और आप एक लंबा सपना देख गए थे। तब एक सवाल उठता है कि जागने का एक मिनट था, सपने में वर्षों कैसे बीत गए? इतना लंबा सपना, वर्षों बीतने वाला, एक मिनट में कैसे देखा जा सका? देखा जा सका इसलिए कि जागते की समय की धारणा अलग है, समय की गति अलग है; सोते की समय की गति अलग है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मुक्त व्यक्ति के लिए समय की गति का कोई अर्थ नहीं रह जाता, समय की गति है ही नहीं। हमारे तल पर समय की गति है।

हम ऐसा सोच सकते हैं—कि हम एक वृत्त खींचें, और एक वृत्त की परिधि पर तीन बिंदु बनाएं, वे तीनों काफी दूरी पर हैं, फिर इन तीनों बिंदुओं से वृत्त के केंद्र की तरफ रेखाएं खींचें, जैसे-जैसे केंद्र के पास रेखाएं पहुंचती जाती हैं, वैसे-वैसे करीब होती जाती हैं। परिधि पर इतना फासला था, केंद्र के पास आते-आते फासला कम होता जाता है। केंद्र पर आकर दोनों रेखाएं मिल जाती हैं। परिधि पर दूर थीं, केंद्र पर एक ही बिंदु पर आकर मिल गई हैं। केंद्र पर परिधि से खींची गई सभी रेखाएं मिल जाती हैं। और जैसे-जैसे पास आती जाती हैं, वैसे पास होती चली जाती हैं।

समय का जितना बड़ा विस्तार है···जितना हम जीवन-केंद्र से दूर हैं, समय उतना बड़ा है और जितना हम जीवन-केंद्र के करीब आते-जाते हैं, समय छोटा होता चला जाता है।

इसलिए कभी शायद ख्याल नहीं किया होगा, कि दुख में समय बहुत लंबा होता है, सुख में बहुत छोटा होता है। किसी को अपना प्रियजन मिल गया है, रात बीत गई है और सुबह प्रियजन विदा हो गया है और वह कहता है, कितनी जल्दी रात बीत गई! घड़ी को क्या हो गया है कि आज जल्दी चली जाती है! घड़ी अपनी चाल से चलती है, घड़ी को कुछ मतलब नहीं है कि किसका प्रियजन मिला है, किसका नहीं मिला है। घर में कोई बीमार है, उसकी खाट के किनारे बैठकर आप प्रतीक्षा कर रहे हैं। चिकित्सक कहते हैं, बचेगा नहीं, रात बड़ी लंबी हो जाती है—ऐसा कि घड़ी के कांटे चलते हुए ही मालूम नहीं पड़ते! ऐसा लगने लगता है कि घड़ी आज चलती नहीं! रात बड़ी लंबी हो गई है!

दुख समय को बहुत लंबा बना देता है, सुख समय को एकदम सिकोड़ देता है।

उसका कारण है, क्योंकि सुख भीतर के कुछ निकट है, दुख परिधि के और दूर, परिधि पर कहीं है।

आनंद समय को बिलकुल मिटा देता है, इसलिए आनंद टाइमलेस है, आनंद कालातीत है; वहां समय है ही नहीं।

साधारण से सुख में समय छोटा हो जाता है, साधारण से दुख में समय बड़ा हो जाता है!

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आइंस्टीन से कोई पूछ रहा था कि आपकी सापेक्षता का सिद्धांत, आपकी जो थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी है, उसे हमें समझाएं। तो आइंस्टीन ने कहा, बहुत मुश्किल है समझाना, क्योंकि जमीन पर थोड़े-से लोग हैं, जो सापेक्ष की बात समझ सकें। क्योंकि सापेक्ष के लिए समझना बड़ा कठिन है।

सापेक्ष का मतलब है कि जो प्रत्येक परिस्थिति में छोटा-बड़ा हो सकता है, लंबा-नीचा हो सकता है, जिसका कोई थिर होना नहीं है!

फिर भी उसने कहा कि उदाहरण के लिए मैं कहता हूं, कि तुम अपनी प्रेयसी के पास बैठे हो, आधा घंटा बीत जाता है, कितना लगता है? तो उस आदमी ने कहा, क्षण भर। उसने कहा कि छोड़ो प्रेयसी को, तुम एक जलते हुए स्टोव पर बिठा दिए गए हो और आधा घंटा बैठे रखे गए हो। उसने कहा, आधा घंटे! क्या आप कह रहे हैं? तब तक तो मर ही चुकूंगा। आधा घंटा जलते हुए स्टोव पर! अनंत हो जाएगा समय का, एक-एक क्षण गुजारना मुश्किल हो जाएगा, बहुत लंबा हो जाएगा; आधा घंटा बहुत ज्यादा हो जाएगा। तो आइंस्टीन ने कहा, सापेक्ष से मेरा यही प्रयोजन है। समय वही है, लेकिन तुम्हारे चित्त की अवस्था के अनुसार बड़ा-छोटा हो जाता है।

स्वप्न में एकदम छोटे समय में कितनी लंबी यात्रा हो जाती है! जागने में नहीं हो पाती। जागने में समय की परिधि पर हम ज्यादा हैं, सोने में हम अपने भीतर आए हैं। स्वप्न भीतर की तरफ है, जागरण बाहर की तरफ है। स्वप्न में हम अपने भीतर बंद हैं, केंद्र के ज्यादा निकट हैं, जागने में ज्यादा दूर हैं।

जब कोई व्यक्ति बिलकुल केंद्र पर पहुंच जाता है, उसका नाम समाधि है। तब समय एकदम मिट जाता है, एकदम विलीन हो जाता है, समय होता ही नहीं। सब ठहर गया होता है। टाइमलेस मूमेंट हो जाता है, थिर क्षण हो जाता है।

यह जो समय-रहित, कालातीत क्षण है, इस क्षण में ठहरे हुए को पच्चीस सौ साल बीत गए कि पच्चीस हजार साल बीत गए, कोई फर्क नहीं होता। इस जगह ठहरे हुए व्यक्ति को कोई फर्क नहीं होता।

सब फर्क परिधि पर है, केंद्र पर कोई फर्क नहीं है—वहां सब परिधि से खींची गई रेखाएं संयुक्त हो गई हैं।

तो ऐसा व्यक्ति प्रतीक्षा कर सकता है उस क्षण की, जब वह सर्वाधिक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उपयोगी हो सके। और ऐसा भी हो सकता है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते-करते ही मोक्ष में विदा ले लेते हों। शायद उनके योग्य पृथ्वी पर समय न बन पाता हो। बहुत बार ऐसा भी हुआ है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते हुए विदा हो गए हैं, क्योंकि वह बन नहीं पाई बात। और इसलिए इस तरह की भी चेष्टाएं चलती हैं कि शिक्षक के जन्म लेने के पहले कुछ और व्यक्ति जन्म लेते हैं जो—जो हवा और वातावरण तैयार करते हैं! जैसा जीसस के पहले हुआ।

जीसस के पहले एक व्यक्ति पैदा हुआ जॉन, संत जॉन। उसने सारे यहूदी मुल्कों में—जेरुशलम में, इजरायल में, सब तरफ खबर पहुंचाई कि कोई आ रहा है, तैयार हो जाओ। उसने हजारों लोगों को दीक्षित किया कि कोई आ रहा है, तैयार हो जाओ। लोग पूछते, कौन आ रहा है? तो वह कहता, प्रतीक्षा करो, क्योंकि तुम उसे देखकर ही समझ सकोगे, मैं कुछ बता नहीं सकता हूं! लेकिन कोई आ रहा है! उसकी उसने तैयारी की। उसने पूरी अपनी जिंदगी गांव-गांव घूमकर जीसस के लिए हवा तैयार की। और जब जीसस आ गए तो जॉन ने जीसस को आशीर्वाद दिया, और इसके बाद वह चुपचाप रिटायर हो गया, वह चुपचाप विदा हो गया। फिर उसका कोई पता नहीं चला कि फिर जॉन कहां गया। जीसस ने, वह जो हवा उसने बनाई थी, उसका पूरा उपयोग कर लिया। बहुत बार ऐसा भी हुआ है जबकि कोई शिक्षक वापस लौटे तो वह कुछ और प्राथमिक शिक्षकों को भेजे, जो हवा पैदा कर दें।

थियोसॉफी ने अभी एक बहुत बड़ी मेहनत की थी, लेकिन वह शायद असफल हो गई—मैत्रेय की। जैसा कि मैंने कहा कि बुद्ध के एक जन्म की संभावना है, तो ब्लावट्स्की और दूसरे—एनी बेसेंट, और दूसरे थियोसॉफिस्टों ने मैत्रेय को लाने के लिए भारी प्रयास किया। यह प्रयास अपने किस्म का अनूठा था। इस प्रयास में बड़ी साधना चली। इसमें कुछ लोगों ने बड़ा प्राणों को संकट में डालकर आमंत्रण भेजा और कृष्णमूर्ति को तैयार किया इस बात के लिए, कि वह जो मैत्रेय की आत्मा है, वह कृष्णमूर्ति में प्रविष्ट हो जाए। और कोई बीस वर्ष, पच्चीस वर्ष कृष्णमूर्ति की तैयारी में लगाए गए। कृष्णमूर्ति की जैसी तैयारी हुई वैसी दुनिया में किसी आदमी की शायद ही कभी हुई हो। अत्यंत गुह्य साधनाओं से कृष्णमूर्ति को गुजारा गया। ठीक वक्त पर सारी तैयारियां पूरी हो गईं, सारी दुनिया से कोई छह हजार लोग एक स्थान पर इकट्ठे हो गए, जहां

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कृष्णमूर्ति में मैत्रेय की आत्मा को प्रविष्ट होने की घटना घटने वाली थी। लेकिन शायद कुछ भूल-चूक हो गई, वह घटना नहीं घटी !

और कृष्णमूर्ति अत्यंत ईमानदार आदमी हैं। अगर कोई बेईमान आदमी उनकी जगह होता तो शायद वह अभिनय करने लगता कि घटना घट गई है। कृष्णमूर्ति ने इनकार कर दिया गुरु होने से ! कृष्णमूर्ति का सवाल भी न था, सवाल तो किसी और आत्मा का···आत्मा के लिए तैयारी थी उनके शरीर की ! क्योंकि ऐसा अनुभव किया गया है कि मैत्रेय के उतरने में बड़ी बाधा पड़ रही है। कोई शरीर इस योग्य नहीं मिल पा रहा है कि मैत्रेय उतर जाए। और कोई गर्भ ऐसा निर्मित नहीं हो रहा है कि मैत्रेय के लिए अवसर बन जाए। तो हो सकता है और दो-चार सौ वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़े, या हो सकता है कि प्रतीक्षा समाप्त ही हो जाए, वह चेतना विदा हो जाए। लेकिन आशा कम है, वह प्रतीक्षा जारी रहेगी।

कृष्णमूर्ति के लिए किया गया प्रयोग असफल हो गया, वह सफल नहीं हो सका। और अब ऐसा कोई प्रयोग प्रथ्वी पर फिलहाल नहीं किया जा रहा है। आकस्मिक···अब तक सदा आकस्मिक शिक्षक ही उतरे थे—कभी-कभी तैयारियां भी हुई थीं।

तो वह जो मैंने कहा, एक बार लौटने का उपाय है मुक्त आत्मा को और यह हक है उसका, अधिकार है, क्योंकि जिसने जीवन में इतना पाया, उसे अगर बांटने का और खबर देने का अधिकार भी न मिलता हो तो यह जीवन बड़ा असंगत और बड़ा तर्कहीन है। उपलब्धि के बाद अभिव्यक्ति का मौका अत्यंत जरूरी है। इसलिए मैंने कहा कि महावीर पिछले जन्म में उपलब्ध किए हैं, इस जन्म में बांट गए हैं। उनकी चेतना के लौटने का कोई सवाल नहीं है।

दूसरी एक बात पूछी है कि हम प्रकृति में तो चक्रीय गति देखते हैं। सब चीजें दौड़ती हैं, घूमती हैं, हर चीज लौटकर फिर घूम जाती है, तो ऐसा मन में संभावना उठती है, कल्पना उठती है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि निगोद से आत्माएं मोक्ष तक जाती हों, फिर वापस निगोद में पड़ जाती हों ? क्योंकि जहां सभी कुछ चक्र में घूमता हो, वहां सिर्फ एक आत्मा के गति को चक्रीय न माना जाए, यह कुछ नियम का खंडन होता हुआ मालूम पड़ता है !

सब चीजें लौट आती हैं : बीज वृक्ष बनता है, फिर वृक्ष से बीज आ जाते

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हैं, फिर बीज वृक्ष बनते हैं, फिर वृक्षों में बीज आ जाते हैं। सब लौटता चला आता है।

किसी वैज्ञानिक को कोई पूछ रहा था कि मुर्गी और अंडे में कौन पहले है ? बहुत जमानों से आदमी ने यह बात पूछी है कि कौन पहले है। उस वैज्ञानिक ने कहा कि पहले का तो सवाल ही नहीं है, क्योंकि मुर्गी और अंडा दो चीजें नहीं हैं। तो उस आदमी ने पूछा कि अगर दो चीजें नहीं हैं तो मुर्गी क्या है ? मुर्गी क्या है फिर ? तो उस वैज्ञानिक ने बहुत बढ़िया बात कही। उसने कहा कि मुर्गी—एग्स: वे टू प्रोड्यूस मोर एग्स। अंडे का रास्ता, और अंडे पैदा करने के लिए। मुर्गी क्या है ? तो उसने कहा कि अंडे का रास्ता और अंडे पैदा करने के लिए और कुछ भी नहीं। मुर्गी जो है, वह सिर्फ एक बीच का रास्ता है, जिससे अंडा और अंडे पैदा करने का रास्ता खोजता है, और कुछ भी नहीं। या इससे उल्टा कह सकते हैं कि अंडा जो है, वह मुर्गी का रास्ता है और मुर्गी पैदा करने के लिए।

सब चीजें घूम रही हैं। घड़ी के कांटे की तरह सब घूम रहा है। सब फिर कांटे बारह पर आ जाते हैं। फिर कांटे बारह पर आ जाते हैं। सिर्फ आत्मा के लिए ही इस नियम को तोड़ना उचित भी तो नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि विज्ञान बनता है, निरपवाद नियमों से। अगर जीवन के सब पहलुओं पर यह सच है—कि बच्चा जवान होता है, जवान बूढ़ा होता है, बूढ़ा मरता है; बच्चे पैदा होते हैं, फिर जवान होते हैं, फिर बूढ़े होते हैं, फिर मरते हैं। अगर यह चक्रीय गति ऐसी चल रही है और आत्मा का पुनर्जन्म मानने वाले भी इस चक्रीय गति को स्वीकार करते हैं कि जो अभी मरा वह फिर बच्चा होगा, वह फिर जवान होगा, फिर बूढ़ा होगा, फिर मरेगा, फिर बच्चा होगा, फिर वह चक्र घूमता रहेगा; तो सिर्फ आत्मा को यह चक्र क्यों लागू नहीं होगा ? साधारणत: लागू नहीं होता। नियम यही है और ऐसे ही सब घूमता चलता है।

मुक्त आत्मा एक अनूठी घटना है, सामान्य घटना नहीं है। सामान्य नियम लागू भी नहीं होता।

असल में चक्र के बाहर जो कूद जाता है, उसी को मुक्त आत्मा कहते हैं।

सब तरह के चक्रीय गति के बाहर जो कूद गया है, उसको ही मुक्त कहते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसलिए उसको चक्रीय गति में नहीं डाला जा सकता, नहीं तो मुक्त कहने का कोई मतलब नहीं है। मोक्ष का मतलब ही इतना है कि नियमों का जो चक्कर चल रहा है, जगत का···

संसार का मतलब कभी आपने सुना ?

संसार का मतलब होता है : दि व्हील।

संसार का मतलब ही होता है सिर्फ इतना, संसार शब्द का मतलब होता है : चक्र, जो घूम रहा है।

संसार का मतलब है, जो घूम रहा है, जो घूमता ही रहता है।

मुक्त का मतलब है, जो इस घूमने के बाहर छलांग लगा जाता है।

तो मुक्त को अगर हम फिर चक्रीय गति में रख लेते हैं तो मुक्ति व्यर्थ हो गई। कोई मतलब न रहा, मुक्त होने का कोई अर्थ ही न रहा। अगर मोक्ष से फिर निगोद में आत्मा को आना है तो पागल हैं, जो मुक्त होने की कोशिश कर रहे हैं। क्योंकि इसमें कोई मतलब ही नहीं, यह बेमानी बात है। अगर कांटे को बारह पर लौट ही आना है, वह कुछ भी करे—चाहे मुक्त हो और चाहे न हो, तो अर्थ क्या है मोक्ष का ? फिर तो मोक्ष अर्थहीन हो गया। मोक्ष का अर्थ ही यही है, यानी मुक्ति का प्रयोजन ही यही है कि इस चक्र में जिसमें कि हम घूमते ही रहे हैं, घूमते ही रहे हैं, घूमते ही रहेंगे···क्या इसमें घूमते ही रहना है या छलांग लगा जाना है ? अगर घूमते ही रहना है तो हम जैसे हैं ठीक हैं, घूमते रहेंगे। अगर छलांग लगानी है तो हमें सजग होना पड़ेगा, जागना पड़ेगा इस चक्र के प्रति। चक्र के प्रति ही जागना है। और क्या है !

कल भी आपने क्रोध किया, कल भी आपने पश्चात्ताप किया; आज फिर आप क्रोध कर रहे हैं, फिर पश्चात्ताप कर रहे हैं। फिर क्रोध है, फिर पश्चात्ताप है; फिर क्रोध है और चक्र है ! हर क्रोध के पीछे पश्चात्ताप, हर पश्चात्ताप के आगे फिर क्रोध, एक चक्र में आप घूम रहे हैं ! और आप कह सकते हैं कि जब हर क्रोध के बाद पश्चात्ताप आया तो हर पश्चात्ताप के बाद क्रोध आएगा। यह तो घूमना होता ही रहेगा। और अगर इस चक्र में ही खड़े रहते हैं तो घूमना जारी रहेगा।

लेकिन यह भी तो हो सकता है कि आप चक्र के बाहर छलांग लगा जाएं। छलांग लगाने का मतलब न तो क्रोध होगा, न पश्चात्ताप होगा, क्योंकि जिसने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पश्चात्ताप किया, वह क्रोध करेगा और जिसने क्रोध किया, वह पश्चात्ताप करेगा। वे तो एक ही चक्र के हिस्से हैं। छलांग लगाने का मतलब है एक आदमी न क्रोध करता, न पश्चात्ताप करता—बाहर हो जाता है। तब उसे कोई गाली देता है तो न वह क्षमा करता है, न क्रोध करता है, न वह पश्चात्ताप करता है। वह कुछ करता ही नहीं, वह एकदम बाहर हो जाता है। यह जो बाहर हो जाना है, यह जो छिटक जाना है, फिंक जाना है चक्र के बाहर, तो फिर इसे चक्र में नहीं गिना जा सकता। अगर इसे भी चक्र में गिना जा सकता है तो महावीर नासमझ हैं, बड़ी भूल में पड़े हैं; बुद्ध भी नासमझ हैं, नासमझी में पड़ गए हैं; क्राइस्ट भी गलती कर रहे हैं। असल में तब मोक्ष की बात करने वाले सब पागल हैं। क्योंकि अगर सबको घूम ही जाना पड़ता है वापस, तो सब बात व्यर्थ हो गई, कोई अर्थ न रहा।

तो अगर हम मोक्ष की धारणा को, वह जो कंसेप्ट है, वह समझ लें—उसका मतलब ही कुल इतना है कि चक्र के बाहर कूदा जा सकता है। और जो व्यक्ति चक्र के प्रति सचेत हो जाएगा, वह बिना कूदे नहीं रह सकता। क्योंकि चक्र बिलकुल कोल्हू के बैल की तरह घूम रहा है। और कोल्हू के बैल में कौन जुता रहना चाहेगा? एक दफा पता चल जाए, ख्याल आ जाए कि इस ट्रैक से नीचे उतरा जा सकता है, इस ट्रैक के बाहर हुआ जा सकता है। जीवन का जो साधारण ट्रैक है, जो उसकी लौह-पटरी है, उससे अगर कोई छलांग लगा जाता है, तो उस छलांग का नाम ही मुक्त होना है। और उसको वापस चक्र में रखने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि उसे वापस चक्र में बिठाने का कोई उपाय नहीं है।

हां, जैसा मैंने कहा कि एक बार भर वह स्वयं अपनी स्वेच्छा से चाहे तो उस चक्र में लौट सकता है, जिनमें वह अपने प्रियजनों को, अपने मित्रों को, अपने प्यारों को, उन सबको जिनके लिए भी वह खुशी, आनंद लाना चाहता है, एक बार फिर वापस आकर बैठ सकता है उस चक्र पर।

लेकिन चक्र पर बैठा हुआ भी वह घूमेगा नहीं। घूमेगा इसलिए नहीं, क्योंकि घूमने का अब उसे कोई मतलब न रहा। और इसलिए हम उसे पहचान भी पाएंगे कि कुछ अलग तरह का आदमी है, कुछ भिन्न तरह की बात है। यह कुछ और अनुभव करके लौटा है। अब वह खड़ा भी होगा हमारे बाजार में,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेकिन बाजार का हिस्सा नहीं होगा। अब वह हमारे बीच भी खड़ा होगा, लेकिन ठीक हमारे बीच नहीं होगा; कहीं हमसे दूर और फासले पर होगा। उस व्यक्ति में दोहरी घटना घट रही होगी—वह होगा हमारे बीच और हमसे बिलकुल बियांड होगा, हमसे बिलकुल अलग होगा! यह हम प्रतिपल अनुभव कर पाएंगे कि कहीं हमारा उससे मेल होता भी है और कहीं मेल होता भी नहीं; कहीं बात बिलकुल अलग हो जाती है, वह कुछ और ही तरह का आदमी है!

यह जो वैज्ञानिक है, भौतिकवादी है, मैंटेरियलिस्ट है, वह यही कह रहा है—वह यही कह रहा कि यहां तो सब नियम वहीं पहुंच जाते हैं, जहां से हम आते हैं, अन्यथा जाने का कोई उपाय नहीं है। सागर का पानी सागर में पहुंच जाता है। पत्तों में आई मिट्टी, वापस मिट्टी में पहुंच जाती है, पत्ते फिर गिरकर मिट्टी हो जाते हैं। वही वैज्ञानिक कहता है, वही भौतिकवादी कहता है—मैंटेरियलिस्ट! उसमें और स्प्रीचुअलिस्ट में फर्क क्या है? फर्क इतना ही है, कि वह यह कहता है कि सब चीजें जहां से उठीं—इस्ट अन टू डस्ट, मिट्टी मिट्टी में लौट जाती है और सब खतम हो जाता है—बात क्या है! सब चीजें जहां से आती हैं, वहीं वापस चली जाती हैं!

लेकिन धार्मिक खोजी यह कह रहा है कि एक ऐसी भी जगह है, जहां से हम नहीं आए हैं और जा सकते हैं। एक ऐसी भी जगह है, जहां से हम नहीं आए हैं और जा सकते हैं। और जहां हम चले जाएं तो फिर इस चक्कर में गिर जाने का कोई उपाय नहीं है, फिर इसमें सम्मिलित हो जाने का कोई उपाय नहीं है।

अगर नहीं यह संभव है तो धर्म की सारी संभावना खतम हो गई, साधना का सब अर्थ व्यर्थ हो गया। फिर कुछ बात ही नहीं है। फिर तो एक जड़ चक्र है, उसमें हम घूमते रहेंगे, घूमते रहेंगे, घूमते रहेंगे। आवागमन से छूटने की जो कामना है, यह उन लोगों को उठी है, जिन्हें यह घूमते हुए चक्र की व्यर्थता दिखाई पड़ गई है कि जन्मों-जन्मों से, अनंत जन्मों से एक-सा घूमना हो रहा है! और हम हैं कि घूमते चले जा रहे हैं और इससे कभी छलांग लगाने का ख्याल नहीं आता।

छलांग लग सकती है, लगी है; किसी की भी लग सकती है। और छलांग बिलकुल और घटना है, जिसके लिए फिर वे नियम लागू नहीं होते। जैसे आप छत पर खड़े हुए हैं, दस आदमी छत पर खड़े हुए हैं, कोई भी छत से नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गिर रहा है, दसों आदमी एक ही नियम के अंतर्गत हैं। एक आदमी छत पर से छलांग लगाता है, यह आदमी नियम के बाहर हो गया, छत पर जो नियम काम कर रहा था, उसके बाहर हो गया। छत इसे बचा रही थी ग्रेविटेशन से, जमीन की कशिश से बचा रही थी। यह उसके बाहर हो गया, छत के बचाव के बाहर हो गया। अब जमीन उसे खींचेगी अपनी तरफ, जो कि छत पर खड़े हुए किन्हीं लोगों को नहीं खींच सकती थी; क्योंकि उन पर नियम लागू नहीं होता था। एक पर्त के ऊपर वे खड़े थे, जो जमीन की कशिश को रोकने का काम करती थी। यह आदमी बाहर हो गया।

अभी जो हमने चांद पर आदमी भेजा, इसके लिए सारी, सबसे बड़ी कठिनाई क्या थी? सबसे बड़ी कठिनाई एक ही थी, और वह कठिनाई यह थी कि जमीन की कशिश से कैसे छूटना? जमीन का ग्रेविटेशन असली सवाल है। दो सौ मील तक जमीन के ऊपर चारों तरफ जमीन की कशिश का प्रभाव है। असली सवाल यह था कि इस दो सौ मील के बाहर कोई चीज कैसे छलांग लगा जाए? क्योंकि जमीन यहां तक खींचती है, इसके बाहर, एक इंच बाहर हो गए कि जमीन का खींचना खतम हो जाता है। तो जो सैकड़ों वर्षों से चिंतना चलती थी कि चांद पर कैसे पहुंचें या कहीं भी कैसे पहुंचें, उनमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि जमीन से कैसे छूटें? सवाल चांद पर पहुंचने का कठिन नहीं था। आमतौर से लोगों ने यही समझा है कि चांद पर पहुंचना असली सवाल था। यह सवाल गौण है, असली सवाल था जमीन के घेरे से कैसे छूटें? वह जमीन का जो ग्रेविटेशन है, वह इतने जोर से खींचता है—उसके बाहर कैसे हो जाएं? उसके बाहर हो जाना ही सबसे बड़ा सवाल था। और उसके बाहर नहीं होते हैं तो कहीं जा नहीं सकते।

और यह संभव नहीं हो सकता था—अभी संभव हो सका, क्योंकि हम इतना बड़ा विस्फोट पैदा कर सके रॉकेट के पीछे कि उस विस्फोट के धक्के में वह रॉकेट ग्रेविटेशन के घेरे के बाहर हो गया! एक दफा बाहर हो गया, पृथ्वी की पकड़ के, जकड़ के बाहर हो गया। अब वह कहीं भी जा सकता है। अब कोई सवाल नहीं है कहीं जाने का। जो दूसरा डर था वह चांद पर उतारने का डर था कि पता नहीं कितनी दूर से चांद का ग्रेविटेशन शुरू होगा! और कितने जोर से चांद खींचेगा या नहीं खींचेगा, या क्या करेगा! तो ग्रेविटेशनल फील्ड्स की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बात थी। हर एक कशिश का क्षेत्र है एक। हर नियम का एक क्षेत्र है। और उस नियम के बाहर उठने का उपाय है—अपवाद, बाहर तोड़ा जा सकता है उस क्षेत्र के।

जीवन की गहरी परिधि जो है हमारी, उसके केंद्र में—जैसे मैंने कहा, पृथ्वी का ग्रेविटेशन है—ऐसा जीवन के चक्र का जो केंद्र खोज लिया गया, वह वासना है। वह खोज लिया गया कि अगर जीवन के बाहर छिटकना है तो किसी न किसी रूप में वासना के बाहर निकलना होगा। वह जो वासना है, वह ग्रेविटेशनल फोर्स है। प्रत्येक के भीतर वह जो तृष्णा है, जिसको बुद्ध तनहा कहते हैं; वह जो वासना है हमारी, जो हमें स्थिर नहीं होने देती—और कहती है वह लाओ, वह पाओ, वह बन जाओ—वह हमें चक्कर में दौड़ाती रहती है। क्योंकि वह जहां-जहां इशारे करती है, वह चक्र के भीतर है। वह कहती है, धन कमाओ। वह कहती है, यश कमाओ। वह कहती है, स्वास्थ्य लाओ। वह कहती है और जीयो, ज्यादा जीयो, ज्यादा उम्र बनाओ। वह जो भी हमसे कहती है, वह सब उस चक्र—उस चक्र के भीतर के पहलू हैं। और जब हम एक आगे का इशारा तय कर लेते हैं कि वहां जाना है, तब हम चक्र के भीतर घूमने लगते हैं।

जो व्यक्ति एक क्षण को भी वासना के बाहर हो जाए, वह अंतरिक्ष में यात्रा कर गया—उस अंतरिक्ष में जो हमारे भीतर है।

वह जीवन के चक्र के भीतर छलांग लगा गया। क्योंकि उसने कहा कि नहीं, मुझे न यश चाहिए, न धन चाहिए, न कोई काम चाहिए, मुझे कुछ चाहिए ही नहीं। मैं जो हूं, हूं। मैं कुछ होना ही नहीं चाहता। उसने बिकमिंग का ख्याल छोड़ दिया। उसने कहा, बीइंग ही काफी है।

वासना का मतलब है कि मैं जैसा हूं, वैसा नहीं; जो मेरे पास है, वह नहीं; जो भी उपलब्ध है, वह नहीं; कुछ और चाहिए ! छोटा क्लर्क बड़ा क्लर्क होना चाह रहा है, छोटा मास्टर बड़ा होना चाह रहा है, छोटा मिनिस्टर बड़ा होना चाह रहा है ! वह सब···वह वासना का तीर उन्हें झुकाए चला जाता है और वह पूरे चक्कर में डाल देता है।

सारे खोजियों की खोज यह है कि एक क्षण के लिए भी वासनाओं के बाहर ठहर जाओ और वह जो क्षेत्र था, जो चक्कर लगवाता था, उसके आप बाहर हो गए। और एक क्षण को आप बाहर हो गए तो आप हैरान हो जाते हैं, यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बात जानकर कि जिसे हम अनंत जन्मों से पाने की आकांक्षा कर रहे थे, वह हमारे पास ही था, वह मिला ही हुआ था, वह हमें उपलब्ध ही था, अपनी तरफ देखने भर की जरूरत थी।

लेकिन अंतर्यात्रा नहीं होती—जैसे अंतरिक्ष-यात्रा नहीं हो सकती, जब तक कि जमीन की कशिश से न छूट जाएं, ऐसे ही अंतर्यात्रा नहीं हो सकती—जब तक कि हम वासना की कशिश से न छूट जाएं।

और वासना की कशिश जमीन के ग्रेविटेशन से ज्यादा मजबूत है। क्योंकि जमीन की जो कशिश है, वह एक जड़ शक्ति है खींचने की; वासना की बड़ी सजग, चेतन शक्ति है खींचने की। और हमें पता ही नहीं चलता। हमें पता नहीं चलता! आप रास्ते पर चलते हैं, आपको कभी पता चला कि जमीन आपको खींच रही है? आपको कोई पता नहीं चलता। हम उसी में पैदा होते हैं। हमें कभी पता ही नहीं चलता कि जमीन हमें कितने जोर से अपनी तरफ खींच रही है पूरे वक्त। यह तो पता चले तब, जब हम एक क्षण के लिए भी ग्रेविटेशन के बाहर हो जाएं। अभी अंतरिक्ष में जो यात्री गए उनको पता चला कि यह तो बड़ा मुश्किल मामला है। एक सेकंड भी कुर्सी पर बिना बेल्ट बांधे नहीं बैठा जा सकता! बेल्ट छूटा कि आदमी उठा, छप्पर से लग गया एकदम। और उनको पहली दफे जाकर पता चला कि वेटलेसनेस क्या बला है। वेट रहा ही नहीं, क्योंकि वेट जैसी कोई चीज ही नहीं है, वजन जैसी कोई चीज ही नहीं है—वह सिर्फ जमीन की कशिश है। ख्याल हमको है कि हममें वजन है! वह वजन नहीं है, वह जमीन की कशिश है। चूंकि चांद पर जमीन की कशिश बहुत कम है, इसलिए कोई भी आदमी छलांग लगाकर ऊंची दीवाल से निकल सकता है। चोर के लिए आपका दरवाजा नहीं खोलना पड़ेगा, बस सिर्फ छलांग लगाकर आपकी छत पर आ जाएगा। क्योंकि जमीन···वह जो चांद की कशिश है, वह बहुत कम है, आठ गुनी कम है। यानी अगर जो आदमी यहां जमीन पर आठ फीट छलांग लगा सकता है, वह वहां आठ गुनी छलांग लगा सकेगा ज्यादा, क्योंकि उसका वजन कम हो गया। लेकिन हमें पता ही नहीं है कि पूरे वक्त जमीन हमको खींचे हुए है! क्योंकि हम उसी में पैदा होते हैं, उसी पर बड़े होते हैं और उसी में हम निर्धारित हो जाते हैं!

ऐसे ही हमको यह भी पता नहीं है कि वासना हमें चौबीस घंटे खींचे हुए है, क्योंकि हम उसी में पैदा होते हैं। हमें पता ही नहीं चलता! पैदा हुआ बच्चा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और वासना की दौड़ शुरू हुई और वासना ने उसे पकड़ना शुरू किया : उसे यह चाहिए, उसे यह चाहिए; उसे यह बनना है, उसे वह बनना है; दौड़ शुरू हो गई और चक्र जोर से घूमने लगा !

इस चक्र के बाहर, जिसे भी छलांग लगानी हो, उसे वासना के बाहर उतर जाना पड़ता है। और वासना के बाहर साक्षी का भाव ले जाता है। जैसे ही कोई व्यक्ति साक्षी हो गया, वह वासना के बाहर चला जाता है।

और हमारी तो कठिनाई यह है कि जीवन में साक्षी होना तो बहुत कठिन, हम नाटक फिल्म तक में साक्षी नहीं हो सकते ! अगर एक दुखांत फिल्म से निकलते हुए लोगों के रूमाल जांच लिए जाएं तो आपको पता चलेगा एक आदमी नहीं निकला है, जो नहीं रोया हो ! वह तो अंधेरा रहता है तो बड़ी सुविधा रहती है। आदमी बगल में देख लेता है, कोई नहीं देख रहा, अपने आंसू पोंछकर बैठ जाता है। फिल्म पर, पर्दे पर, जहां कुछ भी नहीं है; जहां सिवाय प्रकाश के कम-ज्यादा फेंके गए किरणजाल के और कुछ भी नहीं है; वहां हम कितने दुखी, सुखी, आनंदित—क्या-क्या नहीं हो जाते !

थ्री डायमेंशनल फिल्म बनी है, तो जब पहली-पहली दफा उसका प्रदर्शन हुआ तो बड़ी हैरानी की बात हुई, क्योंकि थ्री डायमेंशनल फिल्म में तो बिलकुल ऐसा दिखाई पड़ता है कि आदमी पूरा···ये जो सब हमारी फिल्में हैं, टू डायमेंशनल हैं; दो आयाम में बनी हैं। लंबाई है, चौड़ाई है; गहराई नहीं है। गहराई फिल्म में आ जाती है तो फिर सच्चे आदमी में और फिल्म के आदमी में कोई फर्क नहीं। परदे पर जो दिखाई पड़ रहा है, वह बिलकुल सच्चा हो गया। जब पहली दफा फिल्म बनी और लंदन में उसका प्रदर्शन हुआ थ्री डायमेंशनल फिल्म का—तो उसमें एक घोड़ा है, एक घुड़सवार है, जो भागा चला आ रहा है। सारे हाल के लोग एकदम झुक गए कि वह जो घोड़ा है, एकदम निकल न जाए हाल के अंदर से—क्योंकि वह तो थ्री डायमेंशनल है ! एक भाला फेंका उस घुड़सवार ने और सब लोग अपनी खोपड़ी बचा लिए। क्योंकि वह, भाला जो है, कहीं खोपड़ी में न लग जाए; क्योंकि वह तो बिलकुल फिंका। थ्री डायमेंशनल होने की वजह से उसका जो एफेक्ट है, उसका जो प्रभाव है, वह तो ऐसे ही होने वाला है, जैसे असली भाले का होगा। तब पता चला कि आदमी उस स्थल में भी कितना भूल जाता है कि यह पर्दा है ! और हम सब रोज ही भूलते

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हैं ! तो वहां भी हम साक्षी नहीं रह पाते, वहां भी हमें यह पता नहीं चल पाता। बल्कि कई बार हम जिंदगी से ज्यादा वहां खो जाते हैं।

टॉल्सटाय ने लिखा है कि मैं बड़ा हैरान हुआ। उसकी मां रोज थियेटर जाती। और रूस की सर्दी ! बर्फ पड़ती, बाहर थियेटर के कोच खड़ा रहता, बग्घी खड़ी रहती; बग्घी पर दरबान खड़ा रहता, क्योंकि उसकी मां कब बाहर आ जाए पता नहीं। तो दरबान को छोड़ा नहीं जा सकता, कोच विदा की नहीं जा सकती। शाही परिवार के लोग हैं। टॉल्सटाय ने लिखा है कि मैं यह देखकर हैरान हुआ कि मेरी मां थियेटर में इतना रोती कि उसके रूमाल भीग जाते। बाहर हम आते और अक्सर ऐसा होता कि कोचवान जो बैठा रहता, वह बर्फ की वजह से मर जाता, तो उसे धक्के देकर बाहर फिंकवा दिया जाता, और मां आंसू पोंछती रहती फिल्म के ! और उसके सामने वह मर गए आदमी को धक्के देकर हटा दिया जाता, दूसरा आदमी सड़क से पकड़कर बिठाल लिया जाता और कोच घर चली जाती !

तो टॉल्सटाय ने लिखा है कि मैं दंग हुआ, हैरान हुआ यह देखकर कि जिंदा आदमी मर गया हमारी कोच पर बैठा हुआ सिर्फ इसलिए, कि हम उसको छुट्टी नहीं कर सकते; न हटा सकते हैं उसको, कोच रखनी पड़ेगी ! मां किसी भी वक्त बाहर आ सकती है, तो उसी वक्त कोच तैयार चाहिए ! तो वह बर्फ की ठंड में मर गया है, उसकी मां के सामने उसकी लाश फिंकवा दी गई है और दूसरा आदमी पकड़ कर कोच घर की तरफ चली गई ! और मां पूरे रास्ते रोती रही उस फिल्म के लिए, या उस नाटक के लिए, जहां कोई मर गया था; या जहां कोई प्रेमी बिछुड़ गया था; या जहां कुछ और दुर्घटना घट गई थी।

कई बार ऐसा हो जाता है कि बाहर की जिंदगी भी हमें उतना ज्यादा नहीं पकड़ती, जितनी चित्र की कहानी पकड़ ले ! क्योंकि बाहर की जिंदगी बहुत अस्त-व्यस्त है और चित्र की कहानी बहुत व्यवस्थित है और आपके मन को कितना डुबा सके, उसकी सारी व्यवस्था की गई है। बाहर की जिंदगी में सब व्यवस्था नहीं है। वहां सारी व्यवस्था की गई है। आप कहां-कहां, आपके रग-रेशे को छुआ जा सके, कैसे आपको डुबाया जा सके, भुलाया जा सके, इसका सारा इंतजाम किया गया है, वह पूरा वैज्ञानिक है। बाहर की जिंदगी बड़ी अवैज्ञानिक है, वह चल रही है एक ढंग से, उसमें अभी कोई उतनी व्यवस्था नहीं है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नाटक तक में हम साक्षी नहीं रह पाते, फिल्म तक में साक्षी नहीं रह पाते ! और वासना से छूटना हो तो पूरा जीवन फिल्म की तरह, नाटक की तरह हो जाना जरूरी है—पूरा जीवन ।

और बहुत गहरे में हम खोज करेंगे तो फर्क ज्यादा नहीं है । बहुत गहरे में हम खोज करेंगे तो मेरा यह शरीर उसी तरह विद्युत कणों से बना है, जिस तरह फिल्म के परदे पर बना हुआ शरीर विद्युत कणों से बना है । बहुत गहरे हम खोज करेंगे तो फिल्म की कहानी या नाटक की कहानी जितना अर्थ रखती है, उससे ज्यादा हमारी जिंदगी की कहानी भी कौन-सा अर्थ रखती है ?

हां, फर्क इतना ही है कि वह तीन घंटे की मंच है, यह शायद सत्तर साल की मंच है, सौ साल की मंच है । यह नाटक सौ साल चलता है । और यह नाटक कंटिन्यूअस है । इसमें अभिनेता बदलते चले जाते हैं, पात्र बदलते चले जाते हैं; दूसरे आते चले जाते हैं और यह नाटक चलता ही रहता है ! इस नाटक में दर्शक और अभिनेता अलग-अलग नहीं हैं; वे ही दर्शक हैं, वे ही अभिनय करने वाले हैं ! और यह चलता ही चला जाता है ! एक विदा होता है, दूसरा उसकी जगह ले लेता है—कभी मंच खाली नहीं होती । देखने वाले भी रहते हैं, करने वाले भी रहते हैं, क्योंकि दोनों एक ही हैं ! और इसलिए इस लंबे मंच का हमें ख्याल नहीं आता कि यहां भी एक लंबा नाटक खेला जा रहा है ।

यह जो हमें स्मरण आ सके कि एक लंबा नाटक खेला जा रहा है, तो शायद हम भी साक्षी हो सकें । और फिर शायद नाटक के इन पात्रों में क्या मैं हो जाऊं, यह ख्याल छूट जाए । जो हम हैं, शायद हम उसी को चुपचाप निभाकर और विदा हो जाएं ।

ऐसी चित्त की दशा में, जहां बिकमिंग छूट जाती है, वासना छूट जाती है, तृष्णा छूट जाती है, जहां हम दौड़ से बाहर खड़े हो जाते हैं, और दौड़ सिर्फ नाटक रह जाती है, व्यक्ति वह छलांग लगा लेता है, जहां ग्रेविटेशनल फोर्स डिजायर का, तृष्णा का टूट जाता है और हम वहां खड़े हो जाते हैं, जहां मुक्त, बंधन के बाहर, कारागृह के बाहर कोई खड़ा होता है । उस शांति को, उस आनंद को कहना मुश्किल है, इशारे किए जा सकते हैं, फिर भी कोई कुछ ठोस खबर नहीं दी जा सकती । क्योंकि नाटक में जो खोए हैं, नाटक में जो भटके हैं, अभिनय ही जिन्हें जीवन हो गया है, उन्हें वास्तविक जीवन की कोई खबर समझ में नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आ सकती। सच में जैसा है, वह बिलकुल वैसा ही है, जैसा कि नाटक के मंच के पीछे ग्रीन रूम है। यहां जो राम बना था, रावण बना था, लड़ रहे थे, झगड़ रहे थे, पीछे ग्रीन रूम में जाकर एक-दूसरे को चाय पिला रहे हैं और गपशप कर रहे हैं! जिस दिन कोई देख पाता है जिंदगी को, तब हैरान होता है कि असली जिंदगी के नाटक में भी राम और रावण जब पर्दे के पीछे चले जाते हैं तो चाय पीते हैं, गपशप करते हैं। वहां भी झगड़े खतम हो जाते हैं और टूट जाते हैं। लेकिन वह ग्रीन रूम जरा गहरे में छिपा है और पर्दा बहुत लंबा है। और पर्दे के बाहर ही हम पूरे वक्त रहते हैं, इसलिए हमें पता ही नहीं कि पीछे ग्रीन रूम भी है!

इस बात का पता चल जाना ही, कि हम एक बड़े नाटक के हिस्से हैं···कभी आपने सोचा कि अपने को एक नाटक के पात्र की तरह कभी देखा? कभी सुबह उठकर आपने ख्याल किया कि एक नाटक शुरू होता है रोज सुबह? रात थक जाते हैं, सो जाते हैं, एक नाटक का अंत होता है रात; फिर रोज सुबह शुरू हो जाता है! और कभी आपने सोचा कि आपको ध्यान रखना पड़ता है कि नाटक में भूल-चूक न हो जाए! कई बार आपको ध्यान रखना पड़ता है।

एक फ्रेंच चित्रकार अमेरिका जा रहा था। उसके भुलक्कड़ होने की बड़ी कहानियां थीं। उसकी पत्नी और उसकी नौकरानी, उसको दोनों विदा देने एयरपोर्ट आई हैं। उसने जल्दी में नौकरानी को चूम लिया है और पत्नी को कहा, खुश रहना, बच्चों का ख्याल रखना! और वह जाकर···वे दोनों घबड़ा गई हैं, क्योंकि वह···उसकी पत्नी ने कहा कि क्या करते हैं? आप ख्याल नहीं करते, वह नौकरानी है! उसको आप चूमते हैं और मुझे नौकरानी बनाते हैं? मैं आपकी पत्नी! उसने कहा, चलो बदले देता हूं! उसने कहा कि चलो, बदले देता हूं! पत्नी को चूम लिया है, नौकरानी को कहा, बच्चों का ख्याल रखना। उसने कहा, कभी-कभी चूक जाता हूं, ख्याल नहीं रख पाता। कभी-कभी चूक जाता हूं, ख्याल नहीं रख पाता। हम ख्याल रख पाते हैं, कुछ लोग चूक जाते हैं

ख्याल क्या रख रहे हैं हम चौबीस घंटे? यह मेरा पिता है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा बेटा है, इसका हमें ख्याल रखना पड़ता है चौबीस घंटे! और न ख्याल रखें तो दूसरे हमें ख्याल दिलाते हैं कि वे तुम्हारे पिता हैं, या खुद आदमी ख्याल दिलवाता है कि मैं तुम्हारा पिता हूं! वह नाटक हमें पूरे वक्त याद रखना पड़ता है—कहीं भूल न जाएं, कहीं चूक न हो जाए। और जो इस नाटक को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जितना अच्छी तरह से निभा लेता है, उतना कर्तव्यनिष्ठ है !

नहीं कहता हूं कि नाटक न निभाएं, नाटक निभाने के लिए ही है और बड़ा मजेदार भी है, उसमें कुछ ऐसी तकलीफ भी नहीं है। बस एक ही ख्याल न भूल जाएं, और सब चाहे भूल जाएं, एक बात न भूल जाएं कि सिर्फ नाटक है, और कहीं भीतर हमारे एक बिंदु है, जहां हम सदा बाहर है।

स्वामी राम अमेरिका गए, उनकी बड़ी अजीब सी आदत थी। अमेरिका में लोगों को बड़ी मुश्किल हुई, क्योंकि वे हमेशा थर्ड परसन में ही बोलते थे ! यहां तो उनके मित्र उनको पहचानने लगे थे, वहां उनको बड़ी कठिनाई हुई। और हम अजीब-अजीब तरह के लोगों के थोड़े आदी भी हैं, सारी दुनिया इतनी आदी नहीं है। क्योंकि यहां महावीर और बुद्ध जैसे अजीब-अजीब लोग हुए हैं, उन्होंने बहुत-सी बातों की आदत डलवा दी है जो कि दुनिया में बहुत लोगों को नहीं भी है।

राम जब वहां पहुंचे तो वे लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गए, क्योंकि वे कहते कि राम को इस वक्त बहुत भूख लगी हुई है। तब जो आदमी सामने बैठा है, वह चारों तरफ देखता कि कौन राम ? क्योंकि अगर मुझे भूख लगी है तो मैं कहूंगा, मुझे भूख लगी है। और राम यह कहते कि राम को बहुत भूख लगी है ! देखते क्या हो, कुछ इंतजाम करो। राम बड़ा परेशान हो रहा है। तो उन लोगों ने कहा कि कौन राम ?

तो उन्होंने कहा, यह राम ! तो उन्होंने कहा कि आप ऐसा क्यों नहीं कहते कि मैं ? उन्होंने कहा, वैसा मैं कैसे कह सकता हूं ? क्योंकि मैं तो खुद ही देख रहा हूं कि राम को तकलीफ हो रही है, तो 'मैं' तो अलग ही कर सकता हूं। इकट्ठा कैसे हो सकता हूं ? देख रहा हूं—राम को भूख लगी है, राम को मुश्किल हो रही है ! राम को ठंड लगी—मैं देख रहा हूं। कई दफे ऐसा होता है, कई लोग राम को खूब गाली देते हैं। हम बहुत हंसते हैं, कहते हैं, देखो राम कैसी पड़ी ! कैसी मुश्किल में फंसे ! आ गया न मजा !

अब यह जो···यह जो ख्याल कि कहीं मैं अलग हूं, सारे खेल से कहीं दूर हूं—साक्षी बना देता है। वासना की दौड़ टूट जाती है। खेल फिर भी चलता है, क्योंकि आप अकेले खिलाड़ी नहीं हैं। खेल फिर भी चलता है, क्योंकि खिलाड़ी बहुत हैं। और फिर खेल भी क्या बिगाड़ना है ! बड़े-बूढ़े, छोटे बच्चों के साथ गुड़िया का खेल भी खेल लेते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एक मेरे मित्र एक घर में जापान में मेहमान थे। उन्हें कुछ पता न था। सुबह ही घर में बड़ी सजधज शुरू हो गई और घर के बड़े-बूढ़े भी बड़े उत्तेजित मालूम पड़े! तो उन्होंने पूछा कि बात क्या है? तो उन्होंने कहा कि आज विवाह है एक, आप भी सम्मिलित हों। उन्होंने कहा, जरूर सम्मिलित हो जाऊंगा। सांझ आ गई, घर में बड़ी तैयारी चलती रही। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सब तैयारी में लगे हैं! वे भी बेचारे बहुत तैयार हो गए, फिर गए और जब देखा जाकर तो बड़े हैरान हो गए। जो विवाह हो रहा था, वह एक गुड़िया और एक गुड्डे का विवाह हो रहा था! पड़ोस के घर की एक लड़की ने गुड़िया की शादी रचाई थी और पड़ोस के दूसरे घर के एक लड़के ने अपने गुड्डे का विवाह रचाया था। उन दोनों का विवाह हो रहा था, लेकिन गांव के बड़े-बूढ़े, प्रतिष्ठित और मेयर भी मौजूद थे! तो मेरे मित्र ने कहा, यह क्या पागलपन है! और इतना साज-संवार चल रही थी और इतने बैंड-बाजे बज रहे थे और ठीक, जैसे शादी हो रही थी!

तो मेरे मित्र ने उस घर के बूढ़े को कहा कि यह क्या पागलपन है? आप लोग इन गुड़ियों के विवाह में सम्मिलित हुए? तो उन्होंने कहा कि इस उम्र में पता चल जाना चाहिए कि सभी विवाह गुड़ियों के हैं। उस बूढ़े ने कहा, इसलिए इसमें भी क्या फर्क है? उसमें और इसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। इसमें क्या फर्क है? अब ये बच्चे खेल खेल रहे हैं, हम उनमें सम्मिलित होते हैं। और हम उसी गंभीरता से सम्मिलित होते हैं, जितनी गंभीरता से हम असली विवाह में सम्मिलित होते हैं, ताकि बच्चे समझ लें कि असली विवाह भी गुड़ियों के खेल से ज्यादा नहीं हैं। बूढ़े दोनों में एक ही गंभीरता से सम्मिलित होते हैं।

उस बूढ़े का ख्याल देखते हैं? वह यह कह रहा है, बच्चों को अभी से पता चल जाए कि हमारी गंभीरता में कोई फर्क नहीं है—गुड़िया के विवाह में भी उसी गंभीरता से आते हैं, जैसे हम असली विवाह में आते हैं! दोनों में भी कोई फर्क नहीं है। हम दोनों का कोई भेद भी नहीं करते। ठीक है, वह एक तल की गुड़ियों का विवाह है, यह दूसरी तरह की गुड़ियों का विवाह है। लेकिन विवाह हो रहा है और लोग मजा ले रहे हैं और हम भागीदार हो जाते हैं—हम क्यों नाहक लोगों के इस रस में, इस राग-रंग में बाधा बन जाएं? ठीक है!

बुद्धिमान आदमी जिसको हम वाइज मैन कहें, विज्डम जहां आती है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बुद्धिमत्ता जहां आती है—वहां ऐसा नहीं होता कि जगत माया हो जाता है, वहां ऐसा नहीं होता कि जगत नाटक हो जाता है, वहां नाटक और जगत एक ही हो जाता है। ऐसा नहीं होता कि इसकी कोई निंदा आ जाती है कि यह नाटक है, तो गलत है, ऐसा भी कुछ नहीं हो जाता, वहां सब बराबर हो जाता है। वहां सब बराबर हो जाता है—जगत और नाटक एक हो जाते हैं। सिर्फ एक घटना घट जाती है कि साक्षी अलग खड़ा हो जाता है।

जिस दिन साक्षी अलग खड़ा हो जाए जीवन से, उसी दिन दौड़ के बाहर हो जाता है।

तो महावीर की साधना मौलिक रूप से साक्षी की साधना है।

सभी साधनाएं मौलिक रूप से साक्षी की साधनाएं हैं।

किस भांति हम देखने वाले हो जाएं, भोगने वाले न रह जाएं, करने वाले न रह जाएं—दर्शक, दृष्टा, साक्षी हो जाएं। किस भांति सिर्फ साक्षी रह जाएं—जरा भी ख्याल न रहे।

एपीटेक्टस हुआ, एक अद्‌भुत व्यक्ति हुआ। बीमारी भी आती, दुख भी आता, चिंता आती तो भी लोग उसे वैसा ही पाते; जैसे जब वह स्वस्थ था, निश्चिंत था, शांत था, खुश था। लोगों ने हर हालत में उसे देखा, लेकिन वैसा ही पाया, जैसा वह था; उसमें कुछ फर्क नहीं देखा कभी भी। कुछ लोग उसके पास गए और कहा कि एपीटेक्टस, अब तो मौत करीब आती है, तुम बूढ़े हो गए। तो उसने कहा, जरूर आए, देखेंगे! मौत को देखोगे? उसने कहा, जब सब चीजें देखने की ताकत आ गई है तो मौत को देखने की ताकत भी आ गई। वह तो जिंदगी को ही जो नहीं देख पाते, वे ही मौत को नहीं देख पाते।

जो जिंदगी को देख लेता है, वह मौत को भी देख लेता है।

एपीटेक्टस ने कहा, देखेंगे! बड़ा मजा आएगा। क्योंकि बड़े दिन हो गए, तब से मौत को नहीं देखा! बहुत समय हो गया, तब से मौत को नहीं देखा!

मौत आई है तो कई लोग इकट्ठे हो गए हैं। एपीटेक्टस मर रहा है—लेकिन घर में संगीत बजाया जा रहा है, क्योंकि उसने अपने शिष्यों को, अपने मित्रों को कहा है कि मरते क्षण में मुझे रोकर विदा मत देना! क्योंकि रोकर हम उसे देते हैं, जो जानता नहीं था। मुझे तुम हंसकर विदा देना क्योंकि मैं जानता हूं। क्योंकि मैं मर ही नहीं रहा हूं। मैंने देखना सीख लिया है, हर स्थिति

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को देखना सीख लिया है। और जिस स्थिति को मैंने देखना सीखा, मैं उसी के बाहर हो गया उसी वक्त। अगर मैंने दुख को देखा, मैं दुख के बाहर हो गया। अगर मैंने सुख को देखा, मैं सुख के बाहर हो गया। अगर मैंने जीवन को देखा तो मैं जीवन के बाहर हो गया। तो तुमसे मैं कहता हूं कि मैं देखने की कला जानता हूं, मैं मौत को देख लूंगा और मौत के बाहर हो जाऊंगा। तुम इसकी फिकर ही मत करो। मैं जिस चीज को देखा, उसी के बाहर हो गया। तो मेरे जीवन भर का अनुभव यह है कि देखो और बाहर हो जाओ।

मगर हम देख ही नहीं पाते!

इसीलिए इस देश में तत्त्व-विचार को, फिलॉसफी को जो नाम दिया है, वह दर्शन का दिया है।

दर्शन का मतलब है: देखने की क्षमता।

दर्शन का मतलब फिलॉसफी नहीं है।

फिलॉसफी का मतलब है: विचार का प्रेम, दर्शन का मतलब है: देखने की क्षमता।

पश्चिम में फिलॉसफी है जो, उसे हमें दूसरे नाम देना चाहिए—मीमांसा कहना चाहिए, कुछ कहना चाहिए, तत्त्व-विचार कहना चाहिए।

भारत में जिसे हम दर्शन कहते रहे हैं; महावीर, बुद्ध या पतंजलि या कपिल या कणाद जिसको दर्शन कहे हैं, वह बात फिलॉसफी नहीं है। वह यह कह रहे हैं कि देखने की कला।

देख लो और बाहर हो जाओ।

सोचने का सवाल नहीं है यहां—देखो और बाहर हो जाओ।

और जिस चीज को देख लोगे, उसी के बाहर हो जाओगे।

यह कभी सोचा आपने, कि जिस चीज को आप देखने में समर्थ हो जाते हैं, आप तत्काल उसके बाहर हो जाते हैं। किसी भी चीज को देखें, आप बाहर हो जाएंगे। हम यहां इतने लोग बैठे हुए हैं और अगर आप गौर से देखें, आप फौरन बाहर हो जाएंगे। आप इतने लोगों को गौर से देखें और आप पाएंगे भीड़ गई, आप अकेले रह गए। कभी कतने ही लाख की भीड़ में आप खड़े हों और गौर से चारों तरफ देखें और जाग जाएं।

जस्ट सी एंड बी अवेयर—और आप अचानक पाएंगे भीड़ गई, आप अकेले

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रह गए हैं।

भीड़ है और आप बिलकुल अकेले रह गए हैं ! जिस चीज को आप देखने की क्षमता जुड़ा लेंगे, उसी के बाहर हो जाएंगे। वह ट्रांसेंडेंस, पार हो जाना है।

तो इस चक्र से जिस चक्र में सब चीजें एक-सी घूमती चली जाती हैं, अगर हम द्रष्टा हो जाएं तो हम तत्काल बाहर हो जाते हैं।

पोम्पेई शहर में आग लगी, क्योंकि पोम्पेई का ज्वालामुखी फूट गया था। सारा गांव भागा। जिसके पास जो था बचाने को, बचा सकता था, भागा बचा-कर। किसी ने धन, किसी ने किताबें, किसी ने बही-खाते, किसी के पास फर्नीचर था, किसी के पास कपड़े थे, मोती थे, जवाहर थे—सब, जो जिसके पास था, लेकर भागा। फिर भी कोई पूरा नहीं बचा सका। क्योंकि जब आग लगती हो तो पूरा बचाना मुश्किल है। और जब भागने का सवाल हो, जिंदगी मुश्किल में पड़ी हो तो बहुत ज्यादा बचाने की चेष्टा में खुद को अटकाया भी नहीं जा सकता। लोग भागे।

आधी रात थी, एक सिपाही चौरस्ते पर खड़ा है, जिसकी सुबह छह बजे ड्यूटी बदलेगी। सुबह छह बजे दूसरा आदमी आएगा, सुबह छह का घंटा बजेगा और उसकी छुट्टी होगी। और रात दो बजे नगर जल उठा है। सारा नगर भाग रहा है, पुलिस वाला अपनी जगह खड़ा है। जो भी उसके करीब से निकलता है, उसे कहता है, भागो ! यह कोई वक्त है खड़े रहने का ? वह कहता है, लेकिन अभी छह कहां बजा ? अभी सुबह छह बजे का आदमी आएगा, उसकी राह देखता हूं। भीड़ में जो भी आदमी आए पुलिस वाले के पास, उसने कहा, क्या खड़े हो ? लोगों ने धक्का दिया कि भागो यहां से, आग चली आ रही है। उसने कहा, लेकिन अभी छह का घंटा नहीं बजा और अभी वह आदमी नहीं आया ! लोगों ने कहा, अब वह कभी नहीं आएगा। वह आदमी कब का भाग चुका होगा। और अब छह का घंटा भी कौन बजाएगा ? सारा गांव भाग रहा है। जो आता है, वही उससे कहता है, कैसे खड़े हो ? पागल हो !

वह सिपाही कहता है, अगर खड़े होना तुम भी सीख जाओ तो भागने की कोई जरूरत नहीं है।

सिपाही ने कहा, अगर खड़े होना तुम भी सीख जाओ तो भागने की कोई जरूरत नहीं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और मुझ खड़े को भगाने की कोशिश कर रहे हो ! आग लगी है, वह बाहर है। और कितनी ही आग लग जाए, अगर मैं खड़ा ही रहूं और देखता ही रहूं तो आग सदा ही बाहर रहेगी। क्योंकि देखने वाला तो मैं पीछे अलग ही छूट जाऊंगा हर बार। कितनी ही आग करीब आ जाए, करीब आ सकती है, शरीर में लग सकती है, कपड़ों में लग सकती है, लेकिन अगर मैं देखता ही गया तो मैं तो छूट ही जाऊंगा बाहर। तुम व्यर्थ भाग रहे हो, क्योंकि जहां तुम भाग रहे हो, आग वहां भी लग सकती है। और कहीं भी न भागोगे तो एक दिन आग लगेगी ही। मैं खड़ा हूं और खड़ा होना तुम सीख जाओ। लेकिन तुम भाग रहे हो तो तुम खड़े कैसे होओगे ?

हम सब भाग रहे हैं और खड़े हम नहीं हो पाते। और भागने की जो दौड़ है, वह चक्रीली है, वह चक्कर वाली है, उसमें चक्कर हम लगाते चले जाते हैं। हर बार लगता है कि कहीं पहुच रहे हैं—कहीं नहीं पहुंच पाते, क्योंकि चक्कर और आगे दिखाई पड़ने लगता है लेकिन कोई खड़ा भी हो जाता है कभी, ऐसा पटरी से नीचे उतरकर खड़ा हो जाता है और देखने लगता है चक्कर को। और तब बहुत हंसी आती है कि लोग व्यर्थ पागल की तरह दौड़े चले जा रहे हैं। और जिस जगह को छोड़कर वे भाग रहे हैं, थोड़ी देर में उसी जगह पर आ जाएंगे, क्योंकि चक्कर गोल है और उसमें वे गोल घूम रहे हैं और कहीं कोई जा नहीं सकता। और सब भाग रहे हैं—एक-दूसरे के पीछे भागे चले जा रहे हैं !

जो व्यक्ति बाहर खड़ा हो जाता है, वह ऐसा ही हो जाता है, जैसे एक बड़ा नाटक चलता हो और कोई आदमी बाहर खड़ा होकर देखने लगे।

जीवन की कला : जीवन में खड़े हो जाने की कला ही है।

धर्म का विज्ञान : दर्शक बन जाने का ही विज्ञान है।

और सारे शास्त्रों का सार और इन सारे व्यक्तियों की वाणी का अर्थ, जो जागे और जीए, जो पहचाने और पार हुए, एक ही शब्द में है—और वह यह है कि खड़े हो जाओ।

दौड़ो मत—देखो।

डूबो मत—पार खड़े हो जाओ, दूर खड़े हो जाओ।

देखो—और डूबो मत।

अगर कोई अनडूबा खड़ा रह जाए एक क्षण को भी, तो जो आप कह रहे हैं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कि क्या फिर लौटना नहीं हो जाएगा ? नहीं, एक बार कोई खड़ा हो गया तो वह प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न है, वहां से लौटने का सवाल ही नहीं है।

मगर हम चूंकि दौड़ रहे हैं, लौटेंगे; बहुत बार लौट चुके हैं ! लौटते रहेंगे और दौड़ते ही रहेंगे ! और दौड़ते ही रहेंगे ! और कई बार ऐसा होता है कि थोड़े दौड़कर हम नहीं उपलब्ध हो पाते तो हम सोचते हैं और तेजी से दौड़ें !

एक छोटी-सी कहानी, और मैं अपनी बात पूरी करूं।

एक आदमी को अपनी छाया से डर पैदा हो गया ! वह अपनी छाया से भयभीत होने लगा ! वह अपनी छाया से बचने के लिए भागा। वह जितनी तेजी से भागा, छाया उसके पीछे भागी। उसने देखा कि छाया बड़ी तेज भाग सकती है ! इतनी तेजी से काम नहीं चलेगा, और तेजी से भागना पड़ेगा। उसने अपनी सारी जान लगा दी। जितनी तेजी से वह भागा, छाया उतनी तेजी से भागी, क्योंकि छाया उसकी ही थी, जिससे वह भाग रहा था। वह स्वयं से ही भाग रहा था। पहुंच कहां सकता था ? छाया से छूट कैसे सकता था ? अपने से ही छूटने का उपाय क्या था ?

लेकिन गांव-गांव में खबर फैल गई और गांव-गांव में लोग उसके दर्शन करने लगे और फूल फेंकने लगे ! उसको तो रुकने की फुरसत कहां थी ? क्योंकि रुकता, तो छाया उतनी देर और जोर से जकड़ ले। और रुके और छाया फिर पकड़ ले। तो भागते ही चले जाना था। वह गांव-गांव में भागता रहता। उसकी पूजा होने लगी, उस पर फूल बरसने लगे, उसके चरणों में लाखों लोग झुकने लगे ! और जितने लोग ज्यादा झुकने लगे, जितने फूल गिरने लगे, वह उतनी तेजी से भागने लगा ! और गांव-गांव में खबर हो गई कि ऐसा तपस्वी कभी नहीं देखा गया, जो एक क्षण नहीं ठहरता, जो रुकता ही नहीं, जो रात बेहोश होकर गिर पड़ता था जब थककर तो वही उसकी नींद थी। और जब उसकी आंख खुलती थी, छाया दिखती थी, वह फिर भागना शुरू कर देता था !

आखिर ऐसे आदमी का क्या हल हो सकता था ? वह आदमी मरा। वह छाया साथ ही रही और मरा। जब मरा, तब उसकी लाश की भी छाया बन रही थी ! फिर लोगों ने उसको दफना दिया, एक कब्र बना दी बड़े दरख्तों के नीचे। और एक फकीर के पास लोग पूछने गए कि हम उसकी कब्र पर क्या लिख दें ?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो वह फकीर आया, उसने कब्र देखी, दरख्तों की छाया थी। छाया में दरख्तों की कब्र की कोई छाया न बन रही थी। तो उस फकीर ने उसकी कब्र पर लिखा कि तू जो जीकर न पा सका, वह तेरी कब्र ने पा लिया है! तेरी कब्र ने पा लिया है! और पा लिया है इसलिए कि तू भागता था और कब्र तेरी खड़ी है। कब्र तेरी खड़ी है छाया में, न भागती न दौड़ती—उसकी छाया खो गई है! और पागल! तू भागता था धूप में और तेजी से, और छाया तेरी पीछा करती थी। अपनी कब्र से तू पाठ सीख ले तो अच्छा है। नहीं तो ऐसी तेरी बहुत बार कब्रें बनेंगी और पाठ तू कभी न सीखेगा और भागता ही रहेगा।

खड़ा हो जाना सूत्र है।

ठहर जाना सूत्र है—छाया में ठहर जाना।

हम सब धूप में दौड़ रहे हैं! वासना, तृष्णा की गहरी धूप है और हम सबकी दौड़ है, तो फिर चक्र के बाहर नहीं हुआ जा सकता।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर : सत्य अनेकांत

प्रवचन : १६, दिनांक २८ सितंबर, १९६९, पहलगांव

प्रश्न : भगवान महावीर ने इंद्र को स्पष्ट कहा कि मुझे स्वयं कर्मों से युद्ध करना है, तो भी वह एक देवता को देख-रेख के लिए नियुक्त कर गया ! इस घटना में क्या कोई औचित्य है ?

इसमें दो बातें समझने योग्य हैं।

एक तो कर्मों से युद्ध, अज्ञान से युद्ध स्वयं ही करना है। महावीर इस बात की जरा भी तैयारी में नहीं थे कि कोई भी उनके संघर्ष में सहयोगी बने। सहयोगी को बिलकुल ही स्वीकार न करना, बड़े मूल्य की बात है। चाहे स्वयं देवता ही सहयोग के लिए क्यों न कहें, महावीर सहयोग के लिए राजी नहीं हैं। क्योंकि महावीर की दृष्टि यह है कि इस खोज में कोई संगी-साथी नहीं हो सकता है। और इस खोज में जो संगी-साथी के लिए रुकेगा, ठहरेगा; वह खोज से ही वंचित रह जाएगा। यह नितांत अकेले की खोज है।

और जिसे नितांत अकेले होने का साहस है, वही इस खोज पर जा भी सकता है।

मन तो हमारा यही करता है कि कोई साथ हो—गुरु साथ हो, कोई मित्र साथ हो, कोई जानकार साथ हो, कोई मार्गदर्शक साथ हो, कोई सहयोगी साथ हो; अकेले होने के लिए हमारा मन नहीं करता।

लेकिन जब तक कोई अकेला नहीं हो सकता है, तब तक आत्मिक खोज की दिशा में इंच भर भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

अकेले होने की सामर्थ्य, द करेज टू बी अलोन, सबसे कीमती बात है।

हम तो दूसरे को साथ लेना चाहेंगे। महावीर को कोई निमंत्रण देता है आकर कि मुझे साथ ले लो, मैं सहयोगी बन जाऊंगा, तो भी वे सधन्यवाद वह निमंत्रण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वापस लौटा देते हैं !

कथा यह है कि देव इंद्र खुद कहता है आकर कि मैं साथ दूं, सहयोगी बनूं, तो वे कहते हैं क्षमा करें, यह खोज ऐसी नहीं है कि कोई इसमें साथी हो सके, यह खोज तो नितांत अकेले ही करने की है ।

क्यों ?

यह अकेले का इतना आग्रह क्यों ?

अकेले के आग्रह में बड़ी गहरी बातें हैं।

पहली बात तो यह है कि जब हम दूसरे का साथ मांगते हैं, तभी हम कमजोर हो जाते हैं । असल में साथ मांगना ही कमजोरी है । वह हमारा कमजोर चित्त ही है, जो कहता है साथ चाहिए। और कमजोर चित्त क्या कर पाएगा ? जो पहले से ही साथ मांगने लगा, वह कर क्या पाएगा ? तो पहली तो जरूरत यह है कि हम साथ की कमजोरी छोड़ दें । और पूरी तरह जो अकेला हो जाता है—जिसके चित्त से संग की, साथ की मांग, समाज की, सहयोग की इच्छा मिट जाती है ।

यह बड़ी अद्भुत बात है कि जो इस भांति अकेला हो जाता है, जिसे किसी के संग की कोई इच्छा नहीं है—सारा जगत उसे संग देने को उत्सुक हो जाता है !

इस कहानी में जो दूसरा मतलब है, वह यह कि खुद देवता भी उत्सुक हैं, उस व्यक्ति को सहारा देने को, जो अकेला खड़ा हो गया !

जो साथ मांगता है, उसे तो साथ मिलता नहीं। नाममात्र को लोग साथी हो जाते हैं, साथ मिलता नहीं है। असल में मांग से कोई साथ पा ही नहीं सकता ।

उसके लिए सारे जगत की शुभ शक्तियां आतुर हो जाती हैं साथ देने को। कहानी तो काल्पनिक है, मिथ है, पुराण है, गाथा है, प्रबोध कथा है । वह कहती यह है कि जब कोई व्यक्ति नितांत अकेला खड़ा हो जाता है तो जगत की सारी शुभ शक्तियां उसको साथ देने को आतुर हो जाती हैं !

लेकिन अगर ऐसा व्यक्ति उनका साथ लेने को भी तैयार हो जाए, तो भी भटक जाता है। तो भी भटक जाता है, इसलिए कि फिर उसकी यह साथ लेने की बात इस बात की खबर है कि मन के किसी कोने में, किसी अंधेरे कोने में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संग और साथ की इच्छा शेष रह गई थी। इसलिए निमंत्रण तो मिला है महावीर को कि हम साथ देते हैं, लेकिन वह कहते हैं हम साथ लेते नहीं।

तो जब जगत की सारी शुभ शक्तियां भी साथ देने को तत्पर हों, तब भी वैसा आदमी अकेला होने को ही—अकेला ही होने की हिम्मत को कायम रखता है। यह बड़ा टेंपटेशन है, यह बड़ी उत्प्रेरणा है कि अगर भीतर कहीं भी कुछ, कहीं भी छिपा हो कोई भाव साथी का, संगी का, समाज का, तो वह प्रकट हो जाए।

महावीर उसे भी इनकार कर देते हैं! इस भांति वे अकेले खड़े हो जाते हैं। और यह इतनी बड़ी घटना है मनोजगत में किसी व्यक्ति का पूर्णतः अकेले खड़े हो जाना, जिसके मन के किसी भी पर्त पर किसी तरह के साथ की कोई आकांक्षा नहीं रह गई, यह व्यक्ति एक अर्थ में अद्‌भुत रूप से मुक्त हो गया। क्योंकि बांधती है हमारी साथ की इच्छा। गहरे में बंधन वही है।

समाज को छोड़कर भागना बहुत आसान है, लेकिन समाज की इच्छा से मुक्त हो जाना बहुत कठिन।

आदमी अकेला नहीं होना चाहता। कोई भी कारण खोजकर वह किसी के साथ होना चाहता है! अकेले में बहुत भयभीत होता है कि कोई भी नहीं है, मैं बिलकुल अकेला हूं। हालांकि सच्चाई यह है कि जब सब हैं, तब भी हम अकेले हैं। तब भी कौन साथ है किसके? और कैसे कोई किसी के साथ हो सकता है? आसपास हो सकते हैं, निकट हो सकते हैं, साथ कैसे हो सकते हैं?

हमारी यात्राएं अकेली हैं।

लेकिन हम एक साथ का भ्रम पैदा कर लेते हैं! पति-पत्नी साथ का एक भ्रम पैदा कर लेते हैं। मित्र-मित्र पैदा कर लेते हैं, गुरु-शिष्य पैदा कर लेते हैं—एक भ्रम कि कोई साथ है, अकेला नहीं हूं। और मजे की बात यह है कि वह दूसरा आदमी भी इस भ्रम में है कि कोई साथ है—अकेला नहीं हूं! और वे दोनों इस भ्रम को पोषकर बड़े सुख में हैं कि कोई साथ है, कोई डर नहीं है! लेकिन साथ कौन किसके है? मैं मरूंगा तो बस मैं मरूंगा। मैं जीऊंगा तो बस मैं जीऊंगा। और आज भी अपने मन की गहराइयों में, वहां मैं अकेला हूं। वहां कौन साथ है मेरे?

तो जब तक मैं साथ मांगता रहूंगा, तब तक मैं अपने मन की गहराइयों में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भी नहीं उतर सकता। क्योंकि साथ हो सकता है परिधि पर, केंद्र पर साथ नहीं हो सकता, वहां तो मैं अभी अकेला हो जाऊंगा। साथ हो सकता है परिधि पर, जहां हमारे शरीर छूते हैं बस वहां, उतनी दूर तक हम साथ हो सकते हैं। और जो व्यक्ति साथ के लिए आतुर है, वह परिधि पर जीएगा, वह कभी केंद्र पर नहीं सरक सकता। क्योंकि जैसे-जैसे अपने भीतर गया, वैसे-वैसे साथ खोया और गया। अभी हम इतने लोग यहां बैठे हैं, हम सब आंख बंद करके शांत हो जाएं और भीतर जाएं, तो यहां एक-एक आदमी ही रह जाता है, सब अकेले रह जाते हैं। यहां फिर कोई दूसरा साथ नहीं रह जाता। दो व्यक्ति एक साथ ध्यान में थोड़े ही जा सकते हैं। एक साथ बैठ सकते हैं जाने के लिए, जाएंगे तो अकेले-अकेले ही। और जैसे ही भीतर सरके कि वहां कोई भी नहीं है, फिर हम अकेले रह गए।

तो जो व्यक्ति साथ के लिए बहुत आतुर है, वह आदमी परिधि के भीतर नहीं जा सकता। साथ को पूरी तरह कोई इनकार कर दे, निगेट कर दे, अस्वीकार कर दे, तो ही अपने भीतर जा सकता है। क्योंकि तब परिधि पर होने का कोई रस नहीं रह जाता। यह थोड़ी समझने की बात है।

हम अपनी परिधि पर जीते ही इसलिए हैं कि वहां दूसरों के होने की सुविधा है। हम अपने केंद्र पर इसीलिए नहीं होते कि वहां हमारे अकेले होने का उपाय है, वहां कोई दूसरा साथ नहीं हो सकता।

समाज को छोड़ने का जो मतलब है, वह यह नहीं है कि एक आदमी जंगल भाग जाए। क्योंकि हो सकता है जंगल में वह वृक्षों के साथ दोस्ती कर ले, पक्षियों के साथ दोस्ती कर ले, जानवरों के साथ दोस्ती कर ले, पहाड़ों के साथ दोस्ती कर ले। यह सवाल नहीं है कि वह भाग जाए, क्योंकि वहां भी वह संग खोज लेगा, वहां भी वह साथ खोज लेगा।

सवाल गहरे में यह है कि कोई व्यक्ति परिधि से भीतर जाने का उपाय करे तो उसे दिखाई पड़ेगा कि परिधि के संबंधों की जो आकांक्षा है, वह छोड़ देनी पड़ेगी। इससे यह सवाल नहीं उठता है कि वह संबंध तोड़ देगा। संबंध रह सकते हैं, लेकिन अब उनकी कोई आकांक्षा उसके भीतर नहीं रह गई है। अब वे परिधि के खेल हैं और जो लोग परिधि पर जी रहे हैं, वह उनके लिए परिधि पर खड़ा हुआ भी मालूम पड़ेगा, लेकिन अपने तईं वह अकेला खड़ा हो गया है, वह निपट

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अकेला हो गया है और अपने भीतर जाना शुरू कर दिया है।

महावीर की जो अंतर्यात्रा है, उसमें चूंकि कोई संगी-साथी नहीं हो सकता, इसलिए वे सब संग को अस्वीकार कर देते हैं। लेकिन जैसे ही कोई सब संग को अस्वीकार कर देता है—जीवन की सारी शक्तियां, उसका साथी होना चाहती हैं ! जो अकेला है, जो असहाय है, जो असुरक्षित है—जीवन उसके लिए सुरक्षा भी बनता है, सहारा भी बनता है, सहायता भी बनता है !

जीवन के आंतरिक नियम ऐसे हैं कि अगर पूर्णतः कोई हेल्पलेस है, कोई पूर्णतः असहाय है, तो सारा जीवन उसका सहायक बन जाता है। ये जीवन के भीतरी नियम हैं। ये नियम वैसे ही हैं, जैसे कि चंबक लोहे को खींच लेता है। और हम कभी नहीं पूछते कि क्यों खींच लेता है ? हम कहते हैं यह नियम है, कि चुंबक में ऐसी शक्ति है कि वह लोहे को खींच लेता है।

मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यह भी नियम है कि जो व्यक्ति भीतर से पूर्णतः असहाय खड़ा हो गया, सारे जगत की सहायता उसकी तरफ चुंबक की तरह खिचने लगती है। क्यों खिचने लगती है, यह सवाल नहीं है। यह नियम है। नियम का मतलब यह है कि असहाय होते ही कोई व्यक्ति बेसहारे नहीं रह जाता, सब सहारे उसके हो जाते हैं। और जब तक कोई व्यक्ति अपना-अपना सहारा खोज रहा है, तब तक वह गहरे अर्थों में असहाय होता है।

वही कल मैं कहना भी चाहता था। कल की जो चर्चा थी, उसमें यह बात उठी थी कि सुरक्षा चाहिए, सेफ्टी चाहिए, सिक्योरिटी चाहिए, तो हम ऐसा कुछ करें, जिसमें सुरक्षा रहे, असुरक्षित न हो जाएं। जबकि सच बात यह है कि असुरक्षित, पूर्ण असुरक्षित चित्त को ही परमात्मा की सुरक्षा उपलब्ध होती है। और जो खुद ही अपनी सुरक्षा कर लेता है, उसे परमात्मा की कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं होती, क्योंकि वह परमात्मा के लिए तो मौका ही नहीं दे रहा है, वह तो अपना इंतजाम खुद किए ले रहा है।

मैं एक कहानी कहता रहा हूं कि कृष्ण भोजन को बैठे हैं, और दो-चार कौर लिए हैं और भागे हैं थाली छोड़कर ! रुक्मिणी ने उनसे पूछा, आपको क्या हो गया है ? जाते कहां हैं ? लेकिन उन्होंने सुना नहीं, वे द्वार तक चले गए हैं दौड़ते हुए, जैसे कहीं आग लग गई हो ! रुक्मिणी भी उठी, उनके दो-चार कदम पीछे गई है। फिर वह दरवाजे पर ठिठक गए, वापस लौट आए, थाली पर बैठकर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चुपचाप भोजन करने लगे !

रुक्मिणी ने कहा कि मुझे बड़ी पहेली में डाल दिया ! एक तो आप ऐसे भागे कि मैंने पूछा कहां जा रहे हैं, तो उसका उत्तर देने तक की भी आपको सुविधा न थी। और फिर आप ऐसे दरवाजे से लौट आए कि जैसे कहीं भी न जाना था ! हुआ क्या है ?

तो कृष्ण ने कहा कि मुझे प्रेम करने वाला, मेरा एक प्यारा एक रास्ते से गुजर रहा है। लोग उस पर पत्थर फेंक रहे हैं, और वह है कि मंजीरे बजाए चला जा रहा है और मेरा ही गीत गाए चला जा रहा है ! लोग पत्थर फेंक रहे हैं और उसने उत्तर भी नहीं दिया है उनका कोई, मन में भी नहीं उत्तर दिया है, मन में भी वह सिर्फ देख रहा है कि लोग पत्थर मार रहे हैं, और उसके माथे से खून की धारा बह रही है ! तो मेरे जाने की जरूरत पड़ गई थी। इतने बेसहारे के लिए अगर मैं न जाऊं तो फिर मेरा अर्थ क्या है ? तो रुक्मिणी ने पूछा, फिर लौट क्यों आए ? उन्होंने कहा, लेकिन जब तक मैं दरवाजे पर गया, वह बेसहारा नहीं रह गया था। उसने मंजीरे नीचे फेंक दिए और पत्थर हाथ में उठा लिए। उसने अपना इंतजाम कर लिया है, अब मेरी कोई जरूरत नहीं। उसने मेरे लिए मौका नहीं छोड़ा है। वह खाली जगह नहीं छोड़ी है, जहां मेरी जरूरत पड़ जाए।

जब व्यक्ति अपना इंतजाम कर लेता है तो जीवन की शक्तियों के लिए कोई उपाय नहीं रह जाता। और हम सब अपना इंतजाम कर लेते हैं और इसीलिए हम वंचित रह जाते हैं।

संन्यासी का मतलब ही सिर्फ इतना है कि जो अपने लिए इंतजाम नहीं करता और छोड़ देता है सब इंतजाम।

असुरक्षा में खड़ा हो जाना संन्यास है—टू बी इन इनसिक्योरिटी।

सब तरह की असुरक्षा में, जहां कि वह मानता ही नहीं कि मैं अपने लिए कोई सुरक्षा करूं। बड़ी कठिन बात है। क्योंकि मन को इस बात के लिए राजी करना, कि असुरक्षा में खड़े हो जाओ, मत करो इंतजाम ! इंतजाम ही मत करो ! छोड़ दो सब इंतजाम !

वह मलूक ने कहा है, उसकी बात बहुत कम समझी गई, कम समझी गई, लेकिन अगर महावीर को कहता तो महावीर समझते उसकी बात। मलूक ने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कहा है कि पंछी काम नहीं करते, अजगर चाकरी नहीं करता ! वह कहता है कि, मलूक कहता है कि, सबको देने वाला राम है। पक्षी कोई काम नहीं करते, अजगर कोई नौकरी करने नहीं जाता ! और मलूक कहता है कि सबको देने वाला राम है ! यह समझी नहीं गई बात। लोगों ने समझा कि यह तो बड़े आलस्य की बात सिखाई जा रही है। यानी इसका तो मतलब यही है कि कोई कुछ न करे। इसका मतलब है कोई कुछ न करे और जैसे पक्षी और अजगर पड़े हैं, ऐसा पड़ा रह जाए; तब तो सब खत्म हो जाएगा।

लेकिन मलूक कुछ और कह रहा है, वह आलस्य की बात नहीं कह रहा है। वह यह कह रहा है कि करो या न करो—भीतर से जैसा पक्षी असुरक्षित है कि कल का कोई पता नहीं, सांझ का कोई भरोसा नहीं; जैसे अजगर असुरक्षित पड़ा है, जिसके पास कोई बैंक-बैलेंस नहीं है, कोई इंतजाम नहीं, कोई सुरक्षा नहीं—ऐसा भी चित्त है। ऐसा भी चित्त हो सकता है। और जब ऐसा चित्त हो जाता है तो फिर राम ही सब कुछ हो जाता है सहारा, फिर कोई सहारा नहीं खोजना पड़ता। यह कोई आलस्य की शिक्षा नहीं है, यह बहुत गहरे में असुरक्षा के स्वीकार की शिक्षा है।

और महावीर ऐसी असुरक्षा में असंग खड़े हो गए हैं—न कोई संगी, न कोई साथी, क्योंकि वह भी हमारी सुरक्षा का उपाय है।

एक स्त्री अकेले होने में डरती है, उसे पति चाहिए। जगत बड़ा असुरक्षित है, जगत बड़ा भय देने वाला है। एक पति चाहिए, वह उसकी सुरक्षा बन जाएगा। पति भी शायद असुरक्षित है। शायद वह भी नहीं पाता इसमें कि सेफ्टी है, क्योंकि स्त्रियां उसे आकर्षित करेंगी, स्त्रियां उसे खींचेंगी। और तब बड़ी असुरक्षा पैदा हो सकती है, इसलिए एक स्त्री चाहिए; जो उसे दूसरी स्त्रियों के खिंचाव से बचाने के लिए सुरक्षा बन जाए, जो उसे दूसरे खिंचावों से रोक सके और कोई खतरा, कोई उपद्रव जिंदगी में न हो। जिंदगी व्यवस्थित हो जाए, सिस्टमैटिक हो जाए, सारा इंतजाम हो जाए और हम इंतजाम कर लें।

अहंकार इंतजाम जब करता है, तब परमात्मा को इंतजाम छोड़ देना पड़ता है।

और जब अहंकार सारी व्यवस्था छोड़ देता है तो परमात्मा के हाथ सारी व्यवस्था चली जाती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर इसलिए किसी तरह के सहयोग, संग, साथ, सुरक्षा लेने को तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं, बिलकुल अकेले, अकेले ही खोजेंगे। भटकेंगे, उसमें कुछ हर्ज नहीं है, क्योंकि भटकना भी खोज में अनिवार्य हिस्सा है। क्योंकि भटकने में ही वह प्राण, वह चेतना जगती है, जो पहुंचाएगी। तो भटकने का कोई भय नहीं है। इसलिए वे सब तरह के सहारे को इनकार करते हैं।

लेकिन ध्यान रहे, ऐसे व्यक्ति को सब तरह के सहारे स्वयं आकर उपलब्ध होने लगते हैं! जो भागते हैं जिन चीजों के पीछे, उन्हीं को नहीं उपलब्ध कर पाते, और जो ठहर जाते हैं या विपरीत चल पड़ते हैं उनके पीछे चीजें चलने लगती हैं।

जीवन की गहराइयों में कहीं कोई बहुत शाश्वत नियमों की व्यवस्था भी है। उसमें एक नियम यह भी है कि जिसके पीछे आप भागेंगे, वह आपसे भागता चला जाएगा। और जिसका मोह आप छोड़ देंगे और अपनी राह चल पड़ेंगे, आप अचानक पाएंगे कि वह आपके पीछे चला आया है। धन को जो छोड़ते हैं, उनके आसपास धन चला आता है। मान को जो छोड़ते हैं, उनके आसपास सम्मान की वर्षा होने लगती है। सुरक्षा जो छोड़ देते हैं, उन्हें सुरक्षा उपलब्ध हो जाती है। सब जो छोड़ देते हैं, शायद सब उन्हें उपलब्ध हो जाता है। एक घर जो छोड़ते हैं, शायद सब घर उनके हो जाते हैं। एक प्रेम की फिक्र जो छोड़ देते हैं, शायद सबका प्रेम उनका हो जाता है।

और महावीर इसे बहुत स्पष्ट देख रहे हैं, इसलिए वे कहीं बीच में कोई पड़ाव नहीं डालना चाहते। और इंद्र के निमंत्रण को अस्वीकार करने में उनकी यही भावना प्रकट हुई है। हां, इस संबंध में कोई प्रश्न हो, ख्याल में आता हो तो उठा लेंगे।

प्रश्न : आपने कहा, यह कथा है। यह कथा है या वास्तव में बातचीत हुई है इंद्र और महावीर में?

हां, यह बिलकुल कथा है। बिलकुल कथा है।

प्रश्न : तो फिर इसका उल्लेख इस ढंग से क्यों आया है कि महावीर ने इंद्र से बातचीत की?

असल में कठिनाई क्या है, हम कठिनाइयां ही समझ सकते हैं। और कहानियां भी तभी समझ सकते हैं, जब वह ऐतिहासिक हों। इसकी बात कर ही लें।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हम कहानियां ही समझ पाते हैं। और कहानियां भी तब समझ पाते हैं, जब वे हमें ऐतिहासिक हैं, ऐसा कहा जाए। अगर कोई कहानी ऐतिहासिक नहीं, तो हम कहेंगे, बस कहानी है। फिर हम उसे समझ ही नहीं पाएंगे। जबकि सवाल यह नहीं है कहानी हुई या नहीं हुई, यह सवाल ही नहीं है। सवाल यह है कि कहानी क्या कहती है! क्या है अर्थ? क्या है प्रयोजन? प्रयोजन तो खो जाते हैं और सामान्य मन जो है हमारा, वह जड़ता को पकड़ लेता है।

मैं एक शिविर में, एक पहाड़ पर था। एक जगह देखने गए, कोई सन-सेट प्वाइंट था—सूर्यास्त, वहां देखने गए। दो बहनें मेरे साथ थीं। बड़ी धूप थी, सूर्य तो ढल रहा था, लेकिन बड़ी धूप थी। शायद हम आधा घंटा जल्दी पहुंच गए थे। तो एक बेंच पर उन्होंने मुझे बिठा दिया। फिर उन्हें चिंता हुई कि बहुत धूप में मुझे ले आई हैं। तो वे दोनों मेरे सामने आकर खड़ी हो गई और उन्होंने कहा, कि हम आपके लिए छाया बन जाते हैं। हम आपके लिए छतरी बन जाएं, इसमें एतराज तो नहीं है? मैंने कहा, कोई भी एतराज नहीं है। लेकिन मैंने उनसे कहा कि इसको तुम लिख रखना। और तब कभी एक दिन यह बात जो है, ऐतिहासिक तथ्य बन जाएगी कि मैं धूप में था और दो बहनें मेरे लिए छतरी बन गईं। इसको तुम लिख रखना।

और उन्होंने जो कहा था, वह बिलकुल ही ठीक कहा था, इसमें जरा भी भूल-चूक नहीं है कि वे छतरी बन गई हैं। लेकिन क्या वे छतरी बन गईं? और इसे लिखा जा सकता है। और इसे लिखने में जरा भी असत्य नहीं बोला जा रहा है। उन्होंने वही काम किया जो छतरी करती है। वे मेरे लिए छतरी बन गईं। उन्होंने मेरे लिए धूप झेली, मैं छाया में बैठा रहा। और इसे लिखने में कोई कठिनाई नहीं है कि दो बहनें मेरे लिए छाया बन गईं, छतरी बन गईं। लेकिन कभी यह उपद्रव की बात हो सकती है कि क्या दो स्त्रियां छतरी बन गई थीं? तब हम काव्य नहीं समझ पा रहे हैं, तब हम बड़ी जड़ता से चीजों को पकड़ रहे हैं।

और अब तक काव्य नहीं समझा गया। और हमारा जो भी अद्भुत व्यक्ति पैदा होता है, वह इतना अद्भुत होता है कि उसके आसपास काव्य पैदा होगा ही, उसके आसपास कथाएं पैदा होंगी ही। कथाएं सच हैं ऐसा नहीं, व्यक्ति ऐसा था कि उसके आसपास कथाएं पैदा होंगी ही। उसके व्यक्तित्व से ढेर काव्य पैदा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain..

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

होंगे। लेकिन बहुत जल्दी काव्य काव्य नहीं रह जाएगा हमारी पकड़ में, हम उसे जोर से पकड़ लेंगे। और जब हम जोर से पकड़ लेंगे, तब कविता तो मर जाएगी और तथ्य निकालने की चेष्टा शुरू हो जाएगी। वहीं जाकर जीवन झूठे हो जाते हैं।

महावीर का, बुद्ध का, मुहम्मद का, जीसस का सारा जीवन झूठा हो गया। झूठे होने का कुल कारण इतना है कि जो काव्य था, जो कविता थी, और बड़े प्रेम में कही गई थी। और बहुत बार ऐसा होता है कि इतनी अनूठी हैं जीवन की घटनाएं कि उन्हें शायद तथ्यों में कहा ही नहीं जा सकता, उनके साथ हमें काव्य जोड़ना ही पड़ता है। और जब हम काव्य जोड़ते हैं, तभी कठिनाई हो जाती है।

जैसे मैंने यह कहा अभी, मुहम्मद के संबंध में कहानी है, कि जहां भी मुहम्मद जाते हैं, एक बदली सदा उनके ऊपर छया किए रहती है। अब जिन लोगों ने भी मुहम्मद को जाना है, जो उनके पास जिए होंगे, उनको लगा होगा कि ऐसे आदमी पर सूरज भी धूप करे, यह ठीक नहीं है। ऐसे आदमी पर बदली भी ख्याल रखे, यह बिलकुल ठीक है। यह बड़ा गहरा भाव है जो कवि ने, देखने वाले ने, प्रेम करने वाले ने फैला दिया है। और बदली पर वह फैला दिया है, जो उसके मन में था। जो उसके मन में था कि ऐसे आदमी पर बदली भी छाया करे, यह जरूरी है। यानी बदली भी उपेक्षा करे ऐसे आदमी की, यह बर्दाश्त के बाहर है। यह कविता तो ठीक थी, लेकिन फिर जब यह हम तथ्य की तरह पकड़ लेते हैं, तो बहुत कठिनाई हो जाती है, तब हम मुश्किल में पड़ जाते हैं।

तो मैं मानता हूं कि सभी महापुरुषों के, सभी उन अद्वितीय व्यक्तियों के आसपास हजार तरह के काव्य को जन्म मिलता है। उस काव्य को बाद के लोग इतिहास समझ लेते हैं और तब उन व्यक्तियों का जीवन ही झूठा हो जाता है। और अगर हम सिर्फ तथ्य लिखें, तो तथ्य इतने रूखे मालूम पड़ते हैं, कि महावीर जैसे व्यक्ति के आसपास तथ्य लिखें कैसे ? वे बिलकुल रूखे मालूम पड़ते हैं, उनमें कोई जान नहीं मालूम पड़ती, उन पर काव्य चढ़ाना ही पड़ता है, उन्हें काव्य देना ही पड़ता है, नहीं तो वे बड़े रूखे-सूखे हो जाते हैं।

जैसे समझें, एक व्यक्ति किसी स्त्री को प्रेम करता हो, तो प्रेम में वह ऐसी बातें कहता है, जो तथ्य नहीं हैं; लेकिन फिर भी सत्य है। और जरूरी नहीं कि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कोई चीज तथ्य न हो तो सत्य न हो, नहीं तो काव्य खत्म ही हो जाएगा, फिर काव्य का कोई सत्य ही नहीं रह जाएगा।

और कुछ लोग हैं ऐसे, जैसे प्लेटो। तो वह प्लेटो कहता है कि कवि नितांत झूठे हैं और दुनिया से जब तक कविता नहीं मिटती, तब तक झूठ नहीं मिटेगा! ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं कि कविता नितांत झूठी है

लेकिन उनसे उल्टे लोग भी हैं और उनकी पकड़ ज्यादा गहरी है, वे कहते हैं अगर कविता ही झूठी है तो फिर जीवन में कुछ सच ही नहीं रह जाता, फिर जीवन सब व्यर्थ है।

अब एक युवक एक युवती को प्रेम करता हो तो वह उससे कहता है कि तेरा चेहरा चांद की तरह है। अब यह बात बिलकुल अतथ्य है, फिक्शन है। इससे झूठी और कोई बात हो सकती है? किसी स्त्री का चेहरा और चांद की तरह कैसे हो सकता है? कहां चांद! अगर आइंस्टीन से जाकर कहो कि हम ऐसा मानते हैं कि एक स्त्री का चेहरा चांद की तरह है, तो वह कहेगा कि तुम पागल हो गए हो। चांद का इतना वजन है कि एक स्त्री क्या, सारी स्त्रियां पृथ्वी की इकट्ठी होकर उस वजन को नहीं झेल पाएंगी। तो स्त्री का चेहरा कैसे हो सकता है? और चांद पर बड़े खाई-खड्ड हैं। कहां का बेहूदा ख्याल तुम्हारे दिमाग में आया कि तुम एक स्त्री को चांद-सा बता रहे हो!

लेकिन जिसने कहा, वह फिर भी कहेगा कि नहीं, चेहरा तो चांद ही है। असल में वह कुछ और कह रहा है। वह यह कह रहा है कि चांद को देखकर जैसा लगता है—चांद से कोई मतलब ही नहीं है! चांद को देखकर मन में जो छाया छूट जाती है, चांद को देखकर आंख बंद कर लो और मन में जो चांदी की धार छूट जाती है, चांद को सोचो और जो शीतलता मन को घेर लेती है, चांद को सोचो और जो प्रकाश और आभा मन को तर कर देती है—किसी का चेहरा देखकर भी वैसा हो सकता है! चांद से कुछ लेना-देना नहीं है। और अगर किसी के चेहरे को देखकर किसी को ऐसा हुआ है तो वह हकदार है कि कहे कि उसका चेहरा चांद की भांति है। लेकिन इस कविता को अगर कभी गणित और विज्ञान की कसौटी पर कसने चले गए तो गलती में पड़ जाओगे।

इसलिए मैं इन सारी बातों को रूपक कथाएं कहता हूं, जिनके माध्यम से कुछ बातें कही गई हैं, जो कि शायद और माध्यम से कही ही नहीं जा सकतीं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जीसस से किसी ने पूछा कि आप कहानियां क्यों कहते हैं? आप सीधा क्यों नहीं कह
देते? तो जीसस ने कहा, सीधी बात समझने वाले लोग अभी पैदा कहां हुए
हैं? जो सीधी बात समझ जाएं। तो कहानी कहनी पड़ती है। फिर जीसस ने कहा,
कहानी कहने में एक और फायदा है, जो नहीं समझ पाते; उनका कोई नुकसान
नहीं होता है, जो नहीं समझ पाते, उनका कोई नुकसान नहीं होता, क्योंकि सिर्फ
एक कहानी उन्होंने सुनी है। लेकिन जो समझ पाते हैं, वह कहानी में से वह
निकाल लेते हैं, जो निकालना था।

और कभी-कभी सीधे सत्य नुकसान भी पहुंचा सकते हैं, अगर न समझ में
आएं तो कठिनाई में डाल सकते हैं।

क्योंकि उनको कहानी कहकर आप टाल नहीं सकते, तो वे आपकी जिंदगी
पर भारी भी हो सकते हैं। लेकिन कहानी है तो टाल भी देते हैं। लेकिन जो देख
सकता है, वह खोज लेता है।

कहानियां सत्यों को कहने का एक ढंग है—ऐसे ढंग से कि सत्य रूखा भी न
रह जाए, मृत भी न हो जाए, जीवंत हो जाए। लेकिन अगर नासमझ आदमी के
हाथ में कहानियां पड़ जाएं तो उनको सत्य बना ले सकता है और सत्य बनाकर
सारे व्यक्तित्व को झूठ कर दे सकता है। तो मैं उनको रूपक, कथाएं, बोध कथाएं
ही कहता हूं। उनमें बड़ा बोध छुपा है, लेकिन वे ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं।

प्रश्न : महावीर ने किसी दूसरे का सहारा लेने से इनकार कर दिया, सही बात
है, लेकिन साथ ही साथ प्रश्न यह उठता है कि जितना महत्त्वपूर्ण सहारा न लेना
है, उतना ही महत्त्वपूर्ण सहारा न देना भी होना चाहिए। लेकिन उनकी अभि-
व्यक्ति और उसके बाद फिर श्रावक, और श्रमण और यह सारी चीज है—
यह दूसरे को सहारा देने वाली बात हुई। तो इस पहलू पर क्यों नहीं विचार
किया गया कि मैं जब सहारा नहीं लेता हूं तो मैं सहारा देने वाला भी कौन हूं?

इसे भी समझना चाहिए। यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न
है—और साधारणतः ऐसा ही दिखाई पड़ेगा कि अगर कोई व्यक्ति सहारा नहीं
ले रहा है तो बिलकुल ठीक बात यह है कि वह किसी को सहारा भी न दे। ऐसा
बिलकुल ठीक दिखेगा, यह बिलकुल तर्कयुक्त मालूम पड़ेगा। लेकिन तर्क एकदम
भ्रांत है और फैलेसियस है। कहां है फैलेसी, कहां है भ्रांति—वह समझ लेनी
चाहिए।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जब हम यह कहते हैं कि सहारा नहीं लेना है तो इसका कुल मतलब इतना है, इसका कुल मतलब इतना है कि भीतर जाने में, जब भी मैं भीतर जाऊं तो मैं किसी को साथ नहीं ले सकता हूं। कोई साथ लेने का उपाय नहीं है भीतर जाने में। भीतर मुझे अकेला ही जाना पड़ेगा। अकेले ही जाना एकमात्र मार्ग है वहां पहुंचने का। इसलिए मैं सब सहारे इनकार करता हूं। लेकिन यह अगर बात मैं किसी को कहने जाऊं—यह बात कि किसी का सहारा मत लेना, क्योंकि सहारा लोगे तो भटक जाओगे, सहारा लोगे तो भीतर न जा सकोगे, यह बात अगर मैं किसी को कहने जाऊं तो एक अर्थ में मैं सहारा दे रहा हूं। एक अर्थ में मैं सहारा दे रहा हूं, और एक अर्थ में मैं सारे सहारे से उसको बचा रहा हूं। ये दोनों बातें हैं।

महावीर जो सहारा दे रहे हैं, वह इसी तरह का है। वह इसी तरह का सहारा है कि वह लोगों को कह रहे हैं कि मैं अकेला भीतर गया। जब तक मैंने सहारा पकड़ा, तब तक मैं भीतर नहीं गया। तुम भी तो कहीं सहारा नहीं पकड़े रहे हो ? अगर सहारा पकड़ रहे हो तो भीतर नहीं जा सकोगे—बेसहारे हो जाओ। इसे अगर हम कहें तो कह सकते हैं, सहारा तो दे रहे हैं वे, लेकिन सहारा वे यह दे रहे हैं कि तुम सहारा मत पकड़ लेना—मेरा भी मत पकड़ लेना !

तो कठिनाई जो है···कल भी यह बात उठी थी, कल वह यह कह रहे थे महेश योगी, कि अगर जो मैं कहता हूं तो फिर मुझे शिक्षक होने का कोई हक नहीं है। वह यह कह रहे थे कि अगर मैं खंडन करता हूं विधि का, तो फिर मुझे शिक्षक होने का कोई हक नहीं है। वह ठीक कह रहे थे। लेकिन फिर भी मैं कहता हूं कि मुझे हक है। क्योंकि मैं जो खंडन करता हूं विधि का, वह मैं कहना चाहता हूं लोगों से कि किसी विधि से तुम न जा सकोगे। यह जो कठिनाई है न, हमारी जो कठिनाई है, मैं यह कहना चाहता हूं लोगों से कि किसी विधि से, किसी मैथड से तुम न जा सकोगे। इतना मुझे कहना है।

और जो मैं दे रहा हूं, यह कोई मैथड नहीं है। यह जो मैं दे रहा हूं, यह कोई मैथड नहीं है। यह केवल मैं यह खबर कर रहा हूं कि इस मैथड के चक्कर में तुम मत पड़ जाना, नहीं तो भटक जाओगे, मैं भटका हूं। यह खबर मैं तुम्हें देता हूं। और यह मैं तुम्हें कोई मैथड नहीं दे रहा हूं, इसलिए एक अर्थ में मैं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शिक्षक नहीं हूं और एक अर्थ में मुझे शिक्षक होने का हक है। हक का मतलब सिर्फ इतना है कि मैं इतनी बात कहने का हकदार हूं कि मैं किसी को इतनी बात कह दूं—कि विधि से कोई कभी नहीं पहुंचता है, इसलिए तुम विधि मत पकड़ लेना। और मेरी बात भी मत पकड़ लेना, इसकी भी तुम खोज-बीन करना। क्योंकि इसको भी अगर तुमने पकड़ा तो यह तुम्हारी विधि हो जाएगी।

तो इसलिए मैं कहता हूं कि जिंदगी बहुत जटिल है, वहां सीधे··यूनान में एक तर्क चलता था। यूनान के नीचे सिसली छोटा-सा एक द्वीप है और वहां सोफिस्ट विचारक हुए, जो बड़े अद्भुत थे एक अर्थ में, और एक अर्थ में बिलकुल फिजूल थे। अद्भुत इस अर्थ में थे कि जितना तर्क उन्होंने किया, जगत में किसी ने भी नहीं किया। और फिजूल इस अर्थ में थे कि उन्होंने सिर्फ तर्क किया, और कुछ भी नहीं किया। तो वे प्रत्येक चीज को खंडित कर सकते थे और प्रत्येक चीज का समर्थन कर सकते थे। क्योंकि उनका कहना यह था कि कोई भी चीज ऐसी नहीं है, जो एक पहलू से खंडित न की जा सके और दूसरे पहलू से समर्थित न की जा सके। इसलिए वह कहते थे, यह सवाल ही नहीं है कि सत्य क्या है, सवाल यह है कि तुम्हारा दिल क्या है, तुम्हारी मर्जी क्या है ! तो वह कहते थे, हम पैसे से भी सत्य को सिद्ध करते हैं। उनको कोई नौकरी पर भी रख ले, तो वह जो कहेगा, वे उसको सही करेंगे, वह जो कहेगा, वे उसको सत्य सिद्ध कर देंगे ! और कल उनसे विपरीत आदमी उनको नौकरी पर रख ले तो वे उसकी बात सिद्ध कर देंगे !

उनका कहना यह था कि कोई चीज सिद्ध है नहीं, जिंदगी इतनी जटिल है कि उसमें सब पहलू मौजूद हैं। और तर्क देने वाला सिर्फ उस पहलू को जोर से ऊपर उठा लेता है, जो पहलू वह सिद्ध करना चाहता है; और शेष पहलुओं को पीछे हटा देता है, और कुछ भी नहीं करता।

लेकिन अगर हमें पूरी जिंदगी देखनी हो तो हमें ख्याल रखना पड़ेगा कि यह बात सच है कि किसी का सहारा कभी मत लेना, क्योंकि सहारा भटकाने वाला होगा। और यह बात तो फिर इसके साथ ही जुड़ गई कि मैं आपको सहारा दे रहा हूं यह बात कह कर—अब आप क्या करिएगा ? अब क्या करिएगा—तो वे कहते थे !

सिसली नीचे एक छोटा द्वीप है ! और सोफिस्ट एक उदाहरण लेते थे कि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सिसली से एक आदमी आया और उसने एथेंस में आकर कहा कि सिसली में सब लोग झूठ बोलने वाले हैं ! तो एक आदमी ने खड़े होकर उससे पूछा कि तुम कहां के रहने वाले हो ? उसने कहा, मैं सिसली का रहने वाला हूं। तो उसने कहा, हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए। तुम कहते हो सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग हैं—तुम सिसली के रहने वाले हो, तुम एक झूठ बोलने वाले आदमी हो—अब हम तुम्हारी बात को क्या करें ? और तुम कहते हो सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग हैं ! अगर हम यह बात मान लें तो सिसली में कम से कम एक आदमी है, जो सच बोलता है, और तुम्हारी बात गलत हो जाती है। अगर हम यह बात न मानें—अगर हम यह बात न मानें कि सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग हैं—अगर हम यह न मानें तो हम तुम्हें झूठ मानते हैं तो भी मुश्किल हो जाती है। तो एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि हम करें क्या ? अब उस अदमी को शायद कुछ भी नहीं सूझा होगा कि क्या करें, क्या कहें ?

जिंदगी इतनी जटिल है कि ये दोनों बातें सही हो सकती हैं। सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग हो सकते हैं, इस आदमी का वक्तव्य सही हो सकता है। क्योंकि यह हो सकता है कि सब लोग सब समय झूठ न बोलते हों !सब लोग झूठ बोलते हों, अलग-अलग समय झूठ बोलते हों ! सब मौकों पर झूठ न बोलते हों ! सब लोग झूठ बोलते हों, सब मौकों पर न बोलते हों ! इस मौके पर यह आदमी न बोल रहा हो ! जिंदगी इतनी जटिल है कि हम उसे जब कभी एक कोने से पकड़कर आग्रह करने लगते हैं, तभी हमारा आग्रह झूठ हो जाता है।

परसों कोई पूछ रहा था अनेकांत के लिए, तो इस संदर्भ में वह ख्याल में ले लेना जरूरी है। महावीर कहते हैं इस आग्रह को एकांत—कि जीवन के एक पहलू को पकड़कर कोई इस तरह दावा करे कि पूरी जिंदगी है ! तो वह कहते हैं, यह है एकांत, यह है एकांतवादी। इसने एक कोना देखा है और एक ही कोने को देखकर पूरी जिंदगी के मामले में निष्कर्ष निकाल लिए हैं ! इसने सब कोने अभी नहीं देखे। और महावीर कहते हैं, सब कोने अगर यह देख लेगा तो यह दावा छोड़ देगा। क्योंकि इसे ऐसे कोने मिलेंगे, जो ठीक इससे विपरीत हैं और इतने ही सही हैं, जितना यह सही है ! और तब यह दावा नहीं करेगा।

महावीर बड़े अद्भुत हैं। वह कहते हैं, सत्याग्रह भी गलत है, सत्य का आग्रह भी गलत है, क्योंकि वह भी एकांत है। क्योंकि सत्य के अनेक पहलू हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और सत्य इतनी बड़ी बात है कि ठीक एक सत्य से विपरीत सत्य भी सही मिल सकता है, और दोनों एक साथ सही हो सकते हैं !

इसलिए महावीर कहते हैं कि मैं अनेकांतवादी हूं। अनेकांतवादी का मतलब यह होता है कि जो सब एकांतों का स्वीकार करता है और सब एकांतों का एकांत की तरह अस्वीकार करता है। जो एक आदमी आकर महावीर को कहता है, आत्मा शाश्वत है कि अशाश्वत ? तो महावीर कहेंगे शाश्वत भी, अशाश्वत भी ! वह आदमी कहेगा, यह दोनों कैसे हो सकते हैं ? तो महावीर कहेंगे, किस कोन से खड़े होकर तुम देखते हो—अगर तुम शरीर को ही आत्मा समझते हो, जैसा कि नास्तिक समझता है, तो अशाश्वत है। अगर तुम आत्मा को शरीर से भिन्न समझते हो, परिवर्तन से भिन्न समझते हो, जैसा कि आत्मवादी समझता है,तो आत्मा शाश्वत है। और मैं कोई एक वक्तव्य न दूंगा, क्योंकि एक वक्तव्य एकांत होगा।

अनेकांत का अर्थ है कि जीवन के सभी पहलुओं की एक साथ स्वीकृति।

वह हम सब कहानी जानते हैं कि एक हाथी के पास पांच अंधे खड़े हो गए हैं। और जिसने पैर छुआ है, उसने कहा है कि हाथी खंभे की तरह है, केले के वृक्ष की तरह है ! जिसने कान देखे हैं, उसने कहा कि हाथी ! तुम पागल हो गए हो ! हाथी मैंने देखा है, छुआ है, जाना है—हाथी गेहूं साफ करने वाले सूप की तरह है ! और उन सबने अपने-अपने दावे किए हैं। और उनके कोई भी दावे गलत नहीं हैं ! और उनके सब दावे गलत हैं। क्योंकि हाथी न तो खंभे की तरह है, न सूप की तरह है ! ओर हाथी में कुछ है, जो सूप की तरह है और कुछ है, जो खंभे की तरह है !

महावीर कहते हैं कि अगर कोई आदमी दीया जलाकर वहां पहुंच जाए और उन पांच अंधों को विवाद करते देखे तो वह आदमी जिसने दीया जला लिया है, वह क्या करे ? वह किसका साथ दे ? वह किस वादी के साथ हो जाए—सूपवादी के साथ कि खंभवादी के साथ ? वह किस इज्म के साथ हो जाए—जिसने दीया जला लिया है ?

वह प्रत्येक अंधे से कहेगा, तुम ठीक कहते हो, लेकिन पूरा ठीक नहीं कहते हो। और वह प्रत्येक अंधे से कहेगा कि तुम्हारा···तुम, जिसे तुम विरोधी समझ रहे हो वह भी तुम्हारा विरोधी नहीं है—वह भी हाथी के एक अंग के बाबत

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बात कर रहा है, तुम भी एक अंग के बाबत बात कर रहे हो। और पूरा हाथी, तुम जो कहते हो उन सबका जोड़, और उससे ज्यादा भी है—सिर्फ जोड़ ही नहीं है। क्योंकि एक अंधे का अनुभव खंभे का और एक अंधे का अनुभव सूप का। अगर इन पांचों अंधों के अनुभव को भी हम जोड़ लें तो भी असली हाथी नहीं बनेगा। वह असली हाथी इन सबके अनुभव से ज्यादा भी है। क्योंकि कुछ तो ऐसा है, जो हाथी ही अनुभव कर सकता है कि वह क्या है, जिसको न अंधा अनुभव कर सकता, और न दीया जलाने वाला अनुभव कर सकता है। यानी पूरी तरह देख लो हाथी को, तो भी हाथी कैसा अनुभव करता है, यह हम कभी अनुभव नहीं कर सकते। वह भी एक अनुभव है। और हो सकता है हाथी का वह अनुभव —अगर हाथी कभी कह सके, तो न पांच अंधों से मेल खाए और न दीया जलाने वाले से मेल खाए—हाथी को जो अनुभव होता हो।

तो महावीर यह कहते हैं कि अनुभव के अनंत कोण हैं। और प्रत्येक कोण पर खड़ा हुआ आदमी सही है। बस, भूल यहां हो जाती है कि वह अपने कोण को सर्वग्राही बनाना चाहता है, आल कांप्रिहेंसिव कर लेता है। वह कहता है, यहां जो मैंने जाना, वही सब ठीक है। और हम जल्दी करते हैं इस बात की। इसकी जल्दी होती है हमारे मन में। क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि अगर हमने एक ही कोना जान लिया और पूरी तरह से जान लिया तो हम सोचते हैं, बस जानना पूरा हो गया !

यहां समझ लें कि एक बिजली का बल्ब जला हुआ है। उस बिजली के बल्ब को बुझाना हो तो एक आदमी डंडे से बल्ब को चोट कर दे तो बल्ब बुझ जाएगा। दूसरा आदमी कैंची लाए और वायर को काट दे, बल्ब बुझ जाएगा। तीसरा आदमी बटन दबा दे, बल्ब बुझ जाएगा। और प्रत्येक आदमी जाकर यह कह सकता है—जिस आदमी ने कैंची से वायर काटा, वह कह सकता है कि बिजली वायर थी, काटी कि गई। जिस आदमी ने बल्ब फोड़ दिया, वह कह सकता है, बिजली बल्ब थी, फोड़ी कि गई। तीसरा आदमी कहता है, बटन बिजली थी, दबाई कि खतम हुआ। और यह भी हो सकता है, बटन भी न दबे, बल्ब भी न फूटे, तार भी कायम रहे और बिजली खो जाए। किसी ने यह भी देखा हो तो वह कहे कि इस सबमें कोई भी बिजली नहीं है। क्योंकि यह सब बरकरार थीं और मैंने देखा कि एक दिन बिजली नहीं थी। ये तारें आपकी अपनी-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अपनी दृष्टि से बिलकुल ही ठीक कहते हैं। और प्रत्येक की दृष्टि ऐसी लगती है कि दूसरे की दृष्टि के विरोध में है !

लेकिन महावीर यह कहते हैं कि विरोधी दृष्टि ही नहीं है—अनेकांत का मतलब यह है—महावीर यह कहते हैं; विरोधी दृष्टि ही नहीं है, सब कांप्लीमेंटरी विजंस हैं। यह बड़ी अद्भुत बात है। वह यह कहते हैं कि विरोधी जैसी कोई चीज नहीं है—कि विरोधी जैसी कोई चीज ही नहीं है, कंट्राडिक्टरी कोई है ही नहीं—सब कांप्लीमेंटरी व्यूज हैं ! और सब एक-दूसरे के परिपूरक हैं और सब एक ही सत्य के कोने हैं ! यह बात कभी किसी आदमी ने नहीं कही थी : 'विरोधी दृष्टि ही नहीं है !'

जो हमें विरोधी दिखाई पड़ रही है, वह सिर्फ हमारी सीमित दृष्टि के कारण विरोधी दिखाई पड़ रही है ! अगर हम पूरे को देख सकें तो वह विरोधी नहीं रह जाने वाली है, वह भी एक सहयोगी दृष्टि है, कांप्लीमेंटरी है। पूरे सत्य को वह भी घेरती है।

और फिर भी महावीर कहते हैं कि सब दृष्टियां हम जोड़ लें, तब भी सत्य पूरा नहीं हो जाता; क्योंकि और दृष्टियां हो सकती हैं, जो हमारे ख्याल में ही न हों। तो इसलिए अनेक की संभावना रखते हैं वह, एक का आग्रह नहीं करते।

और उस युग में उनके कम-से-कम प्रभाव पड़ने का कारण यही था। बुद्ध की एक दृष्टि है, उनकी दृष्टि पक्की है। वह अपनी दृष्टि पर बिलकुल सख्ती से खड़े हैं। उस दृष्टि में वह इंच मात्र यहां-वहां नहीं हिलते। और जब कोई आदमी सख्ती से एक दृष्टि पर बात करता है तो लोगों को अपील भी होती है, क्योंकि लगता है कि वह आदमी कुछ जानता है, ढीला-ढाला नहीं है दिमाग उसका, हर किसी बात में हां नहीं कह देता, हर किसी बात में ना नहीं कह देता; बहुत साफ विजन है।

अब यह बड़े मजे की बात है, साफ विजन जिसको हम कहते हैं, वह एकांतवादी होता है ! क्योंकि वह एक बात बिलकुल पक्की कह देता है कि बिलकुल सूप जैसा है हाथी, इसमें रत्ती भर गुंजाइश नहीं है शक की। और जो इससे अन्यथा कहता है, वह पागल है, नासमझ है, अज्ञानी है, मूढ़ है; वह साफ कह देता है। वह बिलकुल पक्का है। उसने हाथी को सूप की तरह जाना है और बात खत्म हो गई है !

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेकिन एक आदमी है, जो कहता है, हां, हाथी सूप की तरह भी है; हां, हाथी सूप की तरह नहीं भी है ! हा, हाथी खंभे की तरह भी है, हाथी खंभे की तरह नहीं भी है ! जो सब दृष्टियों में कहता है : हां ! ऐसा भी है, हां, ऐसा नहीं भी है···!

मेरे पिता हैं, मुझे निरंतर बचपन में उनसे बहुत परेशानी रही। मेरी समझ के ही बाहर था। मेरे घर में सब तरह के लोग थे : नास्तिक भी थे घर में मौजूद, कोई कम्युनिस्ट भी था, कोई सोशलिस्ट था, कोई कांग्रेसी था। बड़ा परिवार, उसमें सब तरह के लोग थे। घर पूरी की पूरी एक जमात थी, जिसमें सब तरह के लोग थे ! और अपनी-अपनी दृष्टि पर बड़े पक्के लोग थे। और जिसको ठीक समझते थे, उसको ठीक ही समझते थे; जिसको गलत समझते थे, उसको गलत ही समझते थे! इसमें कोई समझौता का उपाय भी न था !

और मैं बड़ा हैरान था कि मेरे पिता को अगर जाकर कोई कहे कि ईश्वर नहीं है, वह कहेंगे कि ठीक कहते हो ! और कोई कहे ईश्वर है तो वह कहेंगे कि ठीक कहते हो ! यह मैंने बहुत बार सुना उनके मुंह से, सब तरह की बात में स्वीकृति देखी, तो मैंने उनसे पूछा कि यह बात क्या है ? आप सब बातों को स्वीकार कर लेते हो, यह तो बड़ी मुश्किल बात है ! या तो हम सब नासमझ हैं कि हमारी किसी बात पर आपको कोई··हम इस योग्य नहीं हैं कि आप उसको इनकार करें—सब ठीक कैसे हो सकते हैं ?

उन्होंने कहा कि सत्य बहुत बड़ा है। इतना बड़ा है कि वह सबको समा लेता है। उसमें आस्तिक भी समा जाता है और नास्तिक भी। और सत्य अगर इतना छोटा है कि उसमें सिर्फ आस्तिक समाता है, तो ऐसे सत्य की कोई जरूरत नहीं है, बहुत छोटा है, अत्यंत संकीर्ण है। और सत्य संकीर्ण कैसे हो सकता है ? सत्य होगा विराट, उसमें सब समा जाएंगे, इसलिए सबके लिए हां कहा जा सकता है। और कोई चाहे तो सबके लिए ना भी कह सकता है ! ना इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे को नहीं घेरेगा और हां इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे सत्य का हिस्सा होगा। और इसलिए जो जानता है, वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा कि वह क्या कहे ! हां कहे कि ना कहे —या दोनों कहे, या चुप रह जाए ?

तो महावीर की जो स्थिति है, वह ऐसी लगी है उस समय लोगों को, कि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जैसे कन्फ्यूज्ड हैं, महावीर साफ नहीं मालूम पड़ते—हर किसी बात में हां कहते हैं, हर किसी में ना कहते हैं ! इसका मतलब है : या तो इन्हें पता नहीं है, या पता है तो साफ-साफ पता नहीं है । तो पता नहीं, यह लोगों के साथ क्या करना चाहते हैं, किस तरह की बातें कहते हैं ! इसलिए महावीर का विचार सार्वलौकिक नहीं बन पाया, सारे जगत में प्रचारित नहीं हो सका ।

आज जब जीसस, मुहम्मद, कृष्ण, बुद्ध का या कन्फ्यूशियस का नाम लिया जाता है तो अक्सर ही साथ में महावीर का नाम नहीं लिया जाता है ! महावीर का नाम छोड़ दिया जाता है ! महावीर कोई अंतर्राष्ट्रीय नाम नहीं है अभी भी ! करोड़ों लोग मिल जाएंगे पृथ्वी पर, जो महावीर के नाम को कभी नहीं सुने हैं !

यह बड़ी हैरानी की बात है। इतना अद्भुत व्यक्ति, इतने कम लोगों तक उसकी खबर पहुंची हो, कुछ गहरा कारण है । और वह गहरा कारण यह कि महावीर वादी नहीं हैं। और जो वादी नहीं है, उसकी बात हमारी समझ में आना बहुत मुश्किल हो जाएगी । वह सुबह कुछ, सांझ कुछ, दोपहर कुछ मालूम पड़ेगा । उसका हर वक्तव्य दूसरे वक्तव्य का विरोधी मालूम पड़ेगा ! वह सेल्फ-कंट्राडिक्शन से भरा हुआ मालूम पड़ेगा कि कभी यह आदमी यह कह देता है, कभी यह कह देता है ! हम कंसिस्टेंट आदमी चाहते हैं। हम चाहते हैं सुसंगत; जो बात कहे, फिर वही कहता रहे ।

टॉलसटाय ने कहीं कहा है कि जब मैं जवान था तो मैं सोचता था कि कंसिस्टेंट विचारक ही असली विचारक है, जो बिलकुल सुसंगत बात कहता है । एक चीज कहता है तो उसके विरोध में कभी दूसरी बात नहीं कहता । लेकिन अब जब मैं बूढ़ा हो गया हूं तो मैं जानता हूं कि जो सुसंगत है, उसने विचार ही नहीं किया । क्योंकि जिंदगी सारे कंट्राडिक्शन से भरी है । जो विचार करेगा, उसके विचार में भी कंट्राडिक्शंस आ जाएंगे—आ ही जाएंगे । वह ऐसा सत्य नहीं कह सकता, जो एकांगी, पूर्ण और दावेदार हो । उसके प्रत्येक सत्य की घोषणा में भी झिझक होगी । लेकिन झिझक उसके अज्ञान की सूचक बन जाएगी, जबकि झिझक उसके ज्ञान की सूचक है !

अज्ञानी जितनी तीव्रता से दावा करता है, उतना ज्ञानी के लिए करना बहुत मुश्किल है ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

असल में अज्ञान सदा दावा करता है, दावा कर सकता है। क्योंकि समझ इतनी कम है, देखा इतना कम है, जाना इतना कम है, पहचाना इतना कम है कि उस कम में वह व्यवस्था बना सकता है। लेकिन जिसने सारा जाना है और जिंदगी के सब रूप देखे, उसे व्यवस्था बनानी मुश्किल हो जाती है।

महावीर के अनेकांत का यही अर्थ है कि कोई दृष्टि पूरी नहीं है, कोई दृष्टि विरोधी नहीं है, सब दृष्टियां सहयोगी हैं और सब दृष्टियां किसी बड़े सत्य में समाहित हो जाती हैं।

और जो बड़े सत्य को जानता है, जो विराट सत्य को जानता है—न वह किसी के पक्ष में होगा, न वह किसी के विपक्ष में होगा। ऐसा व्यक्ति ही निष्पक्ष हो सकता है।

यह बड़े मजे की बात है कि सिर्फ अनेकांत की जिसकी दृष्टि हो, वही निष्पक्ष हो सकता है।

और इसलिए मैं कहता हूं कि जैनी अनेकांत की दृष्टि वाले लोग नहीं हैं। क्योंकि वे पक्षधर हैं, उनका पक्ष है, उनकी प्रिज्युडिस है। वे कहते हैं : हम महावीर के पक्ष में हैं!

और महावीर का कोई पक्ष नहीं हो सकता। क्योंकि अनेकांत जिसकी दृष्टि है, उसका पक्ष कहां? सब पक्ष उसके हैं, कोई पक्ष उसका नहीं है। पक्षों में अनुस्यूत सत्य उसका है, लेकिन किसी पक्ष का दावा उसका नहीं है। तो महावीर का पक्ष कैसे हो सकता है?

महावीर को दोहरे नुकसान पहुंचे। पहला नुकसान तो यह पहुंचा कि बहुजन तक उनकी बात नहीं पहुंच सकी। दूसरा नुकसान यह पहुंचा कि जिन तक उनकी बात पहुंची, वे पक्षधर हो गए! तो कुछ मित्र न बन पाए, और जो मित्र बने, वह शत्रु सिद्ध हुए! यह इतनी दुर्घटनापूर्ण बात है कि एक तो मित्र न बन पाए बहुत, क्योंकि बात ऐसी थी कि इतने मित्र खोजने मुश्किल थे। जो मित्र बने, वह शत्रु सिद्ध हुए, क्योंकि वह पक्षधर हो गए! और महावीर पक्ष-धरता के विपरीत हैं।

अब यह बड़े मजे की बात है कि अनेकांत को भी उनके अनुयायियों ने अनेकांतवाद नाम दे दिया!

अनेकांत का मतलब है, वाद का विरोध।

अनेकांत का मतलब है, वाद नहीं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

क्योंकि वाद हमेशा पक्ष होगा, दृष्टि होगी, नय होगा, एक दावा होगा। वाद का मतलब ही होता है: दावा। अनेकांत को वाद जोड़ देना, फिर दावा शुरू हो गया। यानी फिर अनेकांत के पीछे चलने वाले लोगों ने एक नया दावा बनाया, और जबकि वह दावे का विरोध था!

तो इसी ख्याल में यह भी समझ लेना चाहिए कि महावीर शायद हजार-दो हजार वर्ष बाद पुनः प्रभावी हो सकें, उनका विचार फिर बहुत लोगों के काम में आ सके। क्योंकि जैसे-जैसे दुनिया आगे बढ़ रही है, एक बहुत अद्भुत घटना घट रही है। वह यह है कि वादी चित्त नष्ट हो रहा है—वादी चित्त रोज-रोज नष्ट हो रहा है। पक्षधर रोज-रोज बेमानी होता जा रहा है। और जितनी बुद्धिमत्ता और विवेक बढ़ रहा है, उतना ही आदमी निष्पक्ष होता चला जा रहा है!

संप्रदाय जाएगा, वाद जाएगा—आज नहीं कल, ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं है।

जिस दिन वाद चला जाएगा, उस दिन हो सकता है कि आज जो नाम बहुत महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ते हैं, वह कम महत्त्वपूर्ण हो जाएं; और जो नाम आज तक एकदम ही गैर महत्त्व का मालूम पड़ा है, वह एकदम पुनः महत्त्व स्थापित कर सकता है।

लेकिन जैन अगर महावीर के पीछे पड़े रहे तो महावीर के विचार की क्रांति सब लोगों तक कभी भी नहीं पहुंच सकती है। यानी महावीर के आस-पास जो पक्षधर लोग इकट्ठे हो गए है, उन्होंने महावीर की गर्दन घोंट दी है।

प्रश्नः आंतरिक जीवन में असुरक्षा का भाव काफी कठिन है, लेकिन वह कर सकेंगे? व्यावहारिक जीवन में या सामान्य जीवन में वह असुरक्षा का भाव कैसे प्रयोग किया जा सकता है? जैसे कि बिजनेस है या सर्विस है, या जो बाह्य जीवन है, इसमें असुरक्षा का भाव कैसे प्रयोग कर सकते हैं?

समझा मैं। असल में सवाल बाहर और भीतर का नहीं है, सवाल इस बात का है, इस सत्य को जानने का कि हम असुरक्षित हैं। आपको कोई असुरक्षा का भाव ही नहीं करना है, यह तथ्य है, यह सिर्फ एक फैक्ट है कि हम असुरक्षित हैं।

क्या सुरक्षित है—बाहर या भीतर, या कहीं भी? संबंध सुरक्षित हैं?

नहीं हैं सुरक्षित।

कल जो अपना था, वह आज भी अपना होगा, यह पक्का है? जो आज

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अपना है, वह कल सुबह अपना होगा, यह पक्का है ?

कुछ भी पक्का नहीं है।

सम्मान सुरक्षित है ?

जरा भी सुरक्षित नहीं है।

कल जिसके पीछे भीड़ थी—आज वह आदमी जिंदा है या मर गया; इसका भी कोई पता नहीं चलता।

कौन-सी चीज सुरक्षित है ? धन सुरक्षित है ?

असुरक्षा भाव नहीं है, बल्कि असुरक्षा इस सत्य का बोध है कि जीवन असुरक्षित है।

जैसा जीवन है, वह असुरक्षित है।

न जन्म का भरोसा, न जवानी का भरोसा, न शरीर का भरोसा, किसी भी चीज का कोई भरोसा नहीं है।

इस सत्य का बोध और इस सत्य के बोध के साथ जीना—भीतर, बाहर; दोनों तलों पर।

मैं यह नहीं कहता हूं कि एक आदमी मकान न बनाए। मैं यह कहता हूं कि मकान बनाते वक्त भी जाने की असुरक्षा खत्म नहीं होती, असुरक्षा अपनी जगह खड़ी है; मकान रहे तो, मकान न रहे तो। ज्यादा से ज्यादा जो फर्क पड़ता है, वह इतना कि जिसके पास मकान नहीं है, उसे असुरक्षा प्रतीत होती है और जिसके पास मकान है, उसे प्रतीत नहीं होती—लेकिन वह खड़ी अपनी जगह है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ गया।

गरीब भी असुरक्षित है, अमीर भी, लेकिन अमीर को सुरक्षा का भ्रम पैदा होता है ! तो यह मैं नहीं कहता हूं—यह मैं नहीं कहता हूं कि परिवार न बसाएं, कि विवाह न करें, कि मित्र न बनाएं—यह मैं नहीं कहता हूं। यह जानते हुए कि सब असुरक्षित है—और तब आपकी क्लिंगिंग नहीं होगी, तब आप जी-जान से नहीं पकड़ लेंगे, क्योंकि आप जानते हैं कि न पकड़ो या पकड़ो, असुरक्षा अपनी जगह खड़ी है ! तब धन भी होगा तो आप धनी नहीं हो पाएंगे, क्योंकि धनी होने का कोई कारण नहीं है। तब धन भी होगा, आप दरिद्र बने रहेंगे, क्योंकि आप जानते हैं कि दरिद्रता अपनी जगह खड़ी है, वह धन से नहीं मिट जाती। तब कितना ही अच्छा स्वास्थ्य होगा तो भी मौत भूल नहीं जाएगी, क्यों-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कि आप जानेंगे। अच्छे और बुरे स्वास्थ्य का सवाल नहीं है—मौत है, वह खड़ी है। वह बीमार के लिए भी खड़ी है, स्वस्थ के लिए भी खड़ी है। असुरक्षा का बोध, अवेयरनेस आफ इनसिक्योरिटी—असुरक्षा की भावना नहीं। यानी आपको करनी नहीं है, यह करने का सवाल ही नहीं है। मजा तो यह है कि हम सुरक्षा की भावना कर-करके असुरक्षा के बोध को मिटाते हैं और असुरक्षा सत्य है !

अभी भावनगर में था तो एक चित्रकार को मेरे पास लाए। वह कई वर्ष अमेरिका रहकर लौटा और बड़ी प्रतिभा का युवक है। लेकिन परेशान हो गए हैं—मां-बाप, पत्नी परेशान हैं ! वे सब मेरे पास आए—पत्नी, मां-बाप। बूढ़े हैं और एक ही लड़का है और उसी पर सब लगा दिया है ! और अब बड़ी मुश्किल हो गई है ! उन्होंने मुझे आकर कहा कि हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं, हमारा लड़का बिलकुल ही व्यर्थ की असुरक्षाओं से परेशान है, व्यर्थ के भय इसे पीड़ित किए हुए हैं, जो कभी नहीं होना उसके साथ—यह मरा जा रहा है ! क्या हुआ ? यह लड़का अगर बाहर जाए, किसी को अंधा देख ले, तो एकदम घर लौट आता है, बिस्तर पर लेट जाता है, कंपने लगता है। और कहता है, कहीं मैं अंधा तो नहीं हो जाऊंगा ! अब बताइए, उसकी मां और पिता मुझे कहने लगे यह क्या पागलपन है ? कोई मर जाए पड़ोस में तो उसकी हमें फिक्र नहीं होती, जितनी हमें इसकी फिक्र होती है कि इसको पता न चल जाए। क्योंकि इसे पता चला कि यह दो-चार दिन के लिए बिलकुल ठंडा हो जाता है और कहता है कि मैं मर तो नहीं जाऊंगा !

हम समझा-समझा कर परेशान हो गए, उन्होंने मुझे कहा। अमेरिका में उसका मनोविश्लेषण भी करवाया, उससे भी कुछ हित नहीं हुआ। हिंदुस्तान के भी कुछ डाक्टरों को दिखा चुके हैं, उससे कुछ फायदा नहीं हुआ। जिसके पास भी ले जाते हैं वह कहता है, ये फिजूल के भय हैं।अभी तुम पूरे जवान हो, कहां मर जाओगे ? तुम्हारी आंखें बिलकुल ठीक हैं। हम परीक्षाएं करवा देते हैं आंख की, आंख तुम्हारी बिलकुल ठीक है। वह कहता, यह सब तो ठीक है; लेकिन क्या यह पक्का है कि आंख ठीक हो तो अंधा नहीं हो सकता आदमी ? क्या यह बिलकुल पक्का है कि आदमी जवान हो तो नहीं मरता ? वह यह कहता है, यह हम सब समझ जाते हैं ; लेकिन फिर भी भय पकड़ता है। एक आदमी लगड़ा हो गया है तो मुझे डर लगता है मैं लंगड़ा तो नहीं हो जाऊंगा ?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और वह युवक मेरे पास बैठा है, वह इतना डरा हुआ है ! मैंने उसके पिता को, उसकी मां को और उसकी पत्नी को कहा कि तुम सरासर झूठी बातें इस युवक को सिखा रहे हो, एकदम झूठी। वह युवक बिलकुल ठीक कह रहा है। मैंने इतना कहा कि वह युवक जो सिर झुकाए, रीढ़ नीची किए बैठा था, उसकी रीढ़ ऊंची हो गई, उसने सिर ऊंचा किया ! उसने मुझे गौर से देखा। उसने कहा, क्या कहते हैं आप, मैं ठीक कहता हूं ? मैंने कहा, तुम ठीक कहते हो। आंख का कोई भरोसा नहीं, जिंदगी का भी कोई भरोसा नहीं। और तुम्हारे मां-बाप सरासर झूठ बोलकर तुममें एक भ्रम पैदा करवाना चाहते हैं। जबकि सच तुम्हीं कहते हो, ये बिलकुल झूठ कहते हैं। तुम बिलकुल ठीक कहते हो।

लेकिन मैंने कहा कि तुम इससे भागना क्यों चाहते हो ? भाग कहां सकते हो ? क्या तुम मरने से बच सकते हो ? कोई रास्ता है बचने का ? उसने कहा, कैसे बच सकता हूं ? तो फिर मैंने कहा, फिर मृत्यु की स्थिति है, इसको स्वीकार कर लेना चाहिए। जिससे बच ही नहीं सकते, वह है, तो फिर इसमें चिंता की क्या बात है ? तो उसने कहा, नहीं ऐसी चिंता की बात नहीं मालूम होती, लेकिन यह सब मुझे समझाते हैं कि नहीं, यह बात ही झूठ है, तो मैं द्वंद्व में पड़ जाता हूं। उधर तो मुझे लगता है कि मौत होगी और ये लोग कहते हैं कि नहीं— नहीं होगी तो मैं द्वंद्व में पड़ जाता हूं, मैं परेशानी में···।

आप कहते हैं, मौत होगी ? मैंने कहा, वह बिलकुल पक्का है। कल सुबह भी पक्का नहीं कि तुम जिंदा उठोगे। इसलिए आज की रात मिली है, ठीक से सो जाओ, कल सुबह का कोई भरोसा नहीं।

मैंने उससे पूछा कि तुम्हें आंख जाने का डर क्या है ? तो उसने कहा, फिर मैं पेंट कैसे कर पाऊंगा ? अगर मेरी आंख चली गई तो मैं पेंट कैसे करूंगा ?

तो मैंने कहा, जब तक आंख है, तब तक तुम पेंट कर लो, क्योंकि आंख का कोई भरोसा नहीं, कल न भी हो। तो जब तुम्हारी आंख नहीं होगी, तब तुम पेंट नहीं कर सकोगे। अभी तुम्हारी आंख है तो तुम उससे पेंट नहीं कर रहे हो, और आंख नहीं होगी इस चिंता में नष्ट किए दे रहे हो ! वह तो है पक्का, आंख खत्म हो सकती है। अगर यह पक्का है तो तुम शीघ्रता से पेंट करो, क्योंकि आंख खो जाएगी। और दुनिया में कोई तुम्हें भरोसा नहीं दिलवा सकता। मैं तुम्हें कोई भरोसा नहीं दिलवाता।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मां-बाप लाए थे मेरे पास इसलिए कि मैं उसे आश्वासन दे दूं, वे तो बहुत घबड़ा गए कि आप यह क्या कह रहे हैं ? हम तो और मुश्किल में पड़ जाएंगे। मैंने कहा, मुश्किल में आप नहीं पड़ेंगे। वह युवक दूसरे दिन सुबह मेरे पास आया, उसने कहा कि चार साल बाद मैं पहली दफा सो पाया ! क्योंकि जब मैंने कहा ऐसा है, और ऐसा हो सकता है, तो अब क्या सवाल है ? अब ठीक है, बात खत्म हो गई।

संघर्ष कहां है—अगर मौत है और उसकी स्वीकृति है तो संघर्ष कहां है ?

नहीं, मौत है और स्वीकृति नहीं है !

तो हम मौत नहीं है—ऐसे भाव पैदा करते रहते हैं ! और इस तरह की व्यवस्था करते हैं कि पता ही न चले कि मौत है। मरघट गांव के बाहर बनाते हैं, इसलिए कि ऐसा पता न चले कि मौत जिंदगी का कोई हिस्सा है—जिंदगी के बाहर ! गांव में किसी को पता ही नहीं चलता कि कोई मरता है !

मरघट होना चाहिए गांव के ठीक बीच में, जहां से दिन में दस दफे निकलना पड़े आदमी को, और दस दफे खबर आए कि मौत खड़ी है। उसको बनाते हैं गांव के बाहर, ताकि किसी को पता ही न चले कि मौत है ! हां, जब कोई मर जाए तो उसको भेज आते हैं, लेकिन जिंदा आदमी को बचाते हैं।

कोई मर जाए, रास्ते से अर्थी निकलती हो तो बच्चे को मां घर के भीतर बुला लेती है, दरवाजा बंद कर देती है कि अर्थी निकलती है, बेटा, भीतर आ जाओ ! जबकि मां में थोड़ी समझ हो तो सब बच्चों को बाहर ले आना चाहिए कि बेटा, अर्थी निकलती है इसको ठीक से देख लो। कल मैं मरूंगी, परसों तुम मरोगे। यह जीवन का सत्य है, इससे भागने का, बचने का कोई उपाय नहीं है।

असुरक्षा के बोध का यह मतलब है कि उसके अंदर पूरी कांशसनेस होनी चाहिए, वह अचेतन में दबा न रह जाए, चेतन में हमें ख्याल में हो तो हमारी जिंदगी बिलकुल दूसरी होगी। कुछ जो-जो चल रहा है, उसमें कुछ फर्क नहीं आ जाएगा, लेकिन आप बिलकुल बदल जाएंगे।

आप बिलकुल बदल जाएंगे। आपकी पकड़ बदल जाएगी, आसक्ति बदल जाएगी, राग बदल जाएगा, द्वेष बदल जाएगा। आप आदमी दूसरे हो जाएंगे, क्योंकि क्या राग करना, क्या द्वेष करना। अगर जिंदगी इतनी असुरक्षित है तो यह सब पागलपन का क्या अर्थ है ? क्या ईर्ष्या करनी। क्या आकांक्षा करनी !

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

क्या महत्त्वाकांक्षा ! वह बोध आपकी इन सारी चीजों को मिटा जाएगा।

यानी मेरा सारा जोर इस बात पर है कि अगर हम जीवन के तथ्य को देख लें तो हम सत्य की तरफ अपने आप गति कर जाएंगे।

हम क्या किए हैं कि तथ्य तक को झुठला दिया है ! सब तरफ से लीप-पोत-कर ऐसा कर दिया है कि वह तथ्य ही नहीं रहा है ! और झूठ से सत्य की यात्रा नहीं हो सकती। तथ्य से सत्य तक जाया जा सकता है, लेकिन तथ्य को छिपाकर, बदलकर, तोड़-मरोड़कर, परवर्ट करके हम कभी सत्य तक नहीं जा सकते।

महावीर भी उसी को संन्यास कहते हैं। लेकिन अब जिसको हम संन्यासी कहते हैं, वह हमारा बिलकुल उल्टा आदमी है। संन्यासी हमारे गृहस्थ से आज ज्यादा सुरक्षित है ! गृहस्थ का दिवाला निकल सकता है, संन्यासी का कोई दिवाला निकलने का कोई सवाल ही नहीं है ! गृहस्थ के ऊपर हजार चिंताएं और झंझटें हैं। संन्यासी के ऊपर चिंताएं और झंझटें भी नहीं हैं ! संन्यासी बिलकुल सिक्योर्ड है। अगर आज संन्यासी को हम दखें तो आज उल्टी बात दिखाई पड़ती है वह यह, कि संन्यासी ज्यादा सुरक्षित है। न बाजार के भाव से कोई चिंता है, न किसी बात से कोई चिंता है, न कोई दिक्कत है, न कोई कठिनाई है ! खाने-पीने का इंतजाम है, भक्त हैं, समाज है, मंदिर है, स्थानक है—सब इंतजाम है, आश्रम है—सब इंतजाम है ! संन्यासी इस समय सबसे ज्यादा सुरक्षित हालत में है !

जबकि संन्यासी का मतलब यह है कि जिसने सुरक्षा का मोह छोड़ दिया, जो इस बोध के प्रति जाग गया कि सब असुरक्षित है। और जब सुरक्षा के ख्याल में भी नहीं रहा है···अब जो जीने लगा—असुरक्षा में ही जीने लगा ! कल की बात ही नहीं करता, भविष्य का विचार ही नहीं करता, योजना नहीं बनाता, बस क्षण-क्षण जीए चला जाता है। जो होगा होगा, वह उसके लिए राजी है। मौत—तो राजी है, जीवन—तो राजी है, दुख—तो राजी है, सुख तो राजी है। ऐसी चित्त दशा का नाम रिननसियेशन या संन्यास है। और ऐसा व्यक्ति अगृही है।

अगर बहुत गहरे में खोजने जाएं तो सुरक्षा गृह है, असुरक्षा अगृह है। सुरक्षा में जीने वाला, सुरक्षा की व्यवस्था करने वाला गृहस्थ है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सुरक्षा में न जीने वाला, असुरक्षा की स्वीकृति में जीने वाला संन्यस्थ है, अगृही है।

इसमें एक प्रश्न किसी ने पूछा है कि महावीर ने संन्यासियों से यह क्यों कहा कि तुम गृहस्थों की विनय मत करना ? उनको तुम नमस्कार मत करना, उनका तुम आदर मत करना, ऐसी बात क्यों महावीर ने कही ?

इसे संन्यासी और गृहस्थ के बीच बना लेने से गलती हो जाती है। असल में अगर हम बहुत गौर से देखें तो जो असुरक्षित व्यक्ति है, जो ऐसे जी रहा है, जैसे हवा-पानी जीता है। वह जो सुरक्षा के भ्रम में और सपने में और नींद में खोया है···यह ऐसा ही है कि जैसे कोई कहे जागे हुए आदमी को, कि तू सोए हुए आदमी को नमस्कार मत करना !

यह ऐसा ही है, जैसे कोई कहे जागे हुए आदमी को कि सोए हुए आदमी को नमस्कार मत करना। क्योंकि बिलकुल बेकार है, आदमी सोया हुआ है। सोए हुए को आदर मत देना, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि आदर उसके सोए हुए होने को और बढ़ाए। तो लगता तो ऐसा है···

लेकिन महावीर के पीछे आने वाले साधुओं ने दूसरा ही मतलब निकाला है ! उन्होंने इसे बिलकुल अहंकार की प्रतिष्ठा बना लिया है ! यानी वे कुछ ऊंचे हैं, अहंकार में प्रतिष्ठित हैं, सम्मानित हैं, पूज्य हैं, दूसरे को उनकी पूजा करनी है !

लेकिन बड़े मजे की बात है कि महावीर ने यह कहीं नहीं कहा कि साधु गृहस्थ से पूजा ले। संन्यासी गृहस्थ से विनय मांगे, यह भी कहीं नहीं कहा है। कहा इतना है कि गृहस्थ को अगृही विनय न दे। क्योंकि गृहस्थ से मतलब ही इतना है कि जो अज्ञान में घिरा हुआ खड़ा है। इसके अज्ञान को तोड़ना है तो इसके अहंकार की तृप्ति को जगह-जगह से गिराना जरूरी है, इसके अहंकार को बढ़ाना उचित नहीं है।

अहंकार न बढ़ जाए गृही का इसलिए महावीर कहते हैं, साधु उसे विनय न करे।

लेकिन उन्हें पता नहीं था शायद कि उनका साधु ही इसको अहंकार का पोषण बना लेगा और साधु ही इस अहंकार में जीने लगेगा कि उसे पूजा मिलनी चाहिए और वह अविनीत हो जाएगा ! और महावीर को कल्पना भी नहीं है कि साधु और अविनीत हो सकता है, इसलिए वह कहते हैं। यानी बड़ी कठिनाई जो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है, उनको कल्पना ही नहीं है कि साधु और अविनीत हो सकता है !

साधुता का तो मतलब ही है : पूर्ण विनम्रता में जीना, चौबीस घंटे।

यानी कोई न भी हो पास में तो भी विनम्रता में ही जीना, वह तो साधुता का मतलब ही है। क्योंकि साधुता का मतलब है सरलता। और सरलता अविनम्र कैसे होगी ?

तो महावीर को यह कल्पना ही नहीं है कि साधु और अविनम्र हो सकता है। हां, गृहस्थ अविनम्र हो सकता है, क्योंकि अहंकार में जीता है, वही उसका घर है, तो उसे विनय मत देना। लेकिन भूल हो गई मालूम होता है। भूल ऐसी हो गई कि उन्हें पता नहीं है कि साधु भी एक प्रकार का गृहस्थ हो सकता है ! इसका कोई ख्याल नहीं है उन्हें कि साधु भी बदला हुआ गृहस्थ हो सकता है। सिर्फ कपड़े बदल कर, वेश बदल कर साधु हो सकता है और उसकी चित्त-वृत्तियों की सारी मांग वही हो, जो गृहस्थ की होती है, उससे भी ज्यादा हो। तो इसकी कोई कल्पना ही नहीं थी।

असल बात यह है कि जिसे हम साधु कह रहे हैं, वह साधु ही नहीं है। यह बड़े मजे की बात है कि जिसे हम गृहस्थ कह रहे हैं, वह तो गृहस्थ है; जिसे हम साधु कह रहे हैं, वह साधु नहीं है, वह गृहस्थ का ही दूसरा रूप है ! साधु एकदम पृथ्वी से विलीन हो गया है। साधु खोजना ही मुश्किल है। ऐसे तो लाखों में संख्या है, लेकिन साधु खोजना मुश्किल है।

जापान के एक सम्राट ने एक बार अपने वजीरों को कहा कि तुम जाकर पता लगाओ कि अगर कोई साधु हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूं। तो वजीरों ने कहा कि यह बहुत मुश्किल काम है। सम्राट ने कहा, मुश्किल ? मैं तो रोज सड़क से भिक्षुओं को, साधुओं को निकलते देखता हूं। उन वजीरों ने कहा कि वह सब ठीक है, वे दिखने वाले साधु हैं। साधु ही चाहिए न ? बहुत कठिन है, वर्षों लग सकते हैं। फिर भी हम खोज करते हैं।

उन्होंने बहुत खोज-बीन की। आखिर वह खबर लाए कि एक पहाड़ पर एक बूढ़ा है। और जल्दी करिए, क्योंकि वह किसी भी क्षण मर सकता है, अत्यंत बूढ़ा है। आप जल्दी चलिए। हम सब खोज-बीन करके लाए हैं—वह आदमी है कि साधु है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सम्राट गया तो वह बूढ़ा वृक्ष से दोनों पैर फैलाए हुए आराम से टिका हुआ बैठा था। सम्राट जाकर खड़ा हो गया तो उसने न तो सम्राट को उठकर नमस्कार किया, जैसा कि सम्राट की अपेक्षा थी! क्योंकि सम्राट आया है तो कम से कम उठकर नमस्कार करना चाहिए, न उसने पैर सिकोड़े, वह पैर फैलाए ही बैठा रहा! न उसने इसकी कोई फिक्र की कि सम्राट आया है तो कुछ हुआ है! वह जैसा बैठा था, बैठा रहा!

सम्राट ने कहा, आप जाग तो रहे हैं न? नींद में तो नहीं हैं? मैं सम्राट हूं। खड़े होकर नमस्कार करने का शिष्टाचार नहीं निभाते हैं आप! पैर फैला-कर अशिष्ट ग्रामीणों की तरह बैठे हैं! और मैं तो यह सुनकर आया कि मैं एक साधु के पास जा रहा हूं!

वह बूढ़ा खूब खिल-खिलाकर हंसने लगा। और उसने कहा कि कौन सम्राट और कौन साधु! ये सब नींद के हिस्से हैं।

उस बूढ़े ने कहा, कौन सम्राट, कौन साधु? ये सब नींद के हिस्से हैं। कौन किसको आदर दे, कौन किससे आदर ले? ये सब नींद के हिस्से हैं। अगर साधु के पास आना हो तो सम्राट होना छोड़कर आओ, क्योंकि सम्राट और साधु का मेल कैसे होगा? बड़ा मुश्किल हो जाएगा। तुम कहीं पहाड़ पर खड़े हो, हम कहीं गड्ढे में विश्राम कर रहे हैं। मेल कहां होगा? मुलाकात कैसे होगी? साधु से मिलना है तो सम्राट होना छोड़कर आओ। और रही पैर सिकोड़ने-फैलाने की बात। अगर शरीर पर ही नजर है तो यहां तक आने की व्यर्थ कोशिश क्यों की? अगर इस पर ही दृष्टि अटकी है तो नाहक तुम पहाड़ चढ़े, मेहनत हुई, पसीना बह गया। वापस लौट जाओ।

बात सुनकर सम्राट को लगा कि आदमी असाधारण है। उसके पास कुछ दिन रुका, उसके जीवन को देखा, परखा, पहचाना। उसके जीने को समझा। बहुत आनंदित हुआ। जाते वक्त एक बहुमूल्य मखमल का कोट, जिसमें लाखों रुपये के हीरे-जवाहरात जड़े हैं—उसने कहा कि मैं यह कोट आपको भेंट करना चाहता हूं।

उस साधु ने कहा कि तुम भेंट करो और मैं न लूं तो तुम दुखी होगे। लेकिन तुम तो भेंट करके चले जाओगे, इस जंगल के पशु-पक्षी ही यहां मेरे जान-पहचान के हैं, ये सब मुझ पर हंसेंगे कि बुढ़ापे में भी उसको बचपना सूझा?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उस फकीर ने कहा, बुढ़ापे में इसको बचपना··· ! ये सब हंसेंगे, बहुत हंसेंगे ! ये सब बंदर, ये सब पक्षी, ये सब बहुत हंसने लगेंगे —इस बूढ़े को देखो, क्या सूझा ! ये बंदर, ये पक्षी, ये कौए, ये तोते—इनको हीरे-जवाहरात का कोई भी मूल्य नहीं है। तुम सोचते हो कि करोड़ों की चीज दिए जा रहे हो, लेकिन वे आंखें कहां, जो इनको करोड़ों का समझती हैं? इधर मैं निपट अकेला हूं। ये पशु-पक्षी मेरे साथी हैं, ये इनको कंकड़-पत्थर समझेंगे और मुझको पागल समझेंगे। तुम यह कोट ले जाओ। किसी दिन कोई बहुमूल्य चीज तुम्हें लगे तो ले आना— जिसको यहां भी समझा जा सके, इस एकांत पहाड़ पर, इन सूने खड़े वृक्षों के नीचे— ये पक्षी, ये आकाश, ये चांद-तारे, जिसे बहुमूल्य समझ सकें—किसी दिन हो तो ले आना।

वह सम्राट वापस लौटा। उसने अपने वजीरों से कहा कि कुछ न कुछ तो भेंट देनी ही चाहिए। लेकिन ऐसी कौन-सी बहुमूल्य चीज है, जिसे मैं वहां ले जा सकूं? तो उन वजीरों ने कहा कि वह तो सिर्फ आप ही हो सकते हैं। लेकिन आपको बदलकर जाना पड़े, साधु होकर जाना पड़े, क्योंकि वह बहुमूल्य चीज सिर्फ साधुता ही हो सकती है जो उस पहाड़ पर, उस एकांत जंगल में भी पहचानी जा सके। आदमी के मूल्य तो राजधानी की सड़कों पर पहचाने जा सकते हैं, परमात्मा के मूल्य एकांत में भी पहचाने जा सकते हैं। जहां कोई भी पारखी नहीं है, वहां भी वे परखे जा सकते हैं।

साधुता का अर्थ ही खो गया है। तो साधु के नाम से जो बैठे हैं, वे आमतौर से बदले हुए गृहस्थ हैं, जिन्होंने कपड़े बदल लिए हैं। और वह काम वही कर रहे हैं।

अब एक साधु मुझे मिलते थे तो मैंने उनसे कहा, मुंह-पट्टी आप बांधे हुए हैं, यह सच में आप को लगती है कि कुछ बांधने जैसी है? उन्होंने कहा कि बिलकुल नहीं लगती। तो फिर मैंने कहा, इसे छोड़ देनी चाहिए। तो उन्होंने कहा कि छोड़ अगर इसे दें तो कल खाने-पीने का क्या हो? ठहरने का क्या हो? कौन सम्मान दे? यह मुंह-पट्टी की वजह से सब व्यवस्था है! यह गई, सब व्यवस्था चली जाएगी!

अब यह मुंह-पट्टी भी व्यवस्था का इंतजाम है! यह भी पक्का है इस बात का कि तुम हमें सुरक्षा दोगे—हम यह मुंह-पट्टी बांधते हैं, हम गेरुआ वस्त्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पहनते हैं।

यह हमें दिखाई नहीं पड़ता कि यह भी सिक्योरिटी मेजर्स हैं। वैसे ही है, जैसे हम कुछ इंतजाम कर रहे हैं, ऐसा ही यह भी साधु इंतजाम कर रहा है। यह भी हिम्मत करने को राजी नहीं है कि खड़ा हो जाए, कि कोई दे देगा तो ठीक, नहीं देगा तो नहीं देगा। रोटी मिलेगी तो ठीक, नहीं मिलेगी तो ठीक। इतनी हिम्मत जुटाकर यह खड़ा न हो जाए तो इसे गृहस्थ से भिन्न कहने का कारण क्या है ?

सिर्फ एक ही कारण है कि गृहस्थ दूसरों का शोषण करता है, यह गृहस्थों का शोषण करता है। गृहस्थ जो शोषण करता है, उसकी वजह से पापी हुआ जा रहा है; और यह उन पापियों का जो शोषण करता है ! उनकी वजह से पापी नहीं हो रहा है ? यह पुण्यात्मा है ? किसी बंधन में नहीं है ? इसने बंधन में न होने का भी इंतजाम किया हुआ है ! लेकिन इंतजाम ही बंधन है, यह इसे ख्याल में नहीं है !

यह साधु की जो कल्पना महावीर के मन में है, उस कल्पना का साधु इतना विनम्र होगा कि उसे विनीत होने की जरूरत ही नहीं है। विनीत होना पड़ता है सिर्फ अहंकारियों को। वह इतना सरल होगा कि कौन साधु है, कौन गृहस्थ है— इसकी पहचान मुश्किल होगी।

लेकिन जो उन्होंने कहा है, वह सिर्फ यह कहा है कि मूच्छित व्यक्ति को जाग्रत व्यक्ति सम्मान न दे।

लेकिन मजा यह है कि बिना इसकी फिक्र किए कि हम जाग्रत हैं या नहीं, सम्मान न दिया जाए तो सब गड़बड़ हो जाता है। उसमें आधी शर्त ख्याल में रखी गई, कि जाग्रत व्यक्ति मूच्छित को सम्मान न दे। दूसरा मूच्छित है, यह पक्का है, लेकिन हम जाग्रत हैं या नहीं, यह अगर पक्का नहीं है तो शर्त कहां पूरी हो रही है ? और दूसरा मूच्छित है, यह पता भी हमें तभी चल सकता है, जब हम जाग्रत हों। पता ही नहीं चल सकता कि आदमी सोया हुआ है। यहां दस आदमी कमरे में सोए हुए हैं, सिर्फ जागे हुए आदमी को पता चल सकता है कि बाकी लोग सोए हुए हैं। सोए हुओं को पता नहीं चल सकता कि कौन सोया हुआ है !

और जागृत व्यक्ति को कैसी विनम्रता, कैसा अविनय ! वह सवाल ही नहीं है, वह प्रश्न ही नहीं है। पर ध्यान उनका यही है कि मूच्छित को सम्मान

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कम हो; अमूर्च्छित को सम्मान हो, ताकि समाज अमूर्च्छा की तरफ बढ़े और व्यक्ति अमूर्च्छित दिशा की तरफ अग्रसर हो।

साधु के लिए सम्मान के लिए बड़ा ध्यान उन्होंने किया है। और सिर्फ इसलिए कि साधु वह है, जो सम्मान नहीं मांगता। जो सम्मान नहीं मांगता, जो सम्मान की आकांक्षा नहीं करता। जो समाज, ऐसे व्यक्तियों को सम्मान देता है, वह समाज धीरे-धीरे निरहंकारिता की तरफ बढ़ने का कदम उठाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर : परम-स्वातंत्र्य की उद्घोषणा

प्रवचन : २०, दिनांक : २९ सितंबर, १९६९, पहलगांव

प्रश्न : कस्तूर भाई ने पूछा है कि महावीर प्राकृत भाषा में क्यों बोले, संस्कृत में क्यों नहीं ?

यह प्रश्न सच में गहरा है। संस्कृत कभी भी लोक-भाषा नहीं थी—सदा से पंडित की भाषा है, दार्शनिक की, विचारक की। प्राकृत लोक-भाषा थी — साधारणजन की, अशिक्षित की, अपढ़ की, ग्रामीण की। शब्द भी बड़े अद्भुत हैं।

प्राकृत का मतलब है: नेचुरल, स्वाभाविक।

संस्कृत का मतलब है: रिफाइंड, परिष्कृत।

प्राकृत से ही जो परिष्कृत रूप हुए थे, वे संस्कृत बने। प्राकृत मौलिक, मूल भाषा है। संस्कृत उसका परिष्कार है।

इसलिए संस्कृत शब्द शुरू हुआ उस भाषा के लिए जो संस्कारित हो चुकी। साधारणजन के असंस्कारों से जिसे छुड़ा लिया गया। संस्कृत धीरे-धीरे इतनी परिष्कृत होती चली गई कि वह अत्यंत थोड़े-से लोगों की भाषा रह गई। लेकिन पंडित-पुरोहित के यह हित में है कि जीवन का जो भी मूल्यवान है, वह सब ऐसी भाषा में हो, जिसे साधारणजन न समझता हो। साधारणजन जिस भाषा को समझता हो, उस भाषा में अगर धर्म का सब कुछ होगा तो पंडित-पुरोहित और गुरु बहुत गहरे अर्थों में अनावश्यक हो जाएंगे। उनकी आवश्यकता मूलतः शास्त्र का अर्थ करने में है— शास्त्र क्या कहता है इसका अर्थ ! साधारणजन की भाषा में ही अगर सारी बातें होंगी तो पंडित का क्या प्रयोजन ? वह किस बात का अर्थ करे ?

पुराने जमाने में विवाद को हम कहते थे—शास्त्रार्थ !

शास्त्रार्थ का मतलब है: शास्त्र का अर्थ !

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दो पंडित लड़ते हैं—विवाद यह नहीं है कि सत्य क्या है, विवाद यह है कि शास्त्र का अर्थ क्या है ! पुराना सारा विवाद सत्य के लिए नहीं है, शास्त्र के अर्थ के लिए है ! व्याख्या क्या है शास्त्र की ! और इतनी दुरूह, इतनी परिष्कृत शब्दावली विकसित की गई थी कि साधारणजन की तो हैसियत के बाहर है कि वह क, ख, ग भी समझ ले ! और जिस बात को साधारणजन कम से कम समझ पाए, उस बात को जो समझता हो, वह अनिवार्यरूपेण जनता का नेता और गुरु हो सकता है।

इसलिए इस देश में दो परंपराएं चल रही थीं। एक परंपरा थी जो संस्कृत में ही लिखती और सोचती थी। वह बहुत थोड़े-से लोगों की, एक प्रतिशत लोगों का भी उसमें हाथ न था; बाकी सब दर्शक थे। ज्ञान का जो गंभीर आंदोलन चलता था, वह बहुत अल्प, थोड़े-से इंटेलेक्चुअल्स, थोड़े-से अभिजात-वर्गीय लोगों का था ! जनता को तो जो जूठा उससे मिल जाता था, वही उसके हाथ पड़ता था। जनता अनिवार्यरूप से अज्ञान में रहने को बाध्य थी।

महावीर और बुद्ध दोनों ने जन-भाषाओं का उपयोग किया, जो लोग बोलते थे, उसी भाषा में वे बोले। और शायद यह भी एक कारण है कि हिंदू-ग्रंथों में महावीर के नाम का कोई उल्लेख नहीं हो सका। न उल्लेख होने का कारण है—क्योंकि संस्कृत में न उन्होंने कोई शास्त्रार्थ किए, संस्कृत में न उन्होंने कोई दर्शन विकसित किया, संस्कृत में न उनके ऊपर उनके समय में कोई शास्त्र निर्मित हुआ ! तो संस्कृत को जानने वाले जो लोग थे—जैसे आज भी यह हो सकता है, आज भी हिंदुस्तान में अंग्रेजी दो प्रतिशत लोगों की अभिजात भाषा है—यह हो सकता है, कि मैं हिंदी में बोलता ही चला जाऊं तो दो प्रतिशत लोगों को यह पता ही न चले कि मैं भी कुछ बोल रहा हूं। ये अंग्रेजी में पढ़ने और सुनने के आदी हैं। और तब यह भी हो सकता है कि एक बिलकुल साधारण-जन अंग्रेजी में बोलता हो तो वह दो प्रतिशत लोगों के लिए विचारणीय बन जाए।

महावीर चूंकि अत्यंत जन भाषा में बोले, इसलिए पंडितों का जो वर्ग था, स्कालर्स की जो दुनिया थी, उसने उनको बाहर ही समझा। वह ग्राम्य ही थे, उनको उसने भीतर नहीं लिया। इसलिए किसी ग्रंथ में भी—हिंदू-ग्रंथ में महावीर का कोई उल्लेख नहीं है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। महावीर जैसी प्रतिभा का व्यक्ति पैदा हो और देश की सबसे बड़ी परंपरा, मूल-धारा की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

परंपरा में, उसके शास्त्रों में, उस समय के लिपिबद्ध ग्रंथों में, उसका कोई नाम-उल्लेख भी न हो ! विरोध में भी नहीं ! अगर कोई हिंदू-ग्रंथों को पढ़े तो शक होगा कि महावीर जैसा व्यक्ति कभी हुआ भी या नहीं हुआ ? अकल्पनीय मालूम पड़ता है कि ऐसे व्यक्ति का नाम उल्लेख-विस्तार तो बात दूसरी है—नाम-उल्लेख भी नहीं है !

और मैं उसके बुनियादी कारणों में एक कारण मानता हूं कि महावीर उस भाषा में बोल रहे हैं, जो जनता की है। पंडितों से शायद उनका बहुत कम संपर्क बन पाया। हो सकता है हजारों पंडित अपरिचित ही रहे हों कि यह आदमी क्या बोलता है !

क्योंकि पंडितों का एक अपना बुर्जुआपन, एक अभिजात भाव है कि वे साधारण-जन नहीं हैं ! न वे साधारण-जन की भाषा में बोलते, न सोचते --- वे असाधारण जन हैं ! वे किसी चूजन-फ्यू, चुने हुए लोग हैं—उन चुने हुए लोगों की दुनिया का सब कुछ न्यारा है ! साधारणजन से उसका कुछ लेना-देना नहीं ! साधारण जन तो भवन के बाहर हैं, मंदिर के बाहर हैं ! कभी-कभी दया करके, कृपा करके साधारणजन को भी वे कुछ बता देते हैं, लेकिन गहरी और गंभीर चर्चा तो वहां मंदिर के भीतर चल रही है, जहां अपढ़ को, साधारण को प्रवेश निषिद्ध है।

महावीर और बुद्ध की बड़ी से बड़ी क्रांतियों में एक क्रांति यह भी है कि उन्होंने धर्म को ठेठ बाजार में लाकर खड़ा कर दिया। ठेठ गांव के बीच में ! वह किसी भवन के भीतर बंद चुने हुए लोगों की बात न रही ! सबकी—जो सुन सकता है, जो समझ सकता है, उसकी बात हो गई। और इसीलिए उन्होंने संस्कृत का उपयोग नहीं किया।

और भी कारण हैं।

असल में प्रत्येक भाषा, जो किसी परंपरा से संबद्ध हो जाती है, उसके अपने एसोशिएशन हो जाते हैं। उसका प्रत्येक शब्द एक निहित अर्थ ले लेता है। और उसका किसी भी शब्द का प्रयोग खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि उस शब्द का प्रयोग करते ही उस शब्द के साथ जुड़ी हुई परंपरा का सारा भाव पीछे खड़ा हो जाता है। इस अर्थ में जनता की जो सीधी-सादी भाषा है, वह अद्भुत है। वह काम करने की, व्यवहार करने की, जीवन की भाषा है। उसमें बहुत अनगढ़ शब्द हैं, जिनको नए अर्थ दिए जा सकते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और महावीर को जरूरी था कि वे जैसा सोच रहे थे, वैसा अर्थ के लिए नई शब्दावली हो। कठिन था उनको कि संस्कृत से वे शब्दावली को उपयोग में ला सकें, क्योंकि संस्कृत सैकड़ों वर्षों से, हजारों वर्षों से परंपराबद्ध विचार की एक विशेष दिशा में काम कर रही थी। उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ हो गया था। उसमें ईश्वर का एक अर्थ था। वह अर्थ निश्चित हो गया था। ईश्वर शब्द का प्रयोग करना खतरे से खाली न था, क्योंकि वह अर्थ उसके पीछे खड़ा हो जाता था। तो उचित यह था कि ठीक अनपढ़ जनता की भाषा को सीधा उठा लिया जाए। उसे नए अर्थ, नए तराश, नए कोने उसको दिए जा सकते हैं।

सीधी जनता की भाषा उठा ली और उस जनता की भाषा में अद्भुत चमत्कारपूर्ण व्यवस्था दी। यह और भी कारणों से उपयोगी है। यह—यह भी बताता है कि महावीर का मन जिसको शास्त्रीय कहते हैं, एकेडेमिक कहते हैं, वह नहीं था।

कुछ लोग होते हैं, जिनका मन शास्त्रीय होता है। जो सोचते हैं तो शास्त्र में! समझते हैं तो शास्त्र में! जीते हैं तो शास्त्र में। शास्त्र के बाहर उन्हें कोई जीवन होता ही नहीं! अगर उनकी बातचीत सुनने जाएंगे तो ऐसा पता चलेगा कि जिंदगी यानी शास्त्र! शास्त्र के बाहर कहीं कुछ है ही नहीं! और शास्त्र बड़ी संकीर्ण चीज है। जिंदगी बड़ी विराट चीज है। उनके प्रश्न भी होते हैं तो जिंदगी से नहीं आते, वे किताब से आते हैं! वे अगर कुछ पूछेंगे भी तो वे इसलिए पूछते हैं कि उन्होंने जो कुछ किताबें पढ़ी हैं! उनकी सीधी जिंदगी से कोई प्रश्न नहीं उठते!

और इस लिहाज से, बड़े हैरानी की बात है यह कि कभी ग्रामीण से ग्रामीण व्यक्ति भी जीवन से संबंधित प्रश्नों की बात उठा देता है, जबकि पंडित से वैसी आशा करनी असंभव है! पंडित प्रश्न भी उधार ही पूछता है! यानी प्रश्न भी उसका अपना नहीं होता, उत्तर तो बहुत दूर की बात है! वह प्रश्न भी उसने किताब में पढ़ा होता है! और जब वह प्रश्न पूछता है, तब उसके पास उत्तर तैयार होता है। यानी वह आपसे कोई बड़े प्रश्न के उत्तर की आकांक्षा नहीं कर रहा है, वह शायद आपका परीक्षण ही कर रहा है कि आपको भी यह उत्तर पता है या नहीं पता है! उत्तर भी उसके पास है, प्रश्न भी उसके पास है! प्रश्न से भी पहले वह उत्तर को पकड़कर बैठा हुआ है! और अब वह जो प्रश्न उठा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रहा है, वह अथेंटिक नहीं है, प्रामाणिक नहीं है, उसके प्राणों से नहीं आता है ! तो शास्त्रीय लोग भी हैं, जिनकी सारी जिंदगी किताबों के बंद पन्नों के भीतर गुजरती है !

महावीर खुली जिंदगी के पक्षपाती हैं—खुले आकाश के नीचे नग्न खड़े हैं। खुली जिंदगी, कच्ची जिंदगी, जो 'रा' लाइफ जैसी है, वे उसको छूना और स्पर्श करना चाहते हैं। और सीधा, आमने-सामने एनकाउंटर करना चाहते हैं जिंदगी का । इसलिए शास्त्र को बिलकुल हटा देते हैं। शास्त्रीयता को हटा देते हैं। शास्त्रीय व्यवस्था को हटा देते हैं।

और हमेशा ऐसी जरूरत पड़ जाती है कि कुछ लोग वापस जिंदगी का हमें स्मरण दिलाएं नहीं तो किताबें बड़ी खतरनाक भी हैं। किताब, किताब, किताब···धीरे-धीरे हम यह भूल ही जाते हैं कि जिंदगी कुछ और है, किताब कुछ और है । एक तो घोड़ा वह है, जो बाहर सड़क पर चल रहा है । एक घोड़ा वह है, जो शब्दकोश में लिखा हुआ है। घोड़े का अर्थ शब्दकोश में दिया हुआ है । घोड़ा सड़क पर चल रहा है । जिंदगी भर जो किताबों में उलझे रहते हैं, वे किताब के घोड़े को ही असली घोड़ा समझने लगें तो बहुत आश्चर्य नहीं है। हां, इतना जरूर है कि किताब के घोड़े पर चढ़ने की भूल कोई कभी नहीं करता। लेकिन किताब के परमात्मा पर प्रार्थना करने की भूल निरंतर हो जाती है ! किताब का परमात्मा इतना सही मालूम होने लगता है, जितना कि असली परमात्मा होगा ! लेकिन किताब का परमात्मा एक बात ही और है ।

शब्द आग आग नहीं है। और किसी मकान पर आग लिख देने से मकान नहीं जल जाता है । आग बात ही और है । आग तो कुछ बात ऐसी है कि आग शब्द भी जल जाएगा उसमें । वह भी नहीं बच सकेगा । लेकिन भूल होने का डर है कि शब्द आग को कहीं हम आग न समझ लें । और शब्द परमात्मा को कहीं हम परमात्मा न समझ लें । और जो शब्दों की दुनिया में जीते हैं, उनसे यह भूल होती ही है । उन्हें याद ही नहीं रह जाता कि कब जिंदगी से वह खिसक गए हैं और एक शब्दों की दुनिया में भटक गए हैं ! उसका अपना जगत है ।

महावीर उस शब्द-जाल से भी बाहर आ जाना चाहते हैं। इसलिए शब्द-जाल था संस्कृत का । आम जनता की बातचीत तो सीधी-साधी है । उसमें जाल नहीं है । न व्याख्या है, न परिभाषा है । जिंदगी को इंगित करने वाले शब्द हैं ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उन्होंने वे ही शब्द पकड़ लिए हैं, और सीधी जनता से बात की। वे जनता के आदमी हैं इस अर्थों में। वे पंडित नहीं हैं। और उन्होंने यह भी न चाहा कि उनके शास्त्र निर्मित हों।

ठीक किसी ने पूछा भी है एक सवाल, कि महावीर के बहुत पूर्व काल से लिखने की कला विकसित हो गई थी और जैसा जैन तो कहते हैं कि खुद प्रथम तीर्थंकर ने लोगों को लिखने की कला सिखाई! तो प्रथम तीर्थंकर को हुए तो कितना काल व्यतीत हो चुका था, लोग खुद लिखना जानते थे, पढ़ना जानते थे, किताब बन सकती थी—फिर महावीर के जीते जी, महावीर ने जो कहा, उसका शास्त्र क्यों निर्मित नहीं हुआ ?

हमें ऐसा लगता है कि लिखने की कला न हो, तो ही शास्त्र निर्मित होने में बाधा पड़ती है। लिखने की कला हो तो शास्त्र निर्मित होना ही चाहिए। मेरी अपनी दृष्टि यह है कि महावीर की चूंकि बुद्धि शास्त्रीय नहीं है, उन्होंने नहीं चाहा होगा कि उनका शास्त्र निर्मित हो। और जब तक उनका बल चला होगा, तब तक उन्होंने उसे रोकने की कोशिश की होगी। उसके भी कारण हैं। क्योंकि जैसे ही शास्त्र निर्मित होता है—वैसे ही व्यक्ति की चेतना जीवन से, अस्तित्व से, एक्जिसटेंस से अलग होकर शब्दों की दुनिया में प्रवेश कर जाती है। और एक ऐसे काल्पनिक लोक में भटकने लगती है, जो लगता बहुत सच है; लेकिन होता बिलकुल भी नहीं है।

तो महावीर ने सुनिश्चित रूप से शास्त्र को रोकने की कोशिश की होगी, इसलिए मर जाने के दो-तीन सौ, चार सौ वर्षों तक, जब तक कि लोगों को उनका स्मरण रहा होगा स्पष्ट, कि शास्त्र नहीं लिखने हैं, तब तक शास्त्र नहीं लिखा जा सका होगा। लेकिन हमारा मोह भारी है, हम प्रत्येक चीज को स्मृति में रख लेना चाहते हैं। तो कहीं ऐसा न हो कि महावीर का कहा हुआ विस्मरण हो जाए, कहीं ऐसा न हो कि महावीर विस्मरण हो जाएं। तो हमारे पास उपाय क्या है—हम लिपिबद्ध कर लें, शास्त्रबद्ध कर लें, फिर नहीं खोएगा! महावीर खो जाएंगे, शास्त्र बचेगा!

लेकिन कभी हमें सोचना चाहिए कि जब महावीर जैसा जीवंत व्यक्ति भी खो जाता है तो शास्त्र में तुम बचाकर, क्या महावीर को बचा सकोगे? महावीर जैसे व्यक्ति तो यही उचित समझेंगे कि जब व्यक्ति ही विदा हो जाता है—और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जहां सभी चीजें परिवर्तनीय हैं; और सभी आती हैं और चली जाती हैं—वहां कुछ भी थिर न हो। वहां शब्द और शास्त्र भी थिर न हों, वह भी खो जाए। क्योंकि जीवन का नियम जब यह है—जन्मना और मर जाना, होना और मिट जाना—और महावीर को भी जब वह जीवन का नियम नहीं छोड़ता है, तो महावीर की वाणी पर भी यह क्यों लागू हो—यह क्यों लागू न हो ? हम क्यों यह आशा बांधें कि हम शब्दों को बचाकर, बचा लेंगे ? क्या बचेगा हमारे हाथ में !

अंगारा कभी नहीं बचता। अंगारा तो बुझ ही जाता है। राख बच सकती है। अंगारे को आप सदा नहीं रख सकते। राख को सदा रख सकते हैं। राख बड़ी सुविधापूर्ण है, कन्विनिएंट है। अंगारे को तो थोड़ी ही देर रखा जा सकता है, क्योंकि जीवंत है। अंगारा तो बुझेगा, अंगारे को आप सतत नहीं रख सकते। असल में अंगारा जिस क्षण जलना शुरू हुआ है, उसी क्षण बुझना भी शुरू हो गया है। एक परत जल गई है, वह राख हो गई; दूसरी परत जल रही है, वह राख हो रही है; तीसरी परत जलेगी, वह राख होगी। परत-परत थोड़ी देर में अंगार जो है, वह राख हो जाएगा। अंगारा तो नहीं बचेगा, अंगारा तो जाएगा; क्योंकि अंगारा जीवित है। जो भी जीवित है, वह जाएगा।

लेकिन राख बचाई जा सकती है करोड़ो वर्षों तक। क्योंकि राख मृत है। उस पर जीवन के नियम काम नहीं करते। वह मरा हुआ हिस्सा है, जिससे जीवन जा चुका। नियम तो हो चुका पूरा, राख पड़ी रह गई है—अब राख को हम बांधकर रख सकते हैं ! और खतरा यह है कि कहीं राख को हम अंगार न समझने लगें। कभी राख अंगार थी, लेकिन राख बनी ही तब, जब अंगार न हो गया।

अब इसमें बहुत मजा है सोचने जैसा ! सोचने की दो बातें हैं—राख अंगार थी और राख अंगार नहीं थी। राख अंगार थी इसका मतलब यह कि अंगार से ही राख आई है। अंगार के जीने से ही राख का आना हुआ है। लेकिन एक अर्थ में राख कभी भी अंगार नहीं थी, क्योंकि जहां-जहां राख हो गई थी, वहां-वहां अंगार तिरोहित हो गया था। राख जो थी, वह अंगार की जीवित छूटी हुई छाया है। जीवित अंगार की जो छाया छूट गई, जो रेखा छूट गई। अंगार तो गया, राख हाथ में रह गई। राख को सजोकर रखा जा सकता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर ने चाहा होगा कि राख को भी मत सजाना, संवारना; क्योंकि असली सवाल अंगार था, वह तो बचेगा नहीं, उसे तो तुम संभाल नहीं सकोगे—राख संभालकर रख लोगे ! और फिर कल यह धोखा होगा तुम्हारे मन को कि यही है अंगार ! और तब इतनी बड़ी भ्रांति पैदा होगी, जितनी महावीर की सब वाणी खो जाए, तो भी पैदा होने को नहीं है ।

हिम्मतवर आदमी रहे होंगे—अपनी स्मृति के लिए कोई व्यवस्था न करना, बड़े साहस की बात है ।

मृत्यु के विरोध में हम सभी ये उपाय करते हैं कि किसी तरह हम तो न रहेंगे, लेकिन किसी तरह स्मृति की एक रेखा हमारे पीछे शेष रह जाए ! वह बची ही रहे--फिर वह शब्द हो, कि पत्थर पर लगा हुआ नाम हो, कि शास्त्र हो—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता !

हमारा मन, मरने वाला मन—न मरने की आकांक्षा करता है !

मरेगा सब, यह हमें पता है—तो न मरने के लिए हम कुछ व्यवस्था कर जाते हैं !

महावीर ने जीते जी न मरने की कोई व्यवस्था नहीं की । क्योंकि महावीर की दृष्टि यह है, जो मरने वाला है, वह मरेगा ही; जो नहीं मरने वाला है वह नहीं ही मरता है ।

और जो मरने वाले को बचाने की कोशिश करते हैं, वे बड़ी भ्रांति में पड़ जाते हैं, वे अक्सर राख को अंगार समझ लेते हैं !

शास्त्र में जो धर्म हैं—वह राख है ।

जीवन में जो धर्म है—वह अंगार है ।

तो जीते जी उन्होंने शास्त्र निर्मित नहीं होने दिया—तीन-चार सौ वर्ष तक, जब तक कि लोगों को ख्याल रहा होगा उस आदमी का, उसके निषेध का, उसके इनकार का; तब तक उन्होंने टेंपटेशन को, प्रलोभन को रोका होगा। लेकिन जब वह स्मृति शिथिल पड़ गई होगी, भूल गई होगी, धीरे-धीरे विस्मरण के गर्त में चली गई होगी, तब उनके सामने सबसे बड़ा सवाल यही रह गया होगा कि हम कैसे सुरक्षित कर लें, जो भी उन्होंने कहा है।

यह ध्यान रखने की बात है कि आज तक जगत में जो भी महत्त्वपूर्ण है, जो भी सत्य है, जो भी सुंदर है—वह लिखा नहीं गया है, वह कहा ही गया है ! जो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भी महत्त्वपूर्ण है, आज तक पूरी पृथ्वी पर—वह लिखा नहीं गया है, वह कहा ही गया है !

कहने में एक बड़ी जीवंत बात है । लिखने में सब मुर्दा हो जाता है ।

क्योंकि जब हम कहते हैं तो कोई सामने होता है, जिससे कहते हैं । अकेले में तो कह नहीं सकते । कोई जीवंत सामने होता है । लिखने में कोई सामने नहीं होता, अंधकार होता है ।

कहते हैं हम किसी से, लिखते हैं हम न किसी के लिए ! किसी के लिए नहीं लिखते ! कौन पढ़ेगा ? कोई भी नहीं पढ़ेगा । तो लिखने के समक्ष कोई भी मौजूद नहीं है, सिर्फ लिखने वाला मौजूद है । बोलने के समक्ष—सिर्फ बोलने वाला मौजूद नहीं है, बोलने वाले से भी ज्यादा सुनने वाला मौजूद है । और एक जीवंत संपर्क है ।

इस जीवंत संपर्क के कारण न तो उन्होंने शास्त्रों की भाषा उपयोग की, न शास्त्रीयता उपयोग की, न अपने पीछे शास्त्र की रेखा बनने दी है ।

और लोक-मानस की, सामान्यजन का—बहुत पुराना संघर्ष है यह, अभी भी पूरा नहीं हो पाया—ऐसी धारणा रही है कि धर्म जो है, वह थोड़े-से चुने हुए लोगों की बात है ! और सत्य जो है, बहुत थोड़े-से लोगों की समझ की बात है, सबकी बात नहीं है !

मुझसे लोग आ-आकर कहते हैं कि आप ऐसी बातें लोगों से मत कहिए, ये बातें तो बहुत थोड़े-से लोगों के लिए हैं ! सामान्य आदमी को मत कहिए, सामान्य आदमी इनसे भटक जाएगा !

अब यह बड़े मजे की बात है कि सामान्य आदमी को सत्य भटकाता है और असत्य जो है, वह मार्ग पर लाता है !

और मेरी दृष्टि यह है कि वह बेचारा सामान्य ही इसलिए है कि उसे सत्य की कोई खबर नहीं मिलती ।

प्रश्न : क्या अनधिकार को ज्ञान मिलना चाहिए ?

कोई भी अनाधिकारी नहीं है—ज्ञान की दृष्टि से । और कौन निर्णायक है कि कौन अधिकारी है ? निर्णय कौन करेगा ?

फूल नहीं कहता कि अधिकारी को सौंदर्य दिखाई पड़ेगा, अधिकारी को सुगंध देंगे । सूरज नहीं कहता कि अधिकारी को प्रकाश मिलेगा । श्वास नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कहती कि अधिकारी के हृदय में चलूंगी। खून नहीं कहता, अधिकारी के भीतर बहूंगा। सारा जगत नहीं कहता, अधिकारी की मांग नहीं करता। सिर्फ ज्ञान के संबंध में पंडित कहता है, अधिकारी पहले पक्का हो जाए! क्यों?

सारा जीवन अनधिकारी को मिला हुआ है, सिर्फ ज्ञान भर अधिकारी को मिलेगा? तो भगवान बड़ा नासमझ है, अनधिकारियों को जीवन दे देता है! और पंडित बड़ा ज्ञानी है, वह अधिकारी का पक्का कर ले, तब ज्ञान देता है!

अधिकारी की बात ही अत्यंत व्यापारिक और तरकीब की बात है। तब वह उसको देना चाह रहा है, जिससे उसे कुछ मिलता हो। वह मिलना किसी भी तल पर हो सकता है—इज्जत, आदर, श्रद्धा, धन, मान, सम्मान। वह किसी भी तरकीब से उसको देगा, जिससे कुछ मिलने का पक्का हो। और उसको देगा जो उसका अपना है। सबको नहीं दे देगा। ऐसे खुले हाथ, अपरिचित, अनजान, अजनबी ले जाए, ऐसा नहीं कर देगा। इस वजह से ज्ञान को गुरु-शिष्य की परंपरा में बांधने की तरकीब चली! वह सबसे खतरनाक तरकीब है। उस तरकीब में कभी भी ज्ञान विस्तीर्ण नहीं हो सका।

एडीसन को अगर पता चल गया कि बिजली कैसे बनती है, तो वह ज्ञान सबके लिए हो गया। और एडीसन ने नहीं पूछा कि अधिकारी कौन है जिसके घर में बिजली जले। वह ज्ञान सबका हो गया, वह सबके उपयोग में आ गया। सबके लिए खुली किताब हो गई, जो भी उपयोग में लाना चाहे, ले जाए।

विज्ञान इसीलिए जीता है धर्म के खिलाफ कि धर्म था थोड़े-से लोगों के हाथ में, और विज्ञान ने सत्य को दे दिया सबके हाथ में। विज्ञान की जीत का कारण यह है कि विज्ञान ने पहली दफे ज्ञान को सार्वलौकिक बना दिया, युनिवर्सल बना दिया।

और धार्मिक लोगों ने ज्ञान को बना लिया था बिलकुल ही सीमित दायरे में, रेखा में बहने वाला—सोच-विचार कर किसको देना, नहीं देना! और कई बार ऐसा होता था कि जानने वाला आदमी पात्र को, अधिकारी को खोजते-खोजते ही मर जाता था। और उसे अधिकारी भी नहीं मिलता था!

मैंने सुना है एक फकीर हिमालय की एक तराई में रहता था और नब्बे वर्ष का हो गया था। अनेक बार लोगों ने आकर उससे कहा था कि हमें ज्ञान दो। पर उसने कहा, अधिकारी के सिवाय ज्ञान तो किसी को मिल नहीं सकता!

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अधिकारी लाओ ! शर्तें उसकी ऐसी थीं कि वैसा आदमी पूरी पृथ्वी पर भी खोजना मुश्किल था। अधिकारी की शर्तें उसकी ऐसी थीं ! यानी ऐसा ही है कि जैसे कोई डाक्टर किसी से कहे कि हम बीमार को दवा नहीं देते, हम तो स्वस्थ आदमी को दवा देंगे, स्वस्थ आदमी ले आओ !

अब मेरी अपनी समझ यह है कि स्वस्थ आदमी डाक्टर के पास जाएगा नहीं। अधिकारी जो हो गया है, वह किसी से मांगने जाएगा नहीं। क्योंकि जिस दिन अधिकार उपलब्ध होता है, उस दिन तो अपना ही उपलब्ध हो जाता है। उस दिन कोई किसी के पास जाता है ? जिस दिन पात्रता पूरी होती है, उस दिन तो परमात्मा खुद ही उतर आता है। उस दिन किसी को कोई पूछने जाता है, तलाशने जाता है ?

अनधिकारी ही खोजता है, अधिकारी खोजेगा भी क्यों ? यानी खोज का सवाल ही नहीं है। अधिकारी का तो मतलब है कि जिसका अधिकार हो गया, अब तो ज्ञान उसे मिलेगा। अब यह कोई मामला नहीं, इसका हक हो गया। यह तो अब सीधी मांग कर सकता है इस बात की। तो अधिकारी तो किसी के पास जाता नहीं। जाता है अनधिकारी। और वे अनधिकारी के लिए शर्तें हैं !

तो लोग थक गए थें, फिर वह बूढ़ा हो गया, बहुत बूढ़ा। फिर एक दिन उसने एक आदमी को, रास्ते से गुजरता था उसको कहा, सुनो, ज्यादा दिन नहीं हैं, मैं तीन दिन में मर जाऊंगा और गांव में जितने लोगों को खबर हो सके पहुंचा दो, जिसको भी ज्ञान चाहिए हो, जो मैंने जाना है, सुनना चाहता हो, वह एकदम चला आए। उस आदमी ने कहा, लेकिन मेरा गांव बहुत छोटा है और अधिकारी वहां कोई भी नहीं। उसने कहा, अब अधिकारी, गैर-अधिकारी का सवाल नहीं है, क्योंकि तीन दिन बाद मैं मर जाने को हूं। तुम तो जाते जाओ, जो भी आ जाए, उसको ले आओ।

वह आदमी गांव में गया, उसने डुंडी पीट दी। उस बूढ़े से तो लोगों का कभी कुछ संबंध नहीं बन सका था। फिर भी किसी की दुकान पर आज काम नहीं था तो उसने कहा, चलो मैं चला चलता हूं। किसी को आज नौकरी नहीं मिली थी तो उसने कहा, चलो मैं भी चला चलता हूं। किसी की पत्नी मर गई थी, उसने कहा कि चलो हम भी चलते हैं। किसी को कुछ हो गया था। तो दस-बारह लोग मिल गए और वे पहाड़ पर चढ़कर गए। लेकिन वह जो ले जा रहा था, वह मन में बड़ा चिंतित

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

था कि इनको तो वह, सबको फौरन ही बाहर निकाल देगा, क्योंकि इनमें कोई भी अधिकारी नहीं है, कोई भी पात्र नहीं है। उसने डरते-डरते जाकर कहा कि दस-बारह लोग आए हैं, लेकिन आपके अधिकार के नियम में कोई उतरेगा ?

उसने कहा, वह बात ही मत करो। एक-एक को भीतर लाओ। तो उसने पूछा कि आपने वह अधिकार की बात छोड़ दी ? उसने कहा, सच बात यह है कि जब तक मेरे पास ही नहीं था, तब तक मैं इस भांति अपने को बचाता था कि अनधिकारी को कैसे दूं। मेरे पास ही नहीं था देने को कुछ ! लेकिन यह मानने की भी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि मेरे पास ही नहीं है। तो तरकीब मैंने यह निकाली थी कि पात्र कहां है, जिसको मैं दूं ? लेकिन अब जब मुझे हो गया है, तब प्राण ऐसे आतुर है कि कोई अपात्र भी आ जाए, क्योंकि अपात्र को भी जो मैं दूंगा, उसको लेते ही पात्र हो जाएगा, क्योंकि अपात्र रह कैसे सकेगा ? तो अब मेरी फिक्र नहीं है कि तुम किसको लाते; तुम ले आओ, बस मैं उसको कह देना चाहता हूं। अब कोई अपात्र नहीं है। मैं अज्ञानी था, सब अपात्र थे ! मैं ज्ञानी हुआ हूं, सब पात्र हो गए हैं !

महावीर ने इस संबंध में बड़ी भारी क्रांति की। ठेठ बाजार में पहुंचा दी सारी बात। इससे क्रोध भी बहुत हुआ। ट्रेड सीक्रेट्स की बातें भी तो हैं।

पंडित का धंधा इससे चलता था कि बात गुप्त थी, इजोटेरिक थी, छिपी हुई थी। बात सबमें खुल गई तो बहुत मुश्किल हो गया।

आप जानते हैं कि डाक्टर प्रेसक्रिप्शन लिखता है दवाई का, तो लैटिन और ग्रीक का उपयोग करता है। सीधी-सीधी अंग्रेजी का भी उपयोग नहीं करता, हिंदी की तो बात दूर ! लैटिन और ग्रीक शब्दों का उपयोग दवाइयों के नाम के लिए किया जाता है ! उसका कारण है कि अगर आपको उनका ठीक-ठीक नाम जो आप जानते हैं, पता चल जाए तो आप उसके लिए पांच रुपए देने के लिए राजी नहीं होंगे, आप कहेंगे, यह बाजार में दो पैसे में मिल सकती है। सीक्रेट यह है कि वह जो उसने लिखा है, वह आपकी पकड़ के बाहर है कि क्या है। हो सकता है उसने लिखा हो अजवाइन। लेकिन लिखा है लैटिन में—अजवाइन का सत ! और आप गए बाजार में, कहने लगे अजवाइन का सत तो हम घर ही निकाल लेंगे, इसके लिए हम पांच या दस रुपये नहीं दे सकते। लेकिन अजवाइन का सत लिखा है ग्रीक में, और आपको कुछ पता चलता नहीं कि क्या मतलब है। आप दो पैसे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

की चीज भी दस रुपये में खरीदकर लाते हैं। और बड़ी प्रसन्नता से घर लौटते हैं कि दवा मिल गई है !

पूरा मेडिकल प्रोफेशन बेईमानी कर रहा है,क्योंकि अगर सीधी-सीधी बातें लिख दी जाएं तो सब दुकानें दवाई की खतम होने के करीब पहुंच जाएं, क्योंकि दवाइयां बहुत सस्ती हैं। और उन्हीं चीजों से बनी हैं, जो बाजार में आम मिल रही हैं। लेकिन एक तरकीब उपयोग की जा रही है निरंतर, कि नाम अंग्रेजी में भी नहीं है सीधा, लैटिन और ग्रीक में नाम है ! तो अंग्रेजी पढ़ा-लिखा आदमी भी नहीं समझ सकता। फिर डाक्टर जिस ढंग से लिखते हैं, वह ढंग भी कारण है उसमें। यानी वह लैटिन और ग्रीक भी आप ठीक से नहीं समझ सकते कि क्या लिखा हुआ है, वह भी सिर्फ दुकानदार समझता है, जो बेचता है दवा ! वह भी पक्का समझता है कि नहीं समझता—बड़े अज्ञान में भी काम चलता है !

मैंने सुना है कि एक आदमी को किसी की चिट्‌ठी आई थी। किसी डाक्टर ने चिट्‌ठी लिखी थी, उसके घर पर उसने भोज बुलवाया हुआ था। और डाक्टर नहीं आ सकता था तो उसने क्षमा मांगी थी। लेकिन निरंतर आदत के वश उसने उसी ढंग से लिख दिया था, जैसा वह प्रेसक्रिप्शन लिखता था। उस आदमी ने बहुत पढ़ा; उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि वह आ रहा है कि नहीं आ रहा है ! तो उसने सोचा कि छोड़ो, मेरी समझ में नहीं आएगा, जरा चलकर केमिस्ट को दिखा लूं, वह तो कम से कम डाक्टरों की भाषा समझता है, वह बता देगा कि क्या लिखा है। उसने जाकर वह चिट्‌ठी केमिस्ट को दी। केमिस्ट ने चिट्‌ठी देखी, कहा कि रुकिए, भीतर गया दो बोतलें निकालकर ले आया ! उसने कहा, माफ करिए, यह बोतल का सवाल ही नहीं है। इसमें उसने सिर्फ क्षमा मांगी है कि मैं आज भोज में आ सकूंगा कि नहीं, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा कि बात क्या है।

यह जो सारा का सारा खेल चलता है, तो पंडित ने एक तरकीब निकाली हुई है बहुत पुराने दिन से, वह यह है कि जनता की भाषा में सीधी-सीधी बात मत कहना कभी भी। उसको ऐसी शब्दावली में कहना कि जनता के लिए वह रहस्य हो जाए। वह उसकी समझ के बाहर पड़ जाए। और तब वह तुमसे समझने आएगी। इसलिए दुनिया में दो तरह के लोग हुए हैं। एक जो जीवन के रहस्य को खुला बनाना चाहते हैं, ताकि प्रत्येक के लिए द्वार खुल जाए और एक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मिस्ट्रीफायर्स, जो जीवन में जो रहस्य नहीं ही है, उसको जबरदस्ती चारों तरफ से गोल-मोल करके उसे ऐसी स्थिति में खड़ा कर देना चाहते हैं कि वह किसी के लिए भी रहस्य हो जाए ! किसी के लिए भी सीधा-सरल सत्य न हो जाए।

उमरखैयाम ने लिखा है कि जब मैं जवान था तो मैं साधुओं के पास गया, संतों के पास गया, ज्ञानियों के पास गया, पंडितों के पास गया — एंड केम आउट ऑफ दि शेम डोर व्हेअर-इन, आइ वेन्ट इन -- और उसी दरवाजे से बाहर, आया जिससे भीतर गया; क्योंकि मेरी कुछ पकड़ में ही नहीं पड़ा कि वहां हो क्या रहा है। सबके पास गया, लेकिन उसी दरवाजे से वापस लौटना पड़ा, जिस दरवाजे से गया था। यानी वही का वही वापस लौटा, जो मैं था, क्योंकि मेरी कुछ पकड़ में नहीं पड़ा कि वहां हो क्या रहा है ! कौन-सी बातें वहां चल रही हैं ! किन शब्दों की वे बातें कर रहे हैं ! किन लोगों की चर्चा हो रही है ! जीवन से उनका कोई सीधा संपर्क नहीं है।

महावीर की क्रांतियों में एक क्रांति इसको भी गिनना चाहिए कि उन्होंने धर्म के गुह्य रूप को, वह जो इजोटेरिक था, वह जो छिपा हुआ था, उसको उघड़ा हुआ कर दिया। इसलिए पंडित उन पर अगर नाराज रहे हों तो आश्चर्य नहीं है, क्योंकि उन्होंने बड़ा बुरा काम किया। ऐसे जैसे कि कोई डाक्टर सीधी हिंदी में लिखने लगे कि अजवाइन का सत ले आओ ! तो दूसरे सारे डाक्टर उससे नाराज हो जाएं कि तुम क्या कर रहे हो ? तुम क्या सब धंधा चौपट करवा देने को हो ?

तो महावीर पर पंडितों की नाराजगी बड़ी अर्थ-पूर्ण है। इसलिए उन्होंने सीधी-सीधी जन-भाषा का उपयोग किया है। और शास्त्रों की भाषा को एकदम छोड़ दिया है, जैसे कि शास्त्र हों ही न। महावीर इस तरह बोल रहे हैं जैसे कि शास्त्र रहे ही नहीं, उनका उल्लेख भी नहीं करते ! ऐसा नहीं है कि उन शास्त्रों में कुछ भी न था। उन शास्त्रों में बहुत कुछ था। और महावीर जो कह रहे हैं, कोई खोज करेगा तो उन शास्त्रों में भी मिल जाएगा।

लेकिन महावीर उन शास्त्रों को बीच में लाना ही नहीं चाहते हैं। क्योंकि उनको लाते ही शास्त्रीयता आती है, पांडित्य आता है, सारी दुकान आती है— सारी व्यवस्था ! वे ऐसे बोल रहे हैं, जैसे कि कोई पहला आदमी जमीन पर खड़ा होकर बोल रहा हो, जिसको किसी शास्त्र का कोई पता नहीं। यह सोचने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जैसी बात है ।

क्या तेरा सवाल है बोल ?

प्रश्न : गोशालक ने तेजोलेश्या का प्रयोग किया तो दो साधु जो महावीर की जान बचाने के लिए उठ खड़े हुए थे, उनका शरीर कपड़ों की भांति जल गया और वे मर गए । जब तीसरा उठा तो महावीर ने उसे रोक लिया । तो फिर जब दो मर गए तो उस समय वे तटस्थता क्यों रखे ? या फिर तीसरे साधु के समय तटस्थता का क्या हुआ ?

असल में कहानियों को समझना बहुत मुश्किल होता है, क्योंकि वे प्रतीक हैं । और उन प्रतीकों में बड़ी बातें हैं, जो खोली जाएं तो ख्याल में आ सकती हैं, न खोली जाएं तो बड़ी कठिनाइयां पैदा करती हैं ।

महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या का प्रयोग किया है । वह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया, एक ऐसी यौगिक प्रक्रिया का प्रयोग कर रहा है कि जिसमें कोई भी जल जाए और भस्म हो जाए ।

इसका प्रश्न बहुत बढ़िया है कि महावीर को बचाने के लिए एक साधु उठा, वह नष्ट हो गया; दूसरा उठा, वह मर गया; महावीर देखते रहे ! तीसरा उठा, उसको महावीर ने रोक लिया ! यह—यह पूछती है कि क्या दो के समय महावीर तटस्थता रखे और तीसरे के समय तटस्थता छोड़ दी ? या कि दो के समय उन्हें कोई करुणा न आई और तीसरे पर करुणा आ गई ? क्या बात है ? अगर रोकना था तो पहली बार ही रोक देना था, ताकि दो व्यक्ति न मर पाते । या नहीं ही रोकना था, तटस्थ ही रहना था, तो तटस्थ ही रहना था—कोई मरता या जीता, इसकी कोई चिंता नहीं होनी थी ।

इसमें बहुत बातें हो सकती हैं । पहली तो बात यह है कि व्यक्ति किसलिए उठा यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है । जो व्यक्ति उठा पहला, तो जरूरी नहीं है कि महावीर को बचाने उठा हो । सिर्फ दिखाने उठा हो कि मैं बचा सकता हूं । सिर्फ अहंकार से उठा हो, और अहंकार को कोई भी नहीं बचा सकता, महावीर भी नहीं बचा सकते । अहंकार तो जलेगा और नष्ट होगा । अहंकार को महावीर भी नहीं बचा सकते ।

कहानी तो सीधी-सीधी होती है, लेकिन पीछे हमें उतरने की जरूरत होती है । पहला आदमी किसलिए उठा ? क्या वह यह सोचता है कि क्या करेगा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गोशालक मेरा, मैं उससे ज्यादा प्रबल हूं ! अभी उसे पछाड़कर रख दूंगा ! तो महावीर चुपचाप बैठे रह गए होंगे। क्योंकि असल में वहां एक महावीर का साधु और दूसरा गोशालक ऐसा नहीं था, वहां दो गोशालक थे। वहां जो झगड़ा खड़ा हो गया था, उसमें एक महावीर का साधु नहीं था। उसमें दो गोशालक थे, दो अहंकार थे; जो लड़ने को खड़े हो गए थे। तो महावीर चुप रह गए हैं। चुप रहना ही पड़ेगा, कोई उपाय न रहा होगा।

तीसरे व्यक्ति के संबंध में क्यों महावीर उसे रोक दिए हैं? हो सकता है, तीसरा व्यक्ति किसी अहंकार से न उठा हो, विनम्र सीधा-सादा आदमी रहा हो। सिर्फ आहुति देने उठा हो, कोई अहंकार से नहीं। एक व्यक्ति और मरे, इतनी देर भी महावीर जी जाएं, इसलिए उठा हो। तो महावीर ने रोका हो कि···

असल में कहानियां ये सब नहीं कह पातीं, और हजारों साल से चलने के बाद रूखे तथ्य हाथ में रह जाते हैं, जिनके पीछे की सब व्यवस्था साथ में नहीं रह जाती कि क्या कारण होगा? लेकिन अगर महावीर को हम समझ सकते हैं, तब हमें बहुत कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। जिन दो व्यक्तियों को बचाने के लिए वे नहीं कुछ कहे हैं, वे दो व्यक्ति ऐसे होंगे, जिनके बचाने के लिए कुछ कहा ही नहीं जा सकता है। वे दो व्यक्ति ऐसे होंगे, जो महावीर के लिए खड़े ही नहीं हो रहे हैं, अपने लिए ही खड़े हो रहे हैं। जो गोशालक को भी कुछ दिखा देना चाहते हैं कि हम भी कुछ हैं। तो महावीर के पास सिवाय दर्शक होने के कोई उपाय नहीं रह गया होगा।

तीसरे व्यक्ति को उन्होंने रोका है, तो जरूर इसका मतलब गहरा हो सकता है। गहरा यह हो सकता है कि तीसरा व्यक्ति न-अहंकार से उठा हो। न, यह भी एक अहंकार है कि मैं बचा लूंगा। इस भाव से भी न उठा हो। सिर्फ उठा इसलिए हो कि इतनी देर तक और—मैं मरूंगा, उतनी देर तक महावीर और बचते हैं। इतनी विनम्रता से उठा हो तो फिर महावीर को कुछ कहना पड़ेगा, रोकना पड़ेगा।

महावीर के चित्त में क्या होता है—यह हमें कठिन हो जाता है, क्योंकि हम तो ऊपर से तथ्य देखते हैं न—कि दो को मर जाने दिया और एक को बचाया! हमें ख्याल में नहीं आता कि क्या कारण भीतर हो सकते हैं। भीतर से महावीर के देखने खड़े होंगे तो सिवाय इसके और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेंगे।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उन दो के प्रति भी करुणा रही होगी। उन दो के प्रति भी करुणा रही होगी—क्योंकि महावीर के लिए करुणा कोई शर्तबंद चीज नहीं है, कि इस व्यक्ति के लिए रहेगी और उसके लिए नहीं रहेगी। लेकिन वे दोनों करुणा के लिए बहरे रहे होंगे। महावीर यह भी जानते हो सकते हैं कि उन्हें रोकने से कोई मतलब नहीं है। क्योंकि कुछ लोग हैं, जो रोकने से और बढ़ते हैं !

हजार बातें हैं। कुछ लोग हैं, जो रोकने से और बढ़ते हैं ! न रोके जाएं तो शायद रुक जाएं; रोकने से और तेजी में आते हैं। अहंकारी व्यक्ति ऐसा ही होता है, उसे रोको तो वह और तेज होता है। तो महावीर चुप रहे हों।

एक घटना मैं तुम्हें समझाऊं। मैं जब पढ़ता था तो एक युवक मेरे साथ पढ़ता था, उसका एक बंगाली लड़की से प्रेम था। इतना दीवाना था, इतना पागल था, कि वह दो साल यूनिवर्सिटी छोड़कर कलकत्ता जाकर रहा, ताकि ठीक बंगाली हाव-भाव, बंगाली भाषा, बंगाली कपड़ा, उठना-बैठना, सब बंगाली हो जाए ! वह दो साल बंगाली होकर लौट आया। और इतना बंगाली हो गया था कि वह हिंदी भी बोलता तो ऐसे बोलता जैसे कि बंगाली हिंदी बोलता है ! वह हिंदी भी ठीक नहीं बोलता था फिर, हिंदी में भी वह भूलें करता था, जो बंगाली को करना चाहिए। ऐसा बिलकुल निपट बंगाली होकर आ गया था !

लेकिन ऐन वक्त पर उस लड़की ने इनकार कर दिया ! उस लड़की को भी मैं पूछा कि क्या बात हो गई है ? क्या इनकारी का कारण है ? तो उस लड़की ने कहा कि वह मेरे पीछे इतना पागल है और इतनी गुलाम वृत्ति से भरा हुआ है—कि ऐसे गुलाम को पति की तरह पाना मुझे आनंदपूर्ण नहीं है। यानी कोई व्यक्ति तो चाहिए ! यानी जिसमें कुछ तो अपना हो, कुछ व्यक्तित्व हो। तो मैं, नहीं···

अब बड़ी मजेदार घटना घटी कि वह बेचारा सिर्फ इसलिए झुका चला जा रहा था, और सब स्वीकार करता चला जाता था ! वह लड़की कहे रात तो रात, और लड़की कहे दिन तो दिन, ऐसा भाव ले लिया था उसने ! लेकिन यही कारण उस लड़की को विवाह से इनकार करने का बना। उसने इनकार कर दिया। वह तो जानता था कि कुछ खतरा होगा।

एक रात मुझे खबर आई, कोई नौ बजे होंगे। एक ही बेटा था अपने बाप का वह, वृद्ध बाप थे। जिस दिन यह घटना घटी, उसने इनकार किया; उसने एक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कमरे में अपने को बंद कर लिया, ताला अंदर से लगा लिया, और जो भी बाहर से कहे दरवाजा खोलो, वह कहे अब मेरी लाश निकलेगी और मुझसे बात मत करो। अब जिंदा मेरा निकलने की कोई जरूरत नहीं है। घबराहट फैल गई। भीड़ इकट्ठी हो गई, सब प्रियजन इकट्ठे हो गए। बूढ़ा बाप रोए, जितना रोए, उतनी उसकी जिद बढ़ती जाए !

मुझे खबर आई, मैं गया। मैंने देखा वहां बाहर का सब इंतजाम, मैंने कहा ये सब मिलकर इसको मार डालेंगे। क्योंकि उसका जोश बढ़ता चला जा रहा है भीतर। जितना वे समझाते हैं कि अच्छी लड़की ला देंगे, वह कहता अच्छी लड़की ? मेरे लिए कोई लड़की ही नहीं है दूसरी। अच्छे-बुरे का सवाल नहीं है। जितना वे समझाते हैं कि ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे—बेटा दरवाजा खोलो। बेटा है कि बढ़ता चला जा रहा है ! वह रुकता नहीं !

मैं वहां गया, भीड़ वहां इकट्ठी है— दस-पच्चीस लोग थे। मैंने उनसे कहा कि अगर आप उसे बचाना चाहते हैं तो कृपाकर दरवाजे से हट जाए, मुझे बात करने दे।

मैं दरवाजे पर गया। मैंने उससे कहा अरुण, अगर मरना है तो इतना शोर-गुल मचाने की जरूरत नहीं, मरने वाले इतना शोरगुल नहीं मचाते। ये जीने वालों के ढंग हैं—इतना शोरगुल मचाना। मरने वाले चुपचाप मर जाते हैं, तुम्हें तीन घंटे हो गए, क्या तीन-चार साल लगेंगे तुम्हें मरने में ? तुम जल्दी मरो; ताकि हम सब लोग तुम्हें मरघट तक पहुंचाकर निश्चिंत हो जाएं। उसने चुपचाप सुना, कुछ नहीं बोला ! अभी बड़ा चिल्ला-चिल्लाकर बोलता था ! मैंने कहा, बोलते क्यों नहीं ? उसने कहा, हां, मैं मर जाऊंगा। मैंने कहा तुम···इसमें हमें कोई एतराज ही नहीं है। कौन किसी को रोक सकता है कभी ? मरने वाले को कोई नहीं रोक सकता। आज रोकेंगे, कल मर जाओगे। इसलिए रोकें भी क्यों ? दरवाजा खोलो। मरने वाले ऐसे दरवाजे बंद करके भयभीत दिखाई पड़ते हैं ? एक ही तो भय है जिंदगी में कि मर न जाएं, और तो फिर कोई भय ही नहीं है। और तुमने जब वह भय भी त्याग कर दिया, अब तुम किससे डरकर अंदर बंद हो—दरवाजा खोलो !

उसने दरवाजा खोला और मुझे नीचे से ऊपर तक ऐसे देखा, जैसे मैं उसका दुश्मन हूं। और मैंने कहा कि तुम मेरे साथ गाड़ी में बैठ जाओ और चलो।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उसने कहा, कहां जाना है? मैंने कहा कि भेड़ाघाट—जबलपुर में अच्छी जगह है मरने के लिए। समझदार आदमी कम से कम मरने के लिए अच्छी जगह तो चुन ले! नासमझ तो जिंदा रहने के लिए भी अच्छी जगह नहीं चुनता। तो तू भेड़ाघाट मर। और मैं तेरा मित्र रहा इतने दिन तक तो मेरा कर्तव्य है कि तुझे आखिरी विदा कर आऊं। यानी मित्र का यही मतलब है कि जो हर वक्त काम आए, मुसीबत के वक्त काम आए। इस वक्त तेरा कोई काम नहीं पड़ेगा। इस वक्त मैं ही तेरे काम पड़ सकता हूं। तो मुझे उसने ऐसे देखा कि यह आदमी पागल हो गया है। लेकिन अब मुझसे कुछ कहने की हिम्मत न रही। क्योंकि अब धमकी देने का कोई सवाल न था, कि मैं मर जाऊंगा। यह धमकी तो बेमानी थी। वह चुपचाप चला आया!

रात हम दोनों सोए—दोनों तरफ बिस्तर लगाकर बीच में एक अलार्म घड़ी रखकर। मैंने कहा, अभी ठंडी रात है, और हो सकता है कि मेरी नींद न खुले, और अलार्म बजे, तो तुम कृपा करके मुझे उठा देना, क्योंकि तीन बजे हमें निकल चलना चाहिए, एक घंटे का रास्ता है। एक घंटे का रास्ता है। तुम वहां कूद जाना, मैं अंतिम नमस्कार करके लौट आऊंगा। और मुझे फिर वापस भी आना है। और भोर होने के पहले आना चाहिए, नहीं तो तुम तो मरोगे, फंसूंगा मैं। तो तीन बजे ठीक होगा। उसने मुझे···सब बातें—वह मेरी ऐसी सुनता था, ऐसे चौंककर···लेकिन वह मुझसे कुछ कहता नहीं था! रात हम सो गए, अलार्म बजा तो उसने जल्दी से बंद किया। जब मैं हाथ ले गया तो वह अलार्म बंद कर रहा था! उसका हाथ मैंने हाथ में ले लिया, मैंने कहा ठीक है, मेरी भी नींद खुल गई। उसने कहा, लेकिन अभी मुझे बहुत ठंड मालूम होती है। मैंने कहा, ये सब जीने वालों की ही बातें हैं—ठंड मालूम होना, गर्मी मालूम होना। ये कोई मरने वालों के ख्याल नहीं हैं। ठंड का अब क्या सवाल? यह आखिरी ठंड है। घंटे भर की बात है—सब खतम! और मुझे वापस भी लौटना है। मैंने उससे कहा कि ठंड मुझे लगेगी, क्योंकि तू जब डूब जाएगा, तब मुझे वापस भी तो आना है।

वह एकदम गुस्से में बैठ गया और बोला कि आप मेरे दोस्त हो कि दुश्मन? आप मेरी जान लेना चाहते हैं? मैंने आपका क्या बिगाड़ा है? मैंने कहा, मैं तुम्हारी जान नहीं लेना चाहता हूं, और न तुमने कभी मेरा कुछ बिगाड़ा है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेकिन अगर तुम जीना चाहते हो तो मैं जीने में साथी हो जाऊंगा। अगर तुम मरना चाहते हो, मैं उसमें साथी हो जाऊंगा। मैं तुम्हारा साथी हूं। तुम्हारी क्या मर्जी है? उसने कहा कि मैं जीना चाहता हूं। मैंने कहा, फिर सांझ से इतना शोरगुल क्यों मचा रहे हो?

अब इस आदमी को क्या हुआ, देखते हो? वह आदमी अब भी जिंदा है। और जब भी मुझे मिलता है तो मुझसे कहता है कि आपने मुझे बचाया। नहीं तो मैं मर जाता। वे सारे बाहर के लोग मुझे मारने की तैयारी करवा रहे थे। वह जितना मुझे बचाने की बातें करते, उतना मेरा जोश चढ़ता चला जाता। आदमी के मन को समझना बड़ा मुश्किल है, एकदम मुश्किल है। और आदमी कैसे काम करता है? किस भांति आदमी का चित्त काम करता है? वह आदमी कभी नहीं बचता, वह मर ही जाता। उसका मरना पक्का था उस दिन।

तो क्यों महावीर किसी को नहीं रोकते हैं, किसी को रोकते हैं, इसे एकदम ऊपर से नहीं पकड़ लेना। इसे बहुत भीतर से देखने की बात होनी चाहिए कि महावीर के लिए क्या कारण हो सकता है। करुणा उनकी समान है। लेकिन व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। रोकना किसके लिए सार्थक होगा, किसके लिए नहीं सार्थक होगा, यह भी वे जानते हैं। कौन रोकने से रुकेगा, यह भी वे जानते हैं। कौन रोकने से और बढ़ेगा, यह भी वे जानते हैं। कौन किस कारण से बढ़ रहा है, यह भी वे जानते हैं। और इसलिए हो सकता है दो व्यक्तियों को नहीं, दो सौ व्यक्तियों को भी हो सकता है न रोकते।

एक-एक व्यक्ति भिन्न-भिन्न है। उसकी सारी व्यवस्था भिन्न है। और उस व्यक्ति को अगर हम गौर से देखेंगे तो हमें उसके साथ भिन्न-भिन्न व्यवहार करना पड़ेगा। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ भिन्न-भिन्न हो जाता हूं। मैं न भी भिन्न-भिन्न होऊं, तब भी प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है, और उसे देखकर मुझे कुछ करना जरूरी है।

फिर और भी बहुत-सी बातें महावीर देखते हैं, जो कि साधारणतः नहीं देखी जा सकतीं। उनकी मैं इसलिए बात नहीं करता हूं कि वे एकदम अदृश्य की बातें हैं। महावीर यह देख सकते हैं कि इस व्यक्ति की उम्र समाप्त हो गई है, यह सिर्फ निमित्त है इसके मरने का, इसलिए चुप भी रह सकते हैं। और कोई कारण भी न हो, सिर्फ इतना ही देखते हैं, यह आदमी की उम्र तो गई है और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सिर्फ निमित्त है इसके मरने का। और निमित्त सुंदर है, इसे मर जाने दें और एक व्यक्ति—उम्र समाप्त नहीं हुई है और व्यर्थ उलझाव में पड़ जाता है, व्यर्थ उपद्रव में पड़ रहा है—सोच सकते हैं रोक लें। किन्हीं क्षणों में मरना भी हितकर है, जीने से भी ज्यादा हितकर है किन्हीं क्षणों में। लेकिन उतनी क्षण की अनुभूति और उतनी गहराई का बोध हमें नहीं ख्याल में आ सकता है।

अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं तो कोई ऐसा क्षण भी हो सकता है, जब मैं उसको चाहूं कि वह मर ही जाए। हालांकि यह कैसी बात है! क्योंकि जिसको हम प्रेम करते हैं, उसे हम कभी भी नहीं मरने देना चाहते। चाहे जीना उसका मरने से ज्यादा दुखदायी हो जाए, तो भी हम उसे जिंदा रखना चाहते हैं कोई भी हालत में। वह बड़ी उल्टी बात है। बूढ़ा बाप है, नब्बे साल का हो गया है, बीमार है, दुखी है, आंख नहीं है, उठ-बैठ नहीं सकता, फिर भी बेटे, बहू, बेटियां प्रेम में उसको जिंदा रखे चले जा रहे हैं, कि चेष्टा कर रहे है उसको जिंदा रखने की! अब पता नहीं यह प्रेम है कि अब बहुत गहरे में टार्चर की इच्छा है। कहना बहुत मुश्किल है। इस बुड्ढे को सताने की बहुत गहरी इच्छा काम कर रही है! ऊपर से प्रेम की भाषा है, या कि सच में ही प्रेम है? अगर सच में यह प्रेम है तो बड़ा अजीब प्रेम मालूम पड़ता है—कि मेरे सुख के लिए कि आप जिंदा रहें। मैं आपको दुख में भी जिंदा रखना चाहूं, तो प्रेम नहीं है। मैं दुखी होना पसंद करूंगा। आप मर जाएंगे, मुझे दुख होगा, पीड़ा होगी, एक खाली घाव रह जाएगा, जो कभी नहीं भरेगा, वह मैं पसंद करूंगा। लेकिन यह पीड़ा और दुख आपका नहीं सहूंगा। मगर ऐसे प्रेम को समझ पाना बहुत कठिन होगा कि कोई बेटा अपने बाप को लाकर जहर दे दे, और कहे कि अब नहीं जीना है आपको, क्योंकि मेरा प्रेम नहीं कहता कि आपको जिलाऊं। मुझे दुख होगा आपके मरने से, वह दुख मैं सहूंगा। लेकिन आप—मैं,मुझे दुख न हो इसलिए जिएं··· !

ऐसे क्षण हो सकते हैं। लेकिन उस बेटे का प्रेम फिर समझ में आना बहुत मुश्किल हो जाएगा। लेकिन कभी एक वक्त आएगा दुनिया में जबकि बेटे इतना प्रेम भी करेंगे, पत्नियां इतना प्रेम करेंगी, पति इतने प्रेम करेंगे। प्रेम का मतलब ही यह है कि हम दूसरे को दुख में न डाल सकें। उसे हम कितने सुख में ले जा सकें। मेरा विचार न हो प्रमुख—कि उसके होने न होने से मुझे क्या होगा, यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सवाल नहीं है बड़ा।

तो इसलिए किसी भी घटना में बहुत गहरे उतरने की जरूरत है और तब हमें ख्याल में आ सकता है कि क्या प्रयोजन रहे होंगे। और न भी ख्याल आए तो भी जल्दी निष्कर्ष मत लेना क्योंकि जल्दी निष्कर्ष बहुत मंहगी चीज है। और महावीर जैसे व्यक्तियों के प्रति जल्दी निष्कर्ष बहुत ही मंहगा है। क्योंकि उन्हें समझना हमें सदा कठिन है, उन्हें मिसअंडरस्टैंड करना हमें सदा सरल है। उस तरह के जो व्यक्ति हैं, उन्हें समझना तो हमें सदा ही कठिन है। हमारी गहरीसे गहरी समझ भी संदिग्ध ही रहेगी। हां, उन्हें उनके संबंध में कोई नासमझी, कोई मिस-अंडरस्टैंडिंग बनानी अत्यंत सरल है। क्योंकि जिस जगह हम खड़े होते हैं, वहां से जो हमें दिखाई पड़ता है, हम वही सोच सकते हैं। हम वही सोच सकते हैं न, जहां हम खड़े हैं! जिन्हें दूर तक दिखाई पड़ता है, वे क्या सोचते हैं, वे कैसे सोचते हैं; वे सोचते भी हैं कि नहीं सोचते हैं? यह भी हमारे लिए तय करना मुश्किल हो जाता है। वे किस भांति जीते हैं? क्यों उस भांति जीते हैं? अन्यथा क्यों नहीं जीते? यह भी हमें सोचना मुश्किल हो जाता है। हम ज्यादा से ज्यादा अपना ही रूप प्रोजेक्ट कर सकते हैं। हम यही सोच सकते हैं कि इस हालत में हम होते तो क्या करते! दो आदमियों को न मरने देते, या फिर तीनों को ही मरने देते। दो ही उपाय थे हमारे सामने। पर चूंकि हम, उस चेतना स्थिति का हमें कोई अनुभव नहीं है, जो बहुत दूर तक देखती है, बहुत दूरगामी है, और जिसका हमें कोई ख्याल नहीं है···।

महावीर और गोशालक, जब गोशालक उनके साथ था, तो एक गांव के पास से गुजर रहे हैं। और गोशालक उनसे पूछता है, जो होने वाला है, वही होता है? महावीर कहते हैं, ऐसा ही है। जो होने वाला है, वही होता है। तो पास में ही जिस खेत से वे गुजर रहे हैं, दो पंखुड़ियों वाला एक पौधा लगा हुआ है, जिसमें अभी कली आने को है, कल फूल बनेगी। गोशालक उस पौधे को उखाड़कर फेंक देता है और महावीर से कहता है कि यह पौधा फूल होने वाला था और अब नहीं होगा।

वे दोनों गांव से भिक्षा लेकर वापस लौटते हैं। इस बीच पानी गिर गया है और वह जो पौधा फेंका था निकालकर, पानी गिरने से कीचड़ हो गई है, उस पौधे ने फिर कीचड़ में जड़ें पकड़ ली हैं, वह फिर खड़ा हो गया है! जैसे उसी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जगह से वापस लौटते हैं तो महावीर उससे कहते हैं कि देख, वह कली फूल बनने लगी है। वह पौधा पकड़ लिया है जमीन फिर से, और कली फूल बन गई है।

जिसे दूर तक दिखाई पड़ता है, उसे बहुत-सी बातें दिखाई पड़ती हैं, जो हमारे ख्याल में भी कभी नहीं होतीं। और जिंदगी इतना लंबा विस्तार है कि जैसे कोई किसी एक उपन्यास के एक पन्ने को पकड़ ले और उस पन्ने को पढ़े, तो क्या तुम सोचते हो कि उस पन्ने से पूरे उपन्यास के बावत कोई नतीजा निकल सके ? कुछ भी न निकाल सके। हो सकता है उपन्यास बिलकुल उल्टे नतीजों पर अंत हो, जो उस पन्ने में लिखा है, उससे बिलकुल भिन्न चली जाए। क्योंकि यह पन्ना सिर्फ उस लंबी यात्रा का एक छोटा-सा हिस्सा है। पूरा उपन्यास जानना पड़े। जिंदगी में हम भी क्या करते हैं कि एक टुकड़े को उठा लेते हैं और उस टुकड़े को फैलाकर पूरी जिंदगी को जांचने चल पड़ते हैं ! मुश्किल है। ऐसा नहीं जांचा जा सकता। पूरी जिंदगी देखनी पड़े। और पूरी जिंदगी को देखें हम, तो उस एक टुकड़े को भी समझ सकते हैं। नहीं तो यह टुकड़ा भी हमारी समझ में नहीं आ सकता।

और क्या तेरा एक था, वह और बोल दे।

प्रश्न : ध्यान के लिए शुद्धीकरण की आवश्यकता है, और जब भी व्यक्ति का मन केंद्र पर है, जब भी व्यक्ति केंद्र पर है तो उसकी बाह्य क्रिया, उठना-बैठना, यह सब उसकी सहज अवस्था में हो जाती है। जब भी महावीर बैठते हैं ध्यान के लिए, तो जैसे कुक्कुटासन है, और गौदोहासन है—यह विचित्र अवस्था है !

यह भी समझने जैसी बात है। महावीर को ज्ञान भी हुआ गौदोहासन में ! जैसे कोई गौ को दुहते वक्त बैठता है उकडूं, ऐसे बैठे-बैठे महावीर को परमज्ञान की उपलब्धि हुई है। ये बड़ी अजीब आसन हैं। न तो वे गौ दुह रहे थे, यह बड़ी उल्टी स्थिति मालूम पड़ती है। ऐसा महावीर बैठे किसलिए थे ? ध्यान में, ध्यान अवस्थित होने में ऐसे किसी आसन की कभी बात भी नहीं थी। इसे समझना चाहिए।

इसमें तीन बातें समझनी जरूरी हैं। इसमें तीन बातें जरूरी हैं। पहली बात तो यह समझनी जरूरी है कि हमें ऐसा लगता है, कि गौदोहासन बड़ा असहज है। ऐसा नहीं है। किसी को सहज हो सकता है। सहज और असहज हमारी आदतों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

की बातें हैं। पश्चिमी व्यक्ति को हम यहां ले आएं तो जमीन पर बैठना इतना असहज है, पालथी मारकर बैठना तो ऐसी असहज बात है कि इसे एक पश्चिमी व्यक्ति को सीखने में छः महीने भी लग सकते हैं। और छः महीने मालिश भी चले उसकी, और बेचारा हाथ-पैर भी सिकोड़े, तभी वह ठीक से पालथी मारकर···और फिर भी वह सहज नहीं होने वाला है। यानी फिर भी वह जब बैठा है तो वह चेष्टारत ही होगा। क्योंकि पश्चिम में नीचे बैठता ही नहीं कोई, सब कुर्सी पर बैठते हैं। इसलिए नीचे बैठने की जो हमारे लिए अत्यंत सहज बात मालूम होती है, वह जो लोग नहीं बैठते, उनके लिए अत्यंत असहज है। क्या सहज है? जो अभ्यास में है, वही हमें सहज मालूम पड़ता है। जिसका अभ्यास नहीं है, वह असहज मालूम होने लगता है।

हो सकता है महावीर निरंतर पहाड़ में, जंगल में, वर्षा में, धूप में, ताप में, सर्दी में; न कोई घर, न कोई द्वार; न बैठने के लिए कोई आसन, न कोई कुर्सी, न कोई गद्दी; कुछ भी नहीं है। यह बहुत कठिन नहीं है कि महावीर सहज जंगल में रोज उकड़ूं ही बैठते रहे हों। यह बहुत कठिन नहीं है। फिर महावीर की एक धारणा और अद्भुत है। महावीर कहते हैं, जितना कम से कम पृथ्वी पर दबाव डाला जा सके उतना अच्छा, क्योंकि उतनी कम हिंसा होने की संभावना है। महावीर रात सोते हैं तो करवट नहीं बदलते! क्योंकि जब एक ही करवट सोया जा सकता हो तो दूसरी करवट लक्जरी है। है न? दूसरी करवट जो है, अत्यंत विलासपूर्ण है। जब एक ही करवट सोया जा सकता हो, तो अकारण दूसरी करवट लेने में व्यर्थ ही कोई चींटी, कोई मकोड़ा मर जाए—क्या जरूरत? एक ही करवट से काम चल जाता है। कम से कम हिंसा है एक करवट में ही। दूसरी करवट में कुछ हिंसा हो ही जाती है, हो ही जाएगी। और हमसे शायद न भी हो, महावीर से तो हो ही जाएगी। किसी वृक्ष के तले जंगल में सो रहे हैं, करवट बदलेंगे, पचास चींटियां मर जा सकती हैं। फिर महावीर कहते हैं अनावश्यक है, लक्जरिअस है, यानी विलासपूर्ण है, आमोदपूर्ण है। जरूरत क्या है? एक करवट काफी है। तो महावीर एक ही करवट सो लेते हैं और दूसरी करवट बदलते नहीं रात भर। तो ऐसा जो व्यक्ति है, वह मुझे लगता है कि उकड़ूं बैठना पृथ्वी पर सबसे कम दबाव डालता है, क्योंकि दोनों पंजे ही छूते हैं। पालथी मारकर पृथ्वी का ज्यादा हिस्सा घेरता है। और इतनी ज्यादा हिंसा की संभावना बढ़ जाती

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है। तो कुछ आश्चर्य नहीं कि महावीर ऐसे ही उकडूं बैठते रहे हों। उनकी जो दृष्टि है, उनकी जो अपनी, जो समझ है, वह समझ यह है कि क्यों व्यर्थ किसी के जीवन को नुकसान पहुंचाना ? तो हमें असहज लगता हो।

तो पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि हमें असहज लगता हो, इसलिए असहज है, ऐसा मत सोचना। हमारे लिए अभ्यासगत् नहीं है, किसी के लिए अभ्यासगत् हो सकता है। सारी पृथ्वी पर लोग अलग-अलग ढंग से उठते, बैठते, सोते, खाते-पीते हैं। जो हमें बिलकुल सहज लगता है, दूसरे को बिलकुल सहज न लगेगा।

हम हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं, बिलकुल सहज लगता है। कुछ कौमें हैं, जो जीभ निकालकर नमस्कार करती हैं ! दो आदमी मिलेंगे तो दोनों जीभ निकाल देंगे ! अब हम सोच भी नहीं सकते कि किसी से नमस्कार करना हो तो जीभ निकाल दो। और अगर किसी से नमस्कार किया जीभ निकालकर, तो झगड़े की संभावना ज्यादा है। हमारे लिए बिलकुल असहज बात मालूम पड़ती है कि क्या पागलपन है, कि दो आदमी मिलें तो जीभ निकालें ! लेकिन दो आदमी मिलें तो हाथ जोड़ें, यह कौन-सी बात है ? अगर हाथ जोड़े जा सकते हैं, जीभ निकाली जा सकती है। कुछ कौमें हैं, जो मिलती हैं तो नाक से नाक रगड़कर नमस्कार करती हैं। बिलकुल उनके लिए सहज मालूम होगा। लेकिन हम दो आदमियों को सड़क पर नाक से नाक लगाते देखें, हमें थोड़ी हैरानी होगी कि कुछ दिमाग खराब हो गया है। पश्चिम में चुंबन अत्यंत सरल, सहज-सी बात है। हमारे लिए भारी ऊहापोह की बात है कि कोई आदमी सड़क पर दूसरे आदमी को चूम ले। चुंबन हमारे लिए नमस्कार नहीं है। पश्चिम में सहज नमस्कार का हिस्सा है।

जो अभ्यास में हो जाता है हमारे, वह सहज लगने लगता है, जो अभ्यास में नहीं वह असहज लगने लगता है।

महावीर अहिंसा की दृष्टि से दो पंजों पर बैठते रहे होंगे। वह सर्वाधिक, न्यूनतम हिंसा उसमें है। दूसरा उनके लिए सहज भी हो सकता है। अगर आप दस आदमियों को रात सोते देखें, तो आप दसों आदमियों को अलग ढंग से सोते देखेंगे। क्योंकि हम देखते नहीं, नहीं तो अगर एक-एक आदमी को···अभी अमेरिका में एक उन्होंने लेबोरेटरी बनाई, जिसमें अब तक वे दस हजार लोगों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को सुलाकर देख चुके हैं। कोई बीस साल से एक्सपेरिमेंट चलता है, जिसमें अजीब नतीजे निकाले उन्होंने। कोई दो आदमी एक जैसा सोते तक नहीं ! यानी और सब बातें तो बेजोड़ हैं ही, यानी दो आदमी सोते भी अपने-अपने ढंग से हैं। सोने का ढंग, उठने का ढंग भी अपना-अपना है।

दूसरी बात यह ध्यान देनी चाहिए कि इस जगत में असहज कुछ भी नहीं है। परिस्थिति अनुकूल-प्रतिकूल, व्यक्ति के सोचने-समझने का ढंग, जीने की व्यवस्था अलग-अलग स्थितियां ला सकती हैं। जैसे आमतौर से महावीर या तो खड़े होकर ध्यान करते हैं, वह भी साधारण नहीं लगता। क्योंकि साधारणतः लोग बैठकर ध्यान करते हैं। महावीर खड़े होकर ध्यान करते हैं। महावीर की जो ध्यान की व्यवस्था है, वह शायद खड़े होकर करने में ज्यादा सरल पड़ती है, क्योंकि मूर्च्छा और तंद्रा का कोई उपाय नहीं है। और हो सकता है, उकड़ूं बैठने में भी वही दृष्टि हो। उकड़ूं बैठकर भी आप सो नहीं सकते। जितने आप एट ईज हो जाते हैं, उतनी तंद्रा के आने की संभावना बढ़ जाती है। नींद आ सकती है। महावीर कहते हैं, पूर्ण सजग भीतर रहना है। पूर्ण सजगता के लिए उनका अथक श्रम है। हो सकता है, निरंतर प्रयोग से उन्हें लगा हो कि उकड़ूं बैठकर नींद आने का कोई उपाय नहीं है, वे उकड़ूं बैठने लगे हों। फिर वे ट्रेडिशनल माइंड नहीं हैं, यह भी समझ लेना चाहिए।

महावीर परंपरागत मस्तिष्क नहीं हैं। जिसको नान कनफर्मिस्ट कहते हैं, परंपरा-मुक्त, बल्कि एक अर्थ में परंपरा निषेधक, वे वैसे व्यक्ति हैं। वे किसी भी चीज में किसी का अनुकरण करेंगे, ऐसा नहीं है। उन्हें जो सहज और आनंदपूर्ण लगेगा, वे वैसा ही करेंगे। जगत में किसी ने किया हो या न किया हो, यह सवाल नहीं है। तो इसमें भी क्यों ?

लेकिन हम सब परंपरा-अनुयायी होते हैं। सब कैसे बैठते हैं, वैसे ही हम बैठते हैं ! सब कैसे खड़े होते हैं, वैसे ही हम खड़े होते हैं ! सब कैसे वस्त्र पहनते हैं, वैसे ही हम वस्त्र पहनते हैं ! सब कैसी बातें करते, वैसी ही हम बातें करते हैं ! क्योंकि सबके साथ हमें रहना है और सबसे भिन्न होकर खड़ा होना अत्यंत कठिन है। इसलिए सबके साथ यूनिफार्मिटी बांधकर चलना सरल मालूम पड़ता है।

महावीर इस तरह के व्यक्ति नहीं हैं। वे कहते हैं, सब क्या करते हैं, यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सवाल नहीं है; मुझे क्या करने जैसा लगता है, वही सवाल है। और हो सकता है मुझसे पहले किसी को भी करने जैसा न लगा हो; और हो सकता है, मेरे बाद भी किसी को करने जैसा न लगे; लेकिन जो मुझे करने जैसा लगता है, उसका हमें अधिकार है। मैं वैसे ही जिऊंगा, वैसा ही करूंगा। इस अर्थों में वे निपट व्यक्ति-स्वातंत्र्य के अपूर्व पक्षपाती हैं—पूर्ण व्यक्ति-स्वातंत्र्य के। यानी ऐसी-ऐसी बातों में भी, जिनमें कि हम कहेंगे, इसमें स्वातंत्र्य की क्या जरूरत है?

यह भी समझ लेना जरूरी है इस प्रसंग में, कि हमारे शरीर की और हमारे मन की दशाओं के बीच में एक तरह का तादात्म्य हो जाता है। जैसे आपने देखा हो, कोई आदमी चिंतित होगा, सिर खुजलाने लगेगा। सभी नहीं खुजलाने लगेंगे। कोई चिंतित होगा तो सिर खुजलाने लगेगा। अगर यह आदमी बिना कारण भी सिर खुजलाने लगे तो आप पाएंगे, यह चिंतित हो जाएगा। यह एसोसिएशन हो जाता है। यह एसोसिएशन हो जाता है, प्रत्येक चीज जुड़ जाती है। तो एक आदमी की शारीरिक गतिविधि में भी उसकी मानसिक गतिविधि जुड़ जाती है। अगर शरीर की गतिविधि बदल दी जाए तो उसके मन की पुरानी गतिविधि के तोड़ने में सहायता मिलती है। तो कई बार साधक ऐसी व्यवस्था करता है, जिसमें उसका ओल्ड माइंड, उसका पुराना मन अभिव्यक्ति न पा सके। क्योंकि पुराने मन की जो-जो आदतें थीं, वह उनके बिलकुल विपरीत काम करने लगता है। वह उस पुराने मन को मौका नहीं देता सबल होने का।

हमें यह ख्याल में नहीं है कि हमारी छोटी-छोटी बातें जुड़ी हुई हैं। हमें यह भी ख्याल में नहीं है कि हम खास तरह के कपड़े जब पहनते हैं तो हम खास तरह के आदमी हो जाते हैं। और दूसरी तरह के कपड़े पहनते हैं तो दूसरी तरह के आदमी हो जाते हैं। और एक ढंग से बैठते हैं, तो एक तरह के आदमी हो जाते हैं; और दूसरे ढंग से बैठते हैं, दूसरे ढंग के आदमी हो जाते हैं। क्योंकि हमारा जो मस्तिष्क है, वह इन छोटे-छोटे संकेतों पर जीता और चलता है। बहुत छोटे-छोटे संकेत उसने पकड़ रखे हैं!

अब हो सकता है कि महावीर का उकडूं बैठना एक अजीब घटना है। साधारणत: कोई उकडूं नहीं बैठता। उनका यह उकडूं बैठना, यह गौदोहासन में ध्यान करने जाना मेरी दृष्टि में गहरे से गहरा यह अर्थ रखता है, कि चित्त को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस तरह बैठने के कोई जोड़ नहीं हैं पुराने। इस शरीर की स्थिति में बैठने पर पुराना चित्त असर्ट नहीं कर सकता, वह जोर नहीं डाल सकता। और नए चित्त की तरफ ले जाने में सरलता हो सकती है। और अंतिम बात ख्याल में लेनी चाहिए वह यह···।

एक झेन फकीर हुआ, उसकी मृत्यु करीब आई। वह मरने के करीब है। सब मित्र और प्रियजन इकट्ठे हो गए हैं। वह बड़ा ख्यातिनाम है, लाखों लोग उसे प्रेम करते हैं, हजारों लोगों तक खबर पहुंच गई है। उसके झोंपड़े के चारों तरफ मेला लग गया है। निकटतम शिष्य उसके आसपास खाट के खड़े हैं। वह खाट से उठकर खड़ा हो गया और उसने कहा कि मैं एक बात पूछना चाहता हूं, कभी तुमने किसी आदमी के खड़े-खड़े मर जाने की खबर सुनी? तो उन लोगों ने कहा, खड़े-खड़े मर जाने की! कोई खड़ा-खड़ा मरेगा किसलिए? लोग सोए-सोए ही मरते हैं, क्योंकि मरने के पहले ही लोग लेट जाते हैं। तभी भीड़ में से एक आदमी ने कहा कि नहीं-नहीं, ऐसा नहीं है। मैंने एक फकीर के संबंध में सुना है, पक्का मुझे पता नहीं कि वह खड़ा-खड़ा ही मर गया था। तो उसने कहा, फिर जाने दो। तुमने कभी किसी आदमी के चलते-चलते मरने की खबर सुनी है? तो लोगों ने पूछा, आप ये बातें क्यों पूछ रहे हैं? चलते-चलते मरना! कोई चलते-चलते किसलिए मरेगा? असल में चलना रुक जाता है, इसीलिए तो मरता है। फिर भी भीड़ में से एक आदमी ने कहा कि नहीं-नहीं, यह भी हमने सुना है। कभी प्राचीन समय में एक आदमी हुआ है, जो चलते-चलते मर गया। तो उस फकीर ने कहा, यह भी जाने दो। मतलब अपने लिए कोई ढंग खोजना पड़ेगा, फकीर ने कहा, जैसा कि कोई भी न मरा हो। तो लोगों ने कहा, आप ये क्या बातें कर रहे हैं? तो उस फकीर ने कहा, अच्छा तो ऐसा करो कि शीर्षासन करते हुए किसी के मरने की खबर सुनी? लोगों ने कहा, यह न तो सुना और न सोचा कभी, कि कोई आदमी शीर्षासन करते मर जाएगा। उस फकीर ने कहा, तो चलो फिर यही ठीक रहेगा। क्योंकि दूसरों के जैसे क्या मरना! मरने में एक अथेंटिसिटी होनी चाहिए न! एक अपनी प्रामाणिकता होनी चाहिए। क्या दूसरे जैसे मरना! सब लोग ऐसे ही मरते हैं···।

प्रश्न : यह अहंकार नहीं है?

समझो पहले, जल्दी मत करो। वह आदमी शीर्षासन के बल खड़ा हो गया

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और मर गया। लेकिन लोग बहुत डरे। और उसकी लाश को कौन नीचे उतारे, यह भी भय समा गया। क्योंकि मतलब यह है कि आदमी मर ही गया कि नहीं ? क्योंकि शीर्षासन वह अब भी कर रहा था। मर तो गया था। सांस लोगों ने जांच ली ; हृदय के पास जाकर देखा, धक-धक बंद है, सांस बंद है। लोगों को फिर भी यह लगे कि जो आदमी अभी शीर्षासन कर रहा है, इसको ठठरी पर बांधना ! तो भीड़ में बड़ी शंका फैल गई। तो लोगों ने कहा, कि अच्छा ठहरो थोड़ा, इसको कुछ मत करो। इसकी बहन भी पास में रहती है, वह भी भिक्षुणी है एक मंदिर में। पास के मंदिर में है। तो उसको बुला लाओ। वह इसकी बड़ी बहन है। इसकी आदतों से ठीक से परिचित भी होगी—इसके साथ क्या करना चाहिए।

बहन भागी आई। उसने आकर उसको जोर का धक्का दिया और कहा कि अभी तक शरारत नहीं छोड़ते हो ? मरते वक्त भी कोई ऐसी बातें करनी पड़ती हैं ? जिंदगी भर अपने जैसे होने की दौड़ थी, अभी मरने में भी उसको कायम रखोगे ? तो वह आदमी खिलखिलाया, हंसा और गिर गया और मर गया। अभी तक वह मरा नहीं था। यानी अभी तक वह मजाक कर रहा था—मरने के लिए भी मजाक कर रहा था !

एकदम से सोचोगी तो फौरन ख्याल आ जाएगा कि ऐसा आदमी अहंकारी तो नहीं है ? लेकिन जो आदमी अपनी मौत के साथ भी मजाक कर सकता है, वह अहंकारी हो सकता है ? हम अपनी जिंदगी के साथ भी मजाक नहीं कर सकते। असल में हम सदा दूसरे के साथ मजाक करते हैं। अहंकार सदा दूसरे के साथ मजाक करता है, सिर्फ निरहंकारी अपने साथ भी मजाक कर सकता है। जिंदगी की तो बात जिंदगी, मरते वक्त भी इतना नान-सीरियस···अहंकारी कभी भी नान-सीरियस नहीं होता है, अहंकारी सदा सीरियस है, सदा गंभीर। चीजें गंभीर हैं। यह आदमी कैसा बच्चों के खेल जैसा मामले को ले रहा है—मरने को ! और उसमें भी खिलवाड़ कर रहा है ! और जब वह गिर पड़ा हंसते हुए तो उस भीड़ में हंसी का फव्वारा छूट गया कि क्या अद्भुत आदमी था ! मरते वक्त भी···!

और उसकी बहन इतना कहकर धक्का मारकर चली गई। उसने कहा कि क्या शरारत करते हो ? बचपन के नटखटपन की आदत अभी भी जारी रखे हो ?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गंभीर होना चाहिए साधु को। यह क्या तुम गैर-गंभीरता कर रहे हो? मरना हो तो ढंग से मरो, जैसा लोग मरते हैं। उसको धक्का दे दिया है, वह खूब खिल-खिलाकर हंसा है, गिर पड़ा और मर गया है!

अहंकार हमें जल्दी से ख्याल में आ सकता है, क्योंकि हमारा ख्याल यह है कि जब भी कोई व्यक्ति व्यक्ति होने की कोशिश करता है तो वह अहंकारी है। और यह बड़े मजे की बात है कि जिस व्यक्ति के पास व्यक्तित्व नहीं होता, उसी के पास अहंकार होता है। इसे थोड़ा समझ लें। असल में अहंकार सब्स्टीट्यूट है व्यक्तित्व का। जो नहीं है, उसकी घोषणा हम करके अपने मन को समझा रहे हैं। लेकिन जिसके पास व्यक्तित्व होता है, उसे अहंकार होता ही नहीं। दिख सकता है बहुत बार, क्योंकि वह आदमी अथेंटिकली इंडीवीजुअल होगा। वह जैसा है, वैसा ही होगा, वह इस दुनिया की कोई फिक्र नहीं करेगा। लेकिन न फिक्र करना —उसका, उसका मोटिव नहीं है, उसकी इच्छा नहीं है। वह तो जो होना चाहता है, वह है। अब इसमें अगर इनकार हो जाता है सारे जगत को तो हो जाए, इस इनकार को करने वह नहीं गया है। जब कोई व्यक्ति जो होने को पैदा हुआ है, वही हो जाता है, तभी वह अहंकार से मुक्त होता है।

और अहंकार है क्या असल में? अहंकार उस आत्मा का—आत्मा का सब्स्टीट्यूट है, जो हमारे भीतर होनी चाहिए और नहीं है। उसकी जगह हम अहंकार को बनाए हुए हैं। अहंकार जो है, वह आत्मा का धोखा देने का काम कर रहा है। जैसे किसी आदमी के पास असली हीरे नहीं हैं तो उसने नकली हीरे की अंगूठी पहन रखी है। नकली हीरे की अंगूठी जो है, वह असली हीरे की झलक पैदा करती है दूसरों की आंखों में। लेकिन जिसके पास असली हीरे की अंगूठी है, वह नकली हीरे की अंगूठी किसलिए पहने? वह उसे फेंक देगा। वह दो कौड़ी की हो गई। जिसके पास आत्मा है, वह अहंकार से उसका संबंध हो गया। क्योंकि अहंकार की जरूरत ही इसलिए थी कि कोई आत्मा तो भीतर थी नहीं, तो हमने एक फाल्स एंटाइटी खड़ी कर रखी थी कि यह मैं हूं। अहंकार कहता था, यह मैं हूं—और उसे पता था ही नहीं कि वह कौन है! जिसे पता चल जाए कि वह कौन है, वह फेंक देगा। अहंकार से उसे क्या लेना-देना रहा।

लेकिन हमें ऐसे आदमी को पहचानना बहुत मुश्किल होता है। क्योंकि हम दो ही भाषाएं समझते हैं: या तो वह अहंकारी हो तो हम समझते हैं, या विनम्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हो तो हम समझते हैं। और विनम्रता जो है, अहंकार का ही सूक्ष्मतम रूप है। और ऐसा जो व्यक्ति है, न तो अहंकारी होगा, न विनम्र होगा। न वह किसी के हाथ जोड़ने जाएगा और न किसी से हाथ जुड़वाने की चिंता रखेगा। वह जैसा है, वैसा जिएगा। और वैसा आदमी दुनिया को कहेगा, तुम जैसा जीना चाहो, जियो। लेकिन ऐसे व्यक्ति को हमें पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा। बहुत बार ऐसा व्यक्ति हमें अहंकारी मालूम पड़ेगा, क्योंकि ऐसे व्यक्ति की मौजूदगी ही हमारे अहंकार को चोट पहुंचाएगी। और ऐसा व्यक्ति चूंकि विनम्रता ग्रहण नहीं करेगा, इसलिए हमारे अहंकार को ऐसे व्यक्ति से कोई तृप्ति नहीं मिलेगी।

विनम्रता है क्या ?

दूसरे के अहंकार को तृप्ति देना। तो जो व्यक्ति दूसरे के अहंकार को तृप्ति दे देता है, हम कहते हैं, यह बड़ा विनीत आदमी है, बहुत विनम्र आदमी है ! लेकिन उसकी विनम्रता हम पहचानते कैसे हैं ? पहचानते इसलिए हैं कि वह इतना झुककर हमें नमस्कार करता है। हमें न ! मुझे नमस्कार करता है झुककर, तो मेरे अहंकार को तृप्ति दे रहा है, तो मेरे लिए विनम्र हो गया। असल में विनम्रता की भाषा भी अहंकारियों ने खोजी है। अब वह दूसरों को कहते हैं, सब विनम्र हो जाओ, विनम्रता बड़ी ऊंची चीज है। क्योंकि अगर विनम्र सब हो जाओगे तो ही वे अहंकार को खड़ा कर सकेंगे। नहीं तो उनका अहंकार कहां खड़ा होगा ? सभी अविनम्र हो गए तो मुश्किल हो जाएगी।

लेकिन जो व्यक्ति होने की खोज है, सर्च फार दि इंडीविजुअल है, उसमें न तो कोई अहंकार है, न कोई विनम्रता है। वह यह कह रहा है कि मैं मैं हूं, आप आप हैं, ये दोनों में झगड़ा क्या है ? यानी मुझे मुझे होने दें, आप आप हों; इसमें कोई झगड़ा नहीं लेना है। वह न विनम्रता पाल रहा है; न अहंकार पाल रहा है। वे दोनों एक ही चीजें हैं। वह यह कह रहा है कि मैं मैं हूं, तुम तुम हो। अब बीच में झंझट क्या लेनी है ? तुम तुम रहो, मुझे मुझे होने दो।

लेकिन यह हमें बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि यह आदमी यह कह रहा है कि हमसे तो, हमारे अहंकार से इसका कोई संबंध नहीं मिलता। हम चाहते हैं या तो हमारी गर्दन दबाए, तो हम समझें कि यह कुछ है। या हम इसकी गर्दन दबाएं तो हम समझें कि यह कुछ है। लेकिन वह यह कहता है, कोई किसी की गर्दन मत दबाओ। तुम तुम हो, मैं मैं हूं। कृपा करो, तुम्हें जैसा रहना हो,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तुम रहो; मुझे जैसा रहना है, मुझे रहने दो। लेकिन न हम खुद रह सकते हैं, वैसे, जैसा हमें रहना चाहिए; न हम दूसरे को रहने देना चाहते हैं !

और फिर जो आदमी अपने पर मजाक कर ले, वह आदमी बहुत अद्‌भुत है। अपने पर मजाक करना बहुत कठिन बात है। दूसरे पर मजाक हम करते हैं। और दूसरे पर मजाक हम करते ही इसलिए हैं कि मजाक एक शिष्ट तरकीब है दूसरे को अपमानित करने की। एक शिष्ट तरकीब है। एक तरकीब है, जिसमें दूसरा हमसे झगड़ भी नहीं सकता, क्योंकि मजाक ही तो कर रहे हैं, और हम उसे गहरी चोट भी पहुंचा देते हैं। हम उसे अपमानित भी कर देते हैं। तो अपमानित करने का जो शिष्ट ढंग है, वह मजाक है। तो दूसरे का व्यंग्य हम कर सकते हैं, दूसरे पर हंस सकते हैं, लेकिन अपने पर हंसने वाला आदमी, अपनी जिंदगी पर हंसने वाला आदमी और अपनी मौत पर भी हंसने वाला आदमी बहुत अनूठा है। बहुत ही अनूठा है। क्योंकि वह बुनियादी खबर दे रहा है कि अब दूसरे का तो सवाल ही नहीं रहा, यह हम खुद ही अपने पर हंसने जैसी हालत पाते हैं। खुद अपने पर भी हंसने जैसी हालत पाते हैं। यानी यह जो मेरा व्यक्तित्व है, यह भी हंसने योग्य ही है। इसमें कुछ ऐसी बात नहीं है, इसे गंभीरता से लेने का सवाल नहीं है।

लेकिन दुनिया में साधु-संत बड़े गंभीर होकर बैठे हैं, अति गंभीर होकर बैठे हैं ! और उनकी गंभीरता का एक बड़ा बुनियादी कारण है कि उन्होंने दूसरों का मजाक करना बंद कर दिया और अपना मजाक वह सीख नहीं पाए। उनकी गंभीरता का जो बहुत गहरे में कारण है, हंसें कैसे ? दूसरे की मजाक बंद कर दी है, क्योंकि वह गलत थी। और अपनी मजाक का शुरू करना बहुत कठिन बात है, वह हो नहीं सकती। तो वे गंभीर हो गए हैं, भारी गंभीर हो गए हैं। यह जो गंभीरता दिखती है साधु में, उसका कारण यह है। नहीं तो वह एकदम हल्का हो जाएगा, एकदम वेटलेस हो जाएगा। एकदम हल्का हो जाए, क्योंकि बात ही क्या है ? वह किसी भी चीज पर हंस सकता है। और जो अपने पर हंस सकता है, वह जब कभी दूसरे पर भी हंसता है तो चोट नहीं पहुंचाता। जो अपने पर हंस सकता है, वह अगर दूसरे पर भी हंसता है तो चोट नहीं पहुंचाता। बल्कि जो आदमी अपने पर हंस सकता है और दूसरे पर हंसता है, तो उस दूसरे को लगता है कि वह आदमी हमको भी अपना ही मानता है। क्योंकि इसके बिना हंसता भी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नहीं। समझे न इसकी बात ? हमें जो जल्दी से ख्याल उठते हैं, उनको बहुत जल्दी मत पकड़ लेना। बहुत गहरे से गहरे जाकर खोजना चाहिए कि कहां क्या हो सकता है।

यह जो मैंने घटना कही इस फकीर की, वह इसीलिए कही कि मैं यह कह सकूं कि व्यक्ति हैं, जो मरने का भी अपना ढंग, जो मृत्यु को भी एक प्रामाणिकता और एक व्यक्तित्व देना चाहते हैं ! और महावीर उन व्यक्तियों में अद्भुत हैं। वे प्रत्येक चीज को अपना व्यक्तित्व···जैसा उन्हें लगता है। यानी संसार के शास्त्र कहें कि गौदोहासन में किसी को ज्ञान हुआ है ? अब महावीर गोदोहासन में बैठकर ज्ञान को पा लेते हैं !

कबीर के मरने का वक्त आया। तो मरते वक्त तक कबीर काशी में थे। काशी के पास थोड़ी दूर पर मगहर एक गांव है। और कथा यह है कि काशी में तो गधा भी मरे तो देवता हो जाता है। और मगहर में अगर देवता भी मरे तो गधा हो जाता है। तो लोग काशी मरने आते हैं ! मगहर के लोग तो सब काशी मरने आते हैं। क्योंकि मगहर में तो बड़ा डर रहता है। तो काशी में एक दस-पांच दिन पहले मरने के करीब कोई हुआ तो उसको ले आते हैं, सांस काशी में टूटे। कबीर जिंदगी भर काशी में रहे, मरने का वक्त आया तो कहा कि मुझे मगहर ले चलो ! तो लोगों ने कहा, आप पागल हो गए हैं ? मगहर से तो कोई मरने यहां आता है। जिंदगी भर तो यहां जिए, मगहर मरने जाते हो ? मगहर में मरता है आदमी, गधा हो जाता है ! कबीर ने कहा, वह ठीक है। अगर काशी में मरने की वजह से देवता हुए तो अपना क्या हुआ ! यानी काशी की वजह से हो गए देवता, अपना क्या हुआ ! अगर मगहर में मरकर देवता हो सके तो कुछ बात भी होगी, लगेगा कि कुछ किया भी था। और अगर मगहर में मरने से गधा हुए तो वह मगहर की वजह से हुए; काशी में मरने से देवता हुए, वह काशी की वजह से हुए। दोनों में कोई फर्क नहीं है, क्योंकि किसी और ही वजह से बात हो गई। फर्क तो अपनी वजह से होना चाहिए। तो मुझे पता कैसे चले कि अपनी ही वजह से देवता हुए हैं ? काशी में तो झंझट हो जाएगी। अगर हो गए देवता तो काशी की वजह होगी। मगर मरे कबीर मगहर में ! अब ऐसे जो लोग हैं···।

तो महावीर यह कह रहे हैं कि यह कोई सवाल नहीं है कि इस आसन में ध्यान होगा, कि उस आसन में ध्यान होगा। आसन से ध्यान का कोई संबंध ही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नहीं है। यह तीसरी बात जो मैं कहना चाहता था : आसन से ध्यान का कोई सबंध ही नहीं है। ध्यान किसी भी आसन में हो सकता है। क्योंकि ध्यान है आंतरिक घटना, आसन है बाहर की स्थिति। और आसन का ठीक से अर्थ समझ लें। तो जो आसान हो, वही आसन है। तो जो जिसको आसान हो ! सभी को एक जैसा आसान नहीं भी होता है। तो महावीर यह भी इससे सूचना देना चाह रहे हैं कि कोई पद्मासन में, कि सिद्धासन में ही ध्यान होगा और ज्ञान की उपलब्धि होगी, वह गलत है, क्योंकि इस भांति तो तुम ज्ञान को शरीर की बैठक से बांध रहे हो। शरीर से क्या लेना-देना है ! भीतर जो है, वह—वह किसी भी आसन में हो सकता है। महावीर की वह जो गौदोहासन की स्थिति, जिसमें उनको केवल-ज्ञान हुआ, जैनियों ने हिम्मत नहीं की कि अपने मंदिरों में वैसी मूर्तियां बनाकर रखें। मूर्तियां सब बनाई हैं पद्मासन में, क्योंकि पुरानी धारणा यह है कि ज्ञानी को पद्मासन में ज्ञान होता है ! अब ये मजे की बातें हैं, यानी वह आदमी सब गड़बड़ करके गया तो उन्होंने सब व्यवस्थित कर दिया, वही पुराने का पुराना ! वह आदमी ऐसे आसन में बैठकर केवल-ज्ञान को उपलब्ध हुआ…

प्रश्न : निर्वाण के समय में या निर्वाण की स्थिति में केवल-ज्ञान हो सकता है ?

असली घटना तो केवल-ज्ञान की है, निर्वाण वगैरह तो मूल्य की बातें नहीं हैं। असली घटना तो केवल-ज्ञान की है—जब केवल-ज्ञान घटित हुआ। निर्वाण तो अच्छे आदमी को हम मर गया ऐसा कहना ठीक नहीं समझते, इसलिए निर्वाण वगैरह कहते हैं। अच्छा आदमी मरता है तो मर गया है, ऐसा कैसे कहें ? तो इसको निर्वाण कहते हैं। वह तो सिर्फ शरीर का छूटना है। मगर उससे भी गहरे में शरीर पहले छूट चुका, वह है केवल-ज्ञान की घटना। लेकिन वह हमने हिम्मत नहीं की। क्योंकि महावीर हमको तब एब्सर्ड मालूम पड़ेंगे—ऐसे गौदोहासन में बैठे हुए ! हमको भी ऐसा लगेगा कि यह जरा कुछ जंचती नहीं बात। तो कैसे महावीर जंचना चाहिए, हम वैसा उनको बना लेते हैं ! और सदा यह होता है, सब बातों में यह होता है—कैसे जंचने चाहिए !

अब दिगंबर महावीर के नग्न चित्र भी बनाएंगे—कितनी हमारी कमजोरी है—तो एक झाड़ के पास बनाएंगे, जिसमें झाड़ की शाखाओं में उनकी नग्नता छिपा देंगे ! यानी जो लंगोटी उन्होंने छोड़ी है, तैयार करवा देंगे ! मगर नग्न

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सीधा खड़ा न कर सकेंगे ! तस्वीर बनाएंगे, एक झाड़ की शाखाएं निकाल देंगे और झाड़ की शाखाओं में नंगापन छिपा देंगे ! ये महावीर से ज्यादा होशियार लोग हैं। अब या तो ऐसे ही झाड़ के पास ही महावीर खड़े रहते रहे हों, जिसमें नंगापन न दिख जाए। तो फिर झंझट क्या है ? इससे तो लंगोटी अच्छी, कि अपने कहीं जा भी तो सकते हैं पहनकर ! झाड़ के साथ खड़ा होना तो बहुत ही गड़बड़ है। लेकिन हमारा जो दिमाग है, अत्यंत क्षुद्र, वह सब फौरन ढाल लेता है अपने हिसाब से। और फिर जो शक्ल हम बनाते हैं, जो व्यवस्था हम देते हैं; वह हमारी होती है। वह सच्ची नहीं होती। अब एक आदमी नंगा होने की हिम्मत करे तो उसके अनुयायी उसको नंगा न होने देंगे। अगर वह हो ही जाए, न माने, तो वह कोई तरकीबें निकाल लेंगे और पीछे उसको लीप-पोतकर बराबर कर देंगे, कि वह आदमी नंगा नहीं था ! उस तरह सारी चीजों में चलता है। और इसलिए क्रांतियां पैदा होती हैं और मर जाती हैं। और इसलिए रोज-रोज क्रांति की जरूरत पड़ जाती है। रोज-रोज उन लोगों की जरूरत है, जो फिर से आकर चीजों को तोड़ दें।

और यह बड़ी ही दुर्भाग्यपूर्ण घटना है, लेकिन यही होता रहा है कि जितना बड़ा क्रांतिकारी होगा, उसको उतना ही ज्यादा लीप-पोत दिया जाएगा। इसलिए यह ख्याल में रखना चाहिए कि दुनिया में जो बड़े क्रांतिकारी नहीं हुए, उनकी अथेंटिक, प्रामाणिक स्थिति हमें उपलब्ध है। वे जैसे थे, वैसा हमें उपलब्ध है। लेकिन दुनिया में जो बड़े क्रांतिकारी हुए, उनको हमने लीप-पोत दिया, उनका हमें कोई पता नहीं कि वे कैसे थे ! बिलकुल और ही शक्ल उपलब्ध है, जैसे कि वह कभी भी नहीं रहे होंगे !

प्रश्न ठीक ही है। वह सब चीजों में जो उन्हें ठीक लगता, वैसा ही करते हैं। वह किसी देवता से नहीं पूछेंगे, किसी गुरु से नहीं पूछेंगे। वे यह नहीं कहेंगे कि इस आसन में नहीं होगा। यह कैसे बैठे हो ? ऐसे कहीं ज्ञान हुआ है किसी को ? तो वे कहेंगे, तुम अपने रास्ते जाओ। क्योंकि ज्ञान को अगर आना है तो मेरी शर्तों पर—मैं कोई ज्ञान की शर्तें मानने जाने वाला नहीं हूं। मेरी शर्तों पर—मैं जैसा हूं, उसको वैसे में ही आना है। अगर कोई व्यक्ति इतना हिम्मतवर और साहसी है तो परमात्मा को उसी शर्तों पर आना पड़ेगा। शर्तों का मतलब यह कि वह जैसा है, उसको वैसा ही आना पड़ेगा। कोई रुकावट इसमें नहीं पड़ सकती।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह अगर ख्याल में आ जाए तो व्यक्ति-स्वातंत्र्य की धारणा स्पष्ट होती है। तब मैं कहता हूं कि किसी भी आसन में—सोए, बैठे, लेटे, खड़े; कैसे भी ध्यान हो सकता है। यह अपने-अपने चुनाव की बात है कि कैसा उसके लिए सरल लग सकता है। क्योंकि गौदोहासन तक में एक व्यक्ति मोक्ष जा चुका, इसलिए अब चिंता की बात नहीं। यानी अब, अब किसी भी आसन में यह घटना घट सकती है। लेकिन शायद ही एकाध जैन मुनि हो, जो गौदोहासन में बैठा मिल जाए। वह परंपरागत ढंग बांधकर बैठा हुआ है, उसको चलाए चला जाता है! यह परंपरा को तोड़ने के प्रतीक हैं सिर्फ। यानी ऐसा व्यक्ति छोटी-मोटी चीजों में भी परंपरा को तोड़ देना चाहेगा। यानी ऐसी क्षुद्र में भी वह कहेगा कि नहीं, मैं जैसा हूं, वैसा हूं। और प्रत्येक व्यक्ति में इतना साहस आना चाहिए, तो ही व्यक्ति साधक हो सकता है। और जिस दिन परम साहस प्रकट होता है, उस दिन सिद्ध होने में क्षण भर की देर नहीं है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अनेकांत : महावीर का दर्शन-आकाश

प्रवचन : २१, दिनांक : ३० सितंबर, १९६९, पहलगांव

प्रश्न : भगवान महावीर के संबंध में एकांत वाली बात कही थी। वह क्या रियलाइजेशन जो भगवान महावीर का था—वह भी एकांत ही था ? क्या वह संपूर्ण नहीं था ? वह मेरा प्रश्न है।

इस संबंध में दो बातें समझनी चाहिए, दो शब्द समझने चाहिए। एक शब्द है दृष्टि और दूसरा शब्द है दर्शन। दृष्टि होगी एकांगी, सदा ही एकांत होगी, अधूरी होगी, खंड होगी। दृष्टि का मतलब है, एक जगह मैं खड़ा हूं, वहां से जैसा दिखाई पड़ता है। जो दिखाई पड़ता है, वह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। और जिस जगह मैं खड़ा हूं, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है—कहां से मैं देख रहा हूं। जहां से खड़े होकर मैं देख रहा हूं, वैसा मुझे दिखाई पड़ेगा, वह दृष्टि होगी।

और इसी के संदर्भ में दर्शन शब्द को समझना बड़ा कीमती है। दर्शन का मतलब है, जहां सब दृष्टियां मिट गईं, जहां मेरे खड़े होने की कोई जगह न रही। सच में जहां मैं ही न रहा, वहां जो होगा, उसका नाम है दर्शन।

दर्शन सदा ही समग्र होगा और दृष्टि सदा ही खंड होगी।

तो जिसे हम आत्मानुभूति या रियलाइजेशन कहें, वह वह क्षण है, जब दृष्टियां सब मिट गईं। असल में देखने वाला भी मिट गया। असल में वह जगह भी मिट गई, जहां हम खड़े थे, वह भी मिट गया जो खड़ा हो सकता था, सब मिट गया। मेरी तरफ से कुछ भी न बचा। तो अब जो मुझे प्रतीति होगी, अब जो अनुभव घटित होगा, वह घटित समग्र होगा। तो महावीर का जो दर्शन है या बुद्ध का या कृष्ण का या क्राइस्ट का या मुहम्मद का—दर्शन सदा ही समग्र होगा। दर्शन कभी भी अधूरा नहीं हो सकता। क्योंकि अधूरा बनाने वाली जो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भी बातें थीं, वे सब समाप्त हो गईं।

और एक तरह से समझें। जब तक मेरे चित्त में विचार हैं, तब तक मेरे पास दृष्टि होगी, दर्शन नहीं होगा। क्योंकि मैं अपने विचार के चश्मे से देखूंगा। मेरे विचार का जो रंग होगा, वही उस चीज पर भी पड़ जाएगा, जिसे मैं देखूंगा। और दर्शन होगा तब, जब मैं निर्विचार हो जाऊंगा। जब कोई विचार मेरे पास न होगा, जब विचार मात्र नहीं होगा, खाली जगह से मैं देखूंगा—जहां मेरा कोई पथ नहीं,—कोई वाद नहीं, कोई विचार नहीं, कोई शास्त्र नहीं, कोई सिद्धांत नहीं—मैं हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं, जैन नहीं—जब मैं कोई भी नहीं हूं, सिर्फ निपट खाली मन रह गया है, वहां से जब देखूंगा तो जो होगा, वह दर्शन होगा।

विचार दृष्टि तक ले जाता है, निर्विचार दर्शन तक।

एक बात और समझनी उपयोगी है। दर्शन कितना ही समग्र हो—समग्र होगा ही—लेकिन जब दर्शन को कोई प्रकट करने जाएगा, तब फिर दृष्टि शुरू हो जाएगी। क्योंकि दर्शन को फिर प्रकट करने के लिए विचारों का उपयोग करना पड़ेगा। और जैसे ही विचार का उपयोग किया कि समग्र नहीं हो सकता। असल में विचार की एक व्यवस्था है, वह कभी भी टोटल और पूर्ण नहीं हो सकती। विचार चीजों को तोड़कर देखता है और वस्तु सत्य में चीजें सब जुड़ी हुई हैं।

अगर हम विचार से देखने जाएंगे तो जन्म अलग है, मृत्यु अलग है। और जन्म और मृत्यु को विचार में जोड़ना अत्यंत कठिन है। क्योंकि जन्म बिलकुल उल्टी चीज है, मृत्यु बिलकुल उल्टी चीज है। लेकिन वस्तुतः जीवन में जन्म और मृत्यु एक ही चीज के दो छोर हैं। वहां जन्म अलग नहीं है, मृत्यु अलग नहीं है। जो जन्म पर शुरू होता है, वही मृत्यु पर विदा होता है। वे एक ही यात्रा के दो बिंदु हैं: पहला बिंदु जन्म है, अंतिम बिंदु मृत्यु है। अगर हम जीवन को देखेंगे तो ये इकट्ठे हैं और अगर विचार में सोचने जाएंगे तो जन्म और मृत्यु अलग-अलग हो जाएंगे।

अगर हम विचार में सोचेंगे तो काला और सफेद बिलकुल अलग-अलग हैं, ठंडा और गरम बिलकुल अलग-अलग हैं, लेकिन अगर अनुभव में सोचने जाएंगे तो ठंडा और गरम एक ही चीज के दो रूप हैं, और काला और सफेद भी एक ही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

छोर के, एक ही स्पैक्ट्रम के दो छोर हैं। लेकिन जब भी हम प्रकट करने चलेंगे तो हमें फिर विचार का उपयोग करना पड़ेगा।

तो मुहम्मद को, महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को जो अनुभूति होती है, वह तो समग्र है; लेकिन जब वे उसे अभिव्यक्त करते हैं, तब वह समग्र नहीं रह जाती, तब वह एक दृष्टि रह जाती है। और इसीलिए जो प्रकट दृष्टियां हैं, उनमें विरोध पड़ जाता है। दर्शन में कोई विरोध नहीं है, लेकिन प्रकट दृष्टि में विरोध है।

मैं और आप श्रीनगर आएं तो श्रीनगर तो एक ही है, जिसमें मैं आऊंगा और आप आएंगे। फिर हम दोनों श्रीनगर से गए, फिर कोई हमसे पूछता है कि क्या देखा ? तो जो मैं कहूंगा, वह भिन्न होगा, जो आप कहेंगे उससे ! श्रीनगर तो एक था, हम आए एक ही नगर में थे, लेकिन हो सकता है मुझे झील पसंद हो और मैं झील की बात करूं, और आपको पहाड़ पसंद हो और आप पहाड़ की बात करें। और हो सकता है मुझे दिन पसंद हो, मैं सूरज की बात करूं, और आपको रात पसंद हो और आप चांद की बात करें। और हमारी दोनों बातें ऐसी मालूम पड़ने लगें कि हम दो नगरों में गए होंगे। क्योंकि एक चांद की बात करता है, एक सूरज की; एक अंधेरे की बात करता है, एक उजाले की, एक सुबह की बात करता है, एक सांझ की; एक पहाड़ की बात करता है, एक झील की। शायद सुनने वाले को मुश्किल हो जाए यह बात कि यह पहाड़ और झील और यह चांद और सूरज और ये रात और दिन, ये किसी एक ही नगर के हिस्से हैं। वे इतने विरोधी भी मालूम पड़ सकते हैं कि तालमेल बिठाना मुश्किल हो जाए। वे जो खबरें हम ले जाएंगे, वे दृष्टियां होंगी, वे विचार होंगे। लेकिन जो हमने जाना और जिया था, वह दर्शन था। उस दर्शन में श्रीनगर एक था। वहां रात-दिन जुड़े थे, पहाड़-झील जुड़ी थी, वहां अच्छा-बुरा जुड़ा था। वहां सब इकट्ठा था। लेकिन जब हम बात करने गए, चुनाव हमने किया, छांटा, तो हम खड़े हो गए और हमने एक दृष्टि से चुनाव किया। तो जैसे ही कोई बात बोली जाएगी, वैसे ही दृष्टि बन जाएगी।

और यही बड़ा खतरा रहा है कि दृष्टियों को दर्शन समझने की भूल होती रही है। और इसलिए जैनों की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; हिंदुओं की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; मुसलमानों की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं। अगर दर्शन की हम बात

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

करते हैं तो हिंदू, मुसलमान, जैन सब खो जाएंगे। वहां तो एक ही रह जाएगा, वहां कोई दृष्टि नहीं है, कोई विचार नहीं है।

महावीर का जो अनुभव है, वह तो समग्र है, लेकिन अभिव्यक्ति समग्र हो ही नहीं सकती। जब भी हम कहने जाते हैं, तभी समग्र को हम कह नहीं सकते। परमात्मा का अनुभव तो बहुत बड़ी बात है, छोटे-से, सरल-से अनुभव भी समग्र-रूपेण प्रकट नहीं होते। आपने एक फूल को देखा, बहुत सुंदर है ऐसा अनुभव किया, फिर आप कहने गए। तो जब आप कहते हैं, तब आपको ही लगता है कि कुछ बात अधूरी रह गई। यानी बहुत-बहुत सुंदर है, ऐसा कहने पर भी कुछ भी पता नहीं चलता, फूल जैसा था उसका। वह जो आपको अनुभव हुआ था जीवंत, वह जो आपका संपर्क हुआ था फूल से, वह जो सौंदर्य आप पर प्रकट हुआ था, वह जो सुगंध आई थी, वह जो हवाओं में फूल का नृत्य देखा था, वह जो सूरज की किरणों में फूल की खुशी देखी थी, वह कितने ही बार कहिए कि बहुत-बहुत सुंदर हैं; तब भी लगता है कि बात कुछ अधूरी रह गई, कुछ बेस्वाद, बिना सुगंध की, मृत, मुर्दा रह गई। कुछ पता नहीं चलता। वह जो देखा था, उसका कोई पता नहीं चलता।

तो जब हम साधारण-सी बात भी कहने जाते हैं तो जो अनुभव किया था, उस अनुभव में बहुत कमी पड़ जाती है, और जब असाधारण अनुभव को कहने कोई जाता है, तब तो इतनी कमी पड़ जाती है, जिसका कोई हिसाब लगाना कठिन है। और इसीलिए दुनिया में जो संप्रदाय हैं, वे कही हुई बात पर निर्भर हैं, जानी हुई बात पर नहीं। अगर जानी हुई बात पर कभी संप्रदाय निर्मित हो जाए, यह असंभव है, क्योंकि जो जाना गया है, वह भिन्न है ही नहीं।

एक बार ऐसा हुआ कि फरीद यात्रा कर रहा था। कुछ मित्र साथ थे। और कबीर का आश्रम निकट आया तो फरीद के मित्रों ने कहा, कितना अच्छा न हो कि हम कबीर के पास दो दिन रुक जाएं। आप दोनों की बातें होंगी, तो हम तो धन्य हो जाएंगे। शायद ऐसा जन्मों में ऐसा अवसर मिले कि कबीर और फरीद का मिलना हो और लोग सुन लें। फरीद ने कहा, तुम कहते हो तो जरूर रुक जाएंगे लेकिन बात शायद ही हो। तो उन्होंने कहा, लेकिन बात क्यों नहीं होगी? उन्होंने कहा, वह तो चलकर ठहरेंगे तो ही पता चल सकता है। कबीर के मित्रों को भी खबर लग गई है, उन्होंने कहा कि फरीद निकलता है यहां से,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रोक लें, प्रार्थना करें, हमारे आश्रम में रुक जाएं दो-दिन। आप दोनों की बातें होंगी, कितना आनंद होगा ! कबीर ने कहा, रोको जरूर, आनंद भी बहुत होगा, लेकिन बातें शायद ही हों। पर उन्होंने कहा, बातें क्यों नहीं होंगी ? तो कबीर ने कहा, वह तो फरीद आ जाए तो पता चले।

फरीद को रोक लिया गया है। वे दोनों गले मिले हैं, वे दोनों हंसे हैं, वे दोनों पास बैठे हैं—दो दिन बीत गए हैं, लेकिन कोई बात नहीं होती। सुनने वाले तो बहुत ऊब गए हैं, बहुत घबड़ा गए। फिर विदाई भी हो गई, फिर कबीर गांव के बाहर जाकर छोड़ भी आए। वे मिले गले, रोए भी, लेकिन फिर भी नहीं बोले !

छूटते ही कबीर के शिष्यों ने पूछा, यह क्या पागलपन है ? दो दिन आप बोले नहीं ? फरीद के शिष्यों ने पूछा, यह क्या हुआ ? हम तो घबड़ा गए। दो दिन यह कैसी चुप्पी ! तो कबीर ने कहा, जो मैं जानता हूं, वही फरीद जानते हैं, अब बोलने का उपाय क्या है ? दो अज्ञानी बोल सकते हैं, एक ज्ञानी एक अज्ञानी बोल सकता है, दो ज्ञानियों के बोलने का उपाय क्या है ? और जो बोलता, वह नाहक अज्ञानी बन जाता। क्योंकि जो वह बोलकर कहता, वह दूसरे ने जो जाना है, उससे इतना छोटा होता···दूसरे के पास तो जाना हुआ है और एक बोलकर कहता, तो जाने हुए के सामने बोलकर कहना बहुत कठिन बात है। क्योंकि उसको लगता है कि अरे ! उसका जाना हुआ तो अपार है और बोला हुआ छोटा-सा ! तो जो बोलता, वह नासमझ होता।

फरीद से कहा, तो फरीद ने कहा कि बोलते ! कबीर के सामने बोलते ! तो तुम मुझे पागल बना देते। बोलकर मैं फंसता ! क्योंकि जो बोलता, वह बोलते से ही गलत हो जाता।

जो जाना गया है, उसके सामने बोला हुआ सब गलत है—सब।

न जाना गया हो तो सभी बोला हुआ सच मालूम पड़ता है। लेकिन जिसने जाना हो, उसके सामने बोला गया इतना फीका है, इतना फीका···।

जैसे मैंने आपको देखा हो, आपको देखा हो निकट से, जाना हो, पहचाना हो, और फिर कोई मुझे सिर्फ आपका नाम बता दे और नाम को ही परिचय बता दे, तो नाम क्या परिचय बनेगा ! जिस व्यक्ति को मैं जानता हूं, उसका नाम क्या परिचय बनेगा ! हां, जिसको हम नहीं जानते, उसके लिए नाम भी परिचय

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बन जाता है। लेकिन जिसको हम जानते हैं, उसके नाम से क्या फर्क पड़ता है! कोई परिचय नहीं बनता। नाम कोई परिचय है? तो कोई परिचय नहीं है।

तो फरीद ने कहा कि जरूरी था कि मैं चुप रह जाऊं, क्योंकि बोलकर मैं जो कहता, वह सिर्फ नाम होता। और उस आदमी ने उसे जाना है, और उसका सिर्फ नाम लेना एकदम बचकाना था।

जहां ज्ञान है, वहां भेद नहीं है। और जहां शब्द है, वहां अभेद होना असंभव है। जैसे ही शब्द का प्रयोग किया, भेद पड़ने शुरू हो गए। यह ऐसे ही है, जैसे हम सूरज की किरण को देखें, वहां कोई भेद नहीं है। सूरज की किरण सीधी और साफ है। लेकिन एक प्रिज्म ले लें, और फिर सूरज की किरण को देखें, तो प्रिज्म सात टुकड़ों में तोड़ देता है। प्रिज्म के इस पार सूरज की इकहरी किरण देखनी मुश्किल है। प्रिज्म के उस पार सूरज की सात खंडों में विभाजित किरण देखनी मुश्किल है। शब्द प्रिज्म का काम कर रहा है। जो जाना गया है, वह शब्द के उस पार है और जो कहा गया है, वह शब्द के इस पार है। शब्द के इस पार सब टूट जाता है खंड-खंड, शब्द के उस पार सब अखंड है।

इसलिए महावीर ने जो जाना है, वह तो समग्र है, लेकिन जो कहा है, वह चाहे महावीर कहें, चाहे कोई भी कहे, वह समग्र नहीं हो सकता। वह एकांत ही होगा, वह खंड ही होगा। और इसीलिए जैन खंडित होगा, वह एकांती होगा। क्योंकि उसने तो जो कहा है, वह पकड़ेगा। महावीर का समग्र उसकी पकड़ में नहीं आने वाला। इसलिए वह जैन होकर बैठ जाएगा। वह अनेकांत को भी वाद बना लेगा। वह महावीर के दर्शन को भी दृष्टि बना लेगा और उसको पकड़कर बैठ जाएगा। इसलिए सभी अनुयायी खड सत्य को पकड़ने वाले होते हैं। और यह भी समझ लेना जरूरी है कि जिसने खंड सत्य को पकड़ा, वह जाने-अनजाने अखंड सत्य का दुश्मन हो जाता है। क्योंकि उसका आग्रह यह होता है कि मेरा खंड ही समग्र है। और सभी खंड वालों का यही आग्रह होता है, मेरा खंड समग्र है। सभी खंड मिलकर समग्र हो सकते हैं, लेकिन प्रत्येक खंड का यह दावा कि मैं समग्र हूं, दूसरे खंड का भी यही दावा कि मैं समग्र हूं, ये दावे मिलकर समग्र नहीं हो सकते। ये दावे सारी मनुष्य-जाति को खंड-खंड बांट देते हैं। मनुष्य इसी तरह जो कि अखंड है, टुकड़ों में, संप्रदायों में बंटकर टूट गया है।

दृष्टि पर हमारा जोर होगा तो संप्रदाय होंगे।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अगर दर्शन पर हमारा जोर होगा तो संप्रदायों का कोई उपाय नहीं।

मेरा सारा जोर दर्शन पर है, दृष्टि पर जरा भी नहीं। महावीर का भी जोर दर्शन पर है। और यह बड़े मजे की बात है कि जितनी दृष्टियों से हम मुक्त होते चले जाएंगे, उतना हम दर्शन के निकट पहुंचते हैं। आमतौर से शब्द से ऐसा भ्रम होता है कि दृष्टि ही दर्शन है, लेकिन दृष्टि ही सबसे बड़ी बाधा है दर्शन में। अगर मेरी कोई भी दृष्टि है तो मैं पूरे सत्य को कभी भी नहीं जान सकता हूं। अगर मेरी कोई दृष्टि नहीं है, मैं दृष्टि-मुक्त, दृष्टि-शून्य होकर खड़ा हो गया हूं, तो ही मैं पूर्ण को जान सकता हूं। क्योंकि पूर्ण को मेरे तक आने में कोई भी बाधा नहीं।

प्रश्न : दर्शन और अनुभूति एक ही बात है ?

हां, बिलकुल ही एक बात है।

प्रश्न : महावीर ने घर में ही रहकर साधना क्यों नहीं की ? बाहर जाने की क्या आवश्यकता थी ?

ये सवाल भी हमें उठते हैं। यह प्रश्न भी हमें महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ते हैं, क्योंकि घर और बाहर हमें दो विरोधी चीजें मालूम पड़ती हैं। हमें ऐसा लगता है कि घर एक अलग दुनिया है और बाहर एक अलग दुनिया है। हमें कभी भी ख्याल नहीं आता कि घर और बाहर, बाहर और भीतर एक ही विराट के दो हिस्से हैं। एक श्वास मेरे भीतर गई तो मैं कहता हूं भीतर, और एक क्षण भीतर रही है कि बाहर हो गई, और मैं कहता हूं बाहर। जो एक क्षण पहले बाहर थी, वह एक क्षण बाद भीतर हो जाती है; जो एक क्षण भीतर थी, वह एक क्षण बाद बाहर हो जाती है। क्या बाहर है और क्या भीतर है ? कौन-सा घर है और कौन-सा घर से अतिरिक्त अन्यथा है ?

हमारी जो दृष्टि है, वह हमने बड़ी सीमित बना रखी है। घर से हमारा मतलब है, जो अपना है। और बाहर से हमारा मतलब है, जो अपना नहीं है। लेकिन क्या कहीं ऐसा नहीं हो सकता कि किसी के लिए कुछ भी ऐसा न हो, जो अपना नहीं है ? और अगर किसी व्यक्ति के लिए ऐसा हो जाए कि कुछ भी ऐसा नहीं है, जो अपना नहीं है; तो घर और बाहर का सवाल समाप्त हो गया। तब घर ही रह गया, बाहर कुछ भी न रहा या उल्टा भी कह सकते हैं कि बाहर ही रह गया, घर कुछ भी न रहा। एक बात तय है कि जिस व्यक्ति को दिखाई

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पड़ना शुरू होगा, उसे बाहर और भीतर की जो भेद-रेखा है, वह मिट जाएगी। वही बाहर है, वही भीतर है।

ये हवाएं हमारे घर के भीतर भर गई हैं तो हम कह रहे हैं घर के भीतर, और हमें ख्याल नहीं है कि प्रतिपल ये हवाएं बाहर हुई चली जाती हैं, और प्रतिपल जो बाहर थीं, वे भीतर चली आती हैं। घर के भीतर हवा कुछ अलग है, घर के बाहर से ? यह जो प्रकाश घर में आ गया है, यह कुछ अलग है उस प्रकाश से, जो बाहर है ? हां, इतना ही फर्क है कि दीवालों ने इसे थोड़ा मद्धिम किया है, दीवालों ने इसकी प्रखरता छीन ली है, दीवालों ने इसे थोड़ा अंधेरा किया है, दीवालों ने उसे उतना ही ताजा और जीवंत नहीं रहने दिया है, जितना वह बाहर है। हवाएं भी जो घर के भीतर आ गई हैं, थोड़ी गंदी हो गई हैं। दीवालों ने, सीमाओं ने उनकी स्वच्छता छीन ली है, ताजगी छीन ली है। और अगर कोई व्यक्ति घर के भीतर बैठे-बैठे पाता है कि अस्वच्छ हो गया है सब, और द्वार के बाहर जाकर खुले आकाश के नीचे खड़ा हो जाता है, तो हम नहीं कहते कि उसने घर छोड़ दिया है, हम इतना ही कहते हैं कि घर के बाहर और बड़ा घर है, जहां और स्वच्छ हवाएं हैं, और स्वच्छ सूरज है, और साफ सुंदर जगत है। आदमी की बनाई हुई दीवालें हैं। और गौर से हम देखें तो हमारे मोह की दीवालें हैं, जो हमारा घर बनाती हैं।

मैंने सुना है, एक मकान में आग लग गई है। उसका घर का मालिक छाती पीट-पीट कर रो रहा है। भीड़ इकट्ठी है और तभी एक आदमी आकर उससे कहता है कि आप व्यर्थ रो रहे हैं, आप नाहक रो रहे हैं। मकान तो बेच दिया गया है। आपके लड़के ने उसे बेच दिया है और उसके रुपये भी मिल गए हैं। जैसे ही वह आदमी सुनता है कि मकान बेच दिया गया है और रुपये मिल गए हैं, वह आदमी हंसने लगता है, उसके आंसू सूख जाते हैं ! वह हंस रहा है ! अब भी मकान में आग लगी है, मकान अब भी जल रहा है, लेकिन अपना नहीं है अब, अब कोई फिकर न रही ! वही मकान जल रहा है, वही आदमी है, लेकिन सब बदल गया ! बीच से मेरे का एक संबंध टूट गया।

और तभी लड़का भागा हुआ आया और उसने कहा, किसने आप से कह दिया कि रुपये मिल गए हैं ? रुपये मिलने का वायदा था, रुपये मिले नहीं हैं। और वह आदमी नट गया है। वह कहता है, जले हुए मकान के अब क्या रुपये

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देंगे ! और उस आदमी की आंख में फिर आंसू आ गए हैं, वह फिर छाती पीटने लगा है कि मर गए, लुट गए। अभी भी मकान जल रहा है। और हो क्या रहा है इस बीच ? मकान को पता भी नहीं होगा कि उससे संबंधित आदमी रो भी लिया, हंस भी लिया, फिर रोने लगा है। मकान सिर्फ जल रहा है। लेकिन उस आदमी के बीच का एक संबंध बदलता जा रहा है। वह 'मेरा' जुड़ जाता है तो दुख शुरू हो जाता है, 'मेरा' छूट जाता है तो वह आदमी हंसने लगता है।

तो मकान बांधे हुए है या हमारा मेरा बांधे हुए है? इसे अगर हम ठीक से समझ लें तो हमें दिखाई पड़ेगा, 'मेरा' हमारा घेरा है। बहुत गहरे में मेरे का भाव, ममत्व हमारा मकान है। और ध्यान रहे, जो कहता है मेरा, वह अनिवार्य रूप से शेष को तेरे में बदल देता है। जो कहता है मेरा, वह शेष को शत्रु बना लेता है। जो कहता है अपना, वह दूसरे को पराया बना लेता है।

गांधी जी के आश्रम में एक भजन गाया जाता था : 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीर पराई जाने रे।' कोई मुझे पढ़ कर सुना रहा था तो मैंने कहा कि इसमें थोड़ा सुधार कर लेना चाहिए। असल में वैष्णव जन तो वह है, जो पराए को ही नहीं जानता, पराए की पीर बहुत दूसरी बात है। पराए की पीर भी जाननी हो तो पराए को मानना जरूरी है और अपने को भी मानना जरूरी है। वैष्णव जन तो वह है, जो जानता ही नहीं कि कोई पराया है। और तभी यह संभव भी है कि पराए की पीर उसे अपनी मालूम होने लगे—तभी जब कि पराया न रह जाए।

तो एक हमारे मैं का घेरा है, मैं का घेरा है। वही हमारा घर है। मेरा घर, मेरी पत्नी, मेरे पिता, मेरा बेटा, मेरा मित्र—एक मेरे की हमने दुनिया बनाई हुई है। उस मेरे की दुनिया में हमने कई तरह की दीवालें उठाई हुई हैं। पत्थर की भी उठाई हैं, प्रेम की भी उठाई हैं, घृणा की भी उठाई हैं; द्वेष की भी, राग की भी और एक घर बनाया है।

जब कोई पूछता है महावीर ने घर क्यों छोड़ दिया ? क्या घर में ही संभव नहीं था ? नहीं, घर में संभव नहीं था। घर ही असंभावना थी। अगर हम बहुत गौर से देखेंगे, वह जो मेरे का भाव था, वही तो असंभावना थी। वही रोकता था, वही समस्त से नहीं जुड़ने देता था। लेकिन अगर किसी को दिखाई पड़ गया हो कि सब ही मेरा है, या कुछ भी ऐसा नहीं, जो मेरा है और तेरा है, तो फिर कौन-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सा घर है, जो अपना है और कौन-सा है, जो अपना नहीं है ?

हमें एक ही बात दिखाई पड़ती है कि महावीर ने घर क्यों छोड़ा ? वह क्यों दिखाई पड़ती है । क्योंकि हम घर को पकड़े हुए लोग हैं । हमारे लिए जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है वह यह कि इस आदमी ने घर क्यों छोड़ा ? क्योंकि हम घर को पकड़े हुए लोग हैं । घर को छोड़ने की बात ही असह्य है । कल्पना भी असह्य है कि घर छुड़ा लिया जाए । इस आदमी ने घर क्यों छोड़ा ? लेकिन हम समझ नहीं पा रहे कि घर की धारणा क्या है, कंसेप्ट क्या है ! महावीर ने घर छोड़ा, या कि घर मिट गया ? जैसे ही जाना तो घर मिट गया । जैसे ही समझा, तो मेरा और अपना कुछ भी न रहा, सब का सब हो गया । यह अगर हमें दिखाई पड़ जाए तो बड़ा फर्क पड़ेगा ।

हम यहां बैठे हुए हैं, दस करोड़ मील दूर पर सूरज है, वह अगर ठडा हो जाए अभी, अभी ठंडा हो जाए तो हमें पता भी नहीं चलेगा कि वह ठंडा हो गया, क्योंकि उसी के साथ हम सब ठंडे हो जाएंगे । दस करोड़ मील दूर, जो सूरज है, वह भी हमारे प्राण के स्पंदन को बांधे हुए है । वह भी हमारे घर का हिस्सा है । उसके बिना हम हो ही नहीं सकते । वह हमारे होने को भी संभाले हुए है । लेकिन कब हमने सूरज को अपने घर का साथी समझा है ? कब हमने माना है कि सूरज भी अपना मित्र, परिवार का है ? लेकिन जिसे हमने कभी परिवार का नहीं समझा है, उसके बिना हम कोई भी नहीं होंगे । न परिवार होगा, न हम होंगे । वह दस करोड़ मील दूर बैठा हुआ सूरज भी हमारी हृदय की धड़कन का हिस्सा है । वह घर के भीतर है या घर के बाहर है, अगर यह सवाल पूछा जाए तो क्या उत्तर होगा ? सूरज घर के भीतर है या घर के बाहर ? अगर सूरज को घर के बाहर करते हैं हम, तो हम जीवित नहीं रह सकते एक क्षण । सूरज भी हमारे घर के भीतर हो तो ही हम जीवित हैं । हवाएं जो सारी पृथ्वी को घेरे हुए हैं, ये हवाएं हमारे घर के भीतर हैं या बाहर ? अगर यह हवा एक क्षण को न हो जाए, तो हम उसी क्षण न हो जाएंगे । तो हमारा घर क्या है ? और सूरज तो पास है, दूर के चांद-तारे भी, दूर के और ग्रह-उपग्रह भी, दूर के और बड़े सूरज-महासूरज भी हैं, वे सब भी किसी न किसी अर्थों में हमारे जीवन का हिस्सा हैं ।

पत्नी ने आपका खाना बना दिया है तो वह आपके घर के भीतर है, लेकिन एक गाय ने घास चरी है और आपके लिए दूध बना दिया है, वह आपके घर के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भीतर नहीं है ? और घास को सीधा आप चरकर दूध नहीं बना सकते हैं, बीच में एक गाय चाहिए, जो घास को उस स्थिति में ट्रांसफार्म करे, जहां से वह आपके योग्य हो जाए। लेकिन घास ने भी कुछ किया है। उसने मिट्टी को ट्रांसफार्म किया है और घास बन गई है। घास आपके घर के भीतर है या बाहर ? क्योंकि अगर घास न हो तो आपके होने की संभावना नहीं है। और घास अगर न हो तो मिट्टी को खाकर गाय भी दूध नहीं बना सकती। और घास मिट्टी ही है, लेकिन उस फॉर्म में, उस रूप में, जहां से गाय उसका दूध बना सकती है, और जहां से दूध आपका भोजन बन सकता है। क्या हमारा घर है और क्या हमारे घर के बाहर है ? अगर हम आंख खोलकर देखना शुरू करें तो हमें पता चलेगा कि सारा जीवन एक परिवार है, जिसमें एक कड़ी न हो तो कुछ भी नहीं होगा। जीवन मात्र एक परिवार है, जिसमें एक छोटी-सी कड़ी न हो, एक सामने पड़ा हुआ पत्थर भी न हो तो किसी न किसी अर्थ में हमारे जीवन का कुछ हिस्सा कम हो जाएगा। अगर वह भी न हो तो हम नहीं कह सकते कि क्या होगा। सब बदल सकता है।

तो जिसको जीवन की इतनी विराटता का दर्शन हो जाएगा, वह कहेगा, यह मेरा और वह मेरा नहीं ? नहीं, वह कहेगा कि सभी सब हैं, मेरे हैं, सभी अपने हैं, या कोई भी अपना नहीं। ये दो भाषाएं रह जाएंगी उसके पास। अगर वह पाजिटिव ढंग से बोलेगा, विधायक ढंग से बोलेगा तो वह कहेगा, मेरा ही परिवार है सब। और अगर वह विषेधात्मक ढंग से बोलेगा तो वह कहेगा, मैं ही नहीं हूं, परिवार कैसा ! ये दो उपाय रह जाएंगे। और दोनों उपाय एक ही अर्थ रखते हैं, एक ही अर्थ रखते हैं।

तो महावीर ने कुछ छोड़ा—घर, परिवार—गलत है। बड़े परिवार के दर्शन हुए, छोटा परिवार खो गया। और जिसको सागर मिल जाए, वह बूंद को पकड़े बैठा रहेगा ? कैसे पकड़े बैठा रहेगा ? बूंद को तभी तक कोई पकड़ सकता है, जब तक सागर न मिला हो। और सागर मिल जाए तो हम कहेंगे बूंद को आपने छोड़ा ? असल में हमें सागर दिखाई नही पड़ता, सिर्फ बूंद ही दिखाई पड़ती है। बूंद को पकड़े हुए लोग, बूंद को छोड़ते हुए लोग, ऐसे हमें दिखाई पड़ते हैं। हमें सागर दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन जिसे सागर दिखाई पड़ गया, वह कैसे बूंद को पकड़े रहे ? अब तो बूंद को पकड़ना निपट अज्ञान हो जाएगा। ज्ञान विराट में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ले जाता है, अज्ञान क्षुद्र को बांधकर पकड़ा देता है। अज्ञान क्षुद्र में ही रुक जाता है। ज्ञान निरंतर विराट से विराट में चलता जाता है।

महावीर ने घर नहीं छोड़ा, घर को पकड़ना असंभव हो गया। और इन दोनों बातों में फर्क है। जब हम कहते हैं, घर छोड़ा, तो ऐसा लगता है कि घर से कोई दुश्मनी है। और जब मैं कहता हूं कि घर को पकड़ना असंभव हो गया, तो ऐसा लगता है कि और बड़ा घर मिल गया, और विराटतर घर। उसमें पहला घर छूट नहीं गया, सिर्फ बड़े घर का हिस्सा हो गया है। यह हमारे ख्याल में आ जाए तो रिननसिएशन का, त्याग का एक नया अर्थ ख्याल में आ जाएगा। त्यागका अर्थ कुछ छोड़ना नहीं है, त्याग का बहुत गहरा अर्थ विराट को पाना है। लेकिन त्याग शब्द में खतरा है, उसमें छोड़ना छिपा हुआ है। उसमें लगता है, कुछ छोड़ा।

मेरी दृष्टि में महावीर या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों को त्यागी कहने में बुनियादी भूल है। इनसे बड़े भोगी खोजना असंभव है—अगर हम अर्थ समझ लें तो। त्याग का अर्थ है कुछ छोड़ना, भोग का अर्थ है कुछ पाना। महावीर से बड़ा भोगी असंभव है। क्योंकि जगत में जो भी है, सब उसका ही हो गया है। उसका भोग भी अनंत हो गया, उसका घर भी अनंत हो गया, उसकी श्वास भी अनंत हो गई, उसके प्राण भी अनंत हो गए, उसका जीवन भी अनंत हो गया है। इतने विराट को भोगने की सामर्थ्य क्षुद्र चित्त में नहीं होती। क्षुद्र क्षुद्र को ही भोग सकता है, इसलिए क्षुद्र को पकड़ लेता है। लेकिन जब विराट होने लगे द्वार...

एक नदी है, वह चली है हिमालय से, सागर में गिर गई है। दो तरह से देखी जा सकती है यह बात। कोई नदी से पूछ सकता है, तूने पुराने किनारे क्यों छोड़ दिए? तूने किनारों का त्याग क्यों किया? ऐसे भी पूछा जा सकता है नदी से—किनारे क्यों छोड़े तूने? और नदी ऐसा भी कह सकती है, किनारे मैंने छोड़े नहीं, किनारे अनंत हो गए। किनारे अब भी हैं, लेकिन अब उनकी कोई सीमा नहीं रही, अब वे असीम हो गए। अब तक छोटे-छोटे किनारे थे। एक छोटी-सी धार थी, बहती थी। और नदी रोज छोटे किनारे छोड़ती चली आई इसलिए बड़ी होती चली गई थी। गंगोत्री पर बहुत छोटा किनारा था गंगा का, फिर आकर सागर के पास बड़े-बड़े किनारे हो गए। लेकिन फिर भी किनारे थे। फिर सागर में उसने अपने को छोड़ दिया। सागर के बड़े किनारे हैं, लेकिन फिर भी किनारे हैं। कल वह भाप बनेगी और आकाश में उड़ जाएगी, और भी किनारे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

छोड़ देगी। और कोई किनारा नहीं रह जाएगा।

जीवन की खोज मूलत: किनारों को छोड़ने की या बड़े किनारों को पाने की खोज है, लेकिन जिसको असीम और अनंत मिल जाता हो, उससे जब हम पूछने जाते हैं कि तुमने किनारे क्यों छोड़े, तो क्या उत्तर होगा उसके पास? सिर्फ हंसेगा और कहेगा कि तुम भी आओ और छोड़कर देखो। क्योंकि जो मैंने पाया है, वह इतना ज्यादा है, और उसमें वह पुराना मौजूद ही है, जो तुम कहते हो छोड़ दिया। वह कहीं छोड़ा नहीं है।

घर छूटा नहीं है महावीर का, सिर्फ बड़ा हो गया। इतना बड़ा हो गया कि हमें दिखाई भी नहीं पड़ता, क्योंकि हमें छोटे घर ही दिखाई पड़ सकते हैं। अगर घर बहुत बड़ा हो जाए तो फिर हमें दिखाई नहीं पड़ता।

त्याग से हटा देनी चाहिए बात और विराट भोग पर ज्यादा एंफेसिस और जोर दिया जाना चाहिए। और मेरी अपनी समझ है कि चूंकि त्याग से हमने बांध लिया है इन सब महापुरुषों को, इसलिए हम इनके निकट नहीं पहुंच पाए। क्योंकि त्याग बहुत गहरे में किसी व्यक्ति को अपील नहीं कर सकता। बहुत गहरे में त्याग की बात ही निषेध की बात है—छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो!

यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो—छोड़ने की भाषा ही मरने की भाषा है। छोड़ना सुसाइडल है, आत्मघाती है।

इसलिए अगर धर्म इस बात पर जोर देता हो कि छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो, तो बहुत थोड़े-से लोग हैं, जो उसमें उत्सुक हो सकते हैं। और अक्सर ऐसा होगा कि रुग्ण लोग उत्सुक हो जाएंगे और स्वस्थ लोग उत्सुक नहीं रह जाएंगे। क्योंकि स्वस्थ भोगना चाहता है, रुग्ण छोड़ना चाहता है, क्योंकि भोग नहीं सकता। बीमार, आत्मघाती चित्त के लोग इकट्ठे हो जाएंगे धर्म के नाम पर। स्वस्थ, जीवंत, जीवन को जीने वाले लोग अलग चले जाएंगे। कहेंगे, धर्म हमारा नहीं है। इसलिए तो लोग कहते हैं कि युवावस्था में धर्म की क्या जरूरत? वह तो वृद्धावस्था के लिए है। जबकि चीजें अपने से छूटने लगती हैं तो छोड़ ही दो। जब कि चीजें अपने से ही छूटने लगती हैं, तो फिर अब क्या दिक्कत है? छोड़ दो! छूट ही रहा है, छीना ही जा रहा है, तो छोड़ ही दो! लेकिन जब जीवन भोग रहा है, पा रहा है, उपलब्ध कर रहा है, तब छोड़ने की भाषा समझ में नहीं आती। इसलिए मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजों में बूढ़े लोग दिखाई पड़ते हैं,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जवान आदमी दिखाई नहीं पड़ता। वह छोड़ने पर जो जोर था, उसने दिक्कत डाल दी है। मैं इस जोर को एकदम बदल डालना चाहता हूं।

मैं कहता हूं, भोगो ! और बड़ा भोगो, और बड़ा—परमात्मा को भोगो।

और उसका भोग बहुत अनंत है, और तुम क्षुद्र पर मत रुक जाना। क्षुद्र को छोड़ना तो इसलिए है, कि विराट को भोगना है।

प्रश्न : वहां अपना अस्तित्व मिट जाता है ?

जितना हम विराट होते चले जाएंगे, उतना ही अस्तित्व मिटता चला जाएगा। लेकिन असल में अस्तित्व मिट जाता है, ऐसा कहना गलत है। मेरा अस्तित्व मिट जाता है, इतना ही कहना सही है। इगो चली जाती है, अस्तित्व तो रहेगा।

प्रश्न : अभी नदी सागर में गिर गई तो नदी का कैसे पता लगेगा ?

पता न लगेगा, लेकिन नदी है, अस्तित्व तो है। नदी में जो कण-कण था, एक कण भी नहीं खोया, सब है। हां, नदी की तरह नहीं है, सागर की तरह है। और नदी की तरह अब नहीं खोजा जा सकता। नदी मर गई, लेकिन नदी का जो अस्तित्व था, एग्जिस्टेंस था, वह पूरा का पूरा शेष है। नदी की इंडिविजुअलिटी मर गई।

प्रश्न : और फिर आप कहते हैं, छोड़ना तो सुसाइडल है ?

बिलकुल सुसाइडल है। छोड़ने की भाषा ही सुसाइडल है। तो मैं यह कह रहा हूं कि भोगने की···। नदी से यह मत कहो कि नदी होना छोड़ो। नदी से कहो सागर होना सीखो। मैं जो···जो फर्क कर रहा हूं, नदी से यह मत कहो कि छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो। नदी से यह कहो भोगो, विराट सागर सामने है। रुको मत, दौड़ो, कूद जाओ सागर में। भोगो। सागर को भोगो। तो मुझे लगता है कि जगत को ज्यादा धार्मिक जीवन दिया जा सकता है। क्योंकि सामान्य चित्त जो हमारा है, सामान्य चित्त का जो भाव है, वह भोगने का है, त्यागने का नहीं है। और सामान्य चित्त को अगर धर्म की तरफ उठाना है तो उसे विराट भोग का आमंत्रण बनाना चाहिए।

अभी उल्टा हो गया है। जो छोटा-मोटा भोग चल रहा है, उसका भी निषेध करने का आमंत्रण बना हुआ है। उसे भी निगेट करो, उसे भी इनकार करो। और यह मैं मानता हूं कि अगर हम विराट को भोगने जाएंगे तो क्षुद्र का निगेशन हो जाने वाला है, वह हमें करना नहीं पड़ेगा। वह तो नदी को सागर बनना है तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वह नदी नहीं रह जाएगी। यह कोई कहने की बात नहीं है। नदी को सागर बनना है तो उसे नदी होना छोड़ना ही पड़ेगा, लेकिन इस पर जोर मत दो। ये दो घटनाएं घट रही हैं। नदी मिट रही है, एक घटना है; नदी सागर हो रही है, यह दूसरी घटना है। किस पर जोर देते हैं आप? अगर सागर होने पर जोर देते हैं तो मैं मानता हूं कि ज्यादा नदियों को आप आकर्षित कर सकते हैं, कि वे सागर बन जाएं। अगर आप कहते हैं कि नहीं, नदी मिट जाओ और सागर की बात मत करो तो शायद ही कोई एकाध बीमार नदी को आप राजी कर लें, जो मिटने को राजी हो जाए, जो कि होने से घबड़ा गई हो। बाकी नदियां तो रुक जाएंगी। वे कहेंगी, हम बहुत आनंदित हैं, हमें नहीं मिटना है। हां, मिटना तभी सार्थक हो सकता है, जब विराट का मिलना सार्थक हो रहा हो, अर्थ ले रहा हो।

तो मेरा जोर जो है, वह इस बात पर है कि धर्म को त्याग मत बनाओ, धर्म को और विराट भोग बनाओ। त्याग आएगा, वह आटोमैटिक होगा, वह सीधा अपने आप होगा। अगर आपको आगे की सीढ़ी पर पैर रखना है तो पीछे की सीढ़ी छूटेगी, लेकिन इस पर जोर मत दो कि पीछे की सीढ़ी छोड़नी है। जोर इस पर दो कि आगे की सीढ़ी पानी है।

प्रश्न : जैसे त्याग शब्द ने गलती की, वैसे ही आपका भोग शब्द भी गलती कर सकता है?

बिलकुल कर सकता है। बिलकुल कर सकता है। सब शब्द गलती कर सकते हैं। क्योंकि शब्द गलती नहीं करते...

प्रश्न : वह जो विचार है, वह दूसरे शब्द में आना चाहिए। भोग का शब्द है, उसके लिए दूसरा शब्द देना पड़ेगा?

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

प्रश्न : नहीं, लोगों की समझ में तो वही आएगा न?

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई भी शब्द हम दे दें, सब शब्द गलती कर सकते हैं। क्योंकि अंततः शब्द गलती नहीं करते, अंततः लोग गलती करते हैं। लेकिन त्याग शब्द व्यर्थ हो गया है। वह गया! और त्याग के विपरीत और कोई शब्द नहीं है अभी, सिवाय भोग के, जो सार्थकता ले सकता है। लेकिन जो मैं कह रहा हूं, अगर उसे ठीक से समझा जाए तो मेरा भोग त्याग के विपरीत नहीं है, मेरा भोग त्याग में से ही है। क्योंकि मैं कह रहा हूं कि दूसरी सीढ़ी पर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पैर रखना है तो पहली सीढ़ी छोड़नी ही पड़ेगी । लेकिन जोर मेरा दूसरी सीढ़ी पर पैर रखने पर है। जोर मेरा···

प्रश्न: आगे बढ़ने पर है ?

हां, आगे बढ़ने पर है । जोर मेरा पिछली सीढ़ी छोड़ने पर नहीं है । एंफेसिस जो है, वह इस बात पर है कि अगली सीढ़ी पाओ, इसे मैं भोग कह रहा हूं । पिछली जो एंफेसिस थी, वह इस पर थी कि जिस सीढ़ी पर खड़े हो, उसे छोड़ो । वह एंफेसिस छोड़ने पर थी । पिछली सीढ़ी छोड़ो, इसके लिए बहुत कम लोगों को राजी किया जा सकता है । क्योंकि जिस पर हम खड़े हैं, उसे भी छोड़ दें ? जो उस सीढ़ी पर अत्यंत दुख में हैं, शायद वे छोड़ने को राजी हो जाएं । वे कहें कि इससे बुरा तो कुछ भी नहीं हो सकता । इसे तो छोड़ ही देते हैं, फिर जो होगा, होगा। रुग्ण चित्त त्याग की भाषा को समझ लेगा, स्वस्थ चित्त त्याग की भाषा को नहीं समझ सकेगा । वृद्ध चित्त त्याग की भाषा को समझ लेगा, युवा चित्त त्याग की भाषा को नहीं समझ सकेगा। इसलिए मैं कह रहा हूं कि पिछले पांच हजार वर्षों में धर्म ने जो भी रूपरेखा ली है, वह रुग्ण, न्यूरोटिक, विक्षिप्त वृद्ध, बीमार—इस तरह के लोगों को आकर्षित करने का कारण बना । वह त्याग शब्द में, उस पर जोर देने का यह परिणाम हुआ है । स्वस्थ, जीवंत, जीने के लिए लालायित, वह उस तरफ नहीं गया । उसने कहा, जब जीवन की लालसा चली जाएगी, तब देखेंगे, अभी तो हमें जीना है ।

मैं यह कह रहा हूं कि यह जो जीवंत धारा है, इसे आकर्षित करो । और यह तभी आकर्षित होगा, जब इसे विराट जीवन का ख्याल सामने हो । छोड़ना नहीं है, पाना है । और छोड़ना होगा ही इसमें, क्योंकि बिना छोड़े कुछ भी पाया नहीं जा सकता है । असंभव ही है कि हम बिना छोड़े कुछ भी पा लें । कुछ भी हम पाने चलेंगे तो कुछ छोड़ना पड़ेगा । और इसलिए सवाल छोड़ने के विरोध का नहीं है, सवाल एंफेसिस का है, जोर का है । हम किस चीज पर जोर देते हैं ।

भोग शब्द में बहुत निंदा छिप गई है । वह त्यागियों ने पैदा की है । इसलिए मैं भोग का ही उपयोग करना चाहता हूं—जानकर ही । क्योंकि वह जो भोग की निंदा है, वह इन त्यागियों ने ही पैदा की है । वे कहते हैं, भोग की बात ही मत करो, इसकी बात ही मत करो, सुख की बात ही मत करो, क्योंकि त्याग करना है ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मेरा कहना यह है कि यह पूरी की पूरी भाषा गलत हो गई है। इसने गलत तरह के आदमियों को आकर्षित किया है, स्वस्थ आदमी को आकर्षित नहीं किया।

जीवन को भोगना है, उसकी गहराइयों में। जीवन को जीना है उसकी आत्यंतिक उपलब्धियों में, उसके पूर्ण रस में, उसके पूर्ण सौंदर्य में। परमात्मा इस अर्थों में प्रकट होना चाहिए कि जो व्यक्ति जितना परमात्मा में जा रहा है, उतना जीवन की गहराइयों में जा रहा है।

अभी तक का जो त्यागवादी रुख था, वह ऐसा था कि जो व्यक्ति परमात्मा की तरफ जा रहा है, वह जीवन की तरफ पीठ कर रहा है, वह जीवन को छोड़कर भाग रहा है। वह जीवन की गहराइयों में नहीं जा रहा, वह जीवन का इनकार ही कर रहा है। वह कहता है, जीवन हमें नहीं चाहिए, हमें मृत्यु चाहिए। इसलिए वह मोक्ष की बातें करता है। मृत्यु चाहिए, हमें जीवन नहीं चाहिए। हमें ऐसी मृत्यु चाहिए, जो फिर जीवन हो ही नहीं।

ये सारी की सारी जो जोर है, यह मैं जानता हूं कि अगर कोई परमात्मा को जीवन की तरह मानकर चलेगा तो भी यह सब छूट जाएगा, जो त्यागी कह रहा है, वह सब छूटेगा, वह बचने वाला नहीं है, लेकिन तब उस छूटने पर जोर नहीं होगा। यानी मेरा जोर यह है कि आपके हाथ में पत्थर है तो मैं आपसे नहीं कहता कि आप पत्थर फेंक दो। मैं आपसे कहता हूं कि सामने हीरों की खदान है। मैं नहीं कहता आप पत्थर फेंको, मैं यह कहता हूं कि हीरे बड़े पाने योग्य हैं और सामने चमक रहे हैं। मैं यह जानता हूं कि हाथ खाली करने पड़ेंगे, क्योंकि बिना हाथ खाली किए हीरों पर हाथ भरेंगे कैसे आप ? पत्थर छूट जाएंगे, लेकिन यह छूटना बड़ा सहज होगा। आपको शायद पता भी नहीं चलेगा कि कब आपने पत्थर हाथ से गिरा दिए और हीरे हाथ में भर लिए ! शायद आपको ख्याल भी नहीं आएगा कि मैंने पत्थर छोड़े हैं. क्योंकि जिसे हीरे मिल गए हों, वह पत्थर छोड़ने की बात ही नहीं कर सकता।

लेकिन पुराना जोर इस बात पर था कि पत्थर छोड़ो। और इसलिए ऐसे लोग हैं, जो पत्थर छोड़ने के आधार पर ही जिंदगी भर जी रहे हैं। कि हमने पत्थर छोड़े हैं ! उन्हें कुछ मिला कि नहीं, इसका कोई पता नहीं है। उन्हें आगे की सीढ़ी मिली, कि नहीं मिली है। क्योंकि मैं यह कहता हूं, मैं यह कहता हूं कि यह हो सकता है कि पत्थर छोड़ दिए जाएं और हीरे न मिलें, लेकिन यह कभी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नहीं हो सकता कि हीरे मिल जाएं और पत्थर न छोड़े जाएं। यह जो मेरा फर्क है...यह कभी नहीं हो सकता कि हीरे मिल जाएं और पत्थर न छोड़े जाएं। लेकिन वह हो सकता है कि पत्थर छोड़ दिए जाएं और हीरे न मिलें। हाथ खाली भी रह जा सकते हैं। त्याग की भाषा ने बहुत-से लोगों के हाथ खाली करवा दिये हैं। जिसके हाथ खाली हैं, वह उन लोगों पर क्रोध से भर जाता है, जिनके हाथ भरे हैं। इसलिए हमारा साधु, संन्यासी बहुत गहरे कंडेमनेशन में जीता है। वह चौबीस घंटे उनकी निंदा कर रहा है, जिनके हाथ भरे हैं, जो भोग रहे हैं, जो जीवन में सुख पा रहे हैं ! वह उन सबके लिए गालियां दे रहा है, उनको नरक भेजने का इंतजाम कर रहा है ! उनको सड़वा डालेगा, आग में जलवा डालेगा, वह सब इंतजाम कर रहा है ! ये उसकी मानसिक तृप्तियां हैं, जो खाली हाथ का आदमी ले रहा है उन लोगों से बदला, जिनके हाथ भरे हुए हैं और जो राजी नहीं हैं खाली हाथ करने को। और जो लोग उनके आसपास इकट्ठे हुए हैं, उनको भी उनके हाथ खाली दिखाई पड़ते हैं, भरा हुआ कुछ दिखाई पड़ता नहीं ! क्योंकि मेरा मानना यह है कि अगर भरा हुआ कुछ दिखाई पड़े तो स्वाभाविक होगा कि हम भी उस यात्रा पर निकल जाएं, जहां आदमी और फुलफिल्ड हुआ है, और भी भर गया है।

आप एक संन्यासी के पास जाते हैं, एक त्यागी के पास जाते हैं, तो आप भला कितनी ही प्रशंसा करें उसके त्याग की, आप कितना ही कहें, बड़ी हिम्मत का आदमी है, यह छोड़ा, यह छोड़ा, यह छोड़ा; लेकिन न तो उसकी आंखों में, न उसके व्यक्तित्व में, न उसके जीवन में; वह सुगंध नहीं दिखाई पड़ती जो आने की है—कुछ आया, कुछ उतरा !

और मेरा मानना है कि अगर उसके जीवन में कुछ आ जाए तो वह भी त्याग की बातें बंद कर देगा। क्योंकि वह भूल जाएगा उन पत्थरों को, जो छोड़े। अब हीरों की चर्चा होगी, जो पाए।

लेकिन जो भी त्याग की बातें किए चला जा रहा है, अभी भी पत्थर छोड़ने की बातें किए चला जा रहा है, निश्चित है कि उसके हाथ में कुछ और नहीं आया। पत्थर छूट गए हैं, और एक ही रस रह गया है उसका कि मैंने इतने पत्थर छोड़े, मैंने यह-यह छोड़ा, यही उसका रस रह गया है। और हम जो चारों तरफ इकट्ठे लोग हैं, हमें भी और कुछ नहीं दिखाई पड़ता है उसमें, सिर्फ छोड़ना

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दिखाई पड़ता है ! छोड़ना कभी भी चित्त के लिए आकर्षण नहीं बन सकता। असहज है, सहज नहीं है। पाना ही चित्त के लिए सहज आकर्षण है।

तो वह अगर हमारे ख्याल में हो जाए, वह अगर साफ हो जाए तो महावीर ने घर छोड़ा, इस भाषा को हम नहीं बोलेंगे। यह महावीर ने घर छोड़ा, यह तथ्य है। तथ्य इतना है कि महावीर घर में नहीं रहे। लेकिन इसको हम किस तरह से देखें, यह हम पर निर्भर है; यह महावीर पर निर्भर नहीं है अब। और मेरी अपनी दृष्टि यही है कि महावीर घर छोड़कर जितने आनंदित दिखाई पड़ते हैं, जितने प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं, उनके जीवन में जैसी सुगंध मालूम पड़ती है, वह खबर देती है कि घर छोड़ा नहीं, बड़ा घर मिल गया। यानी वह अगर घर पर ही छूटता और आंगन में खड़े रह गए होते बाहर सड़क पर, तो यह हालत नहीं होने वाली थी। बड़ा घर मिल गया, महल मिल गया, झोंपड़ा ही छूटा। इसलिए जो, छूटा, उसकी बात ही नहीं है। जो मिल गया है, वह चारों तरफ से उनको आनंद से भरे दे रहा है। लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले साधु को देखें ! तो उसको कुछ भी मालूम नहीं पड़ता। ऐसा लगता है, वह सड़क पर खड़ा हो गया है। जो था, वह खो दिया और जो मिलने की बात थी, वह मिला नहीं है। तो वह अधूरे में अटक गया है। वह एक कष्ट में जी रहा है, वह एक परेशानी में जी रहा है।

लेकिन हम, इसे भी थोड़ा सोच लेना चाहिए कि हम किसी को परेशानी में जीते देखकर आदर क्यों देते हैं ? असल में यह भी बड़ी गहरी हिंसा का भाव है। एक आदमी जब परेशानी में होता है तो हम उसको आदर देते हैं। और परेशानी अगर वालंटरी है, खुद ही स्वेच्छा से ली है, तब हम और भी आदर देते हैं। क्यों लेकिन ?

यह हमारा आदर भी रुग्ण है। असल में हम दूसरे को दुख देना चाहते हैं। सब—हम सब दूसरे को दुख देना चाहते हैं। हम सब सैडिस्ट हैं। भीतर से हमारे चित्त में यही होता है कि किसको कितना दुख दे दें। और जब कोई ऐसा आदमी मिल जाता है जो दुख खुद ही वरण करता है तो हम बड़े आदर से भर जाते हैं, कि यह आदमी बिलकुल ठीक है। यह हमारी भीतर की किसी बहुत गहरी आकांक्षा को तृप्त करता है। यह हमारे भीतर कहीं इस बात को तृप्त करता है कि ठीक···। आप देखिए कि एक आदमी सुखी हो जाए तो आप सुखी नहीं होते। एक आदमी ज्यादा से ज्यादा सुख में जाने लगे तो आप दुख में जाने लगते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

किसी का सुख में जाना आपका दुख में जाना बन जाता है। लेकिन किसी का दुख में जाना आपका दुख में जाना नहीं बनता। हालांकि हो सकता है कभी कोई आदमी दुख में पड़ा हो तो आप बड़ी सहानुभूति प्रकट करते हों, लेकिन अगर थोड़ा भीतर झांकेंगे तो आप पाएंगे, सहानुभूति में भी रस आ रहा है। हो सकता है कोई आदमी बहुत सुखी हो गया, बड़े मकान में जीने लगा है, तो हो सकता है आप प्रशंसा भी करते हों, और कहते हों कि बहुत अच्छा है, भगवान की बड़ी कृपा है, लेकिन इसमें भी ईर्ष्या छुपी होगी। इसमें भी भीतर ईर्ष्या घाव कर रही होगी मन को।

लेकिन जब कोई आदमी वालंटरली, स्वेच्छा से दुख में जाता है, तब हम उसको बड़ा आदर देते हैं, क्योंकि वह वही काम कर रहा है, जो हम चाहते थे कि करे। इसलिए त्यागियों, तपस्वियों, तथाकथित छोड़ने वाले लोगों को जो इतना सम्मान मिला है, उसका कारण है। आप किसी सुखी आदमी को कभी सम्मान नहीं दे सकते। दुखी! और दुःख खुद ओढ़ा गया हो, तब तो हम उसके पैरों में सिर रख देते हैं कि आदमी अद्भुत है!

यह भी मेरा मानना है कि मनुष्य जाति भीतर से रुग्ण है इसकी वजह से कि त्यागियो को सम्मान है। अगर मनुष्य जाति स्वस्थ होगी तो सुखी लोगों को सम्मान होगा। जो स्वेच्छा से ज्यादा से ज्यादा सुखी हो गए हैं, उनका सम्मान होगा। और यह भी ध्यान रहे, हम जिसको सम्मान देते हैं, धीरे-धीरे हम भी वैसे होते चले जाते हैं। दुख को सम्मान दिया जाएगा तो हम दुखी होते चले जाएंगे। सुख को सम्मान दिया जाएगा तो हम सुख की यात्रा पर कदम बढ़ाएंगे। लेकिन अब तक सुखी आदमी को सम्मान नहीं दिया गया। अब तक सिर्फ दुखी आदमी को सम्मान दिया गया है। यह मनुष्य जाति के भीतर दूसरे को दुख देने की प्रबल आकांक्षा का ही हिस्सा है।

प्रश्न : तो इसका मतलब यह है, त्यागी आपस में एक-दूसरे को सम्मान नहीं देंगे, जो त्यागी ही होंगे ? मान लीजिए त्याग में हमारा सारा संसार बन जाता है, तो आपस में एक-दूसरे को सम्मान नहीं मिलेगा ?

मिलेगा अगर बड़ा त्यागी मिल जाए तो। यानी अपने को और ज्यादा दुख देने वाला मिल जाए तो मिलेगा। कारण वही होगा। छोटा त्यागी बड़े त्यागी को सम्मान देगा। क्योंकि छोटा त्यागी एक दफे खाता है, बड़ा त्यागी एक दफ भी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नहीं खा रहा है ! छोटा त्यागी पंद्रह दिन खाता है, बड़ा त्यागी महीने भर भूखा बैठा हुआ है ! तो छोटे त्यागी को बड़े त्यागी को सम्मान देना पड़ेगा, लेकिन बात वही है। बात वही है। दूसरे को दुख में देखकर हमारे मन में सम्मान पैदा होना बात ही गलत है। दूसरे को किसी भी तरह के दुख में देखकर, कष्ट में देखकर··· एक आदमी कांटे पर लेटा हुआ है तो लोग उसके पैर छुएंगे। लेकिन किसी को कांटे पर लेटा हुआ देखकर पैर छूना बड़ी खतरनाक बात है। क्योंकि यह इस बात की खबर है कि जो भी कांटे पर सोने की तैयारी करेगा, हम उसको आदर देने की तैयारी दिखला रहे हैं ! यानी हम यह कह रहे हैं कि लोग दुखी होने की तैयारी करें तो हम उनको आदर देंगे। कांटे पर सोओ तो हम ज्यादा आदर देंगे और लोहे की कीलें भोंक लें शरीर में, तो और ज्यादा आदर देंगे।

यूरोप में ईसाइयों का एक पंथ था, जो जूतों में नीचे लोहे की कीलें लगा लेता था—अंदर पैर के, कीलें ! और उनके पैरों में घाव होते। उनमें जो गुरु होते, वे सिर्फ जूते में ही न लगाते, वे एक पट्टा भी बांधते कमर में, और उस पट्टे में भी गहरे कीले गड़े रहते जो पूरे वक्त छिदते रहते ! उठें, बैठें, हिलें, करवट लें, और खून बहता रहता, मवाद बहती रहती। तो जिस व्यक्ति से जितनी ज्यादा मवाद बहती, वह उतना परम-गुरु हो जाता ! यानी इस बात का नाप-जोख रखना पड़ता कि किसके कितने घाव हैं ! तुम दस कीलें गड़ाए हुए हो कि पंद्रह ? तो दस वाला पंद्रह वाले को आदर देता !

एक दूसरा संप्रदाय था, जो कोड़े मारने वालों का संप्रदाय था कि सुबह उठकर साधु अपने शरीर को नंगा करके कोड़े मारता—फ्लैजलेटिस्ट सैडिस्ट कहलाते वे। अपने को कोड़ा मारता। जो जितने ज्यादा कोड़े मारता, इसकी चर्चा होती गांव में कि फलां एक सौ एक कोड़े मारता है सुबह ! हमको यह बात अजीब लगती है। फलां आदमी दो सौ एक मारता है, चमड़ा बिलकुल उघाड़ डालता है, लहूलुहान हो जाता है, उसका उतना आदर होता है ! लेकिन हम भी कहते हैं, फलां साधु ने पंद्रह दिन का उपवास किया है, फलां साधु ने इक्कीस दिन का उपवास किया है : फलां आदमी महीने भर से उपवास पर है। इसके हम अखबार में फोटो भी निकालते हैं, जुलूस भी निकालते हैं, कि यह आदमी दो महीने उपवास किया है ! यह बड़ा अद्भुत आदमी है। दो महीने भूखा मरा है। यह भी फ्लैजलेटिज्म है। यह भी कीलें ही मारना है, यह भी खीलें ही ठोंकना है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेकिन हमें ख्याल में नहीं है कि आज तक मनुष्य जाति क्यों दुख देने वाले लोगों को—खुद को दुख देने वाले लोगों को इतना आदर क्यों देती रही है? जरूर कहीं कोई रुग्ण भाव काम कर रहा है। कहीं जरूर कोई हमारे मन में दूसरे लोगों को दुख दिया जाए…

प्रश्न : त्याग के लिए जैसे ग्रेडेशंस बताए आपने कि ज्यादा से ज्यादा दुख देना, वैसे भोग के लिए ग्रेडेशंस कैसे बताएंगे? भोग तो अदृश्य होगा?

भोग भी दिखता है। भोग भी दिखता है। क्योंकि हमने त्याग की बाबत चिंतन किया, इसलिए ग्रेडेशंस बन गए, अगर हम भोग के लिए चिंतन करेंगे तो ग्रेडेशंस बन जाएंगे। भोग भी दिखता है। वह भी दिखता है कि कौन आदमी कितना आनंदित है, कौन आदमी कितना शांत है। कौन आदमी प्रत्येक चीज से कितना सुख लेता है। यानी समझ लें कि एक आदमी फूल के पास खड़ा हुआ है, फूल के पौधे के पास खड़ा हुआ है, गुलाब के पास खड़ा हुआ है, तो वह आदमी भी हमें दिखता है, जो अपना हाथ कांटे में चुभा रहा है; तो वह आदमी हमको नहीं दिखेगा जो फूल की सुगंध ले रहा है? वह भी दिख जाएगा। लेकिन हमने देखा नहीं! वह हमें यही थोड़े ही दिखेगा कि यह आदमी कांटे में हाथ चुभाता है, तभी दिखाई पड़ता है। फूल की सुगंध लेते हुए नहीं दिखाई पड़ता! लेकिन अब तक हमने उस आदमी को आदर दिया है, जिसने गुलाब के कांटे को हाथ में चुभा लिया है और खून बहा दिया है! हमने कहा, यह आदमी अद्‌भुत है। हमने उस आदमी को आदर नहीं दिया, जिसने फूल की सुगंध ली! हमने कहा, यह आदमी तो साधारण है। फूल की सुगंध तो कोई भी लेता है, असली सवाल तो कांटे चुभाने का है।

अब बड़ा मजा यह है कि असली सवाल फूल की सुगंध लेने का ही है, कांटा चुभाने का नहीं है। कांटा चुभाने वाला भी बीमार है, रुग्ण है, साइकोटिक है वह, उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति गड़बड़ है। और कांटा चुभाने वाले को आदर देने वाला भी खतरनाक है, वह भी रुग्ण है। फूल सूंघने वाला भी स्वस्थ है और फूल सूंघने वाले को सम्मान देने वाला भी स्वस्थ है।

एक ऐसा समाज चाहिए, जहां सुख का समादर हो, दुख का अनादर हो।

लेकिन हुआ उल्टा है। और इस समाज ने इस तरह का धर्म पैदा कर लिया और इस जगत में जो सबसे ज्यादा सुखी लोग थे, उनको सबसे ज्यादा दुखी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लोगों की श्रेणीं में रख दिया !

महावीर जैसे व्यक्ति को सर्वाधिक सुखी लोगों में से गिना जाना चाहिए। यानी इसके आनंद की कोई सीमा लगानी मुश्किल है। यह आदमी चौबीस घंटे आनंद में है। लेकिन हमारी वह त्याग की दृष्टि ने वह सारा आनंद क्षीण कर दिया। बल्कि हमने क्या कहना शुरू किया, हमने कहना यह शुरू किया कि यह आदमी आनंद में इसीलिए है कि इसने इतना-इतना त्याग किया ! जो इतना-इतना त्याग करेगा, वह इतने आनंद में हो सकता है ? त्याग कर रहा है आदमी ? लेकिन उतने आनंद में नहीं हो जाता है।

बात उल्टी है। यह आदमी इतने आनंद में है, इसलिए इससे इतने त्याग हो गए। यह त्याग हो जाना, इतने आनंद में होने का परिणाम था। और कोई आदमी इतने आनंद में होगा तो उससे इतने त्याग हो जाएंगे।

लेकिन हमने उल्टा पकड़ा। हमने पकड़ा कि इतने-इतने त्याग करो, तो देखो; महावीर इतने आनंद में हैं ! तुम भी इतने त्याग करोगे तो तुम भी इतने आनंद में हो जाओगे। बस, बात एकदम गलत हो गई। वह त्याग करने से कोई आनंद में नहीं हो जाएगा। हाथ के पत्थर छोड़ देने से हीरे नहीं आ जाते, लेकिन हीरे आ जाएं तो पत्थर छूट जाते हैं। त्याग पीछे है, प्रथम नहीं है। यह मैं कह रहा हूं।

और अगर महावीर को हम इस भाषा में देखें—और मुझे लगता है कि यही सही भाषा है, उनको देखने की—तो हमारा धर्म के प्रति, जीवन के प्रति दृष्टिकोण अलग होगा। महावीर ने घर नहीं छोड़ा, बड़ा घर पाया। छोड़ने की भाषा के ही मैं विरोध में हूं—बड़ा घर पाया। और बड़ा घर पाया, छोटा घर छूट गया। छूट गया इसका मतलब यह नहीं कि वे उसके दुश्मन हो गए। छूट गया उसका मतलब यह है कि अब छोटे घर में रहना असंभव हो गया। जब बड़ा घर मिल गया, छोटा घर उसका हिस्सा हो गया, उससे ज्यादा नहीं रह गया।

प्रश्न : जैसे कि त्याग शब्द मिसलीडिंग है, वैसा ही भोग शब्द मिसलीडिंग हो सकता है न ?

वह तो वही माणिक बाबू कहते हैं, प्रत्येक चीज मिसलीडिंग हो सकती है। यह सवाल नहीं है, प्रत्येक चीज हो सकती है। लेकिन अगर इसमें भी चुनाव करना हो तो मैं कहता हूं कि भोग की मिसलीडिंग होना ठीक है, उसको भी मैं कहता हूं। अगर यह भी चुनाव करना हो कि भोग या त्याग दोनों ही अगर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मिसलीडिंग...मिसलीडिंग हो सकते हैं, तो भी मैं कहता हूं कि फिर भोग का ही मिसलीड करना ठीक है। इसलिए कहता हूं कि वह जीवन के स्वस्थ, जीवन के सरल और सहज होने का प्रतीक है।

और यह भी बड़े मजे की बात है कि जो आदमी भोगने चलेगा, उससे त्याग धीरे-धीरे अनिवार्य हो जाएंगे, वह कितना ही मिसलीडिंग हो। यानी मेरा कहना ही यह है कि जो आदमी भोगने चलेगा, वह जैसे-जैसे भोग में उतरेगा, वैसे-वैसे बड़े भोग की संभावनाएं प्रकट होंगी, और त्याग उससे अनिवार्य हो जाएंगे। लेकिन जो आदमी त्याग करने चलेगा, उससे पुराने भोग की संभावनाएं छिन जाएंगी और नए भोग की संभावनाएं प्रकट नहीं होंगी। वह आदमी सूखता चला जाएगा।

यानी यह बात सच है कि ज्यादा खाना भी खतरनाक है, न खाना भी खतरनाक है, फिर भी अगर इन दोनों में से चुनना हो तो मैं कहूंगा कि ज्यादा खाना ही चुन लेना। क्योंकि न खाने वाला तो मर ही जाएगा। ज्यादा खाने वाला बीमार ही पड़ सकता है। और ज्यादा खाने वाला आज नहीं कल इस अनुभव को पहुंच जाएगा कि कम खाना सुखद है। लेकिन न खाने वाला कभी इस अनुभव पर नहीं पहुंचेगा, क्योंकि वह मर ही जाएगा। यानी जो मैं कह रहा हूं, यानी मेरा कहना यह है कि अगर भूल भी चुननी हो...भूल तो सब जगह संभव है, भूल सब जगह संभव है, क्योंकि आदमी, आदमी अज्ञान में है, इसलिए कुछ भी पकड़ता है तो भ्रांति ला सकता है। लेकिन फिर भी भ्रांति ऐसी चुननी चाहिए, जिससे लौटने का उपाय हो। जैसे न खाने से लौटने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है और ज्यादा खाना खुद दुख देगा। लौटना पड़ेगा। लेकिन न खाना दुख नहीं देता, समाप्त ही करता है, मिटा ही डालता है। उससे लौटने की संभावना कम हो जाती है।

फिर यह बात तो ठीक ही है कि सभी शब्द हमें भरमा सकते हैं, भटका सकते हैं। क्योंकि हम शब्दों से वही अर्थ निकाल लेना चाहते हैं, जो हम चाहते हैं कि निकलें। हम वह नहीं देखना चाहते, जो कहा गया है। यह तो हमेशा रहेगा। यह हमेशा होगा। इसलिए जो आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करता है, उन शब्दों के लिए बहुत साफ दृष्टि देनी चाहिए।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो जो मैं कह रहा हूं, मैं यह कह रहा हूं कि भोग अंततः त्याग बन जाता है, लेकिन त्याग अंततः भोग नहीं बनता।

जो मैं कह रहा हूं, भोग अंततः त्याग बन जाता है। यानी मैं यह कह रहा हूं कि एक वेश्या भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकती है, लेकिन जिसने जबरदस्ती ब्रह्मचर्य थोपकर जो साध्वी बन गई है, उसके ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होना बहुत मुश्किल है। एक वेश्या का अनुभव भी निरंतर उसे ब्रह्मचर्य की दिशा में गतिमान करता है, लेकिन थोपा हुआ ब्रह्मचर्य निरंतर सेक्स की दिशा में गतिमान करता है। और कहीं भी नहीं ले जा सकता। अगर ले भी जाएगा तो और वासना, और वासना की तरफ चित्त को झुकाएगा। फिर जीवन की सहजता में ही भोग हो, असहजता में न हो, यह अच्छा है। इसलिए मेरा ऐसा कहना है।

प्रश्न : एक अंतर हम जानना चाहते हैं कि किंसे रिपोर्ट जो सेक्स पर प्रकाशित हुई, उसमें लिखा है कि वे लोग जो खुद को कोड़े मारते हैं अथवा दूसरे को कोड़े मारते हैं, वे लोग जो कि स्वयं को दुःख देते हैं और दूसरे को दुःख देना पसंद करते हैं, ऐसे सारे लोग जो हैं, वे सेक्स परवर्ट्स होते हैं?

यह बिलकुल ही ठीक है।

प्रश्न : इसी ढंग से इधर जिसे हम त्यागी कहते हैं, जो धूनी रमा सकता है। दोनों के सेक्स परवर्ट्स में क्या दोनों को हम एक ही स्तर पर रख सकते हैं? या इनमें से दोनों में इस पर्वर्शन में कोई फर्क है?"

समझा। आपकी बात बहुत ठीक है। सारे पिछले सौ वर्षों के मनोविज्ञान की खोज यह है कि दूसरे को दुःख देना या अपने को दुःख देना या दुखियों को आदर देना या दुःख की संभावनाओं को सहारा देना, किसी न किसी प्रकार की काम-शक्ति का विकृत रूप है, सेक्स पर्वर्शन है। यह बिलकुल ही सत्य की बात है। असल में इसे समझना जरूरी है। असल में काम या सेक्स सुख की निम्नतम संभावना है—सुख की। समझना चाहिए कि काम जो है, प्रकृति के द्वारा दिया गया सहज सुख है। इससे कोई ऊपर उठे और बड़े सुख खोज ले, तो फिर काम के सुख की जरूरत नहीं रह जाती। इससे कोई ऊपर उठे, और बड़े सुख खोज ले, तो काम के सुख की कोई जरूरत नहीं रह जाती। धीरे-धीरे काम रूपांतरित होता है, ट्रांसफार्म होता है और अंततः ब्रह्मचर्य बन सकता है। लेकिन इससे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बड़े सुख कोई न खोजे और इस सुख को भी इनकार कर दे, तो फिर दुःख की संभावनाएं शुरू होती हैं। क्योंकि नीचे दुःख की संभावना है। यह सीमा रेखा है। सेक्स के नीचे दुःख की संभावनाएं हैं, सेक्स के ऊपर सुख की संभावनाएं हैं। अगर कोई बड़े सुख खोज ले तो सेक्स से मुक्त हो जाता है। अगर कोई बड़े सुख न खोजे और सेक्स को इनकार कर दे, तो नीचे के दुःखों में उतर आता है।

प्रश्न : तो सेक्स क्या है—बीच की सीढ़ी ?

बीच की रेखा है।

प्रश्न : क्या है वह ?

जहां से हमारे सुख दुःखों में रूपांतरित होते हैं। वह सीमा रेखा है, जहां नीचे दुःख हैं, ऊपर सुख हैं। इसलिए दुःखी आदमी सेक्सुअल हो जाता है। बहुत सुखी आदमी नॉन-सेक्सुअल हो जाता है। क्योंकि उसके लिए एक ही सुख है। एक ही सुख है। जैसे दरिद्र समाज है, दीन समाज है, दुःखी समाज है, तो वह एकदम बच्चे पैदा करेगा। गरीब आदमी जितने बच्चे पैदा करता है, अमीर आदमी नहीं करता। अमीर आदमी को अक्सर तो गोद लेने पड़ते हैं ! उसका कारण है। गरीब आदमी एकदम बच्चे पैदा करता है। उसके पास एक ही सुख है, बाकी दुःख ही दुःख हैं। इस दुःख से बचने के लिए एक ही मौका है उसके पास कि वह सेक्स में चला जाए। वह ही उसके लिए एकमात्र सुख का अनुभव है, जो उसे हो सकता है। वह वही है। अमीर आदमी को और भी बहुत सुख हैं। सुख छितर जाता है तो सेक्स इंटेंस नहीं रह जाता। उसकी इंटेंसिटी कम हो जाती है, उसकी तीव्रता कम हो जाती है। सुख और जगहों में फैल जाता है। बहुत तरह के सुख वह लेता है। संगीत का भी लेता है, साहित्य का भी लेता है, नृत्य का भी लेता है, विश्राम का भी लेता है। उसका सुख और तलों पर भी फैलता है। फैलने की वजह से सेक्स इंटेंसिटी कम हो जाती है। गरीब और किसी तरह के सुख नहीं लेता, बस एक ही सुख रह जाता है कि सेक्स भर उसको सुख देता है। बाकी सब दुःख ही दुःख हैं दिनभर। श्रम, मेहनत, मिट्टी फोड़ना, तोड़ना, वही सब है।

सेक्स जो है, वह प्रकृति के द्वारा दिया गया सुख भाव है। अगर कोई आदमी इसमें ही जीता चला जाए तो सामान्यतः जीवन दुःख होगा, सेक्स सुख होगा। और आदमी सारे दुःख सहेगा सिर्फ सेक्स के सुख के लिए। लेकिन अगर इससे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऊपर उठना शुरू हो जाए, यानी और खोजें हैं…वही धर्म का सारा का सारा जो जगत है, वह सेक्स के ऊपर सुख खोजने का जगत है। जैसे-जैसे ऊपर, सेक्स के ऊपर सुख मिलना शुरू होता है, वह जो शक्ति सेक्स से प्रकट होकर सुख पाती थी, वह नए द्वारों से झांककर सुख पाने लगती है। और धीरे-धीरे सेक्स के द्वार से विदा लेने लगती है, ऊपर उठने लगती है। इसको कोई कुंडलिनी कहे, कोई और नाम दे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कुल मामला इतना है कि सेक्स सेंटर के पास सारी शक्ति इकट्ठी है, वह रिजरवायर है। अगर आप शक्ति को ऊपर ले जा सकते हैं तो वह रिजरवायर नीचे की तरफ शक्ति को फेंकना बंद कर देगा। और अगर आप ऊपर नहीं ले जा सकते हैं तो वह रिजरवायर रिलीज करेगा। और बड़े मजे की बात है कि सेक्स का जो सुख है, साधारणतः वह रिलीज का ही सुख है। इतनी शक्ति इकट्ठी हो जाती है, वह भारी, टैंस हो जाती है, उसको रिलीज कर दिया।

अब समझ लो कि एक आदमी ऊपर भी नहीं गया और सेक्स के रिजरवायर को भी उसने रिलीज करना बंद कर दिया, तो अब उसकी शक्तियां नीचे उतरनी शुरू होंगी—सेक्स से भी नीचे। और ये शक्तियां क्या करेंगी ? क्योंकि सेक्स सुख की सीमा है, उसके नीचे दुःख की सीमाएं हैं। अब ये शक्तियां क्या करेंगी ? ये सैडिस्ट या मैसोचिस्ट हो जाएंगी। या तो ये खुद को सताएंगी या दूसरे को सताएंगी। और मजे की बात यह है कि जो मजा आएगा, वह सेक्सुअल जैसा ही है। यानी जो आदमी अपने को कोड़े मार रहा है, वह आदमी कोड़े मारकर उतनी शक्ति रिलीज कर देगा, जितनी सेक्स से होती, तो सुख देती। उतनी शक्ति रिलीज होकर वह थककर विश्राम करेगा। उसको बड़ा आराम मिलेगा। हमको लगेगा कि इस आदमी ने बड़ा कष्ट दिया अपने को, उसके लिए एक तरह का आराम है वह, क्योंकि शक्ति रिलीज हो गई। और ऐसा जो आदमी, जो खुद को दुःख देने में सुख पाने लगेगा—यह एक तरह का खुद को दुःख देने में सुख पाना है—जो आदमी खुद को दुःख देने में सुख पाने लगेगा, वह दूसरों को दुःख देने में भी सुख पाने लगेगा। वह दूसरों को भी सताएगा, दूसरों को भी परेशान करेगा, दूसरों को भी परेशान करने के कई उपाय खोजेगा।

जब टंडन जी पूछते हैं कि क्या ये धार्मिक परवर्ट और साधारण परवर्ट में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कोई फर्क है ? थोड़ा फर्क है। साधारण जो विकृत व्यक्ति है, वह धार्मिक विकृत व्यक्ति से अच्छी हालत में है। अच्छी हालत में है ! अच्छी हालत में इसलिए है कि उसको भी यह बोध निरंतर होगा कि कुछ पागलपन हो रहा है, कुछ गलती हो रही है, कुछ भूल हो रही है। मैं कुछ बीमार हूं। धार्मिक परवर्ट को यह भी नहीं होता। उससे गलती हो ही नहीं रही, वह साधना कर रहा है ! कर वह वही रहा है, लेकिन जो वह कर रहा है, उसके लिए उसने बड़े जस्टीफिकेशंस खोज रखे हैं, उसने बड़े न्याययुक्त कारण खोज रखे हैं। इसलिए वह कभी अपने को पागल, विक्षिप्त या रुग्ण भी नहीं समझेगा — एक। और दूसरी बात यह है कि साधारण जो इस तरह का विक्षिप्त आदमी है, वह अपनी विक्षिप्तता को छिपाएगा, प्रकट नहीं करेगा। हो सकता है वह रात में अपनी पत्नी की गर्दन दबाए, कांटे चुभाए···

जानकर आप हैरान होंगे, सैडिज्म शब्द ही उस आदमी से चला, डी सादे एक बहुत बड़ा लेखक हुआ। उसके प्रेम करने का ढंग ही यह था। इसी से सैडिज्म, दुखवादी शब्द बना। कि वह जब भी किसी स्त्री से प्रेम करे तो उसके लिए कोड़ा, चाकू, कांटे अपने साथ रखे ! एक बैग ही था उसके पास। कि जब स्त्री को प्रेम करे तो दरवाजे बंद करके पहला काम कि उसको कोड़े मारेगा ! उसको नग्न कर देगा, उसको कोड़े मारना शुरू करेगा ! वह भागेगी, चीखेगी, चिल्लाएगी; जितनी चीखेगी, चिल्लाएगी, उतना ही उसको आनंद आने लगेगा ! कांटे चुभाएगा···उसने सब इंस्ट्रूमेंट बनाकर रखे थे इस तरह के, कि कैसे स्त्री को सताना !

आमतौर से हमको ख्याल में नहीं आता। आमतौर से हमको ख्याल में नहीं आता कि अगर प्रेम में कोई व्यक्ति किसी स्त्री को चिउटी ले रहा है तो वह बहुत छोटे अंशों में सैडिज्म है। वह टॉर्चर करने की बहुत छोटी-सी बात है। प्रेम में एक-दूसरे को लोग नाखून भी खपा देंगे, नोंच भी डालेंगे। मगर वह प्रेम में हमको ख्याल में नहीं आएगा कि यह नाखून खपाना या यह नोंचना, या एक-दूसरे को जोर से दबाना, यह कोई सैडिज्म है। यह सैडिज्म ही है। बहुत सूक्ष्म है। और बड़ा सबके लिए सामान्य, नॉरमल सैडिज्म है, इसलिए ख्याल में नहीं आता। अब एक आदमी जरा इसमें आगे चला गया, उसको नाखून काफी नहीं मालूम पड़ते तो उसने कांटे बना रखे हैं ! वह कांटे से चुभाता है, तो फिर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मालूम पड़ता है।

लेकिन मजे की बात यह है कि डी सादे से सैकड़ों स्त्रियों का संबंध रहा। वह आदमी बहुत अद्‌भुत था। उसको न मालूम कितनी स्त्रियां प्रेम करने लगें, ऐसा आदमी था ! और बड़ा प्रतिभाशाली भी था। जिन स्त्रियों ने उसको प्रेम किया है, उनका भी कहना यह है कि जो आनंद उसके साथ आया, वह कभी किसी के साथ नहीं आया। अब यह बड़े मजे की बात है कि उसका कोड़ा मारना भी स्त्रियां पसंद करती थीं ! उसका कारण यह है कि वह कोड़े मारकर इतनी ओरजि पैदा कर देता था—औरत दौड़ रही है, कि वह कोड़े मार रहा है, कांटे चुभा रहा है, वह बाल खींच रहा है, वह नाखून चुभा रहा है, वह काट रहा है ! तो स्त्री के पूरे शरीर को वह इतना कंपन से भर देता कि जब वह सेक्स में जाता उसके साथ, तो स्त्री जिसको क्लाइमेक्स कहें, वह छू पाती, जो कि साधारणतः स्त्रियां नहीं छू पातीं। संभोग में सौ में से अठानबे स्त्रियां क्लाइमेक्स को कभी नहीं पहुंच पातीं। क्योंकि उनका पूरा शरीर ही नहीं जग पाता। तो वह··· इतना सताने के बाद भी स्त्रियां उसको पसंद करतीं कि वह आदमी अद्‌भुत है। और उनका कहना यह था कि जब तक मैं सता न लूं, तब तक मुझे कुछ रस आता ही नहीं, मुझे कुछ आनंद ही नहीं आता।

ठीक डी सादे जैसा एक दूसरा आदमी था मेसोच, जिसके नाम पर मेसोचिज्म चला। वह उल्टा काम था उसका। वह अपने को ही सताएगा। डी सादे दूसरे को सताएगा, वह अपने को ही सताएगा ! वह सब तरह से अपने को सताएगा और सताकर बड़ा सुखी होगा। असल में हमारे पास जो शक्ति बच जाती है, या तो हम उसे सुख की दिशा में गतिमान कर सकते हैं या दुख की दिशा में—दो ही दिशाएं हैं। तीसरी कोई दिशा नहीं है। आप ठहर नहीं सकते बीच में। तो या तो आप सुख की दिशा में अपनी शक्तियों को ले जाए, और नहीं तो फिर शक्तियां दुख की दिशा में जाना शुरू हो जाएंगी।

प्रश्न : नार्मल दिशा भी हो सकती है ?

नार्मल का कुल मतलब इतना है—नार्मल का कुल मतलब इतना है कि थोड़ा सुख, थोड़ा दुख; और कुछ मतलब नहीं होता नार्मल का। यानी वह आदमी दोनों ही काम कर रहा है : मेसोचिस्ट भी है, सैडिस्ट भी है। यानी वह आदमी थोड़ा अपने को भी सताता है, थोड़ा दूसरे को भी सताता है। सताने के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कई ढग हो सकते हैं, हमको ख्याल में नहीं होते। यानी असल में होता क्या है, नार्मल आदमी कैसे-कैसे सताता है, हमें पता ही नहीं चलता। जरा ही सीमा के बाहर जाता है, तब पता चलना शुरू होता है कि यह तो मामला गड़बड़ हो गया, यह आदमी कुछ गड़बड़ हो गया। कह मैं यह रहा हूं कि दो ही दिशाएं हैं। या अगर बीच में ठहरते हैं आप, तो दोनों दिशाओं का घोलमेल आपके व्यक्तित्व में होगा। कभी आप सताएंगे भी···इसलिए यह होता है कि पति कभी पत्नी को सताएगा भी, कभी प्रेम भी करेगा; सताएगा, फिर प्रेम करेगा; प्रेम करेगा, फिर सताएगा। पत्नी भी सताएगी, एक दिन प्रेम करती दिखाई पड़ेगी, दूसरे दिन सताती दिखाई पड़ेगी। सुबह से उपद्रव मचाएगी, सांझ पैर दाबेगी ! यह कुछ समझ में आना मुश्किल होता है कि यह हो क्या रहा है ! यानी ये दोनों बातें एक साथ क्यों चलती हैं ?

और ध्यान रहे, जिसको हमने थोड़ी देर प्रेम किया, थोड़ी देर बाद हम उसको सताएंगे। क्योंकि वह एक नारमैलिटी खतम हुई, अब दूसरी शुरू हुई। अब थोड़ी देर में हम सताने का उपाय खोजेंगे। अक्सर वह होगा कि पति-पत्नी लड़ते, लड़ते, लड़ते, लड़ते बड़े प्रेम में आ जाएंगे और प्रेम में आते, आते, आते, आते फिर लड़ना शुरू कर देंगे। यह इस तरह उनका सर्कल चलता रहेगा। वह जिसको भी हम सताएंगे, थोड़ी देर में सताने का काम पूरा हो जाएगा, फिर प्रेम करेंगे, फिर प्रेम करेंगे, फिर सताएंगे। नार्मल का इतना ही मतलब होता है।

एबनार्मल का मतलब यह होता है कि या तो वह सुख की दिशा में चला जाता है, तो भी एबनार्मल है। और या दुख की दिशा में चला जाता है, तो भी एबनार्मल है। असाधारण है वह व्यक्ति। लेकिन सुख की दिशा में जाने से शायद अंततः वह परमात्मा तक पहुंच जाता है, क्योंकि परमात्मा परम सुख है। और दुख की दिशा में जाने से शायद वह शैतान तक पहुंच जाता है, क्योंकि शैतान होना अंतिम दुख है।

यह जो मैं कह रहा हूं, और वह जो प्रश्न पूछा गया है वह यह, कि इसमें धार्मिक और साधारण में···तो धार्मिक आदमी इन्हीं कामों को प्रकट में करेगा, अधार्मिक आदमी इनको अप्रकट में करेगा। और धार्मिक आदमी प्रकट में करेगा, इसलिए धार्मिक आदमी ज्यादा खतरनाक भी है। क्योंकि वह प्रकट में करके इनको फैलाता भी है, इनका विस्तार भी करता है। और मजा यह है कि वह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

धार्मिक आदमी लोगों में यह भाव पैदा करता है कि यह जो वह काम कर रहा है, ये कोई विक्षिप्तता के नहीं हैं। ये काम बड़ी साधना के हैं, बड़ी ऊंची बात कर रहा है। और पागल आदमी को यह ख्याल आ जाए कि वह ऊंची बात कर रहा है तो फिर पागलपन के ठीक होने की संभावना ही खतम होती है। हिंदुस्तान में पागलों की संख्या कम है, यूरोप में पागलों की संख्या ज्यादा है। लेकिन अगर संन्यासी, साधुओं और सताने वालों की संख्या हिंदुस्तान के पागलों से जोड़ दी जाए, तो संख्या बराबर हो जाती है। उसका कुल कारण है, यहां डायवर्शन है, वहां डायवर्शन भी नहीं है। वहां जो आदमी पागल है, वह पागल है। जो आदमी पागल नहीं है, वह पागल नहीं है। यहां पागल और गैर-पागल के बीच एक रास्ता और है, कि वह आदमी इस तरह···

मैं एक आदमी को जानता हूं जबलपुर में, जो एक सौ आठ बार बर्तन साफ करेंगे, तब पानी भर कर लाएंगे। यह आदमी यूरोप में हो तो पागल हो जाएगा। यह आदमी हिंदुस्तान में हो तो धार्मिक हो जाएगा। तो लोग कहते हैं कि परम धार्मिक आदमी है! शुद्धि का कैसा ख्याल! वह आदमी एक सौ आठ दफा बर्तन···और इसमें भी कोई स्त्री निकल गई बीच में, तो वह खतम हो गई पहली शृंखला! फिर एक से शुरू करेगा! यह जो आदमी है, यहां धार्मिक है! इसको कई लोग पैर छुएंगे कि परम धार्मिक आदमी है! कभी-कभी दिन-दिन बीत जाएगा उसका इसी में! क्योंकि नल पर धो रहा है वह, स्त्री फिर निकल गई। तो वह खतम हो गया पहला वाला, फिर अशुद्ध हो गया बर्तन, अब वह फिर शुद्ध कर रहा है! अब यह आदमी यूरोप में पागल होगा, फौरन पागलखाने भेजा जाएगा। यहां यह आदमी मंदिर में बैठ जाएगा, पुजारी हो जाएगा, साधु हो जाएगा। इसको आदर मिलने लगेगा। तो धार्मिक परवर्शन ज्यादा खतरनाक है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता।

अब जैसा मेरा अपना मानना है, महावीर के जीवन में घटना है, जिससे समझ में आए। महावीर ने सब तरह के उपकरण बंद कर दिए। साथ में कोई साधन नहीं रखेंगे। क्योंकि महावीर को लगा होगा और लगेगा, कि साधन भी एक बोझ हो जाते हैं। और जिस व्यक्ति ने सारे जीवन को अपना ही मान लिया, अब ठीक है, कल सुबह जो होगा, होगा। तो महावीर कुछ साथ न रखेंगे। कौन बोझ को ढोता फिरे! जब सभी अपने हैं तो बात खतम हो गई है। अब

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

परमात्मा ही फिक्र करेगा। तो वे कोई उपकरण नहीं रखते। वे बाल बनाने के लिए उस्तरा भी नहीं रखते। जब बाल बहुत बढ़ जाते हैं तो उखाड़ देते हैं। जब बाल बहुत बढ़ जाते हैं उसको उखाड़ डालते हैं। महावीर के लिए यह बाल का उखाड़ना जरा भी विक्षिप्तता का कारण नहीं था ! यह अत्यंत सहज बात थी। कुछ भी नहीं रखना है साथ। सरलतम यही है कि कभी बाल उखाड़ दिए। साल दो साल में बढ़ गए, फिर उखाड़ दिए। यात्रा चलती रही। इतना-सा भी सामान साथ रखकर क्यों बांधना ? क्यों बोझ लेना ? क्योंकि सामान का बोझ नहीं है गहरे में, गहरे में सामान को पकड़ कर रखने में सुरक्षित होने की कामना है। तो वे असुरक्षित पूरा जीते हैं। कोई सुरक्षा का भाव नहीं, कुछ रखने का भाव नहीं। जहां जो मिल गया ! तो हाथ में ही खाना लेकर ले लेते हैं। कौन बर्तन का उपद्रव साथ में करे ? तो हाथ में ही खाना ले लेते हैं। हाथ से ही खाना लेते हैं।

लेकिन महावीर का यह बाल उखाड़ना कुछ पागलों के लिए बड़ा अपीलिंग मालूम पड़ा होगा। पागलों का एक वर्ग है, जो बाल उखाड़ता है, जो बाल उखाड़ने में रस लेता है। वह भी एक तरह का सताना है अपने को। तो इसमें बहुत कठिनाई नहीं है कि महावीर का बाल उखाड़ना देखकर कुछ पागल, जो बाल उखाड़ने में रस लेते हों, महावीर के पीछे साधु हो गए हों। इसलिए साधु हो गए हों कि अब बाल उखाड़ना साधारण, कोई उनको पागल नहीं कह सकता अब। अब तो वे बाल उखाड़ सकते हैं।

महावीर नग्न हो गए हैं, क्योंकि अगर कोई व्यक्ति इतना सरल हो जाए, इतना निर्दोष हो जाए कि उसे नग्नता का बोध भी न रहे···और यह बड़े मजे की बात है कि खुद की नग्नता का बोध हमें तभी तक होता है, जब तक हम दूसरे के शरीर को नग्न देखना चाहते हैं, यह इंटररिलेटेड है। जब तक हम दूसरे के शरीर को नग्न देखना चाहते हैं, तब तक हमारा शरीर कोई नग्न न देख ले, इससे भयभीत होते हैं। ये दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक हम दूसरे के कपड़े उघाड़ना चाहते हैं, तब तक हम खुद पर कपड़े ढांकना चाहते हैं। लेकिन जिस आदमी का दूसरे के शरीर को नग्न देखने का भाव चला गया हो, वह नग्न खड़ा हो सकता है। महावीर नग्न खड़े हो गए।

लेकिन कुछ लोग हैं, जिनको एग्जिबिशनिस्ट कहते हैं, जो दूसरों को,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अपनों को, नंगा दिखाना चाहते हैं, यह पागलों का वर्ग है। तो महावीर के आसपास ऐसे एग्जिबिशनिस्ट आकर अगर संन्यासी हो गए हों, जो कि चाहते थे कि कोई उन्हें नंगा देखे, तो उपद्रव हो गया। यानी उनकी चाह बिलकुल दूसरी है, लेकिन घटना एक-सी मालूम होती है।

अभी यूरोप में या कई मुल्कों में एग्जिबिशनिस्ट पर रोक है। कुछ लोग हैं, कुछ परसेंटेज है उनका, जो कि रास्ते के किनारे खड़े रहेंगे, कोई अगर अकेला निकल रहा है तो पैंट खोलकर नंगा होकर एकदम भाग जाएंगे उसको दिखाकर। इन पर रोक है, कि यह आदमी खतरनाक है। अभी इनको क्या हो रहा है? इनको क्या रस आ रहा है? दूसरा इनको नंगा देख ले, यह इनका रस है। और ये पागल हैं, ये निपट पागल हैं। लेकिन हिंदुस्तान में ये नंगे साधु हो सकते हैं! और तब इनका पागलपन हमें पता ही नहीं चलेगा। ये पूजा का कारण बन जाएंगे।

अब कठिनाई जो है, जीवन को समझने में वह यह है, कि जीवन में दोनों घटनाएं घट सकती हैं, इसलिए बड़ी कठिनाई है। एक आदमी इसलिए नग्न हो सकता है कि अब उसके मन में कुछ नग्नता को छिपाने, ढांकने, देखने का कोई भाव ही नहीं रहा। वह परम सरल हो गया है, तो बच्चे की तरह नग्न हो सकता है। और एक आदमी पागल की तरह नग्न हो सकता है कि नग्न होने में उसे रस है, कि दूसरे उसे नंगा देखें। और ये दोनों घटनाएं एक साथ घट सकती हैं। और इसलिए बड़ी कठिनाई है जीवन में साफ-साफ समझने में। लेकिन कठिनाई पहचानी जा सकती है, नियम बनाए जा सकते हैं। जो आदमी सरलता की वजह से नग्न हुआ है, वह जीवन के और हिस्सों में भी सरल होगा।

प्रश्न : यह तो भोग हुआ फिर?

जी?

प्रश्न : नग्नता और बाल उखाड़ना भी भोग हुआ?

बिलकुल भोग हुआ। उनके लिए भोग ही है। उनके लिए भोग ही है। और नग्नता का आनंद है उनके लिए पूरा। उनके लिए पूरा आनंद है, उनके लिए भोग का ही हिस्सा है। उनके लिए कपड़े छोड़े गए हैं ऐसा नहीं, नग्नता आई— ऐसा। जोर इस पर नहीं है कि कपड़े छोड़े, नग्नता आई। एक सरलता आई और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जीवन इतना सरल हो गया कि जैसे एक बच्चे का, एक पशु-पक्षी का जीवन जैसे सरल, निर्दोष है, वैसा वे खड़े हो गए। लेकिन यह आदमी जीवन के और हिस्सों में एकदम सरल होगा, सब हिस्सों में सरल होगा; सब तरह से सरल होगा, निष्कपट होगा, निर्दोष होगा। और इसके जीवन के और हिस्सों में कहीं पागल-पन के लक्षण नहीं होंगे। लेकिन जो आदमी एग्जिबिशनिस्ट है, जो सिर्फ इसलिए नंगा हुआ है कि दूसरे लोग उसे नंगा देखें, यह उसकी बीमारी है। यह आदमी दूसरे हिस्सों में सरल नहीं होगा। यह दूसरे हिस्सों में जटिल होगा। दूसरे हिस्सों में भी इसकी विक्षिप्तता प्रकट होगी, इसका पागलपन प्रकट होगा।

और इस देश में इस पर निर्णायक निर्णय लेने की जरूरत पड़ गई है अब। क्योंकि यह कोई पांच हजार साल से उपद्रव चल रहा है। उस उपद्रव में तय करना मुश्किल हो गया है कि कौन आदमी अथेंटिक, प्रामाणिक रूप से है, कौन आदमी पागलपन का सिर्फ झुकाव है उसका, वह पूरा कर रहा है। ये दोनों ही हो सकते हैं। इसलिए बहुत साफ रेखा खींचनी जरूरी है। इसलिए जो आदमी कपड़े छोड़ने पर जोर देगा, वह आदमी एग्जिबिशनिस्ट है। और जो आदमी···कि पागलपन सीधा हो तो एक अर्थ में सरल होता है। एक अर्थ में, क्योंकि पागल आदमी बेचारा निरीह हो जाता है। धार्मिक पागल निरीह नहीं होता, दूसरे को निरीह करता है। खुद तो उनके ऊपर खड़ा हो जाता है।

अब जैसे कि सेंट जोन ऑफ आर्क को एक पोप ने आग में जलाए जाने की सजा दी। आग में जला दी गई वह औरत। जलाई इसलिए गई कि वह धर्म के विपरीत बातें कर रही है। तो पोप को पूरा मजा है इस बात का कि वह धार्मिक आदमी है और एक औरत को जला रहा है, क्योंकि वह अधार्मिक बातें कर रही है। वह भगवान का काम कर रहा है। अब एक स्त्री को जलाना, और जोन जैसी सरल स्त्री को जलाना, एकदम अधार्मिक कृत्य था। लेकिन पोप को एक तृप्ति है! अगर दूसरा आदमी यह काम करता तो वह आदमी पागल सिद्ध होता, क्रिमिनल होता, अपराधी होता। पोप अपराधी नहीं हुआ, पोप धार्मिक कार्य कर रहा है! एक औरत को उसने सामने जलवा दिया खड़े करवाकर, आग लगवाकर! सात साल बाद दूसरा पोप जब सत्ता में आए, तो उन्होंने विचार किया, उन्होंने पाया कि नहीं, यह तो ज्यादती हो गई। जोन तो बड़ी सरल औरत थी और उसे तो संत की पदवी दिया जाना चाहिए। तो वह सेंट

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जोन बनी। सात साल बाद दूसरे पोप ने उसको सेंट बना दिया ! लेकिन जिस पोप ने आग लगवाई थी, वह पोप अपराधी हो गया। लेकिन वह मर चुका था, अब क्या किया जाए ? तो इस पोप ने उसको सजा दी कि उसकी हड्डियों को निकालकर जूते मारे जाएं और सड़क पर घसीटा जाए ! उस मरे हुए पोप की हड्डियां निकाली गईं, उसकी कब्र खोदी गई, उसको जूते मारे गए, उसके ऊपर थूका गया और उसकी हड्डियों को सड़क पर घसीट कर अपमानित किया गया ! अब यह आदमी धार्मिक है फिर ! अब यह मजा, यह जो दिमाग है, इनको कहने चाहिए ये पागल हैं, यानी उससे भी ज्यादा पागल हैं ये ; वह पहले पोप से भी ज्यादा पागल है। उससे कम पागल नहीं है। लेकिन इसका पागलपन दिखाई नहीं पड़ेगा। इसका पागलपन एक धार्मिक परिभाषा ले रहा है। यह धार्मिक एक गारबेज पैदा करेगा शब्दों की और यह बिलकुल ठीक मालूम पड़ेगा ! और यह जो कर रहा है, उचित मालूम पड़ेगा। धर्म इसको औचित्य दे रहा है—इसकी विक्षिप्तता को !

धर्म ने बहुत तरह की विक्षिप्तताओं को औचित्य दिया है। और ऐसे औचित्य को तोड़ देने की जरूरत है। और यह साफ समझ में आ जाना चाहिए ; यह तभी टूटेगा, जब हम दुखवाद को धर्म से अलग करें ; नहीं तो नहीं टूटेगा। क्यों-कि वह जो दुखवाद है, उसी के भीतर सारा औचित्य छिप जाता है। दूसरे को दुख देना भी, अपने को दुख देना भी, सब उसमें छिप जाता है।

इसलिए मेरी दृष्टि में धर्म सुख की खोज है—परम सुख की, उसे हम आनंद कहें। और धार्मिक व्यक्ति वह है, जो स्वयं भी आनंद की तरफ निरंतर गति करता है और चारों तरफ भी निरंतर आनंद बढ़े, इसके लिए चेष्टारत होता है। न वह स्वयं को दुख देता, न वह दूसरे को दुख देने की आकांक्षा करता है ; न उसके मन में दुख का कोई आदर है, स कोई सम्मान है। ऐसे व्यक्ति को अगर धार्मिक हम कहें तो परम आनंद की दिशा धर्म बनता है। नहीं तो अब तक तो वह परम दुख की दिशा बना हुआ है !

एक और आखिरी ले लें।

प्रश्न : महावीर नासाग्र दृष्टि से ध्यानावस्थित हुए। क्या यह ध्यान की ही मुद्रा है ?

यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है—नासाग्र दृष्टि। नासाग्र दृष्टि का मतलब है:

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आंख आधी बंद, आधी खुली। अगर नाक के अग्र भाग को आप आंख से देखेंगे तो, आधी आंख बंद हो जाएगी, आधी खुली रहेगी। न तो आंख बंद है, न आंख खुली। साधारणतः हम दो ही काम करते हैं: या तो आंख बंद होती है नींद में या आंख खुली होती है जागरण में। नासाग्र दृष्टि होती ही नहीं। कोई कारण नहीं है उसका। आंख पूरी खुली होती है या आंख पूरी बंद होती है। दोनों के बीच में एक बिंदु है, जहां आंख आधी खुली, आधी बंद है। अगर हम खड़े होंगे और नासाग्र दृष्टि होगी, तो करीब चार फिट तक जमीन हमें दिखाई पड़ेगी। करीब चार फिट तक हमें जमीन दिखाई पड़ेगी। तो साधारणतः कोई भी नासाग्र नहीं होता।

इसमें दो-तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि पूरी बंद आंख, आंखों के जो स्नायु हैं भीतर, उनको निद्रा में ले जाती है। पूरी बंद आंख निद्रा में ले जाती है। आंख जैसे ही बंद होती है पूरी, तो मस्तिष्क के जो स्नायु आंख से जुड़े हैं, वे एकदम शिथिल हो जाते हैं और निद्रा हो जाती है। पूरी खुली आंख जागरण में लाती है।

ध्यान दोनों से अलग अवस्था है, न तो वह निद्रा है, न वह जागरण है। वह निद्रा जैसा शिथिल है और जागरण जैसा चेतन है। ध्यान तीसरी अवस्था है। नींद नहीं है वह, और जागरण भी नहीं है वह ; और नींद भी है और जागरण भी है। उसमें दोनों के तत्व हैं। नींद में जितनी शिथिलता होती है, रिलैक्स्ड, उतना ध्यान में होना चाहिए। और जागरण में जितना चैतन्य होता है, होश होता है, अवेयरनेस; उतनी ध्यान में होनी चाहिए। तो ध्यान जो है, वह मध्य अवस्था है।

और नासाग्र दृष्टि आंख के पीछे के स्नायुओं को मध्य अवस्था में छोड़ देती है। वह बड़ी वैज्ञानिक बात है। उस हालत में न तो स्नायु इतने तने होते, जितने कि जागरण में तने होते हैं ; न इतने शिथिल होते, जितने कि निद्रा में शिथिल हो जाते हैं और सो जाते हैं। मध्य में होते हैं। एक मध्य बिंदु, सम बिंदु होता है। नासाग्र दृष्टि का यौगिक तो बहुत मूल्य है, फिजियोलॉजिकल बहुत मूल्य है और ध्यान के लिए, वह कीमती प्रभाव पैदा करती है।

दूसरी बात यह समझने की है कि पूरी आंख बंद कर ले व्यक्ति, तो एन-क्लोज्ड हो जाता है, सब तरफ से बंद हो जाता है, जगत से टूट जाता है। पूरी बंद

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आंख जो है, एक व्यक्ति को आयलैंड बना देती है। उसका जगत से सब संबंध टूट गया। वह बंद हो गया अपने में। पूरी खुली आंख व्यक्ति को बाहर के जगत से जोड़ देती है और अपने को वह विस्मरण कर जाता है। उसे अपना कोई पता ही नहीं रह जाता। और सब हो जाता है, वही भर मिट जाता है। बंद आंख में सब मिट जाता है, वही रह जाता है। खुली आंख में सब सत्य हो जाता है और खुद ही भर मिट जाता है। आधी बंद, आधी खुली आंख में यह भी अर्थ है, कि न तो हम टूटे हुए हैं सबसे, वह बात भी गलत है; सबसे हम जुड़े हैं। और न ही यह बात सच है कि सभी सच हैं और हम झूठे हैं। हम भी हैं और सब भी हैं।

महावीर का सारा जोर सम पर है निरंतर। सम्यक् शब्द उनका सर्वाधिक प्रयोग में आने वाला शब्द है। प्रत्येक चीज में सम, प्रत्येक बात में मध्य, प्रत्येक बात में वहां खड़े हो जाना है, जहां अतियां न हों—अन-अति। आंख के मामले में भी उनकी अन-अति है। वे कहते, न तो पूरी खुली आंख, न पूरी बंद—आधी। संसार भी सत्य है आधा, जितना हमें दिखाई पड़ता है, उतना सत्य नहीं है। हम भी सत्य हैं, लेकिन आधे; जितना बंद आंख से मालूम पड़ते हैं, उतने नहीं।

शंकर कहते हैं, सब जगत असत्य है, सत्य है ही नहीं जगत में। आंख बंद हो तो जगत एकदम असत्य हो जाता है। क्या सत्य है ?

तो जो व्यक्ति आंख बंद करके ध्यानावस्थित होने की चेष्टा करेगा, वह माया के किसी न किसी सिद्धांत के करीब पहुंच जाएगा। क्योंकि जब आंख बंद में, जब उसे आत्मानुभव होगा तो जगत एकदम असत्य मालूम पड़ेगा, है ही नहीं। तो जिन लोगों ने, शंकर ने, अद्वैत ने, जिन्होंने कहा है कि जगत इल्यूजरी है, उसका कारण है। वह बंद आंख का अनुभव है। अगर बंद आंख से ध्यान किया गया तो जगत इल्यूजरी हो ही जाएगा। क्योंकि कुछ बचता ही नहीं वहां, सिर्फ स्वयं बच जाता है। बंद आंख में बाहर के जगत का कोई अनुभव नहीं रह जाता, स्वयं की अनुभूति रह जाती है। वह इतनी प्रखर होती है कि कोई भी कह देगा कि बाहर जो था, वह सब असत्य था। वह सत्य नहीं था।

अगर कोई बाहर के जगत में पूरी आंख खुली करके जी रहा है, जैसे चार्वाक। तो वह कहता है, भीतर-वीतर कुछ भी नहीं है, आत्मा-वात्मा सब झूठी बातें हैं। खाओ, पियो, मौज करो। यह बाहर पूरी खुली आंख का अनुभव है कि बाहर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ही सब कुछ है : खाओ, पियो, मौज करो। भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर गए कि मरे। भीतर है ही नहीं कुछ। आत्मा जैसी कोई चीज नहीं। अगर कोई पूरी खुली आंख के अनुभव से जीए तो इंद्रियों के रस ही शेष रह जाते हैं, आत्मा विलीन हो जाती है। तब जगत सत्य होता है, आत्मा असत्य हो जाती है।

और महावीर कहते हैं : जगत भी सत्य है और आत्मा भी सत्य है। जगत असत्य नहीं है और आत्मा असत्य नहीं है। और महावीर कहते हैं कि यह एक दृष्टि है। आंख बंद करके अगर कोई अनुभव करेगा तो स्वयं सत्य मालूम पड़ेगा, जगत असत्य मालूम पड़ेगा। यह दूसरी दृष्टि है कि कोई आदमी कभी ध्यान में बैठेगा ही नहीं आंख बंद करके और बाहर के जगत में ही जीएगा तो वह कहेगा, आत्मा-वात्मा सब असत्य है, जगत ही सत्य है। ये दो दृष्टियां हैं। यह दर्शन नहीं है। महावीर कहते हैं जगत भी सत्य है, आत्मा भी सत्य है, पदार्थ भी सत्य है, परमात्मा भी सत्य है। दोनों एक बड़े सत्य के हिस्से हैं। दोनों सत्य हैं।

और वह प्रतीक है, वह नासाग्र दृष्टि। यानी महावीर कभी पूरी आंख बंद करके ध्यान नहीं करेंगे, पूरी खुली आंख रखकर भी ध्यान नहीं करेंगे; आधी आंख खुली, आधी बंद। और बाहर और भीतर एक संबंध बना रहे—जागे भी, न जागे भी। बाहर और भीतर एक प्रवाह होता रहे चेतना का। ऐसी स्थिति में जो ध्यान को उपलब्ध होगा, उस ध्यान में उसे ऐसा नहीं लगेगा, मैं ही सत्य हूं; ऐसा भी नहीं लगेगा कि बाहर असत्य है, या बाहर सत्य है—ऐसा लगेगा कि सत्य दोनों में है और दोनों को जोड़ रहा है। वह आधी खुली आंख प्रतीकात्मक रूप से भी अर्थ रखती है। और ध्यान के लिए सर्वोत्तम है। लेकिन थोड़ी कठिन है। क्योंकि दो अनुभव हमें बहुत सरल हैं : खुली आंख, बंद आंख। थोड़ी कठिन है, लेकिन सर्वोत्तम है।

प्रश्न : आप चार्वाक को भी उसी श्रेणी में लेते हैं, जिस श्रेणी में शंकर हैं?

नहीं, उससे बिलकुल उल्टी श्रेणी है वह।

प्रश्न : स्तर दोनों का एक ही है?

नहीं, नहीं, स्तर भी एक नहीं है। स्तर भी एक नहीं है। लेकिन दोनों अधूरे सत्यों को कह रहे हैं—इस मामले में भर एक हैं। स्तर भी एक नहीं है···।

प्रश्न : शंकर ने बंद आंख में ध्यान किया तो उसको दुनिया असत्य मालूम पड़ेगी। चार्वाक ने खुली आंख में ध्यान किया···?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ध्यान किया ही नहीं, बस खुली आंख रखी। खुली आंख में ध्यान करने का उपाय नहीं है। खुली आंख में तो बाहर का जगत ही सब कुछ है। और उसी में जिया; खाया, पिया और मौज किया; कभी भीतर गया नहीं। क्योंकि भीतर जाना पड़ता तो आंख बंद करनी पड़ती। भीतर गया नहीं।

जोड था अभी पश्चिम में एक विचारक। उसने लिखा है, उससे कई दफा लोगों ने कहा कि कभी ध्यान भी करो। गुरजिएफ से वह मिलने गया होगा, तो गुरजिएफ ने कहा कि कभी आंख भी बंद करो। उसने कहा, फुरसत कहां लेकिन? सुबह उठता हूं तो भाग-दौड़ शुरू होती है। सांझ जब सोता हूं, तब तक भागता रहता हूं। कहां फुरसत? ध्यान के लिए अलग वक्त कहां? या तो जागता हूं या सोता हूं। फुरसत कहां है? और तीसरी बात का उपाय कहां है? और तीसरी बात होती कहां है? या तो जागो या सोओ। सोओ तो तुम्हीं रह जाते हो; जागो तो सब रह जाते हैं, तुम नहीं रह जाते। जोड ने जो कहा, वह ठीक कहा है।

ऐसे ही अगर चार्वाक से कोई कहता, तो वह कहता कैसा ध्यान! जागते हैं; जब थक जाते हैं, सो जाते हैं। जब थकान मिट जाती, फिर जग जाते हैं। जीते हैं इंद्रियों में, इसलिए जितनी देर जाग सको, जियो। जितना जागकर जी सको, जियो। जितना भोग सको, भोगो। प्रत्येक चीज का रस लो। भीतर-वीतर क्या है? भीतर कुछ भी नहीं है, भीतर एक झूठ है। क्योंकि भीतर जो कभी गया नहीं है, भीतर झूठ हो ही जाएगा। तो चार्वाक बाहर ही जी रहा है! वह जो दि आउटर है, वही उसके लिए सत्य है।

शंकर जैसे व्यक्ति भीतर ही जी रहे हैं! तो जो इनर है, वही सत्य है; और बाहर का सब असत्य हो गया! एक अर्थ में ये दोनों समान हैं। इस अर्थ में, कि ये आधे सत्य को पूरा सत्य कह रहे हैं, इस अर्थ में समान हैं। फिर भी चुनाव करना हो तो शंकर चुनने योग्य हैं, चार्वाक चुनने योग्य नहीं है। क्योंकि चार्वाक यह कह रहा है कि बस इतना ही जीवन है—खाओ, पियो; खाओ, पियो! और महावीर जो कह रहे हैं, वे यह कह रहे हैं, ये दोनों बातें सत्य हैं।

प्रश्न : यह तो दोनों बातों को आप उल्टा कर रहे हैं! चार्वाक से उल्टा कर रहे हैं! जैसे आप कह रहे हैं कि चुनना ही हो तो शंकर को चुनो, चार्वाक को मत चुनो?

हां, हां, बिलकुल ही।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रश्न : तो वह त्याग की तरफ गया ?

नहीं, मैं कह रहा हूं कि वह ज्यादा गहरे भोग की तरफ गया। क्योंकि अंतस् में जितना भोग है, उतना बाहर नहीं है। नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। ऐसी भूल हो जाती है मेरी निरंतर बातों से···।

प्रश्न : चार्वाक भोगी है···?

साधारणत: हम चार्वाक को भोगी कहेंगे; साधारणत: चार्वाक को मैं त्यागी कहूंगा। मैं कहूंगा कि वह जो अंतर्भोग है, बड़ा भोग है, उसको छोड़ रहा है ! चार्वाक यह कह रहा कि घी भी ऋण लेकर पीना पड़े तो पियो। ऋफ-विण की फिकर मत करो, बस घी मिलना चाहिए। तो वह घी पर ही जी रहा है। लेकिन बहुत बाहर जी रहा है। खाने-पीने तक उसका भोग है। लेकिन एक अंतर्भोग भी है, उस तरफ कोई दृष्टि नहीं है, कोई ध्यान नहीं है ! शंकर ही बड़े भोगी हैं, क्योंकि शंकर ज्यादा गहरे भोग में जा रहे हैं।

और महावीर चूंकि प्रत्येक चीज में एक संतुलन और समता का ध्यान रखते हैं, वे यह कह रहे हैं कि वे न चार्वाक को गलत कहेंगे, चार्वाक उनके पास आए; वह कहेंगे, बिलकुल ठीक कहते हो तुम, बाहर सत्य है। गलत इतनी ही बात है कि तुम भीतर नहीं गए, वहां भी सत्य है। शंकर को भी वे यही कहेंगे कि बिलकुल ही ठीक कहते हो, एकदम ठीक ही बात है कि भीतर सत्य है। लेकिन बाहर जिससे तुमने आखें बंद की हैं, तुम्हारे आंख बंद करने से वह असत्य नहीं हो जाता, सिर्फ इतना ही कि तुम्हें पता पड़ना बंद हो जाता है। वह बाहर है।

और पूरा जीवन बाहर और भीतर से मिलकर बना है। एक को तोड़ देना, दूसरे के हित में अधूरा है, एकांगी दृष्टि है। इस अर्थ में वे अनेकांती हैं। वे प्रत्येक पहलू पर, प्रत्येक पहलू पर क्या-क्या विरोध है, वे दोनों में से सत्य को निचोड़ लेना चाहते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जागा सो महावीर : सोया सो अमहावीर

प्रवचन : २२, दिनांक : ३० सितंबर १९६९, पहलगांव

प्रश्न : जब चेतना आत्मा का स्वभाव है तो यह मूर्च्छा कहां से आ गई ?

महावीर से किसी ने पूछा, साधु कौन है ? स्वभावतः अपेक्षा रही होगी कि महावीर साधु की परिभाषा करेंगे। लेकिन महावीर ने जो किया, वह परिभाषा नहीं थी, इशारा था।

उन्होंने कहा, साधु वह है, जो जाग्रत है और असाधु वह है, जो मूर्च्छित है।

सुत्ता सो अमुनि : वह जो सोता है, वह असाधु है।

असुत्ता मुनि : जो नहीं सोता है, जागा हुआ है, वह साधु है !

यह सवाल पूछने जैसा है कि अगर जागृति, चेतना हमारा स्वभाव है, स्वरूप है, तो फिर यह मूर्च्छा कहां से आ गई ?

इसे समझना भी उपयोगी होगा। मूर्च्छा का अर्थ हमें ख्याल में नहीं है। मूर्च्छा का अर्थ जागृति से उल्टा नहीं है, मूर्च्छा का अर्थ है जागृति का और कहीं उपस्थित होना। यह ख्याल में आ जाए तो कठिनाई नहीं रह जाएगी। हमें ऐसा लगता है कि अगर स्वभाव जाग्रत है तो फिर मूर्च्छा कहां है ? समझ लें, एक टार्च हमारे पास है, जिसका स्वभाव प्रकाश है, और टार्च जल रही है। फिर हम कहते हैं, जब टार्च जल रही है और स्वभाव टार्च का प्रकाश है, फिर अंधेरा कहां है ? लेकिन टार्च का एक फोकस है और जिस बिंदु पर पड़ता है, वहां तो प्रकाश है, शेष सब जगह अंधेरा हो जाता है। और यह भी हो सकता है कि टार्च खुद अंधेरे में हो, इसमें कुछ विरोध नहीं है। टार्च का फोकस बाहर की तरफ पड़ रहा है, यद्यपि टार्च का स्वभाव प्रकाश है, लेकिन टार्च खुद अंधेरे में खड़ी है।

हमारा स्वभाव तो जागरण है, लेकिन हमारी जागृति बाहर की तरफ फैली हुई है। हम तब भी जागृत हैं। एक आदमी सड़क पर चल रहा है, चारों तरफ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देखता है, दुकानें दिखाई पड़ रही हैं, लोग दिखाई पड़ रहे हैं। नहीं तो चलेगा कैसे, अगर सोया हुआ हो? सब दिखाई पड़ रहा है, सिर्फ एक आदमी को छोड़कर, जो वह स्वयं है। सब तरफ जागृति फैली हुई है, सब दिखाई पड़ रहा है—सड़क, दुकान, मकान, तांगा, कार, रिक्शा, सब; सिर्फ एक बिंदु भर नहीं दिखाई पड़ रहा, वह जो स्वयं है! इसका मतलब यह हुआ कि जागृति दो तरह से हो सकती है: बहिर्मुखी और अंतर्मुखी। अगर बहिर्मुखी जागृति होगी तो अंतर्मुखता अंधकारपूर्ण हो जाएगी। वहां मूर्च्छा हो जाएगी। मूर्च्छा का कुल मतलब इतना है कि प्रकाश की धारा उस तरफ नहीं बह रही है। अगर जागृति अंतर्मुखी होगी तो बाहर की तरफ मुर्च्छा हो जाएगी। साधारणतः जागृति के ये दो ही रूप हो सकते हैं, अंतर्मुखता और बहिर्मुखता। अगर कोई बहिर्मुखी है तो अंतर्मुखता में बाधा पड़ेगी, अगर कोई अंतमुर्खी है तो बहिर्मुखता में बाधा पड़ेगी। लेकिन अंतर्मुखता का अगर और विकास हो तो एक तीसरी स्थिति भी जागृति की उपलब्ध होती है, जहां अंतर् और बाह्य मिट जाता है, जहां सिर्फ प्रकाश रह जाता है। तो वह पूर्ण जाग्रत, जहां भीतर और बाहर का भेद भी मिट जाता है। लेकिन बहिर्मुखता से कभी कोई इस तीसरी स्थिति में नहीं पहुंच सकता है।

पहली स्थिति है बहिर्मुखता, दूसरी स्थिति है अंतर्मुखता, तीसरी स्थिति है ट्रांसेंडेंस। तीसरी स्थिति है दोनों के पार हो जाना। और इस पार हो जाने का जो बिंदु है, वह अंतर्मुखता है। इस पार हो जाने का बिंदु बहिर्मुखता नहीं है। क्योंकि जब हम बाहर हैं, तब तो हम अपने पर भी नहीं हैं। तो अपने से और ऊपर जाने की तो कोई संभावना नहीं है। बाहर से लौट आना है अपने पर, और फिर अपने से भी ऊपर चले जाना है। उस स्थिति में बाहर-भीतर सब प्रकाशित हो जाते हैं।

मूर्च्छा का अर्थ अभी जिसे हम समझ लें, वह इतना ही है कि हम बाहर हैं। बाहर हैं का मतलब हमारा अटेंशन, हमारा ध्यान बाहर है।

और जहां हमारा ध्यान है, वहां जागृति है और जहां हमारा ध्यान नहीं है, वहां मूर्च्छा है।

समझो कि तुम भागी चली जा रही हो, मकान में आग लग गई है, पैर में कांटा गड़ गया है, लेकिन पता नहीं चलता कि पैर में कांटा गड़ा है। मकान में लगी है आग तो पैर में गड़े कांटे का पता कैसे चले? सारा ध्यान आग लगे हुए

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मकान पर अटका गया है। पैर तक जाने के लिए ध्यान की एक छोटी-सी किरण भी नहीं है, जो शरीर से पैर तक पहुंच जाए यात्रा करके और पता लगा ले कि कांटा गड़ गया है। फिर मकान की आग बुझ गई है, फिर सब ठीक हो गया, और अचानक पैर का कांटा दुखने लगा है ! इतनी देर तक पैर के कांटे का कोई पता नहीं था, क्योंकि ध्यान वहां नहीं था, ध्यान कहीं और था। जहां हमारा ध्यान है, वहां हम जाग्रत थे। जहां हमारा ध्यान नहीं था, वहां हम मूच्छित थे।

काशी नरेश ने कोई पचास वर्ष पहले एक आपरेशन कराया। वह अपने तरह का आपरेशन था। क्योंकि वे किसी तरह की मूर्च्छा की दवा लेने को तैयार न थे। और डाक्टर बिना मूर्च्छा की दवा दिए उतना बड़ा पेट का आपरेशन करने को तैयार न थे। लेकिन नरेश का कहना था कि मुझे गीता पढ़ने दी जाए। जब मैं गीता पढ़ूंगा, तब फिर कोई खतरा नहीं है। क्योंकि मेरा सारा चित्त वहां होगा। तो मूर्च्छित करने की अलग से जरूरत क्या है ? मैं वहां मूर्च्छित रहूंगा ही पेट में। लेकिन डाक्टर इस बात को मानने को राजी न थे। इसमें खतरा था। एक सेकेंड को भी अगर ध्यान पेट पर आ गया तो मृत्यु हो जाएगी। उतना बड़ा आपरेशन था। तो पहले उन्होंने प्रयोग के लिए जांच-पड़ताल की और पाया कि वह जब गीता पढ़ते हैं, तब वह कहीं भी नहीं रह जाते, बस वह गीता ही पर हो जाते हैं। तो यह पहला आपरेशन था अपने तरह का, जो एक व्यक्ति की ध्यान की धारा को एक तरफ बहाने से किया गया। आपरेशन हुआ और सफल हुआ। वे अपनी गीता पढ़ते रहे और पेट का उनका आपरेशन किया गया ! किसी भी तरह की बेहोशी की कोई दवा नहीं दी गई थी ! और जिन डाक्टरों ने किया, वे चकित ही रह गए। अब कुल हुआ है इतना कि अगर किसी का चित्त पूरा गीता की तरफ प्रवाहित हो सके तो कोई कठिनाई नहीं है कि उसका एक अंग काट दिया जाए और उसे पता न चले। क्योंकि पता चलता है ध्यान की धारा को। ध्यान की धारा वहां तक जाए तो पता चलता है, नहीं तो नहीं पता चलता है।

कई बार उल्टी घटनाएं भी घटी हैं। एक आदमी दो या तीन वर्षों से पैरेलेसिस से बीमार एक मकान में पड़ा हुआ था। हिल-डुल भी नहीं सकता, उठ भी नहीं सकता। चिकित्सक परेशान थे, क्योंकि वस्तुतः उस आदमी को पैरेलेसिस नहीं थी, लकवा नहीं था। कोई शारीरिक कारण न थे। किसी न किसी तरह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उसको मानसिक लकवा था। उसे ख्याल था कि लकवा लग गया है। और ख्याल इतना मजबूत हो गया था कि वह हाथ-पैर हिला-डुला भी नहीं सकता था, उठ भी नहीं सकता था! फिर तीन साल से निरंतर पड़ा था बिस्तर पर। और ध्यान निरंतर लकवे पर ही रहा तीन वर्षों तक, वह लकवा मजबूत ही होता चला गया था। तीन वर्ष बाद एक दिन आधी रात उसके मकान में आग लग गई और एक सेकेंड को उसका ध्यान लकवे से हटकर आग पर चला गया, जो बिलकुल स्वाभाविक था। वह आदमी निकलकर मकान के बाहर आ गया। जब बाहर आ गया और लोगों ने उसे देखा, तो लोगों ने कहा अरे, तुम? तो उसने देखा, वह वापस लकवा खाकर गिर पड़ा। क्या, हुआ क्या? यह आदमी बाहर आया कैसे? अगर यह लकवा सच में था तो यह आदमी बाहर मकान के आ नहीं सकता। पूरी अटेंशन उसकी लकवे से हट गई। इतने जोर से हटी, मकान में आग लगी, कि उसे स्मरण भी न रहा कि मेरा शरीर भी है, शरीर को लकवा भी है। ये कोई बात स्मरण न रही, वह बाहर आ गया। लेकिन जैसे ही स्मरण दिलाया गया कि वह वापस गिर पड़ा! अब वह खुद ही नहीं मान सकता कि यह कैसे संभव हुआ! यह अब गिर जाना क्या है? फिर पूरे का पूरा ध्यान लकवे पर आ गया।

हमारा ध्यान जहां है, वहां हम जाग्रत हो जाते हैं।

जहां से हमारा ध्यान हट जाता है, वहां हम मूर्च्छित हो जाते हैं।

अगर हम ठीक से समझें तो मूर्च्छा हमारी जाग्रत की छाया है। जहां मूर्च्छा होती है, वहां जागृति नहीं होती; जहां जागृति होती है, वहां मूर्च्छा नहीं होती। लेकिन जिस तरफ जागृति का रुख होगा, उससे ठीक उल्टी तरफ मूर्च्छा का रुख होगा।

तो एक तरफ देखने में प्रश्न ठीक मालूम पड़ता है कि स्वभाव हमारा जागरण है, चेतना है, तो यह अचेतना कैसी? यह मूर्च्छा कैसी? लेकिन इसी स्वभाव के कारण है वह भी। वह भी इसी की छाया है पीछे पड़ने वाली। हम रास्ते पर चलते हैं, सूरज निकला हुआ है, हमारी छाया बनती है। हम पूरे प्रकाशित हैं, पीछे एक छाया बनती है। हम प्रकाशित हैं, यह भी सूरज के कारण और हमारे पीछे जो छाया बनती है, यह भी सूरज के कारण। छाया बनने का कारण कोई और नहीं है और हमारे प्रकाशित होने का कोई कारण और नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है। लेकिन हम पूछ सकते हैं कि जो हम तक को प्रकाशित कर देता है, वह इतनी सी छाया को प्रकाशित नहीं करता? असल में जितने हिस्से में हम प्रकाश को रोक लेते हैं, उतने हिस्से में पीछे छाया बन जाती है। वह छाया हमारे द्वारा रोका गया प्रकाश है। अगर हम कांच के व्यक्ति हों तो फिर छाया नहीं बनेगी। क्योंकि हम ट्रांसपेरेंट होंगे, फिर हमारे आरपार किरण निकल जाएगी, फिर कोई छाया नहीं। कांच की कोई छाया नहीं बनेगी। जितना पारदर्शी होगा, उतनी छाया नहीं बनेगी। अगर थोड़ा भी अपारदर्शन है, तो उतनी छाया बन जाएगी। तो अगर पूर्ण पारदर्शी व्यक्तित्व हो, तो फिर छाया नहीं बनेगी सूरज की।

इसे इस तरह भी समझना चाहिए कि हमारा स्वभाव तो प्रकाश है, लेकिन अभी हमारा प्रकाश किन्हीं-किन्हीं केंद्रों पर प्रवाहित होता है। वह दीये की भांति कम, बैटरी की भांति ज्यादा है। बैटरी भी दीया बन सकती है, सिर्फ उसके फोकस को अलग कर देने की बात है। ऊपर से फोकस को अलग करके अगर हम बैटरी को रख देंगे तो बैटरी दीया बन जाएगी। असल में बैटरी दीया ही है, सिर्फ उस पर एक फोकस भी लगा हुआ है। अगर हम दीये पर भी एक फोकस लगा दें तो प्रकाश बंध जाएगा और उस धारा में बहेगा। तो हमारा चित्त जो है, वह फोकस का काम कर रहा है पूरे वक्त। भीतर प्रकाश है, चित्त फोकस का काम कर रहा है। जितना बड़ा हमारा चित्त होता है, जैसा चित्त होता है, वैसा फोकस बनता है। जिस चीज पर हमारा चित्त अटक जाता है, सारे प्रकाश की धारा वहीं बहने लगती है। चित्त बाहर भी ले जा सकता है; अगर हम चित्त को बंद कर दें तो, भीतर भी ले जा सकता है। लेकिन अगर चित्त बिलकुल मिट जाए तो फोकस टूट जाए। फिर बाहर भीतर कुछ न रह जाए, सिर्फ प्रकाश रह जाए।

चित्त के तोड़ने की साधना ही अंततः—क्योंकि··समझिए मेरी बात को—चित्त जो है, बीच का माध्यम है। और चित्त का उपयोग है। और जैसे हमारी आंख है, हमने ख्याल नहीं किया, आंख है हमारी, पूरे वक्त आंख की पुतली छोटी-बड़ी होती रहती है। जितने प्रकाश की जरूरत है, वह उस मात्रा में छोटी या ज्यादा हो जाती है। धूप में तुम जाओ तो पुतली सिकुड़कर छोटी हो गई, क्योंकि उतनी रोशनी को भीतर जाने की कोई जरूरत नहीं है। अंधेरे में तुम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आए, पुतली बड़ी हो गई, क्योंकि अब ज्यादा प्रकाश भीतर जाए तो ही दिखाई पड़ सकता है। तो पूरे वक्त आंख की जो पुतली है, उसका जो लेंस है, वह पूरे वक्त छोटा हो रहा, बड़ा हो रहा—ऑटोमेटिक; जैसी जरूरत है, वैसा हो जा रहा है। वैसे ही हमारा चित्त भी है, वह भी छोटा-बड़ा हो रहा है पूरे वक्त। और जैसी जरूरत है, वैसा उसका फोकस बन जाता है। अगर मकान में आग लगी है तो फोकस एकदम छोटा हो जाता है। सब तरफ से प्रकाश को खींच-कर मकान पर ही रोक देता है, क्योंकि इस समय इमरजेंसी की बात है। इस वक्त और कहीं ध्यान जाए कि पिक्चर देखने जाना है, कि परीक्षा देनी है कि किताब पढ़नी है, तो फिर यह मकान की आग को कौन बचाएगा ? तो इस वक्त चित्त सब चीजों को अलग कर देता है और फोकस बिलकुल छोटा-सा हो जाता है, जो सिर्फ मकान को देखता है। बस, मकान में आग लगी है।

तुम एक खतरे से गुजर रहे हो, नीचे खाई है, खड्ड है, एक पैर फिसल जाए, नीचे गिर जाओ। चित्त का फोकस एकदम छोटा हो जाएगा। अब तुम्हें कुछ न दिखाई पड़ेगा। अब तुम्हें बस वह दो फीट का छोटा-सा रास्ता, और तुम; और फोकस सारा का सारा वहीं हो जाएगा। सब तरफ से चित्त हट आएगा। ऊपर चांद-तारे भी होंगे, किसी मतलब के नहीं हैं अब। चित्त के लिए इतनी ही जरूरत है अभी, कि वह सजग रहे, छोटा फोकस हो। थोड़ी जगह पर ज्यादा प्रकाश पड़े। खतरे के बाहर हो। एक आदमी आराम-कुर्सी पर बैठा हुआ है··· अभी वह घोड़े पर सवार था और एक पतली सी पगडंडी से निकलता था पहाड़ की, जहां से गिरता तो प्राण निकल जाते, तो चित्त का फोकस एकदम छोटा हो गया था। बस एक-एक कदम दिखाई पड़ रहा था। वही आदमी घर लौट आया, अब वह आराम-कुर्सी पर बैठा हुआ है, चित्त का फोकस खूब बड़ा हो गया। अब वह जमाने भर की बातें एक साथ सोच रहा है। जमाने भर की बातों को एक साथ सोच रहा है—घर की, दुकान की, मित्रों की, दुश्मनों की। अब चित्त का बिलकुल फोकस पूरा बड़ा हो गया है। बड़ा पर्दा हो गया है, जैसे फिल्म का, जिसमें हजारों चीजें चल रही हैं एक साथ। और कोई चिंता नहीं, वह आराम से बैठा हुआ है। आराम-कुर्सी पर बैठकर चित्त का फोकस सबसे बड़ा होता है। क्योंकि उस वक्त फिर कोई चिंता नहीं, कोई इमरजेंसी नहीं, कोई खतरा नहीं; आप निश्चित बैठे हैं। चित्त को जहां भागना है, भागना है; दौड़ना है, दौड़ना है; जो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चित्र बनाने हैं, बनाने हैं। कितना ही बड़ा हो जाए। इमरजेंसी में, दुर्घटना में चित्त एकदम छोटा फोकस ले लेता है।

यह चित्त हमारा फोकस ले रहा है। और इस चित्त को बाहर देखने की निरंतर जरूरत है। बचपन से पैदा हुए कि बाहर देखने की जरूरत है। भीतर देखने की जरूरत नहीं है। भूख लगती तो मां को देखना पड़ता है, प्यास लगती तो पानी को देखना पड़ता है। चौबीस घंटे बचपन से चित्त को बाहर देखना पड़ रहा है। जीवन जो है, बाहर के साथ निरंतर संघर्ष है। सो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अनंत जन्मों में निरंतर बाहर देखते-देखते यह स्मृति ही भूल जाती है कि चित्त का फोकस भीतर की तरफ भी हो सकता है। यह सवाल ही नहीं उठता। करीब-करीब फिक्स्ड फोकस हो गया। चीजें ठहर गईं। अब वह बाहर की तरफ ही देख पाता है। भीतर का सवाल भी नहीं उठता कि भीतर कैसे देखें?

ध्यान का मतलब यही है कि हम चित्त के फोकस को भीतर की तरफ ले जाने का उपाय करते हैं। बाहर की तरफ से शिथिल करते हैं, बाहर की तरफ से बंद करते हैं कि भीतर जा सके। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे यह स्थिति आ जाए कि चित्त भीतर की तरफ भी देखने लगे, जैसा अभी बाहर की तरफ देखता है। यह नंबर दो की स्थिति—अंतर्मुखता, इंट्रोवर्शन। लेकिन तब भी पूर्ण जागरण नहीं है। क्योंकि चित्त भीतर देखेगा तो बाहर हम मूर्च्छित हो जाएंगे। इसलिए यह हो सकता है कि एक आदमी ध्यान में बैठा हुआ है और उसके पैर पर सांप काट जाए, उसे पता न चले। वाल्मीकि की कथा है, वह ध्यान में बैठे हैं, चारों तरफ चींटियों ने आकर बांबी बना ली उनके पूरे शरीर पर तो उनको पता ही नहीं है! रामकृष्ण अंतर्मुखी हो जाते तो तीन-तीन चार-चार दिन बेहोश पड़े रहते। न फिर भोजन है, न फिर पानी है, न कोई सवाल है! फिर चार दिन उनको कुछ पता नहीं। वह चित्त की तरफ चला गया।

पहली बात खतरनाक थी, दूसरी बात कुछ कम खतरनाक नहीं है। चूंकि पहली बात जीवन की व्यर्थता में उलझा देती थी एकदम और भीतर से तोड़ देती थी, दूसरी बात जीवन से तोड़ देती है और भीतर ऐसे डुबा देती है कि सब तरफ से दरवाजे बंद हो गए! पहली बात भी अधूरी थी, दूसरी बात भी अधूरी है। असल में एक तीसरी स्थिति और है, जबकि हम फोकस ही तोड़ देते हैं। न हम भीतर देखते, न बाहर देखते, सिर्फ देखना रह जाता है, सिर्फ प्रकाश रह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जाता है—न बाहर की तरफ बहता हुआ, न भीतर की तरफ बहता हुआ—सिर्फ प्रकाश। डिफ्यूज्ड लाइट रह जाता है, जिसका कोई फोकस नहीं है। जैसे एक दीया जल रहा है, सब तरफ एक-सा प्रकाश फैल गया। पर दीये से भी हम ठीक से नहीं समझ सकते। दीये से भी हम ठीक से नहीं समझ सकते, क्योंकि फिर भी दीये का भी बहुत गहरे में एक छोटा-सा फोकस है। इसलिए दीया छूट जाता है, अपने प्रकाश के बाहर छूट जाता है। उदाहरण के लिए ख्याल में ले लेने की बात है।

तीसरी स्थिति है, जहां न व्यक्ति अंतर्मुखी है, न बहिर्मुखी है; जहां व्यक्ति सिर्फ है; न बाहर की तरफ देख रहा, न भीतर की तरफ देख रहा; बस है। यह बस होना मात्र का नाम है जागृति, पूर्ण जागृति।

तो महावीर कहते हैं, ऐसा जो पूरी तरह जाग गया, वह साधु है। जो सोया है, वह असाधु है।

असाधु दो तरह के हो सकते हैं। एक, जो बाहर की तरफ सोया हुआ है; एक, जो भीतर की तरफ सोया हुआ है।

साधु एक ही तरह का हो सकता है : जो अब तक सोया हुआ नहीं है, जिसकी मूर्च्छा अब कहीं भी नहीं है।

और इसलिए एक और छोटा-सा बारीक फर्क ख्याल में लेना चाहिए कि··· इसीलिए कंसंट्रेशन, एकाग्रता और मेडीटेशन, ध्यान में बुनियादी फर्क है, जो मैं निरंतर जोर देता हूं। कंसंट्रेशन का मतलब ही यह है कि ध्यान किसी एक बिंदु पर एकाग्र हो जाए। लेकिन शेष सब जगह सो जाएगा। जैसा कि महाभारत में कथा है कि द्रोण ने पूछा है अपने सारे शिष्यों से कि वृक्ष पर तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है? तो किसी ने कहा, पूरा वृक्ष दिखाई पड़ता है। किसी ने कहा, वृक्ष के पीछे सूरज निकला है, वह भी दिखाई पड़ता है। किसी ने कहा, दूर जो गांव है, वह भी दिखाई पड़ता है, पूरा आकाश दिखाई पड़ता; बादल दिखाई पड़ते, सब दिखाई पड़ता। अर्जुन कहता है कि कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है, सिर्फ वह जो पक्षी लटकाया हुआ है नकली, उसकी आंख दिखाई पड़ती है। तो द्रोण कहते हैं, तू ही ठीक एकाग्रचित्त है। एकाग्रचित्त का मतलब यह हुआ कि जिस बिंदु को हम देख रहे हैं, बस सारा ध्यान वहीं हो गया है, सिकुड़कर एक जगह आ गया है। शेष के प्रति बंद हो गया, शेष के प्रति सो गया। तो एकाग्रता एक बिंदु

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर आत्यंतिक स्वतंत्रता के प्रतीक

प्रवचन : २३, दिनांक ६ अक्तूबर, १६६६, पहलगांव

प्रश्न : यह सच है कि आत्मा अमर है, ज्ञानस्वरूप है, फिर कैसे अज्ञान में गिरती है ? कैसे बंधन में गिरती है ? कैसे शरीर ग्रहण करती है—जब कि शरीर छोड़ना है, जब कि शरीर से मुक्त होना है ? यह कैसे संभव हो पाता है ?

यह सवाल महत्त्वपूर्ण है और बहुत ऊपर से देखे जाने पर समझ में नहीं आ सकेगा। थोड़े भीतर गहरे झांकने से यह बात स्पष्ट हो सकेगी कि ऐसा क्यों होता है। जैसे, इस कमरे में आप हैं और आप इस कमरे के बाहर कभी नहीं गए, कभी गए ही नहीं। इस कमरे में आप हैं, बड़े आनंद में हैं, बड़ी शांति में हैं, बड़े सुरक्षित। न कोई भय, न कोई अंधकार, न कोई दुख ; लेकिन इस कमरे के बाहर आप कभी नहीं गए।

तो इस कमरे में रहने की दो शर्तें हो सकती हैं : एक तो यह कि आपको कमरे के बाहर जाने की कोई स्वतंत्रता नहीं है। यानी आप जाना भी चाहें तो आप नहीं जा सकते। आप परतंत्र हैं इस कमरे में रहने को—एक तो शर्त यह हो सकती है। दूसरी शर्त यह हो सकती है कि आप स्वतंत्र पूरे हैं बाहर जाने को। लेकिन आप अपनी समझ के कारण बाहर नहीं जाते। क्योंकि बाहर दुख है, क्योंकि बाहर पीड़ा है, बाहर भटक जाना है, बाहर अशांति है। ये दो शर्तें हो सकती हैं। अगर आप परतंत्र हैं बाहर जाने के लिए, तो आपका सुख, आपकी शांति, आपकी सुरक्षा, सभी थोड़े दिनों में आपको कष्टदायी हो जाएंगी, क्योंकि परतंत्रता से बड़ा कष्ट और कोई भी नहीं है। अगर आपको सुख में रहने के लिए भी बाध्य किया जाए तो सुख भी दुख हो जाएगा।

बाध्यता इतना बड़ा दुख है कि वह बड़े से बड़े सुख को···यानी एक आदमी को हम कहें कि हम तुम्हें सारे सुख देते हैं सिर्फ स्वतंत्रता नहीं, यानी यह भी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वतंत्रता नहीं देते कि अगर तुम चाहो तो इन सुखों को भोगने से इनकार कर सको, तुम्हें भोगना ही पड़ेगा, तो परतंत्रता इतना बड़ा दुख है कि सारे सुखों को मिट्टी कर देगी। और अगर यह शर्त हो इस कमरे के भीतर रहने की कि बाहर नहीं जा सकते, सुख नहीं छोड़ सकते, तो यह सब सुख अत्यंत दुख हो जाएंगे। और बाहर निकलने की प्यास इतनी तीव्र हो जाएगी, विद्रोह इतना गहरा हो जाएगा, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और यह शर्त कि बाहर नहीं जा सकोगे, अनिवार्य रूप से बाहर ले जाने का कारण बनेगी। और यह भी हो सकता है फिर, कि बाहर दुख हो, लेकिन फिर भी आप भीतर आना पसंद न करें, क्योंकि भीतर से बाहर जाने की कोई आज्ञा नहीं है। एक स्थिति यह है।

दूसरी स्थिति यह है कि आपको पूरी स्वतंत्रता है, आप बाहर जाएं या भीतर जाएं या भीतर रहें। लेकिन आप कभी बाहर नहीं गए हैं। आपने भीतर के सब सुख, सब शांति, सब ज्ञान जाना है। लेकिन बाहर अज्ञान है, और आप बाहर जाते हैं। और जाएंगे तो ही तो जान सकेंगे कि बाहर क्या है! जानेंगे; जानने के लिए यात्रा करेंगे, भटकेंगे, दुख भोगेंगे, तो फिर वापस लौटेंगे। और अब जब आप वापस आएंगे तो पहले का ही सुख आपको करोड़ गुना ज्यादा मालूम पड़ेगा क्योंकि बीच में दुख का एक अनुभव, अज्ञान का एक अनुभव—पीड़ा से आप गुजरे हैं। हो सकता है कि पहले वह कमरे के भीतर के सुख आपको सुख भी न मालूम पड़े हों, क्योंकि आपको कोई दुख न था, और प्रकाश आपको प्रकाश न मालूम पड़ा हो, क्योंकि आपने अंधेरा न देखा था। अब जब आप बाहर के जगत से वापस लौटते हैं, तब आप जानते हैं कि प्रकाश क्या है। क्योंकि आपने अंधेरा जाना, क्योंकि आपने पीड़ा जानी, इसलिए आप अब आनंद को पहचानते हैं। तो पहले का सुख रहा भी होगा तो भी बोधपूर्वक न रहा होगा, कांशस नहीं हो सकते हैं उसके आप। आप मूर्च्छित ही रहे होंगे, उस सुख में भी मूर्च्छित रहे होंगे। लेकिन जब बाहर के सारे दुखों को झेलकर, बड़ी कठिनाइयों से वापस कदम उठा-उठाकर अपने घर पर आ पहुंचते हैं, तब आप सचेतन पहुंचते हैं।

यानी मेरा कहना यह है कि आत्मा उसी अवस्था में पुनः पहुंचती है, जिस अवस्था में वह थी। यह संसार की पूरी यात्रा उसे किसी नई जगह नहीं पहुंचा देती है—वहीं, जहां वह सदा थी। लेकिन इस यात्रा के बाद पहुंचना अनुभव को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सचेतन, गहरा, अद्‌भुत बना देता है। यानी वही स्थिति अब मोक्ष मालूम होती है—वही स्थिति ! वह स्थिति तब भी थी, लेकिन तब वह मोक्ष न थी, हो सकता है, तब वह बंधन जैसी ही मालूम पड़ी हो। क्योंकि आपको विपरीत कोई अनुभव न था। आत्मा स्वतंत्र है स्वयं के बाहर जाने के लिए, इसके लिए कोई परतंत्रता नहीं है। आत्मा स्वतंत्र है भटकने के लिए। और स्वतंत्रता का हमेशा यही अर्थ होता है, जहां भूल करने की स्वतंत्रता न हो, वहां स्वतंत्रता नहीं है।

भूल करने की स्वतंत्रता गहरी से गहरी स्वतंत्रता है।

आत्मा स्वतंत्र है, पहली बात। यानी आत्मा अमर है, आत्मा ज्ञानपूर्ण है ; उतना ही गहरा यह सत्य भी है कि आत्मा स्वतंत्र है, उस पर कोई परतंत्रता नहीं है। स्वतंत्रता का मतलब होता है कि वह चाहे तो सुख उठाए, चाहे तो दुख उठाए ; चाहे तो ज्ञान में जिए और चाहे तो अंधकार मे खो जाए ; चाहे तो वासना में जिए और चाहे वासना से मुक्त हो जाए। स्वतंत्रता का मतलब यह है कि ये दोनों मार्ग उसके लिए बराबर खुले हुए हैं। और इसीलिए बहुत अनिवार्य है कि स्वतंत्रता की यह संभावना उसे उन स्थितियों में ले जाएगी, जो दुखदायी हों। और तभी उस अनुभव से वह वापस लौट सकती है।

तो मैंने जैसा कहा निगोद, निगोद वह स्थिति है, जहां आत्माएं वही हैं, जो वे हैं। निगोद वह स्थिति है, जहां उन्होंने कोई विपरीत अनुभव नहीं किया। निगोद वह स्थिति है, जहां उन्होंने स्वतंत्रता का उपयोग नहीं किया। इसलिए निगोद एक परतंत्रता की स्थिति है।

संसार वह स्थिति है, जहां आत्मा ने स्वतंत्रता का उपयोग करना शुरू किया। वह भटकी, उसने भूलें कीं, उसने दुख पाए, उसने शरीर ग्रहण किए, उसने न मालूम कितने प्रकार के शरीर ग्रहण किए, उसने हजारों तरह की वासनाएं पालीं और पोसीं और प्रत्येक वासना के अनुकूल शरीरों को ग्रहण किया। यह भी उसकी स्वतंत्रता है। यानी अगर मैंने शरीर ग्रहण किया है तो यह मेरा डिसीजन है, यह मेरा निर्णय है, इसमें दुनिया में कोई मुझे धक्के नहीं दे रहा है कि तुम शरीर ग्रहण करो। यह मेरी परम स्वतंत्रता की संभावना का ही एक हिस्सा है कि मैं शरीर ग्रहण करूं।

फिर मैं कौन-सा शरीर ग्रहण करूं, यह भी मेरी स्वतंत्रता है—कि मैं चींटी बनूं कि हाथी बनूं कि आदमी बनूं कि देवता बनूं कि प्रेत बनूं, यह भी सवाल मेरे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ही ऊपर निर्भर है। इसके लिए भी कोई मुझे कोई धक्के नहीं दे रहा है। लेकिन चूंकि मेरी आत्मा स्वतंत्र है, इसलिए मैं इन सारी चीजों का उपयोग कर सकता हूं। और उपयोग के बाद ही मैं इनसे मुक्त हो सकता हूं, इनके पहले मुक्त भी नहीं हो सकता। इसलिए निगोद में जो आत्मा है, वह अमुक्त है। अमुक्त का कुल मतलब इतना है कि उसने स्वतंत्रता का उपभोग ही नहीं किया।

प्रश्न : निगोद में तो आत्मा मूच्छित रहती है !

वही मतलब है, मूच्छित का भी वही मतलब है। सचेतन वह मोक्ष में होगी। और सचेतन वह तभी होगी, जब दुख उठाएगी, पीड़ा उठाएगी, कष्ट भोगेगी, तभी सचेतन होगी। जब अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करेगी, तभी सचेतन होगी।

प्रश्न : निगोद से आत्मा संसार में क्यों आती है ?

वही बात हो रही थी। तुम जरा देर से आए, जरा सुन लेना। यानी मैं यह कह रहा हूं कि स्वतंत्रता, फ्रीडम जो है, वह आत्मा का मूलभूत हिस्सा है। और स्वतंत्रता का अर्थ ही यह होता है कि मैं जहां जाना चाहूं, मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है। अगर मैं वासना में उतरना चाहू तो मैं गहरी से गहरी वासना में उतर सकता हूं। संसार की कोई शक्ति मुझे रोकने को नहीं है। बल्कि, चूंकि आत्मा स्वतंत्र है, इसलिए संसार की प्रत्येक शक्ति मुझे साथ देगी। मैं वासना में उतरना चाहता हूं, संसार मेरे लिए सीढ़ियां बना देगा। परमात्मा की सारी शक्तियां मेरे हाथ में मुझे उपलब्ध हो जाएंगी। मैं शरीर ग्रहण करूं, कैसा शरीर ग्रहण करूं। तो मेरी वासना जैसी होगी, वैसा मैं शरीर ग्रहण कर लूंगा। यह सारी की सारी स्वतंत्रता का ही हिस्सा है।

लेकिन जब यह शरीर ग्रहण करना, यह दुख, यह पीड़ा, यह परेशानी, यह भटकन, यह अनंत यात्रा, यह आवागमन, यह पुनरुक्ति, बार-बार, बार-बार यह चक्कर जब जोर पकड़ने लगेगा, जब सफरिंग गहरी होगी, तो मुझे कुछ न कुछ याद पड़ना शुरू हो जाएगा—कोई घर, जो मैंने कभी छोड़ दिए। यह जो हमें स्मृति है न, वह निगोद की है। यानी यह जो हमको स्मरण है कि कहीं कुछ गलत हो रहा है। अशांत नहीं होना है, शांत होना है। शांति अच्छी लगती है, अशांति बुरी लगती है। क्यों ? शांति में हम किसी क्षण रह चुके हैं, अन्यथा यह कैसे संभव था ? दुख बुरा लगता है, आनंद अच्छा लगता है। आनंद की कोई

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गहरी स्मृति कहीं भीतर है, जो कहती है कि वापस लौट चलो, वही अच्छा था। लेकिन उसको भी इतना अनंत-अनंत काल व्यतीत हो गया है उस यात्रा में गए हुए, कि बहुत स्पष्ट चित्र नहीं है कि हम कहां लौट जाएं ? क्या करें ? लेकिन बार-बार ऐसा अनुभव होता है कि कहीं हम गलत हैं, कहीं किसी फॉरेन लैंड में हैं, कहीं किसी विजातीय, किसी विदेशी जगत में हम हैं। जहां हमें होना चाहिए, वहां हम नहीं हैं। समथिंग मिसप्लेस्ड। कुछ न कुछ चीज कहीं और रख गई है, ऐसा प्रतिपल प्रतीत होता रहता है। यही प्रतीति धर्म बनती है। इसी प्रतीति की गहरी से गहरी जिज्ञासा फिर से पुनर्खोज बनती है उस जगह की, जहां से हमने स्वतंत्रता का उपयोग शुरू किया था, उस बिंदु की, जहां हम थे और जहां से हम चल पड़े। अब हम फिर वापस लौटें। यह जो वापस लौटना है, यह भी हमारा निर्णय है। यह उसी स्वतंत्रता का सदुपयोग है। हम वापस लौटते हैं।

हम उसी बिंदु को अब पुनः उपलब्ध जब होंगे, तो यह बिंदु यद्यपि वही होगा, लेकिन हम बदल गए होंगे। इसे समझ लेना जरूरी है। उसी जगह हम फिर वापस पहुंच जाएंगे, जहां से हमने यात्रा शुरू की थी। लेकिन जब हम अब पहुंचेंगे, जगह वही होगी, लेकिन हम ? हम बदल गए होंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अद्भुत घटना है। वह एक गांव के बाहर बैठा हुआ है, अपने गांव के बाहर एक झाड़ के नीचे। चांदनी रात है, एक व्यक्ति उसके पास आया, जिसने हजारों रुपयों से भरी हुई थैली उसके सामने पटकी और कहा, नसरुद्दीन, मैं करोड़पति हूं। मेरे पास रुपयों के अंबार हैं, लेकिन सुख नहीं। तो मैं सारी पृथ्वी पर घूम रहा हूं कि सुख कैसे पाऊं ? कहां पाऊं ? और मुझे कहीं सुख नहीं मिला; हां, लोगों ने मुझे बार-बार कहा कि नसरुद्दीन से मिलो, शायद वह तुम्हें सुख का कोई रास्ता बता दे। तो मैं कैसे सुख पाऊं ? सब मेरे पास है, सुख नहीं है। मुझे कोई रास्ता बताओ ?

नसरुद्दीन ने दो क्षण उसे देखा, आंख बंद की, फिर एकदम से उठा और उसकी जो लाखों रुपयों की थैली थी, उसको लेकर भागा। वह आदमी चिल्लाकर उसके पीछे भागा कि नसरुद्दीन ! यह तुम क्या कर रहे हो ? तुमसे ऐसी आशा न थी। यह तुम क्या कर रहे हो ? तुम मेरे रुपये चुराकर भागे जा रहे हो !

नसरुद्दीन तो तेजी से भागा। गांव उसका परिचित है। वह आदमी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अपरिचित है। वह गली-कूचों में चक्कर देने लगा। आधी रात का वक्त है, गांव सन्नाटे में है। वह आदमी चिल्लाता है, लोग उठते भी हैं तो भी किसी की समझ में नहीं आता कि हो क्या गया है ! पूरे गांव में चक्कर देकर और नसरुद्दीन ने उस आदमी को थका मारा है ! वह बिलकुल लथड़ गया है, चिल्ला रहा है कि हाय, लुट गया ! हे भगवान ! बचाओ ! मर गया ! अब मेरा क्या होगा ? और वह भागता हुआ पूरे गांव में चक्कर लगवा रहा है।

आखिर में वह नसरुद्दीन उसी झाड़ के नीचे आकर थैली को पटककर झाड़ के पीछे खड़ा हो गया। वह आदमी आया, उसने थैली हाथ में ले ली। उसने कहा, धन्यवाद, हे भगवान धन्यवाद ! नसरुद्दीन ने कहा, दिस इज टू, वन मेथड ऑफ गेटिंग हैपिनेस। यह भी एक तरकीब है सुख पाने की। उसने कहा कि देख, यही थैली तेरे पास पहले भी थी, लेकिन तूने ऐसे पटक दिया था जैसे कचरा। यही थैली अब भी है, लेकिन बीच के अनुभव ने···। यह भी सुख पाने की एक तरकीब है। नसरुद्दीन ने उससे कहा, कि यह भी एक तरकीब है !

और मेरी अपनी समझ यह है कि मोक्ष और निगोद में इतना ही फर्क है। जो थैली थी, वह खो दी गई। थैली थी, यह निगोद है। यह मोक्ष की यात्रा का पहला बिंदु है, जहां हम थे। थैली खो दी गई, यह संसार है। थैली वापस पा ली गई, यह मोक्ष। और यह खो देना बहुत अनिवार्य है। नहीं तो आप इस थैली में क्या है, इसका अर्थ ही भूल जाएंगे। यह खो देना अनिवार्य हिस्सा है। और खोकर जब आप दुबारा पाते हैं, तब आपको पता चलता है कि आनंद क्या है। निगोद में भी वही था, पर उसे खोना जरूरी था, ताकि वह पाया जा सके।

असल में जो मिला ही हुआ है, उसका हमें पता होना बंद हो जाता है। जो हमें मिला ही हुआ है, धीरे-धीरे हम उसके प्रति अचेतन हो जाते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं। क्योंकि उसे याद रखने की कोई जरूरत ही नहीं होती। यह सवाल ही मिट जाता है हमारे मन से कि वह है, क्योंकि वह है ही। वह इतना है कि जब हम थे, तब वह था। तो जरूरी है कि उसे फिर से अचेतन होने के लिए खो दिया जाए।

तो संसार आत्मा की यात्रा में खोने का बिंदु है, और वह भी हमारी स्वतंत्रता है। पर निगोद और मोक्ष में जमीन-आसमान का फर्क है। बिलकुल एक ही स्थितियां हैं, लेकिन निगोद बिलकुल मूर्च्छित है, मोक्ष बिलकुल अमूर्च्छित है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और निगोद को मोक्ष बनाने की जो प्रक्रिया है, वह संसार है। इस प्रक्रिया के बिना निगोद मोक्ष नहीं बन सकता।

इसलिए अगर हम स्वतंत्रता के तत्व को समझ लें तो हमें सब समझ में आ जाएगा कि यह सारी यात्रा हमारा निर्णय है। यह हमारा चुनाव है। हमने ऐसा चाहा है, इसलिए ऐसा हुआ है। हमने जो चाहा है, वही हो गया है। कल अगर हम न चाहेंगे इसे तो यह होना बंद हो जाएगा। परसों अगर हम बिलकुल न चाहेंगे, निर्णय छोड़ देंगे, च्वाइस छोड़ देंगे—वही संन्यास का अर्थ है कि जब हम न चाहेंगे, हम छोड़ देंगे; हम नहीं चाहते हैं अब, हम वापस लौटना शुरू हो जाएंगे। वही बिंदु हमें फिर उपलब्ध होगा, लेकिन हम बदल गए होंगे। इस खोने की यात्रा में हमने विपरीत का अनुभव किया होगा। हमने दरिद्रता जानी होगी, अब वह संपत्ति हमें फिर संपत्ति मालूम पड़ेगी। दुख जाना होगा, वह आनंद हमें फिर आनंद मालूम पड़ेगा।

और इसलिए प्रत्येक आत्मा के जीवन में यह अनिवार्य है कि वह संसार से घूमे। और इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि संसार में जो बहुत गहरे उतर जाते हैं, जिनको हम पापी कहते हैं, वे उतनी ही तीव्रता से वापस भी लौट आते हैं। और जो, साधारणजन जिसे हम कहते हैं, जो पाप भी नहीं करता, जो संसार में भी गहरे नहीं उतरता; वह शायद मोक्ष की तरफ भी उतनी जल्दी नहीं लौटता, क्योंकि लौटने में तीव्रता तभी होगी, जब दुख और पीड़ा भी तीव्र हो जाएंगे। जब हम इतनी पीड़ा से गुजरेंगे कि लौटना जरूरी हो जाएगा। लेकिन अगर हम बहुत पीड़ा से नहीं गुजरे तो शायद लौटना जरूरी न हो।

जैसे वह थैली लेकर नसरुद्दीन भागा था, पूरी थैली लेकर भागा गया था, पीड़ा भारी थी। वह दो रुपये लेकर भागा होता तो हो सकता है, उसने थैली बांध ली होती, अपने घर चला गया होता कि ठीक है, जाने दो। लेकिन तब इस थैली की उपलब्धि का वह रस नहीं हो सकता था, क्योंकि यह थैली फिर वही की वही थी। और वह आदमी फिर गांव-गांव में पूछता कि आनंद का रास्ता क्या है, सुख कैसे मिले? नसरुद्दीन ने कहा यह कि सुख को खोओ, तो मिलेगा! अब यह बड़ा उल्टा मालूम पड़ता है। जिसे पाना है, उसे खोओ! क्योंकि अगर वह पाया ही हुआ है तो उसका पता ही नहीं चलेगा।

तो संसार में हम वही खोते हैं, जो हमें मिला हुआ है। मोक्ष में हम वही पा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेते हैं, जो हमें मिला ही हुआ था और यह सारा का सारा जो चक्र है, वह स्वतंत्रता के केंद्र पर घूमता है। और जितना ज्ञान, जितना आनंद; उससे भी गहरी स्वतंत्रता, फ्रीडम। इसलिए मुक्ति की हमारी इतनी आकांक्षा है, बंधन का इतना विरोध है। और मुक्त हम होना चाहते हैं—लेकिन बंधन को अनुभव कर लेंगे तभी।

प्रश्न : आत्मा स्वतंत्र है, लेकिन वासना के कारण परतंत्र हो गई ?

वासना भी उसकी स्वतंत्रता है।

प्रश्न : वही चुनती है, वह भी ?

वही चुनती है। बंधन भी वही चुनती है। यानी मैं स्वतंत्र हूं कि चाहूं तो हथकड़ी अपने हाथ में बांध लूं। कोई मुझे रोकने वाला नहीं है। मैं स्वतंत्र हूं कि चाहूं तो हथकड़ी अपने हाथ में बांध लूं, कोई मुझे रोकने वाला नहीं है। और इसके लिए भी स्वतंत्र हूं कि चाबी से लॉक करके चाबी को फेंक दूं कि उसे खोजना ही मुश्किल हो जाए, इसके लिए भी मैं स्वतंत्र हूं। मैं इसके लिए भी स्वतंत्र हूं कि अपनी हथकड़ी पर सोना चढ़ा लूं और उसको आभूषण बना लूं। मैं इसके लिए भी स्वतंत्र हूं। लेकिन अंतिम निर्णय मेरा ही है। यहां कोई किसी को परतंत्र नहीं कर रहा है। हम होना चाहते हैं तो हो रहे हैं, हम नहीं होना चाहते तो नहीं होंगे। बहुत गहरे में जो बंधन है वासना का, वह हमारा चुनाव है। कौन तुमसे कहता है कि वासना करो ? तुम्हें लगता है कि वासना को जानें, पहचानें; शायद उसमें भी सुख हो, उसे खोजें; तो तुम यात्रा करो। यात्रा जरूरी है ताकि तुम जानो कि सुख वहां नहीं था और दुख ही था। और दुख अगर वासना का प्रकट हो जाएगा तो तुम वासना छोड़ दो। तब भी तुम्हें कोई रोकने नहीं आएगा कि क्यों वासना छोड़ी जा रही है ? कोई तुम्हें कहने नहीं आया कभी कि क्यों तुम वासना पकड़ रहे हो ?

मनुष्य की स्वतंत्रता परम है, अल्टिमेट है, चरम है। उसके ऊपर कोई भी नहीं कहने वाला कि तुम यह क्यों···? और स्वतंत्रता तभी पूर्ण है, जब बुरे के भी करने का हक हो।

अगर कोई यह कहे कि अच्छा-अच्छा करने की स्वतंत्रता है, बुरा करने की नहीं, तो स्वतंत्रता कैसी है यह ? यानी हमेशा यह ध्यान रहे कि अगर अच्छे ही अच्छे करने की स्वतंत्रता हो···एक बाप अपने बेटे से कहे कि तुझे मंदिर जाने की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वतंत्रता है, लेकिन वेश्यालय जाने की नहीं, तो यह मंदिर जाने की स्वतंत्रता कैसी स्वतंत्रता हुई ? यह तो परतंत्रता हुई। बाप कहे कि मंदिर जाने की तुझे स्वतंत्रता है, बस तू मंदिर ही जा सकता है। वेश्यालय जाने की स्वतंत्रता नहीं है, वहां तू नहीं जा सकता। तो यह स्वतंत्रता कैसी हुई ? यह स्वतंत्रता न हुई, यह मंदिर जाने को स्वतंत्रता का नाम देना झूठा है। यह बाप परतंत्रता को स्वतंत्रता के नाम से लाद रहा है। लेकिन अगर बाप स्वतंत्रता देता है तो वह कहता है कि तुझे हक है, कि तू चाहे तो मधुशाला जा, तू चाहे तो मंदिर जा। तू अनुभव कर, सोच, समझ। जो तुझे ठीक लगे, कर। परम स्वतंत्रता का मतलब होता है, सदा भूल करने की स्वतंत्रता भी।

प्रश्न : और इसी स्वतंत्रता के कारण ही भूल होती है न ?

स्वतंत्रता के कारण भूल नहीं होती। स्वतंत्रता के कारण भूल नहीं होती।

प्रश्न : चुनाव बुरे का ही होता है न ज्यादातर ?

यह जरूरी नहीं है। यह जरूरी नहीं है। क्योंकि चुनाव बुरे का करने के बाद जिन्होंने चुनाव भले का किया है, वह भी चुनाव उन्हीं का है। यानी जो मोक्ष गए हैं, मोक्ष जाने में वे उतना ही चुनाव कर रहे हैं, जितना जो संसार में आ रहे हैं, वे चुनाव कर रहे हैं। असल में जो मंदिर की तरफ जा रहा है, वह भी उसका चुनाव है, जो वेश्यालय की तरफ जा रहा है, वह भी उसका चुनाव है। जहां तक स्वतंत्रता का संबंध है, दोनों बराबर हैं। स्वतंत्रता का दोनों उपयोग कर रहे हैं। यह दूसरी बात है कि एक बंधन बनाने के लिए उपयोग कर रहा है, एक बंधन तोड़ने के लिए उपयोग कर रहा है। यह बिलकुल दूसरी बात है।

और इसके लिए भी हमें स्वतंत्रता होनी चाहिए कि अगर मैं बंधन ही बनाना चाहता हूं और हथकड़ी ही डालना चाहता हूं तो दुनिया में मुझे कोई रोक न सके, नहीं तो वह भी परतंत्रता होगी। यानी अगर मान लो, मैं हथकड़ी डालकर बैठना चाहता हूं, जंजीरें बांधकर पैरों में। और दुनिया मुझे कहे कि हम न करने देंगे, तो यह परतंत्रता हो जाएगी। यानी यह परतंत्रता होगी और हथकड़ियां मुझे डालने की स्वतंत्रता स्वतंत्रता ही है, क्योंकि अंतिम निर्णायक मैं हूं। और जो मैं कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं, कि अगर सुख को जानना हो तो दुख की स्वतंत्रता भोगनी ही पड़ेगी। उसकी ही पृष्ठभूमि में, उसकी ही काली पृष्ठभूमि में सुख की सफेद रेखाएं उभरेंगी। हम वहीं लौट जाते हैं, जहां से हम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आते हैं, लेकिन न तो हम वही रह जाते, न वह बिंदु वहीं रह जाता। क्योंकि हमारी सब दृष्टि बदल जाती है। एक संत फिर बच्चा हो जाता है, लेकिन एक बच्चा संत नहीं है।

प्रश्न : तो फिर मोक्ष की अवस्था में फिर अगर वह वापस चाहे, प्रयास करे, आना—समझो करुणावश ही, फिर वह एक चुन सकता है। चुनाव तो फिर भी हो सकता है ?

बिलकुल चुनाव हो सकता है। बिलकुल चुनाव हो सकता है। बिलकुल चुनाव हो सकता है, लेकिन सिर्फ करुणावश ही।

करुणावश ही, करुणावश ही हो सकता है चुनाव आने का। लेकिन वह फिर संसार में आता नहीं, हमें दिखता भर है आया हुआ। यह भी समझ लेना जरूरी है। हम जिस भांति संसार में आते हैं, फिर वह उस भांति संसार में नहीं आता।

मैं पीछे कहीं एक वक्तव्य दिया हूं। जापान में एक फकीर था, जो छोटी-मोटी चोरी कर लेता और जेलखाने चला जाता। और उसके घर के लोग परेशान थे। वह बूढ़ा हो गया। उसके अनुयायी परेशान थे। वह कहते, हमारी बड़ी बदनामी होती है तुम्हारे पीछे। और तुम आदमी ऐसे हो कि हमें प्रेम करना पड़ता है। तुम्हारे पीछे हम भी बदनाम होते हैं—कि किसको तुम मानते हो, जो चोरी करता है और जेल चला जाता है ! अब तो तुम बूढ़े हो गए, अब तो यह बंद करो। लेकिन वह कहता कि फिर वे जो जेल में बंद हैं, उनको खबर कौन देगा कि बाहर कैसा मजा है ! तो मैं उन्हें खबर देने जाता हूं। और कोई रास्ता नहीं है इसलिए छोटी-मोटी चोरी कर लेता हूं, और जेल चला जाता हूं। और वहां जो बंद हैं, उनको खबर देता हूं कि बाहर कैसी स्वतंत्रता है। उनको कौन खबर देगा ? वहां अगर चोर ही चोर जाते रहेंगे···और चोर ही चोर वहां जाते हैं।

लेकिन इस फकीर का जाना बहुत भिन्न है। और यह फकीर एक अर्थों में जाता ही नहीं, क्योंकि न तो यह चोरी करता है···चोरी के लिए जब यह भीतर इसको हथकड़ियां डाली जाती हैं, तब भी यह कैदी नहीं है, और जब यह जेल में बंद किया जा रहा है, तब भी यह कैदी नहीं है। यह कैद से बाहर का आदमी है। बल्कि और कैदियों को भी मुक्त करने के ख्याल से आया हुआ है।

तो जो बुद्ध या महावीर या जीसस जैसा आदमी जमीन पर आता है तो हमें

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लगता है कि वह आया, सच में वह आता नहीं। सच में यानी इस अर्थ में कि अब यह संसार उसके लिए संसार नहीं है। यह संसार अब उसके लिए संसार नहीं है। अब यह उसके अनुभव की यात्रा नहीं है, यह हो चुकी। अब इसमें उसकी कोई पकड़ नहीं है, कोई जकड़ नहीं है। अब इसमें कोई रस नहीं है। इसमें कुल करुणा इतनी है कि वे जो और भटक रहे हैं, उनको खबर दे आए कि एक और लोक है, जहां पहुंचना हो गया है, जहां पहुंचना हो सकता है। इस करुणावश उतरना हो सकता है, लेकिन यह करुणा अंतिम वासना है।

यह करुणा भी अंतिम वासना है। क्योंकि अगर बहुत गौर से देखें तो करुणा में भी थोड़ा-सा अज्ञान शेष है। बहुत थोड़ा-सा अज्ञान, जिसको अज्ञान नहीं कह सकते, लेकिन जिसको ज्ञान भी नहीं कहा जा सकता। बहुत बारीक अज्ञान की रेखा शेष है, वह यह है कि किसी को मुक्त किया जा सकता है—एक। क्योंकि जो अपनी स्वतंत्रता से मुक्त हुए हैं, उनको तुम कैसे मुक्त करोगे? दो—कोई दुख में है, यह भी अज्ञान है। क्योंकि वह दुख उसका बिलकुल निर्णय है। और तीसरा—किसी को भी उसके समय के पहले वापस लौटाया जा सकता है, यह भी संभव नहीं है। उसका अनुभव तो पूरा होगा ही। यानी अगर इस सब पर हम गौर करें तो यह···इसलिए करुणा जो है, वह अंतिम, द लास्ट इग्नोरैंस। पर इसे इग्नोरैंस कहने में, अज्ञान कहने में भी बुरा लगता है। क्योंकि वह इतने प्रेम से जन्मता है वैसा अज्ञान! इसलिए वह एक बार, एकाध बार जन्म ले सकता है, इससे ज्यादा नहीं। क्योंकि तब तक वह करुणा भी क्षीण हो जाएगी, वह भी गल जाएगी।

प्रश्न : विलीन हो जाएगी?

हां, वह भी विलीन हो जाएगी।

प्रश्न : यह बात आपने कैसे कही कि समय के पहले नहीं लौटाया जा सकता?

समय के पहले का मतलब यह नहीं है कि किसी का समय कोई तय है। समय के पहले का मतलब यह है कि उसका पूरा भोग तो हो जाए। समय के पहले का मतलब यह नहीं है कि तारीख तय है कि उस तारीख को तुम लौटोगी। तारीख तय नहीं है, लेकिन तुम्हारा अनुभव तो पूरा हो जाए। उसके पहले तुम्हें नहीं लौटाया जा सकता।

प्रश्न : वह मेरे पर ही डिपेंड करता है कब लौटना?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बिलकुल ही, तुम पर निर्भर करता है। नहीं तो परतंत्र हो जाओगी तुम, फिर मुक्ति नहीं हो सकती तुम्हारी कभी भी। अगर किसी ने तुम्हें मुक्त कर दिया तो वह नई तरह की परतंत्रता होगी यह, कभी तुम मुक्त नहीं हो सकती। और इसको मैं कहता हूं परम स्वतंत्रता है आत्मा को—दुख भोगने की, नरकों की यात्रा करने की, पीड़ाओं में उतरने की; ईर्ष्याओं में, जलने में; सब में उतर जाने की उसे पूरी स्वतंत्रता है। और कोई उसे नहीं लौटा सकता जब तक कि···

प्रश्न : उनके उतरने की जरूरत क्या है फिर ? जो आत्मा उतरती है, जो अपनी करुणा की अंतिम इच्छा से उतरती है, उनके उतरने की भी जरूरत नहीं है ?

वही तो मैं कह रहा हूं कि सच में जरूरत नहीं है।

प्रश्न : कोई चेंज ही नहीं होगा ?

सच में कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह मैं कह रहा हूं कि करुणा अंतिम वासना है और यह उनका चुनाव है। यानी यह जो मैं कह रहा हूं कि स्वतंत्रता, परम स्वतंत्रता है हमें। अगर मैं आज मुक्त हो जाता हूं और फिर भी लौट आना चाहता हूं, तो दुनिया में मुझे कोई रोकने को नहीं है। यानी मुझे अगर ऐसा लगता है कि आपके द्वार पर खटखटाऊं, यह भी जानते हुए, यह भी हो सकता है कि मैं जानता होऊं भली-भांति, कि किसी को जगाया नहीं जा सकता उसके पहले, यह भी हो सकता है कि मैं जानता होऊं कि किसी को जागने के पहले जगाया नहीं जा सकता, सबकी अपनी सुबह है और वक्त पर होगी। सबकी नींद पूरी होगी, तभी वे जागेंगे। और हो सकता है बीच में जगाना दुखद भी हो, क्योंकि वे फिर सो जाएं। यानी आखिर नींद तो पूरी हो जानी चाहिए न किसी की। मैं जाकर उसका पांच बजे दरवाजा खटखटा दूं और वह जग भी आए, करवट बदले, और फिर सो जाए। और शायद पहले वह छः बजे उठ आता, अब वह आठ बजे उठे, क्योंकि यह जो बीच का गैप पड़ा, यह भी नुकसान पहुंचा दे जाए उसको। यह जानते हुए भी···यानी यह सवाल आप जगेंगे कि नहीं यह नहीं है, सवाल यह है कि मैं जागकर जो आनंद अनुभव कर रहा हूं, वह मुझे परेशान किए दे रहा है, वह आनंद मुझे कहे दे रहा है कि जाओ, किसी के द्वार खटखटा दो। यानी अब बहुत गहरे में हम समझें तो आप नहीं हैं सेंटर करुणा के। यानी आप जगेंगे कि नहीं, यह विचारणीय नहीं है, लेकिन जो जग गया है, वह एक ऐसे आनंद को अनुभव करता है कि अंतिम वासना उसकी यह होगी कि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वह अपने प्रियजनों को खबर कर दे। अपने प्रियजनों को खबर कर दे, भला प्रियजन उसको गाली दें कि बेवक्त नींद तोड़ दी। यह कौन दुश्मन दरवाजा खटखटा रहा है? यह दूसरी बात है, यानी यह सवाल ही नहीं है। यह बहुत गहरे में देखने पर यह करुणा उसका अपना चुनाव है। इससे आपसे कोई बहुत संबंध नहीं है।

वासना भी अपना चुनाव है। जैसे समझ लें कि मैं आपको प्रेम करने लगूं। मैं आपको प्रेम करने लगूं तो यह मेरा चुनाव है। जरूरी नहीं है कि आप मुझे प्रेम करें। और जरूरी नहीं है कि मेरे प्रेम से आपको आनंद भी मिले। और यह भी हो सकता है कि मेरा प्रेम आपको दुख दे। और यह भी हो सकता है कि मेरा प्रेम आपको परेशानी में डाले। यह सब हो सकता है, फिर भी मैं आपके लिए प्रेम से भरा हुआ हूं। यह मेरी भीतरी बात है। और मैं प्रेम करूंगा। और यह आपके लिए क्या लाएगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हालांकि मेरा प्रेम कोशिश करेगा कि आपके लिए हित आए, भला आए, मंगल आए; लेकिन यह जरूरी नहीं है।

करुणा को मैं कह रहा हूं अंतिम वासना। सारी वासनाएं जिसकी क्षीण हो गईं, उसका मतलब है कि उस आदमी को आनंद उपलब्ध हो गया। उसकी सारी वासनाएं क्षीण हो गईं, उसे आनंद उपलब्ध हो गया। अंतिम वासना एक रह जाती है कि यह आनंद औरों को भी उपलब्ध हो जाए। अब अपने लिए जानने को कुछ भी शेष नहीं रहा। अपने लिए पाने को कुछ भी शेष नहीं रहा। उसने आनंद पा लिया। अब एक अंतिम वासना शेष रह जाती है, जो यह कहती है कि यह आनंद औरों को भी उपलब्ध हो जाए। और वह भी इतना तीव्र भाव है! हालांकि वह भी चुनाव है।

इसलिए जरूरी नहीं है कि सभी शिक्षक वापस लौटें। इसलिए मैंने कहा कि यह मौज की बात है कि कोई सीधा चुपचाप विलीन हो सकता है मोक्ष में। लेकिन कोई ठिठक जाए, वापस लौट आए। हालांकि वह भी एक जन्म दो जन्म के बाद विलीन हो जाएगा। जाएगा कहां? जाने का सवाल नहीं है कहीं और। लेकिन वह अंतिम उपाय कर सकता है। लेकिन यह भी अज्ञान का ही हिस्सा है बहुत गहरे में। क्योंकि अगर पूर्ण ज्ञान हो तो यह बात भी खत्म हो जाने वाली है कि ठीक है—जो हो रहा है। अपनी-अपनी स्वतंत्रता है, अपनी-अपनी यात्रा है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेकिन वैसा पूर्ण ज्ञानी हमें अत्यंत कठोर मालूम पड़ेगा, अत्यंत कठोर। क्योंकि राह चलते अगर कोई प्यासा पड़ा है तो शायद वह उसको पानी भी न दे। क्योंकि वह कहेगा, अपनी-अपनी यात्रा है। हालांकि बहुत हमें कठोर मालूम पड़ेगा, हद कठोर मालूम पड़ेगा। अपनी-अपनी यात्रा है। प्यास भी तुम्हारा चुनाव है। तुमने जो पीछे किया, जो हुआ, जैसे तुम चले, वैसे तुम पहुंचे।

प्रश्न : व्यक्तित्व तो रहेगा उतनी देर तक, जितनी देर वह चुनाव में है या जितनी देर इस वासना में है ?

हां, व्यक्तित्व रहेगा तब तक। तब तक व्यक्तित्व रहेगा, जब तक जरा-सी भी, क्षीण वासना भी शेष है करुणा की, तब तक व्यक्तित्व रहेगा। पूर्ण वासना निषेध होने पर ही व्यक्तित्व विलीन हो पाता है। तो पूर्ण—वैसा व्यक्ति तो हमें बहुत कठोर मालूम पड़ेगा, यानी शायद हम उसे समझ ही न जाएं कि यह आदमी कैसा है ! कोई आदमी कुएं में डूबकर मर रहा हो तो वह खड़ा देखता रहेगा। अपनी-अपनी यात्रा है, अपना-अपना चुनाव है। इसको तो पकड़ना ही मुश्किल हो जाएगा, इसको तो पहचानना ही मुश्किल हो जाएगा। कोई आदमी आग में हाथ डाल रहा हो तो वह खड़ा देखता रहेगा। वह कहेगा, अपना-अपना अनुभव है, अपना-अपना ज्ञान है। आग में हाथ डालोगे, तब अनुभव होगा कि हाथ जलता है, तब जानोगे कि जलता है। अब मैं कहकर क्यों व्यर्थ की बाधा डालूं ? मेरे कहने से कुछ होगा नहीं। तुम तो हाथ डालोगे ही, तभी तुम जानोगे। और अगर बिना हाथ डाले तुमने जान लिया तो हो सकता है और कष्टों में पड़ जाओ। क्योंकि मैं तुम्हें कह दूं कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है और तुम मान जाओ, लेकिन तुम्हारा अनुभव न हो, कल तुम्हारे घर में आग लग जाए और तुम भीतर पड़े रहो और तुम सोचो कि कौन जलता है ! तो जिम्मेदार कौन होगा ? यानी फिर तो जिम्मेदार मैं ही होऊंगा न ! इससे तो अच्छा था कि तुम हाथ डाल लेते और जल जाते, तो कल जब तुम्हारे घर में आग लगती तो तुम निकल बाहर हो जाते। क्योंकि तुम्हारा अनुभव काम करता।

अपना अनुभव ही काम करता है।

और इसलिए व्यक्तित्व के विदा होने की जो अंतिम वेला होगी, उस वेला में करुणा प्रकट होगी। वह ऐसे ही है, जैसे सूर्यास्त की लालिमा। कभी ख्याल नहीं किया कि सूर्यास्त की लालिमा का क्या मतलब है ?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सुबह भी लालिमा होती है, लेकिन वह उदय की लालिमा है, वह वासना की। अभी सूरज बढ़ेगा और चढ़ेगा, अभी फैलेगा और विस्तीर्ण होगा, अभी जलेगा और तपेगा, अभी दोपहर पाएगा, जवान होगा। सुबह की लालिमा सिर्फ खबर है जन्म की। वह भी वासना है, लेकिन विकासमान, फैलने वाली, एक्सपैंडिंग।

सांझ को फिर आकाश लाल हो जाए, वह सूर्यास्त की लालिमा है, लेकिन विदा की। वह अंतिम लालिमा है, लेकिन अब फैलने की नहीं, अब सिकुड़ने की है। अब सब सिकुड़ता जा रहा है। सब सूरज सिकुड़ रहा है, सब किरणें वापस लौट रही हैं, सूरज डूबा चला जा रहा है।

लेकिन लौटती किरणें भी तो लालिमा फेंकेंगी। उगती किरणों ने फेंकी थी। और अगर किसी को पता न हो तो उगते और डूबते सूरज में भेद करना मुश्किल हो सकता है। अगर पता न हो, एक आदमी दो-चार दिन बेहोश रहा हो और उसे एकदम होश में लाया जाए और उससे कहा जाए, यह सूरज डूब रहा है कि उग रहा है? तो उसे थोड़ा वक्त लग जाए। क्योंकि उगता और डूबता सूरज एक-सा लगता है। किरणों का जाल एक में फैलता होता, एक में सिकुड़ता होता। एक में लालिमा बढ़ती होती, एक में घटती होती। लेकिन लालिमा दोनों में होती, किरणें दोनों में होतीं। थोड़ी देर लग सकती है उसे भी पहचानने में कि यह लालिमा सिकुड़ने की है कि फैलने की है।

तो पहला जन्म, जहां व्यक्तित्व किरण होता है, वहां से वासना फैलती है। वासना है फैलती हुई इच्छाएं, फैलती हुई—सूर्योदय। जब सब इच्छाएं सिकुड़ जाती हैं और सूरज का सिर्फ गोल हिस्सा रह गया डूबता हुआ, आखिरी; लेकिन फिर भी लालिमा है; डूबते की है, लेकिन फिर भी है। यह आखिरी लालिमा है। यह करुणा है। यह डूब जाएगा। और कई बार चूक हो जाती है। हम समझते हैं कि सूरज उग रहा है और जब तक हम समझ पाते हैं, तब तक वह डूब जाता है। तब हम कुछ उससे लाभ नहीं ले पाते। यह बहुत बार होता है।

बुद्ध गांव में आते, महावीर भी गांव में आते; तुम्हारे गांव में भी आए होंगे, तुम भी उस गांव में रहे होगे। जीसस भी आए, कृष्ण भी आए; लेकिन हो सकता है तुमने समझा हो कि यह अभी सूर्योदय हो रहा है। यह आदमी वासना-ग्रस्त है। और तुम चूक गए होओ और तब तक सूरज डूब गया। फिर रोते बैठे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रहो। तब कुछ भी नहीं हो सकता, तब जानने के लिए कुछ उपाय नहीं रह जाता। लेकिन उगता-डूबता सूरज एक-जैसे मालूम पड़ते हैं। तो हो सकता है बुद्ध जिस गांव में आए हों, अनेक लोगों ने सोचा हो कि यह भी सब वासना है।

एक गांव में बुद्ध तीन बार गुजरे जीवन में। और गांव में एक आदमी था, जो अपनी दुकान पर लगा रहा! और लोगों ने उससे कहा भी कि बुद्ध आए हैं, तो उसने कहा कि दुबारा आएंगे, तब! अभी तो बहुत ग्राहकी है, अभी तो मौसम है, अभी तो खरीद-फरोख्त का वक्त है! दुबारा जब आएंगे, तब सुन लूंगा। ऐसा तीन बार बुद्ध उस गांव से गुजरे। आखिर बुद्ध भी क्या कर सकते हैं? कितनी बार गांव से गुजर सकते हैं। ग्राखिर बुद्ध की भी सीमा है। और गांव बहुत हैं। और बुद्ध भी कर क्या सकते हैं? अगर ग्राहकी चलती ही रहे और दुकान बंद ही न करनी हो, तो कोई भी क्या कर सकता है? तीसरी बार भी बुद्ध गुजरे, तब वह आदमी बूढ़ा हो गया था। फिर उससे लोगों ने कहा, चलते नहीं हो? उसने कहा, आज तो बहुत काम है। दुबारा जब आएंगे! फिर बुद्ध दुबारा उस गांव में नहीं आए।

लेकिन एक दिन उस गांव में खबर आई कि पड़ोस के जंगल में, पड़ोस के गांव में बुद्ध का अंतिम दिन है। लोग इकट्ठे हो रहे हैं दूर-दूर से। वे मरने के करीब हैं और उन्होंने कह दिया है कि वे जल्दी ही डूब जाएंगे, अस्त हो जाएंगे। तो जिन्हें जो पूछना हो, भागो। तो उस आदमी ने दुकान बंद की। शायद दुकान भी बंद नहीं कर पाया। घर के लोगों ने कहा, क्या करते हो यह? अभी बहुत वक्त है। अभी काम है, अभी दुकान पर लोग हैं। उसने कहा, वह तो ठीक है, लेकिन फिर उस आदमी से मिलना नहीं हो पाएगा। और बहुत चूक गया, काफी चूक गया। वह आदमी भागता हुआ दूसरे गांव गया।

बुद्ध ने, वहां जो लोग इकट्ठे हुए थे, उनसे पूछा कि तुम्हें कुछ और पूछना है? तो उन सबने कहा कि हमने इतना पूछा और इतना जाना, अब कुछ भी पूछने को नहीं है। अब तो करने को है कि हम कुछ करें। तो बुद्ध ने कहा कि फिर मैं विदा लूं। तीन बार उन्होंने पूछा, जैसी उनकी आदत थी। क्योंकि हो सकता है, एक दफे संकोच में कोई कुछ न पूछे, हो सकता है दूसरी दफे हिम्मत न जुटा पाए, तीसरी दफे तो पूछ ले। तो तीन बार उन्होंने पूछा—कि कुछ पूछना; कुछ पूछना; कुछ पूछना? लेकिन लोग रो रहे थे। उन्होंने कहा कि कुछ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भी नहीं पूछना है, अब क्या पूछने को है ? तब बुद्ध ने कहा, फिर मैं विदा लूं। और वृक्ष के पीछे चले गए। ध्यान में बैठे और डूबने लगे।

तब वह आदमी भागा हुआ पहुंचा। तब उसने जाकर कहा कि बुद्ध कहां हैं ? तो लोगों ने कहा, चुप ! अब बात मत करना, अब वे जा चुके। अब वे वृक्ष के पीछे चले गए। अब वे शांति से अपने में उतर रहे हैं, वापस डूब रहे हैं। व्यक्तित्व छोड़ रहे हैं, निर्वाण में जा रहे हैं। पर उस आदमी ने कहा, मेरा क्या होगा ? क्योंकि मैं तो चूक ही गया, उनसे कुछ पूछना था। तो उन लोगों ने कहा, पागल हो गए हो ? वे चालीस साल से इसी इलाके में चक्कर लगाते थे, तब तू कहां था ? उसने कहा, दुकान पर बहुत भीड़ थी। भीड़ तो आज भी थी, तब मैंने समझा अभी सूरज उगता हुआ है, तब मुझे यह खयाल न था कि डूबने का वक्त भी जल्दी आ जाएगा। पर मुझे पूछना है, देर मत करो, क्योंकि सूरज तो डूबा जा रहा है। लेकिन भिक्षुओं ने कहा कि चुप, जोर से आवाज मत करना। अन्यथा वे इतने करुणावान हैं कि वापस लौट सकते हैं। लेकिन तभी बुद्ध बाहर आ गए वृक्ष के और उन्होंने कहा, ऐसा मत करो, नहीं तो सदियों तक लोग मेरा नाम धरेंगे कि बुद्ध जिंदा थे और एक आदमी पूछने आया और द्वार से खाली हाथ लौट गया। अभी मैं हूं। क्या तुझे पूछना है ?

यह जो लौटना है, यह उतना ही लौटना है, जितना कि सच में कोई मोक्ष से लौटे। इसमें कुछ बहुत फर्क नहीं है। पर यह अंतिम वासना है और यह अंतिम वासना भी अर्थपूर्ण है। यह है, इसलिए जगत में इतने ज्ञान की संभावना हो सकी। यह है इसलिए जगत में इतने विचार का जन्म हो सका। अगर न हो तो जगत में प्रकाश की कोई खबर ही न आए। अगर कोई आदमी इतना करुणावान न हो, कि इसलिए चोरी करे कि जेलखाने में आए, तो जेलखाने के लोग हो सकता है भूल ही जाएं कि बाहर कोई जगत भी है। नहीं पक्का है कि इनकी बात सुनकर हम जग ही जाएंगे, लेकिन एक बात पक्की है कि जगे हुए लोग हमारे मन में भी लौटने की, जगने की कोई न कोई सूक्ष्म वासना पैदा कर जाते हैं। ये जगे हुए लोग, इनकी मौजूदगी, इनकी बात, इनका चलना, इनका उठना, इनका बैठना; हमारे भीतर भी कहीं कोई, कहीं कोई धक्का दे जाता है। शायद अपने घर की याद दिला जाते हैं।

यह करुणा इसलिए अर्थपूर्ण है। यानी मेरी दृष्टि में तो जगत में कुछ भी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अर्थहीन नहीं है। वासना भी अर्थपूर्ण है, करुणा भी अर्थपूर्ण है, निगोद भी अर्थपूर्ण है, मोक्ष भी अर्थपूर्ण है। संसार किसी से कम अर्थपूर्ण नहीं। लेकिन सबके पीछे जो परम तथ्य है, वह स्वतंत्रता का है। वह हम स्वतंत्रता के तत्व का प्रयोग कर रहे हैं। कैसा कर रहे हैं, यह हम पर निर्भर है। अपने ही हित के लिए कर रहे हैं, अहित के लिए कर रहे हैं, यह हम पर निर्भर है। अपने सुख के लिए कर रहे हैं, अपने दुख के लिए कर रहे हैं, यह हम पर निर्भर है। और इसकी भी स्वतंत्रता है।

और महावीर या बुद्ध जैसे व्यक्तियों ने ईश्वर को जो इनकार किया, उसमें एक कारण यह भी है। ईश्वर के इनकार में—भगवान के इनकार में भगवत्ता का इनकार नहीं है। द गॉड इज रिफ्यूटेड बट नॉट द डिवाइन। ईश्वर इनकार कर दिया है, लेकिन ईश्वरपन में पूर्ण स्वीकृति है। अगर ईश्वर को मानें तो स्वतंत्रता खंडित हो जाएगी। स्वतंत्रता फिर पूरी नहीं हो सकती। और अगर उसके रहते स्वतंत्रता पूरी है, तो वह बेमानी है। यानी अगर वह है भी और उसको हम कहते भी हैं—वह स्रष्टा नियामक, और फिर कहते हैं कि आदमी पूरा स्वतंत्र; तो महावीर कहते हैं दोनों में मेल नहीं है। उसकी मौजूदगी भी बाधा बनेगी। उसका नियमन किसी तरह की परतंत्रता होगा। परमात्मा का इनकार करते हैं, ताकि परतंत्रता का कोई उपाय न रह जाए। इसका यह मतलब नहीं है कि वे परमात्मा को इनकार करते हैं, इसका मतलब यह है कि वे परमात्मा के व्यक्तित्व को इनकार कर देते हैं। और परमात्मा को डिफ्यूज्ड बोइंग बना देते हैं। वे कहते हैं कि वह सबमें व्याप्त, लेकिन नियामक नहीं। सब में व्याप्त परम स्वतंत्र जो है, वही परमात्मा है। उसके ऊपर वे किसी को नहीं बिठाते। क्योंकि उसके ऊपर बिठलाने से परतंत्रता में खंडन हो जाएगा।

फिर हो सकता है, परमात्मा की इच्छा हो, जैसा कि साधारण आस्तिक मानता है कि उसकी इच्छा हुई तो उसने जगत बनाया। तो फिर हम बिलकुल परतंत्र मालूम होते हैं। यानी हमारी इच्छा से हम जगत में नहीं हैं, उसकी इच्छा से हम जगत में हैं। तो फिर उसकी इच्छा होगी तो वह जगत मिटा देगा, हम मोक्ष में हो जाएंगे। और जब तक उसकी इच्छा नहीं होगी तब तक कोई उपाय भी नहीं है! तब जगत बहुत बेमानी है, कठपुतलियों का खेल हो जाता है, जिसमें कोई अर्थ नहीं रह जाता। जहां स्वतंत्रता नहीं है, वहां कोई अर्थ नहीं है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जहां परम स्वतंत्रता है, वहां प्रत्येक चीज में अर्थ है।

और परम स्वतंत्रता की घोषणा के लिए ईश्वर को इनकार कर देना पड़ा कि उसको नहीं हम कोई जगह देंगे, वह है नहीं।

साधारण आस्तिक की दृष्टि में ईश्वर नियामक है, नियंता है, स्रष्टा है, क्रिएटर, कंट्रोलर है। तो स्वतंत्रता खतम हो गई।

परम आस्तिक, गहरे आस्तिक की दृष्टि में ईश्वर यानी स्वतंत्रता।

गॉड इक्वल टू फ्रीडम, टोटल फ्रीडम।

वह जो परम स्वतंत्रता के व्याप्त कण-कण हैं, उन सबका समग्र नाम ही परमात्मा है।

अगर इसको हम समझ पाएं तो फिर पापी को दोष देने का कोई कारण नहीं। इतना ही कहने की जरूरत है कि तूने स्वतंत्रता को जिस ढंग से चुना है, वह दुख लाएगी। इससे ज्यादा कुछ भी कहने का नहीं। लेकिन वह कह सकता है कि अभी मुझे दुख अनुभव करने हैं। निंदा का कोई कारण नहीं, कंडेमनेशन का कोई सवाल नहीं। मैं कहता हूं कि मुझे गड्ढे में उतरना है। आप कहते हैं गड्ढे में प्रकाश नहीं होगा, सूरज की किरणें गड्ढे तक नहीं पहुंचेंगी, वहां अंधरा है। मैं कहता हूं, लेकिन मुझे गड्ढे का अनुभव लेना है। तो अगर आपने अनुभव लिया हो गड्ढे का तो गड्ढे में जाने की सीढ़ियां मुझे बता दें। अगर आप गए हों गड्ढे में...और आप जरूर गए होंगे, क्योंकि आप कहते हैं, वहां सूरज की किरणें नहीं पहुंचतीं। मैं भी जानना चाहता हूं, मैं गड्ढे में जाना चाहता हूं, ताकि गड्ढे में जाने की वासना विदा हो जाए। तो निंदा कहां है?

मेरी दृष्टि में पापी से पापी व्यक्ति की कोई निंदा नहीं है और पुण्यात्मा से पुण्यात्मा व्यक्ति की कोई प्रशंसा नहीं है। क्योंकि सवाल नहीं है यह। यानी वह अपनी स्वतंत्रता का उपयोग कर रहा है, तुम अपनी का करो। और मजा यह है कि तुम तो सुख के लिए कर रहे हो, प्रशंसा की बात क्या है? प्रशंसा ही करनी है तो उसकी करो, जो अपनी स्वतंत्रता का दुख के लिए उपयोग कर रहा है। अजीब आदमी है, हिम्मतवर भी है, साहस की भी जरूरत है। क्योंकि दुख उठाता है और दुख में जाने के लिए स्वतंत्रता का और उपयोग कर रहा है! हो सकता है, वह इतना दुख जानकर लौटे कि उसके लिए सुख की गहराइयों का अंत न रहे।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सभी को जाना पड़ेगा अंधकार में, ताकि वे प्रकाश तक आ सकें।

और सभी को स्वयं को खोना पड़ेगा, ताकि वे स्वयं को पा सकें।

ये बहुत उल्टी बातें मालूम पड़ती हैं, लेकिन यही हैं। और कोई अगर इसको भी पूछे कि ऐसा क्यों है ? तो बेमानी पूछता है। ऐसा है। यानी कोई अगर ऐसा भी पूछे कि ऐसी स्वतंत्रता क्यों है ? अब इसका कोई मतलब नहीं है। ऐसा है। और इससे अन्यथा नहीं है, इसके सिवाय जानने का कोई उपाय नहीं है।

आग जलाती है, कोई पूछे कि क्यों जलाती है ? तो हम कहेंगे, आग जलाती है। बस एक उपाय है कि न जलना हो, हाथ मत डालो आग में; जलना हो, हाथ डाल दो; बाकी आग जलाती है। और आग क्यों जलाती है, इसका कोई उपाय नहीं है। और बर्फ क्यों ठंडा है ? बर्फ ठंडा है और आग आग है। और उपाय यह है कि तुम बर्फ में ठंडक न चाहते हो तो मत जाओ, चाहते हो तो चले जाओ, बाकी बर्फ ठंडा है और आग गर्म है। चीजें जैसी हैं, वैसी हैं।

स्वतंत्रता जो है, वह जगत की मौलिक स्थिति है।

स्टेट ऑफ अफेयर्स—ऐसा है। और इससे अन्यथा नहीं है। और इसके आगे जाने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि अगर कोई कहे कि किसने यह स्वतंत्रता दी ? तो ध्यान रहे, दी गई स्वतंत्रता, स्वतंत्रता नहीं होती। अगर कोई कहे कि किसने यह स्वतंत्रता दी ? तो दी गई स्वतंत्रता स्वतंत्रता नहीं होती। फिर वह भारतीय स्वतंत्रता जैसी हो जाती है। किसी ने स्वतंत्रता नहीं दी है। अगर कोई कहे कि किसने स्वतंत्रता ली ? तो स्वतंत्रता तभी लेनी पड़ती है, जब कि परतंत्रता हो। नहीं तो स्वतंत्रता लेने का कोई सवाल नहीं है।

अगर स्वतंत्रता है—तो न तो कोई उसे देता, न उसे कोई लेता; वह है। वह जगत का स्वरूप है, वह वस्तुस्थिति है, वह स्वभाव है।

और उसके उपयोग की बात है अब। कोई उसको दुख के लिए करता है, करे। कोई सुख के लिए करता है, करे। सुखवाला चिल्लाकर कह सकता है कि भई देखो, उस तरफ जाकर दुख होगा। फिर भी दुखवाला कह सकता है कि आप गए, तब मैं नहीं चिल्लाया। आप क्यों परेशान होते हैं ? मुझे जाने दें। तो बात समाप्त हो जाती है। इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं है।

इसलिए मुझे निरंतर लोग पूछते हैं कि आप इतना लोगों को समझाते हैं, क्या हुआ ? मैंने कहा, यह तो पूछना ही गलत बात है। अगर हम यह पूछते हैं तो हम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उनकी स्वतंत्रता पर बाधा डालते हैं। यानी मेरा काम था कि मैंने चिल्ला दिया। यह मेरा चुनाव था चिल्लाना। उन्होंने मुझे कहा भी नहीं था कि चिल्लाओ। यह मेरी मौज थी कि मैं चिल्लाया। यह मेरा चुनाव था। उनकी मौज थी कि उन्होंने सुना, या मौज थी कि नहीं सुना, या मौज थी कि सुना और अनसुना किया। इस सबमें वे स्वतंत्र थे। इसके आगे पूछने की कोई जरूरत ही नहीं। इसके आगे बात का कोई सवाल ही नहीं। हम सब अपनी स्वतंत्रता में जी रहे हैं और दुख या सुख हमारे निर्णय हैं। और इसलिए बड़ी मौज है। इसलिए जिंदगी बड़ी रसपूर्ण है। क्योंकि कहीं कोई रोकने वाला नहीं है, कहीं कोई मालिक नहीं है, हम ही मालिक हैं। और इतना समझ में आ जाए तो फिर और क्या समझने को शेष रह जाता है ?

प्रश्न : मोक्ष की अवस्था और न-मोक्ष की अवस्था…?

उनका निर्णय है।

प्रश्न : यह भी उनका ही निर्णय है ?

बिलकुल निर्णय है। कोई निर्णायक है ही नहीं आपके सिवाय। वह उनका निर्णय है। अब जैसे कि नसरुद्दीन उसका थैला लेकर भाग गया। वह आदमी यह भी निर्णय कर सकता है कि ठीक है, ले जाओ, हम नहीं आते पीछे, और कभी न लौटे। वह उसका निर्णय है कि वह पीछा करता है। और तब तक पीछा करता है, जब तक पा नहीं लेता। लेकिन वह कह सकता है कि ठीक है, ले जाओ। तो हो सकता है नसरुद्दीन को उसे खोजना पड़े कि वह आदमी कहां गया ? और हालत उल्टी हो जाए। हालत यह हो जाए कि नसरुद्दीन खोजते थक जाए, दुखी हो जाए, परेशान हो जाए। क्योंकि वह कोई चोर तो था नहीं, वह तो बेचारे को लौटाना था।

प्रश्न : यह निर्णय करना कौन कराता है, उसका उत्तर नहीं है ?

जी ?

प्रश्न : यह नहीं करना कौन कराता है ? उसका उत्तर नहीं है ?

कोई नहीं कराता, आप करते हैं। आप करते हैं। कोई कराएगा तो फिर कैसे बात हो गई ? आप करते हैं।

प्रश्न : जैसे स्वतंत्रता है, वैसे ही उत्तर हो गया न ?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हां, बिलकुल वैसे ही है। आप ही निर्णय करते हैं। स्वतंत्रता का मतलब यह हुआ कि निर्णायक आप हैं। और आप ही निर्णय करते हैं।

प्रश्न : प्रारब्ध क्या हुआ फिर ?

कुछ भी प्रारब्ध नहीं है—आपके किए हुए निर्णय हैं। आपके किए हुए निर्णय हैं। आपके किए हुए निर्णय हैं।

प्रश्न : सब अपने ही निर्णय हैं ?

हां, हां, अपने किए हुए निर्णय प्रारब्ध बन जाते हैं। जैसे कि समझो, मैंने एक निर्णय किया कि इस कमरे में बैठूंगा, तो एक ही हो सकता है न ! या तो कमरे में बैठूं या बाहर बैठूं। निर्णय करते ही से प्रारब्ध शुरू हो जाता है। निर्णय का मतलब है कि मैं प्रारब्ध निर्मित कर रहा हूं। अब मैं एक ही हाल में काम कर सकता हूं, या तो बाहर बैठूं या भीतर। भीतर बैठता हूं तो यह प्रारब्ध हो गया मेरा। निर्णय—काम शुरू हो गया। अब मैं बाहर नहीं हो सकता इसी के साथ। एक ही साथ बाहर नहीं हो सकता। अगर बाहर जाऊंगा तो भीतर नहीं जाऊंगा। तो भीतर के सुख-दुख भीतर मिलेंगे, बाहर के सुख-दुख बाहर मिलेंगे। अब वह फिर मेरा प्रारब्ध होगा, क्योंकि मैंने निर्णय किया और वह मैं भोगूंगा।

अब एक आदमी ने निर्णय किया है कि मैं धूप में बैठूंगा। तो ठीक है, तो धूप का जो भी फल होने वाला है, वह मिलने वाला है। इसमें कोई दुनिया में जिम्मेवार नहीं है। धूप का काम है, वह धूप है; आपका काम है कि आप निर्णय किए बाहर बैठने का। आपका चेहरा काला हो जाएगा; वह जिम्मेदारी आपकी है, वह प्रारब्ध हो जाएगा। लेकिन आज अगर चेहरा काला हो गया तो उसको ठीक करने में दस दिन लग जाएंगे। तो दस दिन तक प्रारब्ध पीछा करेगा। क्योंकि वह जो हो गया है, उसका क्रम होगा फिर।

तो हम जिसको प्रारब्ध कहते हैं, वे हमारे अतीत में किए गए निर्णयों का इकट्ठा सार-अंश है। वह हमने निर्णय किए थे, वह उनका···उनकी व्यवस्था हो गई है। वह हमको करना पड़ रहा है।

प्रश्न : और अभी पुरुषार्थ करेंगे तो फिर···?

बिलकुल ही। वह तो सवाल ही नहीं पुरुषार्थ और प्रारब्ध का। पुरुषार्थ का मतलब ही नहीं कुछ है। तुम स्वतंत्र हो आज भी। और आज तुम जो करोगी,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वह फिर निर्णय बनेगा, और फिर एक तरह का प्रारब्ध निर्मित होगा उससे।

बहुत गौर से देखें तो मोक्ष भी एक प्रारब्ध है। वह जो आदमी स्वतंत्र होने का निर्णय करता, करता, करता, करता, अंत में मुक्त हो जाता है।

संसार भी एक प्रारब्ध है।

प्रारब्ध का मतलब ही इतना होता है: तुमने कुछ निर्णय किया, फिर उस निर्णय का फल भोगा।

प्रश्न : शास्त्रों में पुरुषार्थ और भवितव्यता बताई है, उसका क्या है?

शास्त्रों से मुझे कुछ मतलब ही नहीं है। शास्त्रों से क्या लेना-देना! शास्त्र लिखने वाले की मौज थी कि उसने लिखे, तुम्हारी मौज है, पढ़ो न पढ़ो! नहीं। वह कहीं बंधता नहीं। उससे क्या लेना-देना है? उससे क्या प्रयोजन है?

प्रश्न : व्यक्तिगत इच्छा, वही मेन इंपॉर्टेंट प्वाइंट है?

वही है। वही है।

प्रश्न : तो यह रहने की भी स्वतंत्रता अपनी है?

बिलकुल अपनी है।

प्रश्न : कोई क्वांटिटी नहीं है?

यह भी कोई कभी नहीं आएगा आपको रोकने, कि आप कितनी देर हो गए भटकते हुए। कोई सवाल नहीं है। कोई है नहीं। कोई है नहीं, जो आपसे आकर कहेगा कि अनंत काल हो गया।

प्रश्न : फिर वासना के बाद मुक्तता, उस समय स्वतंत्रता का उपयोग वह संसार में आने के लिए करता है?

नहीं कर सकता, क्योंकि एक आदमी आग में हाथ डालने के लिए पहली दफा स्वतंत्रता का उपयोग कर सकता है; लेकिन जल जाने के बाद उपयोग करेगा, मुश्किल है। मेरा मतलब समझी न तू। एक आदमी स्वतंत्रता का उपयोग कर सकता है आग में हाथ डालने का। एक बच्चा है, वह दीये पर हाथ रखकर लौ पकड़ सकता है। स्वतंत्रता का उसने उपयोग किया। लेकिन हाथ जल गया, अनुभव हुआ। अब दुबारा इस बच्चे से कम आशा है कि यह आग की लौ पकड़े। क्योंकि इसका अनुभव भी इसके साथ खड़ा हो गया। अब इस स्वतंत्रता का वैसा उपयोग करना मुश्किल है।

तो जो मुक्त हो गया, वह संसार के दुख झेलने के लिए वासना करे, यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

असंभव है। यह असंभावना उसके अनुभव के कारण है, और कोई नहीं। चाहे तो आ जाए, लेकिन चाह नहीं सकता। यानी यह जो···चाहे तो कोई रोकने वाला नहीं है उसको।

महावीर अगर सिद्धशिला छोड़कर वापस दिल्ली आना चाहें तो कोई रोक नहीं सकता। कौन रोकने वाला है? लेकिन महावीर नहीं आ सकते, क्योंकि अब अनुभव भी साथ है। दिल्ली का अनुभव काफी भोग लिया, वह दुख काफी झेल लिया। वह अनुभव इतना गहरा हो गया कि उसका कोई अर्थ नहीं है, उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सुख, दुख और महावीर-आनंद

प्रवचन : २४, दिनांक : २ अक्तूबर, १९६९, पहलगांव

दुख, सुख और आनंद इन तीन शब्दों को समझना बहुत उपयोगी है।

दुख और सुख भिन्न चीजें नहीं हैं, बल्कि उन दोनों के बीच जो भेद है, वह ज्यादा मात्रा का, परिमाण का, डिग्री का भेद है।

और इसलिए सुख दुख बन सकता है और दुख सुख बन सकता है।

जिसे हम सुख कहते हैं, वह भी दुख बन सकता है और जिसे दुख कहते हैं, वह भी सुख बन सकता है। इन दोनों के बीच जो फासला है, जो भेद है, वह विरोधी का नहीं है। भेद मात्रा का है।

एक आदमी को हम गरीब कहते हैं और एक आदमी को अमीर कहते हैं, गरीब और अमीर में भेद किस बात का है? विरोध है दोनों में? आमतौर से ऐसा दिखता है कि गरीब और अमीर विरोधी अवस्थाएं हैं, लेकिन सचाई यह है कि गरीबी और अमीरी एक ही चीज की मात्राए हैं। एक आदमी के पास एक रुपया है तो गरीब है और एक करोड़ रुपया है तो अमीर है। अगर एक रुपये में गरीब है, तो एक करोड़ में अमीर कैसे हो सकता है? इतना ही हम कह सकते हैं कि एक करोड़ गुना कम गरीब है। और अगर एक करोड़ वाला अमीर है तो एक रुपये वाला गरीब कैसे हो सकता है? फिर इतना ही हम कह सकते हैं कि वह एक करोड़ गुना कम अमीर है। इन दोनों में जो भेद है, वह भेद ऐसा नहीं है, जैसा दो विरोधियों में होता है। वह भेद ऐसा है, जैसा एक ही चीज की मात्राओं में होता है। लेकिन गरीबी दुख हो सकती है और अमीरी सुख हो सकती है। और गरीब दुखी है और अमीर होना चाहता है।

तो दुख और सुख में भी जो भेद है, वह भेद भी मात्रा का ही है इसी भांति। हमारी सारी सुख की अनुभूतियां दुख से जुड़ी हुई हैं और हमारी सारी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दुख की अनुभूतियां भी सुख से जुड़ी हुई हैं। इन दोनों के बीच जो डोल रहा है, वह संसार में है। संसार में होने का मतलब इतना ही नहीं है कि सिर्फ दुखानुभूति। अगर संसार में सिर्फ दुख की अनुभूति हो तो कोई भटके ही नहीं, फिर तो भटकने का उपाय ही न रहा। भटकता सिर्फ इसलिए है कि सुख की आशा होती है, अनुभूति दुख की होती है। और सुख मिल जाता है तो मिलते ही दुख में बदल जाता है।

संसार की अनुभूति को दो-तीन तरह से देखना चाहिए।

एक तो यह कि सुख सदा भविष्य में होता है—कल मिलेगा।

और कल मिलने वाले सुख के लिए आज हम दुख झेलने को तैयार होते हैं! आज के दुख को हम इस आशा में झेल लेते हैं कि कल सुख मिलेगा। अगर कल सुख की कोई आशा न हो तो आज के दुख को एक क्षण भी झेलना बहुत कठिन है।

उमर खैय्याम ने एक गीत लिखा है और उस गीत में वह कहता है कि मैं बहुत जन्मों से भटक रहा हूं ओर सबसे पूछ चुका हूं कि आदमी भटकता क्यों है? लेकिन कोई उत्तर नहीं मिलता। और तब मैंने थककर एक दिन आकाश से ही पूछा कि तूने तो सब भटकते लोगों को देखा है, और उन सबको भी देखा जो भटकने के बाहर हो गए हैं, और उन सबको भी देखता रहेगा जो भटकन में आएंगे, और उनको भी देखता रहेगा जो भटकन के बाहर होंगे। तू ही मुझे बता दे कि आदमी भटकता क्यों है? तो चारों तरफ आकाश से—वह उसमें अपने गीत में कहता है—मुझे आवाज सुनाई पड़ी आशा के कारण: बिकाज ऑफ होप!

आदमी भटकता क्यों है?

आशा के कारण।

और आशा क्या है?

इस बात की सभावना कि कल सुख मिलेगा।

इस बात की, इस बात का आश्वासन कि कल सुख मिलेगा। आज दुख झेल लो, कल सुख मिलेगा! आज का दुख हम झेलते हैं, कल के सुख की आशा में! फिर कल जब सुख मिलता है तो बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटती है। सुख मिलते ही फिर दुख हो जाता है। जो चीज उपलब्ध हो जाती है, कितनी कल्पना की थी कि उसके मिलने पर यह होगा, यह होगा, यह होगा। और प्रत्येक व्यक्ति

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अपने अनुभव को थोड़ा जांचेगा तो हैरान होगा कि मैंने कितने-कितने सपने संजोए। यह होगा, यह होगा, यह होगा। फिर वह चीज मिल गई, और पाया कि कुछ भी न हुआ। वे सब के सब सपने कहां खो गए, कुछ पता न चला। वे सब की सब कल्पनाएं कैसे विलीन हो गईं, कुछ पता न चला। चीज हाथ में आई कि जो-जो उसके मिलने की संभावना में छिपा हुआ सुख था, वह एकदम तिरोहित हो जाता है।

जब तक नहीं मिलता, तब तक प्रतीक्षा में सुख मालूम होता है, जब मिल जाता है, सब सुख समाप्त हो जाता है!

फिर नई दौड़ शुरू हो जाती है। क्योंकि जहां दुख है, वहां से हम भागेंगे। यह भी समझ लेना चाहिए।

जहां दुख है, वहां हम रुक नहीं सकते। वहां से हम भागेंगे। क्योंकि जहां दुख है, वहां कैसे रुका जा सकता है?

दुख भगाता है। दुख से हम हट जाना चाहते हैं। और दुख से हटने का उपाय क्या है? एक ही उपाय दिखाई पड़ता है साधारणतः, और वह यह है कि सुख की किसी आशा में हम आज के दुख को भुला दें, विस्मरण कर दें। तो फिर जैसे ही दुख शुरू होता है, हम नई आशा सुख की बनाते हैं। उस आशा में हम वह सब डाल देते हैं, जो हमारे दुख से विपरीत है। वह सब समाविष्ट कर देते हैं, जो हम चाहते हैं कि हो। और इस तरह आदमी जीता दुख में है!

जीता दुख में है, होता दुख में है; लेकिन आंखें उसकी सुख में लगी रहती हैं! जैसे आदमी चलता पृथ्वी पर हो और देखता सदा आकाश को रहे। आकाश पर देखने में एक सुविधा हो सकती है कि पृथ्वी पर होना भूल जाए, फिर भी होगा पृथ्वी पर।

हम खड़े हैं दुख में, लेकिन आंखें सदा सुख में अटकी रहती हैं! इससे सुविधा यह हो जाती है कि दुख को हम भूल जाते हैं और दुख को झेलने की क्षमता उपलब्ध कर लेते हैं।

अब अगर बहुत गहरे में देखा जाए तो सुख जो है, वह सिर्फ संभावना है, सत्य कभी भी नहीं। दुख सदा सत्य है, तथ्य है, वास्तविक है। लेकिन दुख कैसे झेला जाए? तो हम उसे सुख की आशा में झेल लेते हैं।

कल का सुख आज के दुख को सहने योग्य, सहनीय बना देता है!

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और वह सुख जो कल का है, वह कभी मिलता नहीं।

और जिस दिन मिल जाता है, भूल-चूक से, उसी दिन हम पाते हैं कि भ्रांति टूट गई, इल्यूजन टूट गया। वह जो आशा हमने बांधी थी, गलत सिद्ध हुई। लेकिन इससे सिर्फ इतना ही हम समझ पाते हैं कि यह सुख गलत था! दुसरे सुख गलत नहीं हैं, उनकी आशा में भागे दौड़ते रहो। यह भूल थी, लेकिन अब यह भूल भ्रांत सिद्ध हो गई, टूट गई। दुख आ गया तो अब फिर चित्त भागेगा। यानी हम एक आशा से उखड़ते हैं, लेकिन आशा मात्र से नहीं उखड़ जाते। एक सुख की व्यर्थता को जान लेते हैं, लेकिन सुख मात्र की व्यर्थता को नहीं जान पाते हैं। इसलिए दौड़ जारी रहती है। अगर दुख ही हो जीवन में और सुख की कोई संभावना का भाव भी न हो, तो—तो एक व्यक्ति एक क्षण संसार में नहीं रह सकता। एक क्षण भी रहना मुश्किल है। एक क्षण में ही मुक्त हो जाए। लेकिन आशा उसे आगे गतिमान रखती है।

और वह जो मैंने कहा कि मुक्त व्यक्ति को जो मिलता है, उसे सुख नहीं कहना चाहिए—शब्द तो हम कोई भी उपयोग कर सकते हैं—उसे सुख नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उसे जो मिलता है, वह सुख और दुख दोनों से भिन्न है। इसलिए उसे आनंद कहना चाहिए। उसे नया शब्द देना चाहिए। अब यह बड़े मजे की बात है कि आनंद से विपरीत शब्द तुमने न सुना होगा। सुख-दुख एक दूसरे के विपरीत हैं, लेकिन आनंद के विपरीत कौन-सा शब्द है?

आनंद के विपरीत कोई शब्द नहीं है। आनंद के विपरीत कोई अवस्था ही नहीं है। और आनंद सुख नहीं है, अगर उसे सुख बनाया तो वह बात और होगी। वह फिर दुख की दुनिया शुरू हो गई। तो साधारणतः हम कहते हैं, वह व्यक्ति आनंद को उपलब्ध होता है, जो दुख से मुक्त हो जाता है। लेकिन इस कहने में थोड़ी भ्रांति है। कहना ऐसा चाहिए, आनंद को वह व्यक्ति उपलब्ध होता है, जो सुख-दुख से मुक्त हो जाता है। क्योंकि वे जो सुख-दुख हैं, वे कोई दो चीजें नहीं हैं। और इसलिए साधारणजन को निरंतर यह गलती हो जाती है समझने में, कि वह आनंद को सुख ही समझ लेता है। यह समझता है, दुख से मुक्त हो जाना सुख है। इसलिए बहुत-से लोग सत्य की खोज में या मोक्ष की खोज में भी वस्तुतः सुख की ही खोज में होते हैं। इसलिए महावीर ने एक बहुत बढ़िया काम किया। सुख के खोजी को उन्होंने कहा, वह स्वर्ग का खोजी है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आनंद के खोजी को उन्होंने कहा, वह मोक्ष का खोजी है। मोक्ष और स्वर्ग में जो फर्क है, वह खोज का है।

दुख का खोजी नरक का खोजी है, सुख का खोजी स्वर्ग का खोजी है, लेकिन दोनों से अलग जो मुक्ति का खोजी है, वह मोक्ष का खोजी है। स्वर्ग मोक्ष नहीं है।

महावीर के पहले बहुत व्यापक धारणा यही थी कि स्वर्ग परम उपलब्धि है! उसके आगे क्या उपलब्धि! सब सुख जहां मिल गया, वह परम उपलब्धि है। लेकिन इस बड़े मनोवैज्ञानिक सत्य को समझना चाहिए, कि जहां सुख होगा, वहां दुख अनिवार्य है। जैसे जहां उष्णता होगी, वहां शीत अनिवार्य है। जैसे जहां प्रकाश होगा, वहां अंधकार अनिवार्य है। असल में ये एक ही सत्य के दो पहलू हैं और एक साथ ही जीते हैं। और इनमें से एक को बचाना और दूसरे को फेंक देना असंभव है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही किया जा सकता है कि हम एक को ऊपर कर लें और दूसरा नीचे हो जाए। जब हम सुख के भ्रम में होते हैं, तब दुख नीचे छिपा होता है और प्रतीक्षा करता है कि कब प्रकट हो जाऊं। और जब हम दुख में होते हैं, तब सुख नीचे छिपा होता है और प्रतिपल आशा दिए जाता है कि अभी प्रकट होता हूं, अभी प्रकट होता हूं। लेकिन दोनों चीजें एक ही हैं।

और यह अगर समझ में आ जाए तो सुख का भ्रम टूटता है। सुख का भ्रम टूटे तो दुख का साक्षात् होता है। सुख का भ्रम बना रहे तो दुख का साक्षात् नहीं होता। क्योंकि उस भ्रम के कारण हम दुख को सहनीय बना लेते हैं। हम उसे सह जाते हैं, झेल जाते हैं।

सुख का भ्रम दुख का पूर्ण साक्षात् नहीं होने देता।

जैसा दुख है, उसे पूरा प्रकट नहीं होने देता। उसकी पूरी पैनी धार हमें छेद नहीं पाती। सुख दुख की धार को बोथला कर देता है। असल में हम दुख की तरफ देखते ही नहीं, हम सुख की तरफ ही देखे चले जाते हैं! दुख इधर पैरों के नीचे से निकलता है, लेकिन हम कभी आंख गड़ाकर दुख को नहीं देखते! हम सदा एस्केप कर जाते हैं। दुख से सुख की आशा में हम सदा भागे चले जाते है। जो व्यक्ति सुख के भ्रम से मुक्त होगा, जिसे यह दिखाई पड़ेगा कि सुख जैसा कुछ भी तो नहीं हूं...।

लौटकर पीछे देखो तो ख्याल में आ सके। हम सदा देखते हैं आगे, इसलिए

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ख्याल में नहीं आता है। लौटकर पीछे देखो, कब था जब सुख पाया? ऐसा कौन-सा क्षण था, जब सुख पाया? पीछे लौटकर देखो, क्योंकि वहां घटनाएं घट चुकी हैं। ऐसा कौन-सा क्षण था, जब सुख पाया? तो बड़ी हैरानी होगी पीछे लौटकर देखने पर। एकदम मरुस्थल पड़ता है, जहां सुख का कोई फूल कभी नहीं खिला। हालांकि बहुत बार, जब यह जो अब अतीत हो गया, पास्ट हो गया, जब अतीत नहीं था, भविष्य था, तो इसमें भी हमने सोचा था कि सुख मिलेगा, मिलेगा, मिलेगा। फिर वह अतीत हो गया और हमारी आशा और भविष्य में चली गई। कल जो भविष्य था, आज अतीत हो गया है। आज जो भविष्य है, कल अतीत हो जाएगा। और अतीत को लौटकर देखो कि सुख कभी मिला? हालांकि ठीक इतनी ही आशा तब भी थी। मिलने की, पाने की, उपलब्धि की इतनी ही धारणा तब भी थी। वह नहीं मिला लेकिन। और उतनी ही धारणा अब भी है। और आगे भी हम वही कर रहे हैं, जो हमने पीछे किया था। आज को झेल रहे हैं कल की आशा में। इसलिए आज को देख नहीं पाते।

इस सूत्र को समझ लेना चाहिए : जो सुख के भ्रम में है, वह दुख का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

सुख का भ्रम, साक्षात्कार दुख का होने ही नहीं देता। बल्कि असलियत तो यही है कि हम सुख का भ्रम ही इसलिए पैदा करते हैं, ताकि दुख का साक्षात्कार न हो सके। एक आदमी भूखा पड़ा है, भूख का साक्षात्कार नहीं कर पाता। क्योंकि वह उस वक्त कल भोजन जो बनेगा, मिलेगा, मिल सकता है, उसके सपने देख रहा है। एक आदमी बीमार पड़ा है, वह बीमारी का साक्षात्कार नहीं कर पाता, क्योंकि वह उन सपनों में खोया है, कल जब वह स्वस्थ हो जाएगा।

हम पूरे समय चूक गए हैं उस जगह से, जहां हम हैं। और जहां हम हैं, वहां निरंतर दुख है। शायद उस दुख को झेलना इतना कठिन है कि हमें चूकना पड़ता है, भागना पड़ता है; एस्केप कर जाते हैं, पलायन कर जाते हैं। सुख का भ्रम टूट जाए तो भागोगे कहां? यह कभी सोचा? अगर सुख का भ्रम टूट जाए तो हम भागेंगे कहां? हम जाएंगे कहां? हमें दुख में जीना पड़ेगा, दुख भोगना पड़ेगा, दुख जानना पड़ेगा। दुख के साथ आंखें गड़ानी पड़ेंगी, क्योंकि कोई उपाय नहीं कहीं और जाने का। हम हैं और दुख है।

जो व्यक्ति दुख का साक्षात्कार करे, वह उस तीव्रता पर पहुंच जाता है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जहां से वापसी शुरू होती है, जहां से वह लौटता है।

जो मैंने सुबह कहा, दुख की पूरी पीड़ा, पूरी सफरिंग, जब सब तरफ से कांटे दुख के उसे छेद लेते हैं, और भविष्य में कोई आशा नहीं रह जाती, और आगे कुछ भी उपाय नहीं रह जाता, तब वह जाएगा कहां ? जब आगे बाहर भविष्य में कोई आशा नहीं, तब वह अपने में लौटता है। जिस दिन दुख का पूरा साक्षात्कार होता है, उसी दिन वापसी शुरू हो जाती है, उसी दिन व्यक्ति लौटने लगता है। इसे समझ लेना।

दुख से भागोगे तो सुख में पहुंच जाओगे।

दुख में जागोगे तो आनंद में पहुंच जाओगे।

दुख से भागे कि सुख। वह भागने का तरकीब है।

दुख से नहीं भागे, दुख में खड़े ही हो गए, दुख को पूरा देखा हो, दुख का साक्षात् किया और रूपांतरण शुरू हुआ।

क्योंकि जैसे ही दुख का पूरा साक्षात्कार होगा, हम वही फिर कैसे कर सकेंगे, जो दुख लाता है ? हम फिर उन्हीं ढंगों से कैसे जी सकेंगे, जिससे दुख आता है ? हम फिर उन्हीं वासनाओं, उन्हीं तृष्णाओं में कैसे घिरेंगे, जिनका फल दुख है ? हम फिर वे ही बीज कैसे बोएंगे, जिनके फलों में दुख आता है ? लेकिन यह दुख के पूरे साक्षात्कार से—एनकाउंटर विथ सॉरो। वह है वहां पीड़ा, सफरिंग है, लेकिन उसको हमने कभी आंख मिलाकर देखा नहीं। दुख का साक्षात् अनिवार्यरूपेण आनंद की यात्रा बन जाता है। तुम्हें जाना नहीं पड़ता, बस तुम जाना शुरू हो जाते हो। क्योंकि तुम पहचानते हो कि यह-यह मैंने किया।

बुद्ध कहते हैं, यह किया, उससे यह हुआ, तो यह मत करो, उससे यह नहीं होगा—ऐसा नियम है। हमने यह किया—मैंने गाली दी, गाली लौटी। मैंने गाली दी, मैंने दुख दिया, दुख आया। अब अगर मैं इस दुख का पूरा-पूरा बोध मुझे हो जाए, इसका छुरा मेरी छाती में पूरा घुस जाए और मैं कोई सपने देखकर इसे भुला न दूं, तो क्या होगा ? तो यही होगा न कि कल मैं गाली नहीं दूंगा ? कल मैं किसी को दुख नहीं पहुंचाऊंगा। क्योंकि पहुंचाया गया दुख वापस लौट आता है। और तब दुख की संभावना क्षीण होती चली जाएगी। उदाहरण के लिए मैंने कहा। इसी तरह जीवन के प्रत्येक विकल्प पर कैसे-कैसे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दुख पैदा होता है, वह मुझे दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। जो चीज दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी ···।

कोई आदमी दुख में कभी नहीं उतरता। सब आदमी सुख की नाव पर सवार होते हैं। दुख की नाव पर कोई सवार नहीं होता। कौन दुख की नाव पर सवार होने को राज़ी होगा ? अगर पक्का पता है कि यह नाव दुख की है, और दुख के घाट पर उतार देगी, तो कौन सवार होगा ? हम नाव में सवार होते हैं दुख की, लेकिन घाट सदा सुख का होता है, इसलिए सवार हो जाते हैं। इसलिए आशा यह रहती है कि कोई फिक्र नहीं, अभी थोड़ा, राह में नाव अगर थोड़ा कष्ट भी देती है, डूबने का डर भी देती है, तो भी कोई फिक्र नहीं, घाट उस पार सुख है। लेकिन दुख की नाव सुख के घाट पर कैसे पहुंच सकती है ? असल में दुख देने वाला साधन सुख का साध्य कैसे बन सकता है ? असल में प्रथम कदम पर जो हो रहा है, वही अंतिम पर भी होगा। बहुत गहरे में दि फर्स्ट इज दी लास्ट। क्योंकि वहीं से शुरुआत हो गई।

अगर मैंने एक ऐसा कदम उठाया जो अभी दुख दे रहा है, तो यह कैसे संभव है कि यही कदम कल और आगे बढ़कर सुख दे देगा ? इतना ही संभव है कि कल और आगे बढ़कर यह और ज्यादा सुख दे देगा। क्योंकि आज तो छोटा है, कल और बड़ा हो जाएगा। मैं दस कदम और उठा लूंगा, परसों और दस कदम उठा लूंगा, और यह रोज बढ़ता चला जाएगा। यह दुख का छोटा-सा बीज रोज वृक्ष होता चला जाएगा। इसमें और शाखाएं निकलेंगी, इसमें और फल लगेंगे, इसमें और फूल लगेंगे। और न केवल फूल, बल्कि एक बीज बहुत जल्दी वृक्ष से हज़ार, करोड़ बीज हो जाएगा। वे बीज गिरेंगे और वृक्ष उठेंगे। और यह फैलता चला जाएगा। और यह अंतहीन फैलाव है। यानी एक बीज कितने वृक्ष पैदा कर सकता है, कोई हिसाब लगाया है किसी ने भी कभी ? शायद पृथ्वी पर जितने वृक्ष हैं, एक हीबीज पैदा करसकता है। पृथ्वी पर थोड़े ही वृक्ष हैं, शायद सारे ब्रह्मांड में जितने वृक्ष हैं, एक ही बीज पैदा कर सकता है। एक बीज की कितने फैलने की अनंत संभावना है, इसे अगर सोचने जाओगे तो एकदम घबड़ा ही जाओगे। अनंत संभावना है, इसलिए कि एक बीज करोड़ बीज हो सकता है। फिर प्रत्येक बीज करोड़ बीज होता चला जाता है, होता ही चला जाता है। इसका कोई फैलाव का रुकाव नहीं है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो हम जो पहला कदम उठाते हैं, वह बीज बन जाता है और अंतिम फल उसकी सहज परिणति है। लेकिन हम उठा लेते हैं इस आशा में, कि बीज तो जहर का बो देते हैं, इस आशा में कि फल अमृत के होंगे। वे कभी अमृत के नहीं होते हैं। बार-बार हमने अनुभव किया है। निरंतर-निरंतर, प्रतिपल हमने यह जाना है कि बीज बोए थे, वही फल आ गए। लेकिन हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं। और जब फल आते हैं तो हम कहते हैं, जरूर कहीं कोई भूल हो गई। जरूर कहीं कोई भूल हो गई, जरूर कहीं कोई गलती हो गई है, जरूर परिस्थितियां अनुकूल न थीं। हवाएं ठीक न बहीं, सूरज वक्त पर न निकला, वर्षा ठीक समय पर न हुई, ठीक वक्त खाद न डाला गया, इसलिए फल कड़वे आ गए। सब चीज पर दोष देते हैं, एक चीज को छोड़ जाते हैं, कि बीज जहरीला था! और मजे की बात यह है कि अगर वर्षा समय पर न हुई हो, अनुकूल परिस्थिति न मिली हो, माली ने ठीक वक्त खाद न दिया हो, सूरज न निकला हो, इस कारण सिर्फ इतना ही हो सकता है कि फल जितना बड़ा हो सकता था, उतना बड़ा न हुआ हो। यानी इस कारण इतना ही हो सकता है कि जितना जहरीला फल मिला, वह छोटा ही रहा हो। और बड़ा जहरीला फल मिल सकता था, अगर सब अनुकूल होता। इसे थोड़ा समझना चाहिए।

जितना दुख हमें मिलता है, आमतौर से हम यह कह देते हैं कि यह परिस्थितियों के ऊपर निर्भर है। यह परिस्थितियां हमें दुख दे रही हैं। मैं तो ठीक हूं। मित्र गलत है, पत्नी गलत है, पिता गलत है। संसार ही गलत है। परिस्थितियां गलत हैं—गलत हैं, मैं तो ठीक हूं। ऐसे हम बीज को बचा रहे हैं। मैंने जो किया, वह ठीक है। लेकिन अनुकूल न मिला साथ, हवाएं उल्टी बह गईं, सूरज न निकला, सब गड़बड़ हो गया। लेकिन ध्यान रहे, अगर प्रतिकूल परिस्थितियों में इतना कड़वा फल आया तो अनुकूल परिस्थितियों में कैसा कड़वा फल आता, इसका कोई हिसाब है? हमें ख्याल में नहीं है। हम जो इच्छाएं करते हैं, अगर वे पूरी की पूरी, पूरी हो जाएं तो हम इतने बड़े दुख में गिरें, जितने दुख में हम कभी भी नहीं गिरे। इसे थोड़ा समझना चाहिए।

आमतौर से हम सोचते हैं कि हम इसलिए दुखी हैं कि हमारी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं। हमारा तर्क यह है, हमारे दुख का कारण यह है कि हम जो इच्छा करते हैं, वह पूरी नहीं होती। जबकि सचाई यह है कि हमारे दुख का कारण यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है कि हम जो इच्छा करते हैं, वह दुख का बीज है। और वह बिना पूरे हुए इतना दुख दे जाती है, अगर पूरी हो जाए तो कितना दुख दे जाएगी, बहुत मुश्किल है कहना। सोचें, कोई भी एक इच्छा को सोचें, अगर वह बिलकुल पूरी हो जाए।

एक प्रेमी है, वह एक प्रेयसी को चाहता है। जितनी देर नहीं मिलती है प्रेयसी उतनी देर आशा का सुख वह भोगता है, प्रतीक्षा का सुख भोगता है। अभी इच्छा पूरी नहीं हुई। हालांकि उस वक्त वह बहुत दुखी रहता है। उस वक्त उससे पूछो तो वह कहेगा, मैं इतना दुखी हूं, जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि जिसे पाना है, वह नहीं मिल रहा है। हजार बाधाएं आ रही हैं। एक प्रेमी को जब वह अपनी प्रेयसी को पाने की खोज में लगा है, या एक प्रेयसी अपने प्रेमी को पाने की खोज में लगी है, जब तक वह नहीं मिल गया है···जो जानते हैं वे कहेंगे, जितना सुख उस वक्त पर भोग लिया, वही काफी है। हालांकि वह कोई भी नहीं कहेगा कि मैंने सुख भोगा उस वक्त। इतनी पीड़ा झेली, जिसका कोई हिसाब नहीं है। लेकिन प्रेयसी मिल जाए, एक इच्छा पूरी हुई मिलने की। और मिलते ही जो आशाएं थीं, वे सब तत्काल क्षीण हो जाएंगी। क्योंकि पाने का जो, आक्रमण का, विजय का, जीतने का, सफल होने का, जो भी सुख था, वह सब गया। सफल हो गए। पा लिया। वह जो इतने दिन तक आशा थी कि पाने पर यह होगा, यह होगा, यह होगा ; वह आशा भी गई। क्योंकि वह सब आशा पाने से संबंधित न थी, वह सब आशा हमारे ही सपने और काव्य थे, हमारी ही कल्पनाएं थीं, जो हमने आरोपित की थीं। और एक प्रेयसी दूर से जैसी लगती है, वैसी पास से नहीं।

दूर के ढोल सुहावने होते, दूर की सभी चीजें सुहावनी होती हैं। असल में दूरी एक सुहावनापन पैदा करती है। फासला जो है, वह बहुत चार्मिंग है। जितनी दूरी,उतना सुखद। क्योंकि दूर से हम चीजों को पूरा-पूरा नहीं देख पाते हैं। असल में दूर से हम ठीक से देख ही नहीं पाते। थोड़ा-सा देख पाते हैं, बहुत नहीं देख पाते। जो नहीं देख पाते हैं, वह हम अपना सपना ही उसकी जगह रख देते हैं। दूर से एक व्यक्ति को हम देखते हैं, दिखती है रूप-रेखा, लेकिन बहुत कुछ हम अपने सपने से उसमें जोड़ देते हैं। जो हमने ही जोड़ा है—जिसमें दूसरे व्यक्ति का कोई कसूर नहीं है। जो हमने ही जोड़ा है। लेकिन निकट आने पर जो हमने जोड़ा था, वह पिघलकर बहने लगेगा। निकट आने पर जो हमने सपना

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जोड़ दिया था, काव्य जोड़ दिया था, वह मिटने लगेगा। जैसा व्यक्ति था, वैसा प्रकट होगा। ऐसा हमने कभी भी नहीं सोचा था। असल में हम सोच भी कैसे सकते हैं कि दूसरा व्यक्ति कैसा होगा? हम सिर्फ कामना कर सकते हैं कि ऐसा हो। लेकिन हमारी कामनाओं के अनुकूल न किसी व्यक्ति का जन्म हुआ है। उस व्यक्ति का जन्म उसकी अपनी कामनाओं के अनुकूल हुआ है। कोई किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं के अनुकूल पैदा नहीं हुआ है इस जगत में। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुकूल पैदा हुआ है। लेकिन हमने अपनी इच्छाएं आरोपित की थीं, वे मिलते ही खंडित हो जाएंगी। और वह व्यक्ति प्रकट होगा, जैसा हमने उसे कभी भी नहीं जाना था। और जितने हमने सपने जोड़े थे, वास्तविकता उन सबको तोड़ देती है, एक-एक चीज को तोड़ देती है।

फिर हमने चाहा था कि व्यक्ति पूरा मिल जाए। यानी मैं कहूं रात, तो वह कहे रात। मैं कहूं दिन, तो वह कहे दिन। यह इच्छा पूरी नहीं होती। क्योंकि ऐसा व्यक्ति ही खोजना कठिन है कि आप जो कहें, वैसा ही हो जाए। और मजे की बात यह है कि उसने भी यही कामनाएं की थीं! उसने भी यही कामनाएं की थीं कि मैं कहूं रात तो रात, और मैं कहूं दिन तो दिन। दोनों के प्रेम की कसौटी यही थी। उसकी भी कसौटी यही है। और तब बड़ी मुश्किल हो गई बात। क्योंकि आप भी उससे कहलवाना चाहते हैं, वह भी आपसे कहलवाना चाहता है। और सोचा था शांति, और होगा संघर्ष। सोचा था सुख, और होगा विषाद लेकिन मजे की बात यह है कि हम यह कहेंगे, यह तो इसलिए हो रहा है!

यही मैं समझाना चाह रहा हूं—हम कहेंगे, यह तो इसलिए हो रहा है कि मैंने जो चाहा था, वह नहीं हो सका। मैंने चाहा था कि मैं कहूं रात, तो वह भी कहे रात। यह नहीं हो सका, इसलिए मैं दुखी हूं। इच्छा के कारण दुखी नहीं हू, गलत व्यक्ति मिल गया। गलत व्यक्ति मिल गया, इच्छा पूरी नहीं होती, इसलिए दुखी हू। इच्छा का तर्क यही है। उसका तर्क यही है कि मैं पूरी नहीं हो रही, इसलिए तुम दुखी हो। काश, मैं पूरी हो जाऊं तो सुख हो जाए! काश दूसरा व्यक्ति मिल जाता इसकी जगह!

लेकिन समझो एक क्षण को, कि इच्छा पूरी हो गई। कि तुमने कहा रात, तो उस दूसरे व्यक्ति ने कहा रात, हालांकि दिन था। तुमने उसके पैर में जंजीरें बांधी, तो भी तुमसे कहा आभूषण, तो उसने कहा आभूषण! तुमने उस व्यक्ति

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को पाया कि वह तुम्हारे बिलकुल ही—तुम जैसे हो, वैसा ही है—तुम्हारी छाया। और मजे की बात यह है कि ऐसे व्यक्ति को पाकर जितना दुख होगा, उसका हम अनुमान नहीं लगा सकते। क्योंकि वह व्यक्ति ही नहीं होगा, वह एक मशीन होगा। वह एक यंत्र होगा। उसमें कोई व्यक्तित्व नहीं होगा। उसमें कोई आत्मा नहीं होगी। और जिस व्यक्ति में कोई आत्मा नहीं, जिसमें कोई व्यक्तित्व नहीं, उसे तुम प्रेम कर पाओगे? उसे तुम एक क्षण प्रेम नहीं कर सकते हो। यदि इच्छा पूरी हो जाए तो जितना दुख होगा, उतना इच्छा के न पूरे होने से कभी भी नहीं हुआ है। कोई भी छाया नहीं खरीदना चाहता, हम व्यक्ति चाहते हैं। मगर हमारी इच्छा बड़ी अनूठी है। हम ऐसा व्यक्ति चाहते हैं जो हमारी माने। ये दोनों बातों में कोई मेल ही नहीं है। अगर वह व्यक्ति होगा तो अपने ढंग से जिएगा। और अगर हमारी मानेगा तो व्यक्ति नहीं होगा। उसमें कोई आत्मा नहीं होगी। वह मरी हुई चीज होगी। वह फर्नीचर की तरह होगा, जिसे कहीं भी उठाकर रख दिया, वह वहीं रखा रह गया है। यह मैंने उदाहरण के लिए कहा।

हमारी कोई भी इच्छा यदि पूरी हो जाए—समझ लें। इसको छोड़ दें, एक दूसरा उदाहरण ले लें। एक आदमी गरीब है और वह कहता है कि मैं इसलिए दुखी हूं कि जितना धन मैं चाहता हूं, वह मुझे नहीं मिलता। अगर मुझे उतना धन मिल जाए तो मैं दुखी न रहूं। ठीक है, उसे उतना धन दे दिया जाए। पहली तो बात यह कि उतना धन मिलने पर उसकी इच्छा आगे चली जाएगी। वह कहेगी, इतने से क्या होता है? यह तो कुछ भी नहीं है। और चाहिए, और चाहिए। समझ लें कि उसकी इच्छा है कि सारे जगत का धन उसे मिल जाए। यह पूरी नहीं होगी, इसलिए बड़ा दुख है। समझ लें कि एक आदमी की यह इच्छा पूरी हो जाए कि उसे सारी पृथ्वी का धन मिल जाए, क्या आपको पता है कि वह कितना दुख झेलेगा? आपको कल्पना में नहीं है। क्योंकि धनी होने का मजा इसमें था—धनी होने का मजा ही इसमें था कि दूसरे धनियों को पीछे छोड़ा। धनी होने का मजा ही इसमें था कि प्रतियोगिता थी, प्रतिस्पर्धा थी, कांपिटीशन था, उसमें हम जीते। अगर एक व्यक्ति को सारे पृथ्वी का धन मिल जाए उसकी इच्छा के अनुकूल, वह व्यक्ति एकदम उदास हो जाएगा। क्योंकि न अब कोई प्रतिस्पर्धा है न कोई प्रतिस्पर्धा का उपाय है। अगर सारी पृथ्वी का धन एक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

व्यक्ति को मिल जाए तो वह आत्महत्या कर लेगा। क्योंकि वह कहेगा, अब क्या? अब क्या करें? और वह इतना उदास हो जाएगा।

सिकंदर के संबंध में कथा है कि सिकंदर से डायोजनीज ने कहा कि यदि तूने सारी पृथ्वी जीत ली तो सोचा है कि फिर क्या होगा? सिकंदर ने कहा, अभी तो जीतना ही मुश्किल है। लेकिन डायोजनीज ने कहा समझ ले, जीत ही ली, फिर क्या होगा? क्योंकि दूसरी पृथ्वी नहीं है जीतने को। और कहानी है कि सिकंदर एकदम उदास हो गया यह बात सुनकर कि दूसरी पृथ्वी नहीं है। सिकंदर एकदम उदास हो गया। उसने कहा कि यह मैंने कभी ख्याल नहीं किया। लेकिन सच ही अगर पूरी पृथ्वी जीत ली, तो फिर? दूसरी पृथ्वी तो नहीं है, फिर क्या करूंगा? वह डायोजनीज से पूछने लगा कि फिर क्या करूंगा? यह तो तुम ठीक कहते हो, लेकिन ऐसी चिंताएं मत उठाओ, क्योंकि इस पृथ्वी को जीतना बहुत मुश्किल है। ऐसी चिंताएं ही मत उठाओ। लेकिन डायोजनीज ने कहा कि यह चिंता उठाने जैसी है। क्योंकि कामना तेरी यह है कि सारी पृथ्वी को जीतकर मैं सुखी हो जाऊंगा। मैं यह कहता हूं कि मान ले तूने सारी पृथ्वी जीत ली, अब तू सुखी होगा कि दुखी हो जाएगा? और डायोजनीज खूब हंसने लगा। उसने कहा कि जब होगा होगा, लेकिन तू अभी दुखी हो गया, यह बात सोचकर ही, कि सारी पृथ्वी जीत ली तो फिर? यह सवाल है कि फिर क्या?

हमारी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं तो हम दुख पाते हैं।

और हमारी इच्छाएं पूरी हो जाएं तो हम परम सुख पाएंगे।

लेकिन हम यही समझते हैं कि हम दुख पाते हैं कि हमारी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं!

टालस्टाय ने एक कहानी लिखी है। एक बाप की तीन बेटियां हैं, तीनों की अलग-अलग जगह शादी हो गई है। एक लड़की किसान के घर है, एक लड़की एक कुम्हार के घर है, एक लड़की एक जुलाहे के घर है, जो कपड़े बुनता और रंगता है। वर्षा आने के दिन हैं, लेकिन वर्षा नहीं आई।

कुम्हार बड़ा खुश है, उसकी पत्नी भगवान को धन्यवाद दे रही है, कि भगवान तेरा धन्यवाद! क्योंकि हमारे सब घड़े बनाए हुए रखे थे, अगर वर्षा आ गई तो हम मर जाएंगे। एक आठ दिन पानी रुक जाए, तो हमारे सब घड़े पक जाएं और बाजार चले जाएं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेकिन किसान की पत्नी बड़ी परेशान है। क्योंकि खेत तैयार है और पानी नहीं गिर रहा। और अगर आठ दिन की देर हो गई तो फिर फसल बोने में देरी हो जाएगी। और फिर बड़ा मुश्किल हो जाएगा। वैसे ही बहुत देर हो गई है और सब मुश्किल है। वह भगवान से रोज कह रही है कि भगवान, यह तू कर क्या रहा है? हमारे बच्चे भूखे मर जाएंगे। तू पानी जल्दी गिरा!

वह तीसरी लड़की है, वह जुलाहे के घर है। उसके कपड़े तैयार हो गए हैं, उसने रंग कर लिया है। और वह भगवान से कहती है, अब तेरी मर्जी। चाहे आज गिरा, चाहे कल गिरा, अब हमें कोई फर्क नहीं पड़ता है! यानी अब कोई बात नहीं है। क्योंकि उसका काम पूरा हो गया है, उसकी तैयारी पूरी हो गई। उसने काम अपने घर में समेट लिया है। और वह हाथ जोड़कर भगवान से कहती है, अब तेरी मर्जी! अब आज गिरा या कल, हमारा काम पूरा हो गया। हर हालत में हम खुश हैं। अब पानी आज गिरे कि कल, कोई फर्क नहीं पड़ता है!

कहानी में भगवान अपने देवताओं से पूछता है कि बोलो, मैं क्या करूं? मैं किसकी इच्छा पूरी कर दूं? और भगवान कहता है, ये तो सिर्फ तीन लोग हैं, अगर सारी पृथ्वी के लोगों की इच्छाएं पूछी जाएं और सब पूरी कर दी जाएं, तो इसी वक्त पृथ्वी समाप्त हो जाए—इसी वक्त!

हमारी इच्छाएं और हमारी इच्छाओं की दौड़ और हम उनसे क्या पाना चाह रहे हैं, हमें कुछ भी पता नहीं है। लेकिन भ्रांति चलती चली जाती है, क्योंकि हमारा खयाल यह होता है कि दुख मिल रहा है इसलिए कि इच्छा पूरी नहीं हुई; सुख मिलता, अगर इच्छा पूरी हो जाती। लेकिन जो गहरे इस विचार में उतरेगा, उसे पता चल जाएगा, कोई इच्छा की पूर्ति सुख नहीं ला सकती और बड़ा दुख लाती है। अपूर्ति इतना बड़ा दुख ला रही है तो पूर्ति कितना लाती! गणित ऐसा समझना चाहिए। नहीं पूरा हुआ तो इतना दुख मिल रहा, पूरा हो जाता तो कितना दुख मिलता! क्योंकि जब बीज को कम सुविधा मिली, तब वह इतना जहरीला फल ले आया, पूरी सुविधा मिलती तो कितना जहर लाता! कितना जहर लाता!!

प्रत्येक इच्छा दुख में ले जाती है, लेकिन सुख में ले जाने का आश्वासन देती है!

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रत्येक नाव दुख की है, लेकिन सुख के घाट पर उतार देने का वचन है ! और हजार बार हम नाव में बैठते हैं रोज, और हजार बार दुख की नाव दुख के घाट पर उतार देती है, लेकिन हम कहते हैं कहीं कोई भूल हो गई ! अन्यथा ऐसा कैसे हो सकता था, कि जो नाव सुख के घाट की तरफ चली थी, वह दुख के घाट पर कैसे पहुंच जाती ? लेकिन हम यह कभी नहीं पूछते कि कहीं नाव ही तो दुख की नहीं है ? सवाल घाट का है ही नहीं। सवाल घाट का है ही नहीं, सवाल यह है नहीं कि आप कहां पहुंचेंगे, सवाल यह है कि आप कहां से चलते हैं ? आप किस पर सवार हैं ? यह सवाल है ही नहीं कि फल कैसा होगा ? सवाल यह है कि बीज कैसा बोया है ?

जीसस कहते हैं, जो बोओगे, वही तुम काटोगे। लेकिन काटते वक्त पछताना मत, पछताना हो तो बोते वक्त। काटते वक्त पछताने का क्या सवाल है ? फिर तो काटना ही पड़ेगा।

लेकिन हम सब काटना कुछ और चाहते हैं, बोते कुछ और हैं ! और यह जो—यह जो द्वंद्व है चित्त का कि बोते कुछ और हैं, काटना कुछ और चाहते हैं, यह हमें भटकाता रह सकता है अनंत काल तक, अनंत जन्मों तक। इस भ्रम को तोड़ देने की जरूरत है। इससे जाग जाने की जरूरत है।

और एक सूत्र समझ लेने की जरूरत है कि जो हम बोते हैं, वही हम काटते हैं। हो सकता है बीज पहचान में न आता हो। क्योंकि बीज जाहिर नहीं है, अप्रकट है, अनमेनीफेस्ट, अभी अभिव्यक्त नहीं हुआ है। यहां एक बीज रखा है; हो सकता है, हम न पहचान सकें, इसका वृक्ष कैसा होगा ? क्योंकि बीज में वृक्ष है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता।

तो जीसस कहते हैं, जो तुम बोते हो, वही तुम काटते हो। मैं इससे उल्टी बात भी जोड़ देना चाहता हूं कि जो तुम काटो, समझ लेना कि वही तुमने बोया था। क्योंकि हो सकता है, बोते वक्त तुम न पहचान सके होओ। बोते वक्त पहचानना जरा कठिन भी है, क्योंकि बीज में कुछ दिखाई नहीं पड़ता साफ-साफ कि बीज क्या हो जाएगा ? जहर होगा कि अमृत होगा ? तो हो सकता है, बोते वक्त भूल हो गई हो, लेकिन काटते वक्त तो भूल हो ही नहीं सकती। हो सकता है नाव में बैठते वक्त ठीक से न समझ पाए हों कि नाव क्या है, लेकिन घाट पर उतरते वक्त तो समझ ही जाएंगे कि घाट कैसा है ! नाव ने कहां पहुंचा दिया, यह तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समझ में आ जाएगा !

तो काटते वक्त देख लेना कि अगर दुख कटा हो, तो जान लेना कि दुख बोया था। और तब जरा समझने की कोशिश करना कि आगे दुख के बीज को तुम पहचान सको कि वे कौन-कौन से बीज हैं, जो दुख ले आते हैं। कितनी बार ईर्ष्या दुख लाती है, कितनी बार घृणा दुख लाती है, कितनी बार क्रोध दुख लाता है, लेकिन हम हैं कि बीज फिर उन्हीं का बोए चले जाते हैं ! और बार-बार हम पछताते हैं कि यह दुख क्यों ? दुख हमें झेलना नहीं है और बीज हमें दुख के ही बोने हैं ! और इस द्वंद्व में कितना समय हम व्यतीत करते हैं, और कितने जन्म और कितने जीवन ! लेकिन द्वंद्व हमें दिखाई नहीं पड़ता !

क्योंकि हमारी खूबी यह है, हमारा मजा यह है, हमारा डिल्यूजन, वह जो सेल्फ डिसेप्शन है, आत्म-वंचना है; वह यह है कि हम सिर्फ जो कटता है, उस वक्त नाराज होते हैं कि यह गलत चीज कटी। लेकिन हमने जो बोया था, हम उसका ख्याल ही नहीं करते ! अगर गलत कटा है, तो गलत बोया था। और इसके दोनों के तारतम्य को समझ लेना जरूरी है, ताकि कल हम गलत न बोएं। जिस घाट पर हम उतरे हैं, वह खबर है हमारी नाव की कि हम किस नाव पर बैठ गए थे। लेकिन हम कल फिर उसी नाव पर बैठते हैं और दूसरे घाट पर फिर उतरने की कल्पना करते हैं !

और आश्चर्यजनक है यह कि आदमी रोज-रोज वही-वही भूल करता है ! नई भूलें भी आदमी नहीं करते ! नई भूल भी कोई करे तो भी कहीं पहुंच जाए। भूल भी पुरानी ही करते हैं ! लेकिन कुछ ऐसा है कि पीछे जो हमने किया, वह हम भूल जाते हैं, और फिर-फिर हम वही सोचने लगते हैं।

एक आदमी ने अमेरिका में आठ विवाह किए। उसने पहला विवाह किया और बड़ी आशाओं से, जैसा कि सभी लोग करते हैं। बड़ी आशाओं से, लेकिन सब आशाएं छः महीने में मिट्टी में मिल गईं। तो उसने समझा कि औरत गलत मिल गई, जैसा कि सभी आदमी समझते हैं। उसने भी समझा कि स्त्री गलत मिल गई, इसलिए सब आशाएं धूमिल हो गईं। आशाएं गलत थीं, ऐसा नहीं, स्त्री गलत मिल गई ! तो उसने तलाक दे दिया। दूसरी स्त्री फिर साल भर लगाकर उसने बामुश्किल खोजी। अब वह बड़ा खुश था, क्योंकि अब पहले अनुभव के बाद उसने खोज-बीन की थी। शादी की, फिर उतनी ही आशाओं के साथ, लेकिन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पाया कि छः महीने में सब गड़बड़ हो गया है। तब उसने समझा कि फिर स्त्री गलत मिल गई। इस तरह उस आदमी ने आठ शादियां कीं जीवन में, और हर बार वही हुआ !

आठवीं शादी के बाद वह एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और उसने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं आठ विवाह कर चुका और जिंदगी गंवा चुका। अब तो उपाय भी नहीं है नौवां करने का। लेकिन हुआ क्या ? मुझे हर बार वैसी की वैसी औरत मिल गई और मैंने इतनी खोज-बीन की। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, वह तो ठीक है, लेकिन तुम्हारे खोज-बीन के मापदंड क्या थे ? तुम्हारे खोज-बीन के मापदंड क्या थे ? अगर कसौटी वही थी तुम्हारी, जिससे तुमने पहली औरत को कसा था ; तो कसौटी फिर भी वही रही होगी, जिससे तुमने दूसरी को कसा। और तुम हर बार उसी टाइप की स्त्री को खोज लाए, जिस टाइप की स्त्री को तुम खोज सकते थे। तुम जिस तरह के आदमी हो, उस तरह का आदमी जैसी स्त्री खोज सकता था, बार-बार खोज लाया।

हो सकता है, बहुत संभावना है कि बहुत पुराने दिनों में इसी अनुभव के आधार पर एक ही विवाह की व्यवस्था कर ली गई हो; क्योंकि एक आदमी एक ही तरह की स्त्रियां खोज सकता है साधारणतः। यानी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह हर बार सिर्फ नाम बदल जाएगा, शक्ल बदल जाएगी, लेकिन स्त्री वह वैसी ही खोज लाएगा। उसका जो खोज का दिमाग है, उस दिमाग से वह वैसी स्त्री फिर खोज लाएगा। तो इसकी बार-बार फिजूल की परेशानी में क्यों पड़ना ? कुछ समझदार लोगों ने कहा हो कि एक ही विवाह काफी है एक जन्म के लिए। तुम एक ही दफे खोज लो और वही बहुत है। और यह भी हो सकता है कि इसी अनुभव के आधार पर कि व्यक्ति जो भी खोजेगा, वह चूंकि उसका पहला अनुभव होगा, इसलिए भूल उसमें निश्चित हो जानी है। इसलिए जिनके अनुभव हो चुके हैं, उसके मां-बाप खोजते। इस सबके पीछे···यानी जो कि इस अनुभव से गुजर चुके हैं और बेवकूफी भोग चुके हैं और नासमझी झेल चुके हैं, वे शायद ज्यादा ठीक से खोज सकें। और यह आदमी की पहली खोज होगी और यह गलत हो जाएगा, इसकी बहुत संभावना है। इसलिए हो सकता है कि वह मां-बाप पर छोड़ दिया गया हो।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इधर निरंतर के अनुभव के बाद अमेरिका में कुछ मनोवैज्ञानिक यह कहने लगे हैं कि बाल-विवाह शुरू कर दो ! क्योंकि इसमें कोई मतलब नहीं मालूम पड़ता। यह दुखद है यह बात। यह दुखद है, यह बात दुखद है कि बाल-विवाह हों, यह बात भी दुखद है कि मां-बाप बच्चे का विवाह तय करें, लेकिन जैसी स्थिति है, उसमें यही सुखद मालूम पड़ता रहा है। इससे भिन्न होना अभी कठिन है। और वह तब हो सकता है, जब हम दुख के बीजों को समझ लें। तो हम जो खोज करें, वह बहुत और तरह की हो। हम जिस नाव पर सवार हों, वह और तरह की हो जीवन के सब मामलों में।

तो सुख को, दुख को अलग मत समझना, सुख और दुख को एक समझना। हां, जरा देरी लगती है दोनों के फल पकने में। फासला है, फासले की वजह से दो समझ लिए जाते हैं—फासले की वजह से। दृष्टि छोटी है हमारी और फासला बड़ा है। हमको इस कमरे की दोनों दीवालें दिखाई पड़ती हैं, तो हम जानते हैं कि दोनों दीवालें इसी कमरे की हैं। और हम ऐसी भूल न करेंगे कि इस दीवाल को बचा लें और उसको मिटा दें। क्योंकि ऐसी भूल हम करेंगे तो वह दीवाल भी गिरेगी, यह पूरा मकान गिरेगा। अगर दीवालें गिरानी हों, दोनों गिरा दो, न गिरानी हो तो दोनों को बचने दो। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं। क्योंकि हमें दोनों दीवालें दिखाई पड़ती हैं। लेकिन कमरा इतना बड़ा हो सकता है कि जब भी हमें दिखाई पड़ती हो, एक ही दीवाल दिखाई पड़ती हो। दूसरी दीवाल इतने फासले पर हो कि हम कभी जोड़ ही न पाते हों कि यह कमरा और यह दीवाल उसी दीवाल से जुड़े हैं, यह वही कमरा है।

और जिंदगी बड़ी है, उसमें फासले बड़े हैं और आदमी की दृष्टि बड़ी छोटी है। ज्यादा दूर तक वह देख नहीं पाता। उसे खबर नहीं हो पाती कि कब मैंने क्या बोया था, कब मैं क्या काट रहा हूं ! कब मैंने एक मकान बनाया था, उसकी यह दूसरी दीवाल है। और ये दोनों एक हैं। यह इसको ठीक से परस्पेक्टिव मिल जाए, दृष्टि मिल जाए दूर तक देखने की, तो हम अपने सब दुखों को, अपनी-सुखों की आकांक्षा में छिपा हुआ पाएंगे। अपने सब दुखों को हम अपने सुखों के सपनों में छिपा हुआ पाएंगे। हमारे सब दुख हमारे सुख की आशाओं में ही पैदा किए गए हैं। हमारे सब दुख हमने ही सुख की संभावनाओं में बोए थे। काटते वक्त दुख निकले। संभावनाएं सुख की थीं और बीज हमने दुख के ही बोए थे।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसे हम देखें, अपनी जिंदगी में खोजें। अपने दुख को देखें। और अपने पीछे लौटकर देखें कि हम कैसे उनको बोते चले आए। और कहीं ऐसा तो नहीं है कि आज भी हम वही कर रहे हैं! अगर यह दिखाई पड़ जाए तो तुम सुख की आशा छोड़ दोगी। सुख की आशा एकदम ही दुराशा है, असंभावना है। सुख की संभावना ही नहीं है। अगर ऐसा दिखाई पड़ जाए कि जीवन में सुख की संभावना ही नहीं है, दुख ही होगा, चाहे तुम उसे कितना ही सुख कहो, आज नहीं, कल वह दुख हो जाएगा। अगर जिंदगी में दुख की ही संभावना है तो सुख की आशा छूट जाती है। और जिस व्यक्ति की सुख की आशा छूट जाती है, वह दुख के साथ सीधा खड़ा हो जाता है। भागने का उपाय न रहा। यहां दुख है और यहां मैं हूं, और हम आमने-सामने हैं।

और मजे की बात यह है कि जो आदमी दुख के सामने सीधा खड़ा हो जाता है, उसका दुख ऐसे तिरोहित हो जाता है कि जैसे कभी था ही नहीं! तब दुख नहीं जीत पाता, क्योंकि तब दुख के जीतने की तरकीब ही गई। तरकीब थी सुख की संभावना में। दुख के जीत की जो तरकीब थी, जो टेकनीक था, वह था सुख की संभावना में। वह सुख की संभावना न गई। दुख यह सामने खड़ा है और मैं यहां खड़ा हूं। और अब कोई उपाय नहीं है, न मेरे भागने का, न दुख के भागने का। और दुख और हम आमने-सामने हैं। यह एनकाउंटर है, यह साक्षात्कार है।

इस साक्षात्कार में जो रहस्यपूर्ण घटना घटती है वह यह, कि दुख तिरोहित हो जाता है। मैं अपने पर वापस लौट आता हूं, क्योंकि सुख पर जाने की चेष्टा छोड़ देता हूं। सुख पर जाने का एक रास्ता था, वह रास्ता मैंने छोड़ दिया। अब दुख के सामने सीधा खड़ा हो गया। अब एक ही रास्ता है कि मैं अपने पर लौट आऊं। और यह जो अपने पर लौट आना है···क्योंकि दुख में तो कोई रह ही नहीं सकता। या तो सुख की आशा में भागेगा, या अपने पर लौट आएगा; या तो आनंद में चला जाएगा या सुख में चला जाएगा। सुख में हम जाते रहे हैं और आनंद में नहीं पहुंच पाए!

अगर हम दुख में सीधे खड़े हो जाएं तो हम आनंद में पहुंच जाते हैं। आनंद सुख नहीं है। आनंद सुख-दुख का अभाव है। आनंद में न सुख है, न दुख है। इसीलिए बुद्ध ने आनंद शब्द का प्रयोग नहीं किया है। बुद्ध ने बहुत समझकर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शब्दों का प्रयोग किया है। इतनी समझ किसी आदमी ने नहीं दिखाई, क्योंकि आनंद में कितना ही समझाओ सुख का भाव छुपा हुआ है। यानी कितना भी मैं समझाऊं कि आनंद सुख नहीं है, आप फिर भी कहेंगे कि आनंद कैसे मिले ? और जब आप कहेंगे, तब आपके मन में यही होगा कि सुख कैसे मिले ? शब्द बदल लेंगे, लेकिन भाव सुख का ही रहेगा। तो आप कहेंगे कि ठीक है, फिर तरकीब बताइए कि आनंद कैसे पाया जाए ? दुख है, दुख से कैसे बचा जाए ? कोई टेकनीक, कोई विधि बताइए कि हम आनंद कैसे पा लें ?

आनंद तो पाना जरूरी है। और अगर आप भीतर गौर से देखेंगे तो आनंद गलत शब्द आप प्रयोग कर रहे हैं। आप यह कह रहे हैं, सुख पाना जरूरी है, सुख कैसे पाया जाए ? दुख से कैसे बचा जाए ? बहुत कठिन है आदमी को समझाना कि आनंद सुख नहीं है। और आमतौर से हम दोनों को पर्यायवाची प्रयोग करते हैं। एक आदमी सुखी है तो कहता है, बड़े आनंद में है ! बड़े आनंद में है, कहता है !

बुद्ध ने इसलिए प्रयोग किया : शांति। वे कहते हैं, आनंद नहीं। आनंद शब्द ठीक नहीं हैं, खतरनाक है। शांति में भाव बिलकुल दूसरा है। शांति का अर्थ है : न सुख न दुख, सब शांत है। कोई तरंग नहीं है—दुख की, न सुख की। न कोई भाव है—न सुख का, न दुख का। न कहीं जाना है, न कहीं आना है, ठहर गया सब। रुक गए। मौन है, चुप है, झील पर एक भी लहर नहीं है, ऐसी। इसलिए बुद्ध कहते हैं, आनंद नहीं। मैं आनंद का आश्वासन नहीं देता। क्योंकि मैं तुम्हें आनंद का आश्वासन दूंगा और तुम सुख का आश्वासन ले लोगे। यह जो कठिनाई है, जो कठिनाई है, बात आनंद की की जाएगी, समझी सुख की जाएगी, क्योंकि हमारी आकांक्षा सुख की है। अगर हम दुख के साक्षात के लिए भी तैयार होंगे तो सिर्फ इसलिए कि दुख से कैसे बच जाएं। और अगर कोई दुख से बचने के लिए दुख का साक्षात करेगा तो साक्षात कर ही नहीं सकता। क्योंकि जिससे हम बचना चाहते हैं, उसको हम कैसे साक्षात करेंगे ? उसे हम देखेंगे कैसे उसकी परिपूर्णता में ? हम तो भाग जाएंगे उसके पहले कि वह दिखाई पड़े।

मुझे भी प्रीतिकर है, शब्द शांति महत्त्वपूर्ण है। मगर बात वही है, बात वही है। जहां सब शांत हो गया। सब—दुख नहीं, सुख भी नहीं। जहां सब शांत हो गया। हमें ख्याल में नहीं है कि दुख एक तरह की अशांति है, जो प्रीतिकर है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और सुख एक तरह की अशांति है, जो शायद प्रीतिकर लगती है, लेकिन सुख की अशांति भी तीव्र हो जाए तो मृत्यु ला सकती है। और दुख की अशांति भी तीव्र हो तो मृत्यु ले ही आती है।

मैंने सुना है एक आदमी को लाटरी मिल गई। उसे एक लाख रुपया मिलने को है। उसकी पत्नी बहुत घबड़ा गई। खबर आई, पति दफ्तर में था, वह चपरासी है। एक लाख की बात सुनते ही कहीं खातमा न हो जाए! वह बहुत डर गई है। खबर आ गई, घर में पति दफ्तर से लौटने को है। वह क्या करे? वह भागी हुई पास के चर्च में गई। वह ईसाई है। उसने जाकर चर्च के पादरी को कहा कि आपसे बुद्धिमान आदमी कोई भी नहीं। आपसे मैं सलाह लेने आई हूं कि क्या किया जाए? खबर आई है कि मेरे पति को एक लाख रुपये मिल गए। हम गरीब आदमी हैं और पति एक लाख रुपये की बात सुनकर पागल हो जाए, हृदय-गति बंद हो जाए। उस चर्च के पुरोहित ने कहा, घबड़ाओ मत, मैं आता हूं। मैं संभाल लूंगा। मैं धीरे-धीरे बात प्रकट करूंगा।

दफ्तर से पति लौट आया है, वह चर्च का पादरी आया है, उस पादरी ने कहा कि सुनते हो भई, पच्चीस हजार रुपये मिले हैं तुम्हें इनाम! सोचा कि धीरे-धीरे बढ़ाऊंगा। धक्का कम होता जाएगा। पच्चीस हजार, फिर पच्चीस हजार, फिर पच्चीस हजार। उस आदमी ने कहा, क्या कहते हैं, पच्चीस हजार—सच! अगर पच्चीस हजार मिले हैं तो आधे मैं आपको दे दूंगा। पादरी का उसी वक्त हार्ट फेल हो गया! साढ़े बारह हजार! और इकट्ठा हमला पड़ गया उस पर। उसको कोई, उसको तो कल्पना भी नहीं थी। इस आदमी को तो थोड़ा ख्याल भी था। इसको थोड़ा ख्याल भी था कि लाटरी मिल सकती है। लेकिन पादरी को तो ख्याल भी नहीं हो सकता था कि साढ़े बारह हजार मिल सकते हैं। उसने कहा, साढ़े बारह हजार दे दोगे? सच कह रहे हो? उसने कहा कि अगर लाटरी मिल गई पच्चीस की, तो दिए! उस आदमी का तो हार्ट फेल हो गया! सुख भी इतना तीव्र हो सकता है एक आघात में, कि प्राण ले ले।

और बड़े मजे की बात है यह, कि दुख बहुत कम लोगों के प्राण लेता है, सुख बहुत लोगों के ले लेता है! सुख बहुत लोगों के ले लेता है, दुख बहुत कम लोगों के लेता है। क्योंकि दुख में, कितना ही बड़ा दुख हो, हम सदा सुख की आशा में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भागे हुए रहते हैं। इसलिए पूरे दुख का कभी भी इंपैक्ट, घाव नहीं पड़ पाता। लेकिन पूरे सुख में हम कहीं नहीं भागे होते हैं, हम बिलकुल थक गए होते हैं और हमला पूरा हो जाता है। हम बच ही नहीं पाते। क्योंकि दुख की तरफ तो हम भागते नहीं। दुख में तो हम सुख की तरफ भागते हैं। मन हमारा सुख में लगा रहता है कि ठीक है, ठीक है; आज नहीं कल, आज नहीं कल सुख आएगा; आएगा। हम वहां होते हैं। यहां दुख होता है। दुख की चोट हमें पूरा कभी नहीं हमला कर पाती, लेकिन सुख की चोट बहुत बुरा हमला कर जाती है। क्योंकि हम कहीं नहीं होते, वहीं होते हैं। उसी वक्त सीधा मुकाबला हो जाता है।

सुख भी एक अशांति है—प्रीतिकर हम समझ सकते हैं उसे। हम चाहते हैं ऐसी अशांति। इसे अगर ठीक से समझें, तो हम चाहते हैं ऐसी अशांति। और अशांति को चाहना—कितनी देर चाहोगे ? घड़ी-आधी घड़ी में चाह मिट जाएगी, अशांति रह जाएगी। समझ लीजिए कि अभी आप सब मिलकर इतना हंस-खुस हो रहे थे, समझ लीजिए इसे जरा चलने दीजिए और घंटे भर सही, और फिर लोग उठने लगेंगे, और दरवाजा बंद कर दीजिए कि आज तो पूरी रात खुशी मनानी है। तो फिर आप पाएंगे कि दो घंटे बाद लोग कहते हैं कि हम गर्दन दबा देंगे, अगर किसी ने गड़बड़ की। बिलकुल हमको हंसना नहीं है। हमें बिलकुल बाहर जाना है, हम सुनना नहीं चाहते। क्यों ? क्योंकि थोड़ी देर तक हम अशांति को भी चाह सकते हैं—पर कितनी देर ? थोड़ी देर में चाह चली जाएगी और अशांति रह जाएगी।

एक आदमी सितार बजा रहा है, बड़ा प्रीतिकर है, लेकिन है तो शोरगुल। है तो शोरगुल ही, कितनी देर सहोगे ? अशांति ही है। जो शांति को जानता है वह कहेगा, यह क्यों शोरगुल मचा रहे हो ? यह है शोरगुल। लेकिन समझो कि अच्छी लग रही है, प्रीतिकर अशांति है, थोड़ी देर चाही जा सकती है। चाहो, कितनी देर चाहोगे ? घड़ी-दो घड़ी, घंटे-दो घंटे, रात-दो रात, फिर उस सितार बजाने वाले की गर्दन दबाने का मन होगा, कि अब या तो बंद करो या हम तुम्हें बंद कर देंगे। तो वह कहेगा कि तुम तो इतने खुश होते थे, तुम तो इतने प्रभावित थे और तुम तो इतना आनंद प्रकट करते थे, ताली बजाते थे, गर्दन क्यों दबाते हो ? हम तो उसी खुशी में और ज्यादा बजाए चले जा रहे हैं। लेकिन उस आदमी को पता नहीं कि अशांति की चाह खतम हो जाती है थोड़ी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देर में, और फिर अशांति रह जाती है। और फिर तबियत होती है कि अब कब बंद हो जाए, अब यह कब समाप्त हो?

प्रीतिकर अशांति को हम सुख कहते हैं, अप्रीतिकर अशांति को हम दुख कहते हैं।

और इसे ध्यान रखना, अगर प्रीतिकर अशांति को जारी रखा जाए तो प्रीतिकर बिंदु नष्ट हो जाएगा, अशांति रह जाएगी।

और अगर अप्रीतिकर अशांति को भी जारी रखा जाए तो अप्रीतिकर बिंदु नष्ट हो जाएगा और अशांति भी सहने योग्य, प्रीतिकर हो जाएगी।

एक आदमी रेल के दफ्तर में काम करता है तो सितार नहीं सुनता, रेलगाड़ी के इंजन, सीटियां और सब आवाजें सुनता है। वहीं सोता भी है रात, तो सो लेता है। सात दिन की ड्यूटी के बाद घर लौटता है आठवीं रात, तो नींद नहीं आती। क्योंकि वह जो अशांति थी, वह जो शोरगुल था वह, उसके माहौल का हिस्सा था। उसके बिना सोए कैसे? एक बड़े वातावरण का हिस्सा वह भी है। उतनी अशांति चाहिए, नहीं तो वह सो नहीं सकता। वह मुश्किल में पड़ जाएगा। वह सब हिस्सा हो गया, वह भी बहुत दिन सुने जाने पर। प्रीतिकर अप्रीतिकर हो जाता है, अप्रीतिकर प्रीतिकर भी हो सकता है। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि दोनों तनाव हैं, और दोनों तनाव में रुपांतरण हो सकता है। वे एक-दूसरे में यात्रा करते रहते हैं।

अभी वह एक मित्र यहां मेरे पीछे आकर ठहरे थे पूना के। उन्होंने कहा कि हम एक दिन—हाउस बोट में ठहरे थे आकर—बहुत आनंद आया। फिर दूसरी दफा आए तो हमने पंद्रह दिन के लिए इकट्ठा ही बुक करा लिया और पैसे दे दिए। और हम ऐसी मुसीबत में पड़ गए कि ये पंद्रह दिन कैसे पूरे हों? क्योंकि वही पानी, वही नाव, वही रोज वहां जाना! इतनी घबड़ाहट हो गई कि हम चौथे दिन भाग गए वह पैसे छोड़कर वहां से। क्योंकि वह तो घबड़ाने वाला हो गया।

वह जो सुखद मालूम हो रहा है, वह कितनी देर सुखद होगा, यह सोचा कभी? और जो दुखद मालूम हो रहा है, अगर उसमें जिए ही चले जाओ, तो कितनी देर दुखद रहेगा? दोनों अशांतियां हैं, दोनों एक-दूसरे में मिली-जुली हैं, दोनों एक-दूसरे के छोर हैं। बहुत जल्दी से वहां यात्रा हो जाती है, वहां से यहां

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यात्रा हो जाती है। इस सत्य को समझ लेने वाला व्यक्ति इस यात्रा पर ही नहीं जाता। वह जैसा है, वहीं खड़ा हो जाता है। जो आता है, उसे ही देखता है। और आता दुख ही है, सुख आता ही नहीं। सुख सिर्फ आता लगता है और आते लगते ही में चलता है उसका सब हिसाब। आते ही विलीन होना शुरू हो जाता है। दुख ही आता रहता है।

जो व्यक्ति इसको देखने खड़ा होता है— दुख पूरा अपने पूरे अंधकार में, अपनी पूरी पीड़ा में, अपने पूरे रूप में प्रकट होता है। उसके साथ ही वे सब बीज प्रकट हो जाते हैं, जो उसने बोए थे, जो वह अब भी बो रहा है। इस वक्त भी हो सकता है बगीचे में बैठा रहा हो। हाथ रुक जाता है, वह आदमी वापस खड़ा हो जाता है। वह चुपचाप दुख को देख लेता है, जी लेता है, भोग लेता है, लेकिन भागता नहीं। भोगा हुआ दुख मिट जाता है। भोगा हुआ दुख आगे बढ़ जाता है। ऐसा जो भोग लेता है, वह भीतर चला आता है। और जो दुख में भी नहीं भागता, वह शांत हो जाता है, क्योंकि अब अशांत होने का क्या कारण रहा? जो दुख में भी नहीं भागता, वह अशांत कैसे होगा? अशांत हो सकता था भागता तो। अब वह भागता ही नहीं है, अब तो जो भी है,वह ठीक है। वह शांत हो जाता है। वह आनंद को उपलब्ध हो जाता और अपने पर लौट आता। ऐसी यात्रा से पहुंचता है व्यक्ति मुक्ति में। लेकिन यह यात्रा जरूरी है।

ऐसा कभी नहीं होता, ऐसा नहीं होता कि एक व्यक्ति का सुख का भ्रम टूट जाए और आनंद उपलब्ध न हो। ऐसा होता ही नहीं है। ऐसा हो ही नहीं सकता। यह ऐसा ही है जैसे कोई कहे, सौ डिग्री तक पानी तो गर्म हो गया है, लेकिन भाप नहीं बनता। तो हम कहेंगे, ऐसा हो ही नहीं सकता। तो तुम्हारी डिग्री नापने में कहीं भूल हो गई होगी। सौ डिग्री तक पानी गर्म हो ही गया है तो भाप बनेगा ही। इसमें कोई उपाय ही नहीं है दूसरा। यह भाप बनेगा ही। क्योंकि सौ डिग्री तक गर्म होना यानी भाप बनना। ये दो चीजें नहीं हैं। वह डिग्री तो द्वार है, जहां से भाप बनेगी। अगर उस डिग्री तक पहुंच गया तो भाप बनेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि सौ डिग्री पर ठहर जाए और कहे कि भाप नहीं बनते हैं, सौ डिग्री पर रुक जाते हैं। सौ डिग्री, तो गरम हो गए, लेकिन भाप नहीं बनते, ऐसा नहीं होता। लेकिन डिग्री नापने में गलती हो सकती है। और पानी की डिग्री नापने में गलती बहुत कम होगी, क्योंकि पानी हमसे अलग-थलग

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है। अपनी स्थिति नापने में हमेशा भूल हो जाती है।

सुख का भ्रम हमारा मिटता नहीं है। बल्कि सच तो यह है कि हम आनंद की खोज में ही सुख के लिए ही जाते हैं। जो गहरा उपद्रव है, वह यह है कि आनंद की खोज में भी हम किसलिए जाते हैं ? क्या हम दुख के साक्षात से गए ? अगर दुख के साक्षात से गए तो जाना ही नहीं पड़ेगा, हम पहुंच जाएंगे। अगर दुख के साक्षात्कार से गए हैं तो हमें जाना नहीं पड़ेगा, हम पहुंच ही जाएंगे। लेकिन हम दुख के साक्षात्कार से नहीं गए। हम दुख से बचने के लिए सुख खोजते रहे। फिर किसी ने कहा कि सुख भ्रम है, और हमारी थोड़ी समझ में भी पड़ा, क्योंकि अतीत का अनुभव हमारा भी कहता है कि हां, सुख पाया नहीं। लेकिन क्या तुम्हारा भविष्य का मन भी कहता है कि सुख नहीं पा सकोगी ?

जब मैं कहता हूं, कि सुख भ्रम है, सुख कभी नहीं पाया तो तुम्हारा मन भी कहता है कि ठीक कहते हैं आप, सुख भ्रम है। बहुत बार सुख पाने की संभावना थी, फिर मिला नहीं—लेकिन अतीत में। लेकिन क्या तुम्हारा मन यह भी बात मानने को तैयार होता है कि भविष्य में भी सुख नहीं मिल सकता है ?

नहीं, इस पर राजी नहीं होता ! बस यहां जरा-सी चूक हो जाती है। मन कहता है कि अगर आप कहते हैं कि इस तरह से नहीं मिलेगा, छोड़िए, लेकिन आनंद कैसे मिलेगा, यह बताइए। कहता है, आनंद कैसे मिलेगा, यह बता दें। तो हम वही पा लें, छोड़ें सुख को ! और आनंद तो सुख से भी बड़ी चीज है। हम सुख ही छोड़ देते हैं, आनंद पा लेते हैं ! आनंद की क्या तरकीब है ? फिर आदमी भजन कर रहा है, ध्यान कर रहा है, पूजा कर रहा है, प्रार्थना कर रहा है। फिर वह अब आनंद की तरकीब खोज रहा है !

इसलिए जो मैंने उस दिन कहा कि कोई तरकीब नहीं है, कोई मेथड नहीं है ! क्योंकि विधि हो सकती है सुख पाने की। यहां तो सवाल कुल इतना है कि जो स्थिति है, उसको जान लो और तुम आनंद में पहुंच जाओगे। आनंद में पहुंचने के लिए तुम्हें अतिरिक्त कुछ भी न करना पड़ेगा, एक इंच चलना न पड़ेगा। लेकिन हमारे चित्त की जो तरकीब है, वह यह है, वह कहता है, ठीक है ; आप ठीक कहते हैं, सुख तो नहीं मिला, लेकिन आगे मिल सकता है ? ठीक है, कोई हर्ज नहीं, सुख न कहिए, आनंद कहिए, हम आनंद ही खोजने जाते हैं। वह कहां है आनंद ? हम कैसे उस आनंद को पाएं ?

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अब यह आदमी फिर दुख से भाग रहा है। अभी तक यह सुख का नाम लेकर भागता था, अब आनंद का लेकर भाग रहा है! अभी तक यह शराबघर में जाता था कि वहां सुख मिल जाएगा, अब यह कहता है, वहां नहीं मिलता; अब यह मंदिर में जाता है! यह कहता है कि वहां आनंद मिल जाए। लेकिन जाता है कहीं! शराबघर छोड़ता है, मंदिर खोजता है—लेकिन जाता है कहीं। भाग रहा है। शराबघर में जाने वाला उतना ही भाग रहा है, जितना मंदिर में जाने वाला भाग रहा है। फर्क जरा भी नहीं है भागने की दृष्टि से। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि जाकर आदमी शराब पीने लगे। कह मैं यह रहा हूं, दोनों भाग रहे हैं। भागने की दृष्टि से कोई भी फर्क नहीं है। हां, एक का भागना ऐसा हो सकता है कि समाज-सम्मत न हो, ऐसा हो सकता है कि स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाता हो। एक का भागना ऐसा हो सकता हो कि स्वास्थ्य को भी फायदा करता हो, समाज-सम्मत भी हो; लेकिन भागना जारी है।

तो मैं जो कह रहा हूं, समझ लो उसको ठीक से। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मैं तुम्हें कोई आनंद की तरकीब बताऊंगा। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम आनंद में जा सकती हो। यह भी नहीं कह रहा हूं तुमसे कि तुम आनंद पा सकती हो भविष्य में। मैं तुमसे भविष्य की बात ही नहीं कर रहा हूं। मैं तुमसे इतना कह रहा हूं कि वर्तमान में तुम दुख के लिए जाग सकते हो। उसके आगे मुझे नहीं कहना। मैं इतना ही कहता हूं, सौ डिग्री तक पानी गरम करो। आगे पानी अपना संभाल लेता है, उसकी तुम्हें चिंता नहीं करनी है। वह भाप बनेगा।

लेकिन हमें होता क्या है, हमें सारी शिक्षाएं खतरनाक हो गई हैं। सब शिक्षक हमें रेडिमेड फार्मूला दे देते हैं। वे कह देते हैं कि सुख है ही नहीं जीवन में। बस, बात खतम हो गई। वह समझते हैं, बात खतम हो गई। तुमने भी सुन ली, तुमने भी समझा, ठीक बात तो कह रहा है, बिलकुल बात खतम हो गई। सुख है कहां जीवन में? लेकिन सवाल यह नहीं कि सुख जीवन में है या नहीं। सवाल यह है कि क्या तुम इस सत्य पर पहुंचे हो कि तुम्हारे लिए सुख की कोई संभावना नहीं—कभी भी, अनंत काल में? क्या इस सत्य पर तुम पहुंचे हो? क्या यह तुम्हारी प्रतीति बन गई है कि अनंत काल तक भी तुम्हारे लिए सुख की कोई संभावना नहीं है? सुख है ही नहीं कभी। ऐसी तुम्हारी प्रतीति है? तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

फिर क्या करोगे तुम ? तब तुम आनंद के लिए भी नहीं पूछोगे। तब तुम कहोगे कैसा आनंद ? सुख की कोई संभावना ही नहीं है, दुख ही है। और दुख में ही जीना है, वहीं खड़े होना है। यही सत्य है, इसमें ही खड़े होंगे। ऐसे अगर तुम खड़े हो गए तो तुम आनंद में पहुंच जाओगे। वह तुम्हारा पहुंचना नहीं है। यानी तुम कुछ करके वहां नहीं पहुंच जाओगे, यह खड़े हो जाना तुम्हें पहुंचा देगा।

और तुम इसमें खड़े होने को राजी नहीं। तुम कहते हो कि ठीक है, यह दुख तो ठीक है, आप हमें आनंद में पहुंचने का रास्ता बताइए। फिर आनंद भविष्य में हो जाएगा—कल। वह सुख का काम करने लगेगा। उससे क्या फर्क पड़ता है ? फिर स्वर्ग हो जाएगा, फिर मोक्ष हो जाएगा—कल। फिर पोस्टपोनमेंट शुरू हो जाएगा। सुख की भूल क्या थी ? सुख की भूल थी पोस्टपोनमेंट। सुख का भ्रम क्या था ? स्थगन, आगे के लिए, कल। सुख का कसूर क्या था बेचारे का ? आशा थी सुख—भविष्य की : आनंद भी बन सकता है—भविष्य की आशा। आनंद भी बन सकता है —स्थगन कल के लिए। आनंद भी बनेगा —कल की संभावना। तो तुमने सुख से···तुम जो काम ले रहे थे, तुमने आनंद से भी वही काम ले लिया ! फिर भाग शुरू हो गई। यह सवाल थोड़े ही है कि तुम किसके लिए भविष्य में जाते थे ? सवाल यह था कि तुम वर्तमान से चले जाते थे, कहीं और चले जाते थे। इस दुख को भुला देते थे। सुख के नाम से भुलाते थे कि आनंद के नाम से, कोई फर्क नहीं पड़ता।

मैं यह कह रहा हूं कि तुम्हें संभावना ही नहीं है। तुम्हें सुख मिलेगा ही नहीं। तुम सुख पा ही नहीं सकते हो। आनंद-वानंद भी नहीं पा सकते। समझे मेरी बात ? मेरी बात यह है, तुम पा ही नहीं सकते हो। इस जाल को तुम पूरा समझ लो कि इसमें पाना हो ही नहीं सकता। खड़े हो जाओ। खड़े हो ही जाओगे ! जब पा नहीं सकते, तो नहीं दौड़ोगे। पा सकते हो तो दौड़ोगे। नहीं पा सकते, नहीं दौड़ोगे। खड़े हो जाओ। खड़े हुए कि पा लोगे। लेकिन उसे तुम भविष्य का आश्वासन मत बनाना, नहीं तो दौड़ जारी रहेगी। मेरी बात समझ पड़ती है न ? और इसलिए मुझे निरंतर दिक्कत होती है समझने में। क्योंकि बारीक-सा मामला है, जरा में खिसक जाते हैं हम। और तब कोई मुझसे कह सकता है फिर आपकी हम बात क्यों सुनें, जब आप कहते हैं कि आनंद मिलेगा ही नहीं,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पा ही नहीं सकते हो ? तो हम फिज़ूल आपके साथ परेशान हो रहे हैं।
प्रश्न : और आपको परेशान कर रहे हैं ?

···परेशान कर रहे हैं ! लेकिन मैं तुमसे कह रहा हूं कि तुम अगर यह जान लोगे तो पा भी सकते हो, लेकिन उसे कभी आशा मत बनाना, उसे कभी भविष्य का साध्य मत बनाना, उसे कभी लक्ष्य मत बनाना। वह बनेगी उपलब्धि, तुम तो जो है, उसे जानना है। वह आएगा अपने से। वह आना बिलकुल सहज है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर : मेरी दृष्टि में

प्रवचन : २५, दिनांक २ अक्तूबर, १९६९, श्रीनगर

महावीर पर इतने दिनों तक बात करनी अत्यंत आनंदपूर्ण थी। यह ऐसे ही था, जैसे मैं अपने संबंध में ही बात कर रहा हूं। पराए के संबंध में बात की भी नहीं जा सकती। दूसरे के संबंध में कुछ कहा भी कैसे जा सकता है? अपने संबंध में ही सत्य हुआ जा सकता है। और महावीर पर इस भांति मैंने बात नहीं की, जैसे वे कोई दूसरे और पराए हैं। जैसे हम अपने आंतरिक जीवन के संबंध में ही बात कर रहे हों, ऐसी ही उन पर बात की है। उन्हें केवल निमित्त माना है, और उनके चारों ओर उन सारे प्रश्नों पर चर्चा की है, जो प्रत्येक साधक के मार्ग पर अनिवार्यरूप से खड़े हो जाते हैं। महत्त्वपूर्ण भी यही है।

महावीर एक दार्शनिक की भांति नहीं हैं, एक सिद्ध, एक महायोगी हैं। दार्शनिक तो बैठकर विचार करता है जीवन के संबंध में, योगी जीता है जीवन को। दार्शनिक पहुंचता है सिद्धांतों पर, योगी पहुंच जाता है सिद्धावस्था पर। सिद्धांत बातचीत हैं, सिद्धावस्था उपलब्धि है। महावीर पर ऐसे ही बात की है, जैसे वे कोई मात्र कोरे विचारक नहीं हैं। और इसलिए भी बात की है कि जो इस बात को सुनेंगे, समझेंगे, वे भी जीवन में कोरे विचारक न रह जाएं। विचार अद्भुत है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। विचार कीमती है लेकिन कहीं पहुंचाता नहीं। विचार से ऊपर उठे बिना कोई व्यक्ति आत्म-उपलब्धि तक नहीं पहुंचता है।

महावीर कैसे विचार से ऊपर उठे, कैसे ध्यान से, कैसी समाधि से—यह सब बातें हमने कीं। कैसे महावीर को परम-जीवन उपलब्ध हुआ और कैसे परम-जीवन की उपलब्धि के बाद भी वे अपनी उपलब्धि की खबर देने वापस लौट आए, उस करुणा की भी हमने बात की। जैसे कोई नदी सागर में गिरने के पहले पीछे लौटकर देखे एक क्षण को, ऐसे ही महावीर ने अपने अनंत जीवन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

की यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पीछे लौटकर देखा है। लेकिन उनके पीछे लौटकर देखने को केवल वे ही लोग समझ सकते हैं, जो अपने जीवन की अंतिम यात्रा की तरफ आगे देख रहे हों। महावीर पीछे लौटकर देखें, लेकिन हम उन्हें तभी समझ सकते हैं, जब हम भी अपने जीवन के आगे के पड़ाव की तरफ देख रहे हों। अन्यथा महावीर को नहीं समझा जा सकता है।

साधारणतः महावीर को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए। वह अतीत की घटना है। इतिहास यही कहेगा। मैं यह नहीं कहूंगा। साधक के लिए महावीर भविष्य की घटना हैं। उसकी अपनी दृष्टि से वह महावीर के होने तक आगे कभी पहुंचेगा। इतिहास की दृष्टि से अतीत की घटना है, पीछे बीते हुए समय की। साधक की दृष्टि से आगे की घटना है। उसके जीवन में आने वाले किसी क्षण में वह वहां पहुंचेगा, जहां महावीर पहुंचे हैं। और जब तक हम उस जगह न पहुंच जाएं, तब तक महावीर को समझा नहीं जा सकता है। क्योंकि हम उस अनुभूति को कैसे समझेंगे, जो अनुभूति हमें नहीं हुई है? अंधा कैसे समझेगा प्रकाश के संबंध में? और जिसने कभी प्रेम नहीं किया और प्रेम नहीं दिया, वह कैसे समझेगा प्रेम के संबंध में? हम उतना ही समझ सकते हैं, जितने हम हैं, जहां हम हैं। हमारे होने की स्थिति से हमारी समझ ज्यादा नहीं होती। इसलिए महापुरुष के प्रति अनिवार्य होता है कि हम नासमझी में हों। महापुरुष को समझना अत्यंत कठिन है, बिना स्वयं महापुरुष हो जाए। जब तक कि कोई व्यक्ति उस स्थिति में न खड़ा हो जाए, जहां कृष्ण हैं, जहां क्राइस्ट हैं, जहां मुहम्मद हैं, जहां महावीर हैं; तब तक हम समझ नहीं पाते। और जो हम समझते हैं, वह अनिवार्यरूपेण भूल-भरा होता है।

इसलिए एक बात ध्यान में रखनी चाहिए, महावीर को समझना हो तो सीधे ही महावीर को समझ लेना संभव नहीं है, महावीर को समझना हो तो बहुत गहरे में स्वयं को समझना और रूपांतरित करना ज्यादा जरूरी है। लेकिन हम तो शास्त्र से समझने जाते हैं, और तब भूल हो जाती है! शब्द से, सिद्धांत से, परंपरा से समझने जाते हैं, तभी भूल हो जाती है! हम तो स्वयं के भीतर उतरेंगे, तो उस जगह पहुंचेंगे, जहां महावीर कभी पहुंचे हों, तभी हम समझ पाएंगे।

मैंने जो बातें कीं इन दिनों में, उन बातों का शास्त्रों से कोई संबंध नहीं है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसलिए हो सकता है बहुतों को वे बातें कठिन भी मालूम पड़ें, स्वीकार योग्य भी न मालूम पड़ें, जिनकी शास्त्रीय बुद्धि है, उन्हें अत्यंत अजनबी मालूम पड़ें। वे शायद पूछें भी कि, शास्त्रों में यह सब कहां है ? तो उनसे मैं पूर्व में ही कह देना चाहता हूं कि शास्त्रों में हो या न हो, जो स्वयं में खोजेगा, वह सब इसको पा लेता है।

और स्वयं से बड़ा न कोई शास्त्र है और न कोई दूसरी आप्तता, कोई और अथार्टी है।

वे मुझसे यह भी पूछ सकते हैं कि मैं किस अधिकार से कह रहा हूं यह ? तो उनसे पूर्व से यह भी कह देना उचित है कि मेरा कोई शास्त्रीय अधिकार नहीं है, न मैं शास्त्रों का विश्वासी हूं। बल्कि जो शास्त्र में लिखा है, वह मुझे इसीलिए संदिग्ध हो जाता है कि शास्त्र में लिखा है। क्योंकि वह लिखने वाले के चित्त की खबर देता है, जिसके संबंध में लिखा गया है उसके चित्त की नहीं, फिर हजारों वर्ष की गर्द उस पर जम जाती है। और शास्त्रों पर जितनी धूल जम गई है, उतनी किसी और चीज पर नहीं जमी है।

एक मुझे स्मरण आता है, एक आदमी एक घर में शब्दकोश बेचने के लिए गया है, डिक्शनरी बेच रहा है। घर की गृहिणी ने उसे टालने को कहा है कि शब्दकोश हमारे घर में है, वह सामने टेबल पर रखा है। हमें कोई और जरूरत नहीं है। लेकिन उस आदमी ने कहा कि देवी जी ! क्षमा करें, वह शब्दकोश नहीं है, वह कोई धर्मग्रंथ मालूम होता है। स्त्री तो बहुत परेशान हुई। वह धर्मग्रंथ था ! पर दूर से टेबल पर रखी किताब को कैसे वह व्यक्ति पहचान गया ? तो उस गृहिणी ने पूछा, कैसे आप जाने कि वह धर्मग्रंथ है ? उसने कहा, उस पर जमी हुई धूल बता रही है। शब्दकोश पर धूल नहीं जमती। रोज उसे कोई खोलता है, देखता है, पढ़ता है। उसका उपयोग होता है। उस पर इतनी धूल जमी है कि निश्चित कहा जा सकता है कि वह धर्मग्रंथ है !

सब धर्मग्रंथों पर बड़ी धूल जम जाती है। क्योंकि न तो हम उसे जीते हैं, न उसे जानते हैं। फिर धूल इकट्ठी होती चली जाती है। सदियों की धूल इकट्ठी हो जाती है। उस धूल में से पहचानना ही मुश्किल हो जाता है कि क्या-क्या है। इसलिए मैंने महावीर और अपने बीच शास्त्र को नहीं लिया है, उसे अलग ही रखा है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर को सीधे ही देखने की कोशिश की है। और सीधे हम सिर्फ उसे ही देख सकते हैं, जिससे हमारा प्रेम हो। जिससे हमारा प्रेम न हो, उसे हम कभी भी सीधा नहीं देख सकते। और वही हमारे सामने पूरी तरह प्रकट होता है, जिससे हमारा प्रेम हो।

जैसे सूरज के निकलने पर कली खिल जाती और फूल बन जाती, ऐसा ही जिससे भी हम आत्यंतिक रूप से प्रेम कर सकें, उसका जीवन बंद कली से खुले फूल का जीवन हो जाता है। जरूरत है कि हम प्रेम कर पाएं। जरूरत ज्ञान की कम है। ज्ञान तो दूर ही कर देता है। और ज्ञान से शायद ही कोई कभी किसी को जान पाता हो। इनफर्मेशन, सूचनाएं बाधा डाल देती हैं। सूचनाओं से शायद ही कोई कभी किसी से परिचित हो पाता हो। वे बीच में खड़ी हो जाती हैं, वे पूर्वाग्रह बन जाती हैं, पक्षपात बन जाती हैं। हम पहले से ही जानते हुए होते हैं। जो हम जानते हुए होते हैं, वही हम देख भी लेते हैं।

जो महावीर को भगवान मानकर जाएगा, उसे महावीर में भगवान भी मिल जाएंगे, लेकिन वे उसके अपने आरोपित भगवान होंगे। जो महावीर को नास्तिक, महा नास्तिक मानकर जाएगा, उसे नास्तिक, महा नास्तिक भी मिल जाएगा। वह नास्तिकता उसकी अपनी रोपी हुई होगी। जो महावीर को, जो मानकर जाएगा, वही पा लेगा। क्योंकि गहरे में, अंततः हम अपनी ही मान्यता को निर्मित कर लेते और खोज लेते हैं। और व्यक्ति इतनी बड़ी घटना है कि उसमें सब मिल सकता है। फिर हम चुनाव कर लेते हैं। जो हम मानकर जाते हैं, वह हम चुन लेते हैं। और तब जो हम जानते हुए लौटते हैं, वह जानता हुआ लौटना नहीं है, वह हमारी ही मान्यता की प्रतिध्वनि है।

प्रेम के जानने का रास्ता दूसरा है, ज्ञान के जानने का रास्ता दूसरा है। ज्ञान पहले जान लेता है, फिर खोज पर निकलता है। प्रेम जानता नहीं, खोज पर निकल जाता है अज्ञात में, अननोन में, अपरिचित में। प्रेम सिर्फ अपने हृदय को खोल लेता है। प्रेम सिर्फ दर्पण बन जाता है, कि जो भी उसके सामने आएगा—जो भी; जो है, वही उसी में प्रतिफलित हो जाए। इसलिए प्रेम के अतिरिक्त कोई कभी किसी को नहीं जान सका है। और हम सब ज्ञान के मार्ग से ही जानने जाते हैं, इसलिए नहीं जान पाते हैं।

महावीर को प्रेम करेंगे तो पहचान पाएंगे। कृष्ण को प्रेम करेंगे तो पहचान

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पाएंगे। और भी एक मजे की बात है कि जो महावीर को प्रेम करेगा, वह कृष्ण को, क्राइस्ट को, मुहम्मद को प्रेम करने से बच नहीं सकता। अगर महावीर को प्रेम करने वाला ऐसा कहता हो कि महावीर से मेरा प्रेम है, इसलिए मैं मुहम्मद को कैसे प्रेम करूं? तो जानना चाहिए कि प्रेम उसके पास नहीं है। क्योंकि अगर महावीर से प्रेम होगा तो जो महावीर में उसे दिखाई पड़ेगा, वही बहुत गहरे में मुहम्मद में, कृष्ण में, क्राइस्ट में, कन्फ्यूसियस में भी दिखाई पड़ जाएगा, जरथुस्त्र में भी दिखाई पड़ जाएगा। प्रेम प्रत्येक कली को खोल लेता है। जैसे सूरज प्रत्येक कली को खोल लेता है, पंखुरियां खुल जाती हैं। और तब अंत में तो सिर्फ फ्लावरिंग रह जाती है। पंखुरियां गैर अर्थ की हो जाती हैं, सुगंध बेमानी हो जाती है, रंग भूल जाते हैं। अंततः तो प्रत्येक फूल में जो घटना गहरी रह जाती है, वह है फ्लावरिंग, वह है उसका खिल जाना। महावीर खिलते हैं एक ढंग से, कृष्ण खिलते हैं दूसरे ढंग से। लेकिन जिसने फूल के खिलने को पहचान लिया, वह इस खिलने को सारे जगत में सब जगह पहचान लेगा। इन व्यक्तियों में से एक से भी कोई प्रेम कर सके तो वह सबके प्रेम में उतर जाएगा। लेकिन दिखाई उल्टा पड़ता है।

मुहम्मद को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करना तो दूर, घृणा करता है! बुद्ध को प्रेम करने वाला, क्राइस्ट को प्रेम नहीं कर सकता है! तब हमारा प्रेम संदिग्ध हो जाता है। इसका अर्थ है कि यह प्रेम प्रेम ही नहीं है, शायद यह भी गहरे में कोई स्वार्थ है, कोई सौदा है। शायद हम अपने प्रेम के द्वारा भी महावीर से कुछ पाना चाहते हैं! शायद हमारा प्रेम भी एक गहरे सौदे का निर्णय है, हम कुछ बारगेनिंग कर रहे हैं। हम यह कह रहे हैं कि हम इतना प्रेम तुम्हें देंगे, तुम हमें क्या दोगे? और तब हम अपने प्रेम में संकीर्ण होते चले जाते हैं। और प्रेम धीरे-धीरे इतना सीमित हो जाता है कि घृणा में और प्रेम में कोई फर्क नहीं रह जाता। क्योंकि जो प्रेम एक पर प्रेम बनता हो और शेष पर घृणा बन जाता हो वह एक पर भी कितने दिन तक प्रेम रहेगा? क्योंकि घृणा हो जाएगी बहुत। महावीर को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करेगा और शेष सबको अप्रेम करेगा। अप्रेम इतना ज्यादा हो जाएगा कि यह प्रेम का बिंदु कब विलीन हो जाएगा, पता भी नहीं चलेगा।

मैंने सुना है एक महिला थी बर्मा में, वह बुद्ध की प्रेमी थी। और उसने बुद्ध

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

की एक स्फटिक प्रतिमा बना ली थी—छोटी, अति सुंदर। वह निरंतर उसे अपने साथ रखती। हो सकता है किसी दिन सुबह पूजा में, गांव में मंदिर न हो बुद्ध का, तो वह मूर्ति को साथ ही रखती--वह निरंतर साथ रखती।

फिर वह एक गांव में आई, जहां हजार बुद्धों का मंदिर था, जहां एक ही मंदिर में बुद्ध की हजार प्रतिमाएं थीं। वह उस मंदिर में ठहरी। सुबह जब वह पूजा के लिए अपनी मूर्ति रखी और जब उसने धूप जलाई, तो उसे ख्याल आया कि यह धूप मेरे बुद्ध को मिलेगी ही मिलेगी, लेकिन दूसरे बुद्धों की जो प्रतिमाएं बैठी हैं, उनको भी यह धूप मिल जाएगी! क्योंकि धूप को कोई बांधा तो नहीं जा सकता। और ऐसा भी हो सकता है कि मेरे बुद्ध को धूप मिले ही न, क्योंकि हवाओं का क्या भरोसा! और धूप उड़कर दूसरे बुद्धों को मिल जाए! यह तो···यह तो उसके प्रेम के लिए संभव न था। संकीर्ण था प्रेम। तो संकीर्ण प्रेम बुद्ध को प्रेम करे, महावीर को घृणा करे, ऐसा ही नहीं, बुद्ध की भी प्रतिमा को, एक प्रतिमा को प्रेम करने लगता है—वह भी खास प्रतिमा को!

अब जैनों में दिगंबर हैं, श्वेतांबर हैं, महावीर की एक ही प्रतिमा को दिगंबर नंगा करके पूजा करेंगे, श्वेतांबर आंखें लगाएंगे, श्रृंगार करेंगे, फिर पूजा करेंगे! इस पर भी झगड़ा हो जाएगा। दिगंबर वाली प्रतिमा की श्वेतांबर पूजा नहीं कर सकते, श्वेतांबर वाली प्रतिमा की दिगंबर पूजा नहीं कर सकते! और प्रतिमा एक है! लेकिन अपना आरोपण कर लेंगे, तब वह अपनी होगी! महावीर की प्रतिमा का उतना सवाल नहीं है।

तो उस स्त्री को भी बड़ी बेचैनी हुई कि यह कैसे हो? तो उसने धूप नहीं जलाई, उसने पहले टीन की एक पोंगरी बनाई और उस पोंगरी को धूप के ऊपर रखा, और फिर धुएं को पोंगरी से अपने बुद्ध की नाक तक पहुंचाया! लेकिन तब उसके बुद्ध का मुंह काला हो गया! और तब वह बहुत पछताई, बहुत रोई; क्योंकि बुद्ध का मुंह काला हो गया। और उस मंदिर के बड़े पुजारी से मिलने गई और उसने कहा कि मेरे बुद्ध का मुंह खराब हो गया! तो उस पुजारी ने कहा, संकीर्ण प्रेम सदा ही उसका मुंह खराब कर देता है, जिससे प्रेम करता है। इतना संकीर्ण प्रेम होगा तो जिससे तुम प्रेम करती हो, उसका चेहरा भी काला हो जाएगा।

संकीर्ण लोगों ने महावीर की प्रतिमा भी काली कर दी है, मुहम्मद की भी,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बुद्ध की भी, कृष्ण की भी—सबकी प्रतिमाएं काली कर दी हैं ! क्योंकि संकीर्ण प्रेम घृणा का ही एक रूप है। जितना प्रेम संकीर्ण होगा, उतना ही घृणा से भर जाता है। और जब चारों तरफ घृणा होगी तो यह असंभव है, घृणा के बड़े सागर में प्रेम की छोटी-सी बूंद को कैसे बचाया जा सकता है ?

वह तो प्रेम के बड़े सागर में ही प्रेम की बूंद बच सकती है।

यह हमें ध्यान होना चाहिए कि प्रेम के बड़े सागर में ही प्रेम की बूंद बच सकती है। घृणा के बड़े सागर में प्रेम की बूंद नहीं बचाई जा सकती है। लेकिन हम चाहते हैं यह कि हमारी प्रेम की बूंद बच जाए और शेष घृणा का सागर हो !

एक मुसलमान फकीर औरत हुई राबिया। कुरान में एक जगह प्रवचन आता है कि शैतान को घृणा करो, तो उसने वह वचन काट दिया, उस पर स्याही फेर दी ! लेकिन कुरान में कोई सुधार करे, यह तो उचित नहीं है। हसन नाम का एक फकीर उसके घर मेहमान था। सुबह उसने कुरान पढ़ने को उठाई तो देखा कि उसमें सुधार किया गया है। तो उसने कहा, यह कौन नासमझ है जिसने कुरान में सुधार किया ? कुरान में तो सुधार नहीं किया जा सकता। राबिया ने कहा, मुझको ही सुधार करना पड़ा है। तो हसन ने कहा कि तू तो नास्तिक मालूम होती है ! कुरान में और सुधार करने की तेरी हिम्मत ? यह तो बड़ा पाप है।

राबिया ने कहा कि पाप हो या पुण्य, मुझे पता नहीं। उसमें एक वाक्य था, लिखा है कि शैतान को घृणा करो ! लेकिन मेरे मन से तो घृणा चली गई, अब तो शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाए तो मैं घृणा करने में असमर्थ हूं। अब तो मैं शैतान को भी प्रेम ही कर सकती हूं। यह अब अनिवार्यतः हो गई, क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त मेरे हृदय में कुछ है ही नहीं। शैतान के लिए भी घृणा कहां से लाऊंगी ?

और राबिया ने कहा, और एक नई बात तुम्हें बताऊं कि जब तक मेरे मन में घृणा थी, तब तक परमात्मा के लिए भी प्रेम को लाने का उपाय न था। क्योंकि हृदय में घृणा हो तो परमात्मा के लिए प्रेम कैसे लाओगे ? प्रेम आएगा कहां से ? आसमान से तो नहीं, हृदय से आएगा। और एक ही हृदय में दोनों का अस्तित्व साथ-साथ नहीं होता। जिस हृदय में घृणा है, वहां प्रेम का निवास नहीं और जिस हृदय में प्रेम है, वहां घृणा का निवास नहीं। यह ऐसे ही है कि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जिस कमरे में उजाला है, वहां अंधकार नहीं; जिस कमरे में अंधेरा है, वहां उजाला नहीं।

तो राबिया ने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। अगर शैतान को घृणा करनी है तो मैं चाहे मानूं या न मानूं, परमात्मा को भी घृणा करती रहूंगी। नाम प्रेम के दूंगी, लेकिन वे झूठे होंगे, क्योंकि घृणा करने वाले चित्त में प्रेम कहां? और अगर मुझे परमात्मा को प्रेम करना है तो मुझे शैतान को भी प्रेम ही करना पड़ेगा, क्योंकि प्रेम करने वाले हृदय में घृणा की संभावना कहां? इसलिए मुझे यह लकीर काट देनी पड़ी। भले ही इसके लिए कितना ही पाप लगे, लेकिन अब कोई उपाय नहीं।

यह राबिया ने ठीक कहा—या तो हमारा हृदय प्रेमपूर्ण होगा या घृणापूर्ण होगा।

यह असंभव है कि एक व्यक्ति महावीर को प्रेम करता हो और बुद्ध को प्रेम न करे। बुद्ध और महावीर की तो बात दूसरी, सच तो यह है कि एक व्यक्ति प्रेम करता हो तो वह प्रेम ही कर सकता है। बुद्ध-महावीर का भी सवाल नहीं, साधारणजनों को भी प्रेम ही कर सकता है। यह प्रेम करना अब कोई सौदा नहीं है, अब यह उसका स्वभाव है। अब कोई उपाय ही नहीं है, वह प्रेम ही करेगा। जैसे कि रास्ते के किनारे एक फूल खिला हो, फूल से सुगंध गिरती हो, रास्ते से कौन निकलता है, यह फूल थोड़े ही पूछता है! अच्छा कि बुरा, अपना कि पराया, मित्र की शत्रु, फूल यह नहीं पूछता। फूल की सुगंध रास्ते पर फैलती रहती है और जो भी रास्ते से गुजरता है, उसे सुगंध मिलती है। ऐसा भी नहीं है कि फूल जब चाहे, तब सुगंध को रोक ले, कि जब चाहे तब छोड़ दे। ऐसा भी नहीं है कि रास्ता खाली हो जाए तो फूल अपनी सुगंध को रोक ले। खाली रास्ते पर भी फूल की सुगंध गिरती रहती है, क्योंकि सुगंध फूल का स्वभाव है।

जिस दिन प्रेम स्वभाव हो जाता है, उस दिन हम प्रेम ही कर सकते हैं।

और इसलिए यह मैं कहना चाहता हूं कि अगर प्रेम सीमित और संकीर्ण हो तो जानना कि वह प्रेम नहीं है, वह घृणा का ही एक रूप है। और इसलिए अनुयायी कभी प्रेमपूर्ण नहीं होता। वह जो फालोअर है, वह कभी प्रेम नहीं होता। क्योंकि जो प्रेमपूर्ण है, वह कैसे अनुयायी बनेगा? या तो वह सबका ही अनुयायी हो जाएगा या किसी का भी अनुयायी नहीं होगा। उसका प्रेम इतना

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विस्तीर्ण है कि किसके पीछे जाएगा ? क्योंकि एक के पीछे जाने में दूसरे को छोड़ना पड़ता है। और एक के पीछे जाने में हजार को छोड़ना पड़ता है। और जिसका प्रेम इतना बड़ा है कि वह किसी को भी नहीं छोड़ सकता, वह किसी के भी पीछे नहीं जाता, वह अनुयायी नहीं रह जाता है।

इसलिए मैंने कहा कि मैं महावीर का अनुयायी नहीं हूं, न बुद्ध का न कृष्ण का। क्योंकि किसी भी एक के पीछे जाने में शेष सबको छोड़े बिना कोई रास्ता नहीं है। इसलिए मैं किसी के भी पीछे नहीं गया हूं, और न कहता हूं कि कोई किसी के पीछे जाए।

और भी एक मजे की बात है कि जो किसी के पीछे जाएगा, वह अपने भीतर नहीं जा सकता। क्योंकि पीछे जाने की दिशा होती है बाहर, और भीतर जाने की दिशा होती है भीतर। तो जो किसी का भी अनुयायी है, वह आत्म-अनुभव को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि उसे जाना पड़ता है किसी के पीछे, और आत्म-अनुभव में सबको छोड़कर जाना है उसे स्वयं के भीतर।

इसलिए मैं कहता हूं कि जो सबको प्रेम करता है, उसे किसी को पकड़ने का उपाय नहीं रहता। सब छूट जाते हैं और वह अपने भीतर जा सकता है।

यह भी समझ लेने की बात है कि प्रेम अकेला मुक्त करता है, घृणा बांधती है। और जो प्रेम भी बांधता हो, मैं कहता हूं, वह भी घृणा का ही रूप है। क्योंकि प्रेम बांधता ही नहीं, प्रेम एकदम मुक्त कर देता है।

प्रेम का कोई बंधन नहीं है।

प्रेम न किसी पर ठहरता है, न किसी पर रुकता ; न किसी को रोकता, न किसी को ठहराता।

प्रेम की न कोई शर्त है, न कोई सौदा है।

प्रेम है, तो परम मुक्ति है।

एक को भी अगर हम प्रेम कर लें तो हम पाएंगे कि एक जो था, वह द्वार बन गया अनेक का। और कब एक मिट गया और प्रेम अनेक पर पहुंच गया, कहना कठिन है।

पर हम एक को भी प्रेम नहीं कर पाते ! असल में हम प्रेम ही नहीं कर पाते हैं। क्योंकि हम प्रेमपूर्ण ही नहीं हैं। हम ज्ञानपूर्ण बहुत हैं, लेकिन प्रेमपूर्ण बहुत कम हैं। और कारण है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ज्ञान संग्रह करना पड़ता है और प्रेम बांटना पड़ता है।

तो जो चीज संग्रह करनी पड़ती है, वह तो हम कर लेते हैं; क्योंकि उससे हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है। तो धन इकट्ठा कर लेते हैं, ज्ञान इकट्ठा कर लेते हैं, त्याग इकट्ठा कर लेते हैं! जो चीज भी इकट्ठी हम कर सकते हैं, वह कर लेते हैं।

लेकिन प्रेम का मामला उल्टा है। प्रेम अकेली घटना है, जिसे हम इकट्ठा नहीं कर सकते, जिसको बांटना पड़ता है। प्रेम को आप इकट्ठा नहीं कर सकते। एक आदमी धन को इकट्ठा करके धनी हो जाएगा, लेकिन ऐसे ही कोई आदमी प्रेम को इकट्ठा करके प्रेमी नहीं हो सकता। प्रेम की धारा ठीक उल्टी है। जितना बांटो उतना प्रेम, जितना इकट्ठा करो उतना कम।

जिसकी इकट्ठा करने की वृत्ति है, वह प्रेमी नहीं हो सकता।

पंडित की प्रवृत्ति इकट्ठे करने की होती है, वह ज्ञान इकट्ठा कर लेता है। ज्ञान बहुत इकट्ठा किया जा सकता है और तभी फिर वह महावीर को या बुद्ध को या कृष्ण को जानने में असमर्थ हो जाता है। सच बात यह है कि वह कृष्ण या बुद्ध या महावीर को जानता नहीं, बल्कि अपने ज्ञान के आधार पर पुनः निर्मित करता है, रि-कंस्ट्रक्ट करता है। वह फिर एक नया आदमी खड़ा कर लेता है, जो कि कभी था ही नहीं। वह उसके ज्ञान के अनुकूल व्यक्ति बना लेता है। इस-लिए सभी महापुरुषों का चित्र झूठा हो जाता है। उन सबकी जो पीछे स्मृति बनती है, वह झूठी हो जाती है, वह हमारे द्वारा बनाई हुई होती है।

ज्ञान से कोई द्वार नहीं है किसी को समझने का, प्रेम से द्वार है। क्योंकि प्रेम यह नहीं कहता कि तुम ऐसे होओ तो ही मैं मानूंगा। प्रेम यह कहता है, तुम जैसे हो, उसको मैं प्रेम करने के लिए तैयार हूं। प्रेम यह कहता ही नहीं कि तुम ऐसे हो तो! अगर मैं महावीर को प्रेम करता हूं तो वह मुझे कपड़े पहने मिल जाएं तो भी मैं प्रेम करूंगा और वे नंगे मिल जाएं तो भी प्रेम करूंगा।

लेकिन एक अनुयायी है, वह कहता है कि महावीर नग्न हैं, तो ही मैं प्रेम करूंगा! अगर वह नग्न नहीं है तो अज्ञानी है!

एक घटना घटी, मेरी एक मित्र, एक महिला हालैंड गई थी। वह कृष्ण-मूर्ति का एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था, कोई छह-सात हजार लोग सारी दुनिया से इकट्ठे थे कृष्णमूर्ति को सुनने। वह मेरी परिचित महिला एक दुकान पर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सांझ को गई है, उसके साथ दो और यूरोपियन महिलाएं थीं। वे तीनों एक छोटी-सी दुकान पर कुछ खरीदने गई हैं। वहां देखकर वे हैरान रह गई हैं, क्योंकि कृष्णमूर्ति वहां टाई खरीद रहे हैं! और न केवल टाई—एक तो यही बात बड़ी गलत मालूम पड़ी कि कृष्णमूर्ति जैसा ज्ञानी एक साधारण दुकान पर टाई खरीदता हो! तो ज्ञानी तो खतम ही हो गया उसी क्षण। और फिर न केवल टाई खरीद रहे हैं, बल्कि यह टाई लगाकर देखते हैं, वह टाई लगाकर देखते हैं; यह भी पसंद नहीं पड़ती, वह भी पसंद नहीं पड़ती! सारी दुकान की टाई फैला रखी हैं। तो वे तीनों महिलाओं के मन में बड़ा संदेह भर गया कि हम किस व्यक्ति को सुनने इतने दूर से आए हैं। और वह व्यक्ति एक साधारण-सी दुकान पर टाई खरीद रहा है! और वह भी टाई में भी रंग मिला रहा है कि कौन-सा मेल खाता है, कौन-सा नहीं मेल खाता है! उन दो यूरोपियन महिलाओं ने मेरी मित्र को कहा कि हम तो अब सुनने नहीं आएंगे। बात खतम हो गई है। एक साधारण आदमी को सुनने हम इतने दूर से व्यर्थ परेशान हुए। जिसको अभी कपड़ों का भी ख्याल है इतना ज्यादा, उसको क्या ज्ञान मिला होगा? वे दोनों महिलाएं सम्मेलन में सम्मिलित हुए बिना वापस लौट गईं!

उस मेरी मित्र ने कृष्णमूर्ति को जाकर कहा कि आपको पता नहीं है कि आपके टाई खरीदने से कितना नुकसान हुआ! दो महिलाएं सम्मेलन छोड़कर चली गई हैं। क्योंकि वे यह नहीं मान सकतीं कि एक ज्ञानी व्यक्ति और टाई खरीदता हो। तो कृष्णमूर्ति ने कहा कि चलो, दो का मुझसे छुटकारा हुआ; यह भी क्या कम है! दो मुझसे मुक्त हो गईं, यह भी क्या कम है? दो का भ्रम टूटा, यह भी क्या कम है? कृष्णमूर्ति ने कहा, क्या मैं टाई न खरीदूं तो ज्ञानी हो जाऊंगा? अगर ज्ञानी होने की इतनी सस्ती शर्त है तो कोई भी नासमझ इसे पूरी कर सकता है। अगर इतनी सस्ती शर्त से कोई ज्ञानी हो जाता है तो कोई भी नासमझ इसे पूरी कर सकता है। लेकिन इतनी सस्ती शर्त पर मैं ज्ञानी नहीं होना चाहता। और इतनी सस्ती शर्त पर जो मुझे ज्ञानी मानने को तैयार हैं, वे न मानें, यही अच्छा है, यही शुभ है।

लेकिन हम सबकी ऐसी शर्तें होती हैं। और शर्तें इसीलिए होती हैं कि हमारा कोई प्रेम नहीं है। हमारी अपनी धारणाएं हैं, इन धारणाओं पर हम कसने की कोशिश करते हैं एक आदमी को! और ध्यान रहे, जितना अद्भुत व्यक्ति

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

होगा, उतनी ही सारी धारणाओं को तोड़ देता है ; किसी धारणा पर कसा नहीं जा सकता। असल में अद्भुत व्यक्ति का अर्थ ही यह है कि पुरानी कसौटियां उस पर काम नहीं करतीं। अद्भुत व्यक्ति, प्रतिभाशाली व्यक्ति न केवल खुद को निर्मित करता है बल्कि खुद को मापे जाने की कसौटियां भी फिर से निर्मित करता है।

और इसीलिए ऐसा हो जाता है कि महावीर जब पैदा होते हैं तो पुराने महापुरुषों के अनुयायी महावीर को नहीं पहचान पाते। क्योंकि उनकी कसौटियां जो रहती हैं, वे महावीर पर लागू नहीं पड़तीं। पुराना जो अनुयायी है, पुराने महापुरुषों का ; वह पुरानी उन महापुरुषों के हिसाब से उसने धारणाएं बनाकर रखी हैं, वह महावीर पर कसने की कोशिश करता है ! महावीर उस पर नहीं उतर पाते, इसलिए व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन महावीर का अनुयायी वही बातें बुद्ध पर कसने की कोशिश करता है और तब फिर मुश्किल हो जाती है।

हमारा चित्त अगर पूर्वाग्रह से भरा है तो महापुरुष तो दूर, एक छोटे से व्यक्ति को भी हम प्रेम करने में समर्थ नहीं हो पाते। एक पत्नी पति को प्रेम नहीं कर पाती, क्योंकि पति कैसा होना चाहिए, इसकी धारणा पक्की मजबूत है ! एक पति पत्नी को प्रेम नहीं कर पाता, क्योंकि पत्नी कैसी होनी चाहिए, शास्त्रों से सब उसने सीख कर तैयार कर लिया है, वही अपेक्षा कर रहा है ! वह इस व्यक्ति को जो सामने पत्नी या पति की तरह मौजूद है, देख ही नहीं रहा। और ऐसा व्यक्ति कभी हुआ ही नहीं है। यह बिलकुल नया व्यक्ति है।

मैंने जो बातें महावीर के संबंध में कहीं, उन पर मेरा कोई पूर्व आग्रह नहीं है। कोई सूचनाओं के, किन्हीं धारणाओं को, किन्हीं मापदंडों के आधार पर मैंने उन्हें नहीं कसा है। मेरे प्रेम में वे जैसे दिखाई पड़ते हैं, वैसी मैंने बात की है। और जरूरी नहीं है कि मेरे प्रेम में वे वैसे दिखाई पड़ते हैं, वैसे आपके प्रेम में भी दिखाई पड़ने चाहिए। अगर वैसा भी मैं आग्रह करूं, तो फिर मैं आपसे धारणाओं की अपेक्षा कर रहा हूं। मैंने अपनी बात कही, जैसा वे मुझे दिखाई पड़ते हैं, जैसा मैं उन्हें देख पाता हूं। और इसलिए एक बात निरंतर ध्यान में रखनी जरूरी होगी—यह बात निरंतर ध्यान में रखनी जरूरी होगी कि महावीर के संबंध में जो भी मैंने कहा है, वह मैंने कहा है और मैं उसमें अनिवार्यरूप से उतना ही मौजूद हूं जितने महावीर मौजूद हैं। वह मेरे और महावीर के बीच

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हुआ लेन-देन है। उसमें अकेले महावीर नहीं हैं, उसमें अकेला मैं भी नहीं हूं, उसमें हम दोनों हैं। और इसलिए यह बिलकुल ही असंभव है कि जो मैंने कहा है, ठीक बिलकुल वैसा ही किसी दूसरे को भी दिखाई पड़े। यह बिलकुल असंभव है। मैं किसी ऑब्जेक्टिव महावीर की, किसी दूर वस्तु की तरह खड़े हुए व्यक्ति की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तो उस महावीर की बात कर रहा हूं, जिसमें मैं भी सम्मिलित हो गया हूं, जो मेरे लिए एक सब्जेक्टिव अनुभव है, एक आत्मगत् अनुभूति बन गया है। इसलिए बहुत-सी कठिनाइयां होंगी।

जो भी मेरी बात को पढ़ेंगे, उन्हें समझने में बहुत कठिनाई और मुश्किल हो सकती है। सबसे बड़ी मुश्किल तो यह होगी कि वे उस जगह खड़े नहीं हो सकते, जहां जो खड़े होकर मैं देख रहा हूं। लेकिन इतनी ही उनकी कृपा काफी होगी कि वह उसकी चिंता ही न करें। एक व्यक्ति ने एक जगह खड़े होकर कैसे महावीर को देखा है, इसको समझ भर लें। और फिर अपनी जगह से खड़े होकर देखने की कोशिश करें। जरूरी नहीं है कि उनका जो ख्याल होगा, वह मुझसे मेल खाए। मेल खाने की कोई जरूरत भी नहीं है। लेकिन अगर इतने निष्पक्ष भाव से मेरी बात को समझा गया तो जो भी व्यक्ति उतने निष्पक्ष भाव से समझेगा, उसे महावीर को समझने की बड़ी अद्भुत कुशलता उपलब्ध हो जाएगी। और न केवल महावीर को, अगर उसने बहुत गौर से समझा तो वह महावीर को ही नहीं, बुद्ध को भी, मुहम्मद को भी, कृष्ण को भी समझने में इतना ही समर्थ हो जाएगा।

इतिहास तो जो बाहर से दिखाई पड़ता है, उसे लिखा जाता है। और जो बाहर से दिखाई पड़ता है, वह एक अत्यंत छोटा पहलू होता है। और इसलिए इतिहास बड़ी सच्ची बातें लिखते हुए भी बहुत बार असत्य हो जाता है।

बर्क नाम का एक बहुत बड़ा इतिहासज्ञ विश्व-इतिहास लिख रहा था। और कोई पंद्रह वर्षों से लिख रहा था निरंतर। पंद्रह वर्षों का सारा जीवन उसने विश्व-इतिहास के लिखने में लगाया हुआ था। एक दिन दोपहर की बात है, वह इतिहास लिखने में लगा हुआ है और पीछे शोरगुल हुआ है, दरवाजा खोलकर वह पीछे गया। उसके मकान के बगल से गुजरने वाली सड़क पर झगड़ा हो गया है। एक आदमी की हत्या कर दी गई। बड़ी भीड़ है। सैकड़ों लोग इकट्ठे हैं, आखों देखे गवाह मौजूद हैं। और वह एक-एक आदमी से

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पूछता है कि क्या हुआ ? तो एक आदमी कुछ कहता है ! दूसरे से पूछता है, वह कुछ कहता है ! तीसरे से पूछता है, वह कुछ कहता है ! आखों देखे गवाह मौजूद हैं, लाश सामने पड़ी है, खून सड़क पर पड़ा हुआ है, अभी पुलिस के आने में देर है, हत्यारा पकड़ लिया गया है, लेकिन हर आदमी अलग-अलग बात कहता है ! किन्हीं दो आदमियों की बातों में कोई तालमेल नहीं कि हुआ क्या ! झगड़ा कैसे शुरू हुआ ? कोई हत्यारे को जिम्मेदार ठहरा रहा है, कोई जिसकी हत्या की गई, उसको जिम्मेदार ठहरा रहा है ! कोई कुछ कह रहा है,कोई कुछ कह रहा है ! वे सब आंखें देखे गवाह हैं !

बर्क खूब हंसने लगा। लोगों ने पूछा, आप किसलिए हंस रहे हैं ? आदमी की हत्या हो गई ! उसने कहा, मैं किसी और कारण से हंस रहा हूं। अंदर आया और वह पंद्रह वर्षों की जो मेहनत थी, उसमें आग लगा दी—वह जो विश्व-इतिहास लिख रहा था। और अपनी डायरी में लिखा कि मैं हजारों साल पहले की घटनाओं पर इतिहास लिख रहा हूं, मेरे घर के पीछे एक घटना घटती है, जिसमें चश्मदीद गवाह मौजूद हैं, फिर भी किसी का वक्तव्य मेल नहीं खाता, तो हजार-हजार साल पहले जो घटनाएं घटी हैं, उनके लिए किस हिसाब से हम मानें कि क्या हुआ, क्या नहीं हुआ ? किसको मानें ? कौन गवाही है ? कौन ठीक है, कौन गलत है, कहना मुश्किल है। बर्क ने लिखा कि इतिहास भी एक कल्पना मालूम पड़ती है, तथ्य नहीं।

इतिहास भी एक कल्पना हो सकती है, अगर हमने बहुत ऊपर से पकड़ने की कोशिश की, और कल्पना भी सत्य हो सकती है, अगर हमने बहुत भीतर से पकड़ने की कोशिश की। सवाल ऑब्जेक्टिव, वस्तुगत नहीं है, सवाल सदा सब्जेक्टिव है।

तो महत्त्वपूर्ण महावीर उतने ही हैं, जितना महावीर को देखने वाला है। और वह वही देख पाएगा, जो वह देख सकता है। क्या हम महावीर को अपने भीतर लेकर जी सकते हैं ? जैसे एक मां अपने पेट में एक बच्चे को लेकर जीती है, क्या हम···? और जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम अपने भीतर लेकर जीने लगते हैं। उस जीने से जो निखार आता है, उसमें हमारा भी हाथ होता है। उसमें महावीर भी होते हैं, और हम भी होते हैं। यह एक गहरा इन्वाल्वमेंट है। यह उतना ही गहरा है, जैसे कि जब आप रास्ते के किनारे लगे हुए फूल को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देखकर कहते हैं, बहुत सुंदर ! तो आप सिर्फ फूल के बाबत ही नहीं कह रहे हैं, आप अपने बाबत भी कह रहे हैं। क्योंकि पड़ोस से, हो सकता है, एक आदमी निकले और कहे, क्या सुंदर है इसमें ? इसमें कुछ भी तो सुंदर नहीं है। साधारण-सा फूल है, घास का फूल है। वह आदमी भी जो कह रहा है, वह भी उसी फूल के संबंध में कह रहा है। रात एक भूखा आदमी है, आकाश की तरफ देखता है, चांद उसे रोटी की तरह मालूम पड़ता है, जैसे रोटी तैर रही हो आकाश में !

हेनरिक हेन एक जर्मन कवि था, वह तीन दिन तक भूखा भटक गया है जंगल में। पूर्णिमा का चांद निकला तो उसने कहा, आश्चर्य ! अब तक मुझे सदा चांद में स्त्रियों के चेहरे दिखाई पड़ते थे, और पहली दफे मुझे रोटी दिखाई पड़ी। मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि चांद भी रोटी जैसा दिखाई पड़ सकता है। लेकिन भूखे आदमी को दिखाई पड़ सकता है। तीन दिन के भूखे आदमी को चांद ऐसा लगा, जैसे रोटी आकाश में तैर रही है !

आकाश में रोटी तैर रही है, इसमें चांद तो है ही—इसमें एक भूखे आदमी की नजर भी है। एक फूल सुंदर है, इसमें फूल तो है ही, एक एस्थेटिक, एक सौंदर्यबोध वाले व्यक्ति की नजर भी सम्मिलित है। कोई फूल इतना सुंदर नहीं है अकेले में, जितना आंख उसे सुंदर बना देती है और प्रेम करने वाला उसे सुंदर बना देता है ; और ऐसी चीजें खोल देता है उसमें, जो शायद साधारण किनारे से गुजरने वाले को कभी भी दिखाई न पड़ी हों।

तो मैंने जो भी कहा है, वह महावीर के संबंध में ही है, लेकिन मैं उसमें मौजूद हूं। और जो हम दोनों को समझने की कोशिश करेगा, वही मेरी बात को समझ सकता है। जो सिर्फ मुझे समझता है, वह भी नहीं समझ पाएगा; जो सिर्फ महावीर को शास्त्र से समझता है, वह भी नहीं समझ पाएगा। यहां से व्यक्ति···जैसे दो नदियां संगम पर आकर घुल-मिल जाएं और तय करना मुश्किल हो जाए कि कौन-सा पानी किसका है—ऐसा ही मिलना हुआ है। और मैं मानता हूं कि ऐसा मिलना हो, तो ही एक नदी दूसरी नदी को पहचान पाती है, नहीं तो पहचान भी नहीं पाती।

और इसलिए इस निवेदन के साथ, कि महावीर की जड़ प्रतिमा को, मृत प्रतिमा को, शब्दों से निर्मित रूपरेखा को मैंने बिलकुल ही अलग छोड़ दिया है। मैंने तो एक जीवित महावीर को पकड़ने की कोशिश की है। और यह कोशिश

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तभी संभव है, जब हम इतने गहरे में प्रेम दे सकें, कि हमारे प्राण और उनके प्राण से एक हो जाएं तो ही वे पुनरुज्जीवित हो सकते हैं। और प्रत्येक बार जब भी कोई व्यक्ति कृष्ण, बुद्ध, महावीर के निकट पहुंचेगा, तब उसे ऐसे ही पहुंचना पड़ेगा। उसे फिर से प्राण डाल देने पड़ेंगे। अपने ही प्राण उंडेल देगा तो ही उसे दिखाई पड़ सकेगा कि क्या है। लेकिन फिर भी इस बात को निरंतर ध्यान में रखने की जरूरत है कि यह एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है। एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है—दूसरे व्यक्ति को इतनी ही परम स्वतंत्रता है कि और तरह से देख सके। और इन दोनों में न कोई विरोध की बात है, न कोई संघर्ष की बात है, न किसी विवाद की कोई जरूरत है।

आप पूछते हैं कि जो मैंने कहा, उसके लिए शास्त्रों के सिवाय आधार भी क्या हो सकता है? और मैं शास्त्रों के आधार को पूर्णतया निषेध करता हूं।

फकीर था एक बोकोजू। बुद्ध के संबंध में बहुत-सी बातें उसने कही हैं, जो शास्त्रों में नहीं हैं! और बहुत-से ऐसे वक्तव्य भी दिए हैं, जिनका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है! पंडित उसके पास आए शास्त्र लेकर और कहे कि कहां हैं बुद्ध की ये बातें? शास्त्रों में नहीं हैं। तो बोकोजू ने कहा, जोड़ लेना! पर उन्होंने कहा बुद्ध ने यह कहा ही नहीं है। तो बोकोजू ने कहा, बुद्ध मिलें तो उनसे कह देना कि बोकोजू ऐसा कहता था कि कहा है! और न कहा हो तो कह देंगे!

यह बोकोजू अद्भुत आदमी रहा होगा! और बुद्ध से कहलवाने की यह हिम्मत किसी बड़े गहरे प्रेम से ही आ सकती है। यह कोई साधारण हिम्मत नहीं है! यह उतने गहरे प्रेम से आ सकती है कि बुद्ध को ही सुधार करना पड़े।

एक और घटना मुझे स्मरण आती है। एक संत रामकथा लिखते थे। और वे इतनी अद्भुत रामकथा लिख रहे थे—और रोज सांझ रामकथा पढ़कर सुनाते थे—कि कहानी यह है कि हनुमान तक उत्सुक हो गए उस कथा को सुनने आने के लिए! अब हनुमान का तो सब देखा हुआ था, लेकिन कथा इतनी रसपूर्ण हो रही थी कि हनुमान भी छुपकर उस सभा में सुनते थे!

वह जगह आई, जहां हनुमान अशोक-वाटिका में गए सीता से मिलने। तो उस संत ने कहा कि हनुमान गए अशोक-वाटिका में, वहां सफेद ही सफेद फूल खिले थे। हनुमान के बर्दाश्त के बाहर हो गया, क्योंकि फूल सब लाल थे। हनुमान ने खुद देखा था। और यह आदमी तो देखा भी नहीं था, हजारों साल

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बाद कहानी कह रहा है। तो हनुमान ने खड़े होकर कहा, माफ करिए, उसमें जरा सुधार कर लें। फूल सफद नहीं, लाल थे। उस आदमी ने कहा कि फूल सफेद ही थे। तब हनुमान ने कहा कि फिर मुझे स्पष्ट करना पड़ेगा, मैं खुद हनुमान हूं! हनुमान अपने रूप में प्रकट हुए! मैं खुद हनुमान हूं और मैं गया था! अब तो सुधार कर लीजिए। उसने कहा कि नहीं, तुम्हीं सुधार कर लेना, फूल सफेद ही थे। हनुमान ने कहा, यह तो हद हो गई! हजारों साल बाद तुम कथा कह रहे हो और मैं मौजूद था, मैं खुद गया था! मेरी तुम कथा कहते हो और मुझे इनकार करते हो! उस आदमी ने कहा, लेकिन फूल सफेद ही थे, तुम सुधार कर लेना अपनी स्मृति में। तो हनुमान तो बहुत नाराज हुए!

कथा कहती है कि उस संत को लेकर वे राम के पास गए और राम से उन्होंने कहा कि हद हो गई! यह आदमी की जिद देखो! यह मुझमें सुधार करवाता है, मेरी स्मृति में फूल बिलकुल सुर्ख लाल थे, बगिया में जो खिले थे। राम ने कहा कि वे संत ही ठीक कहते हैं। फूल सफेद ही थे, तुम सुधार कर लेना। तो हनुमान ने कहा, हद हो गई! तो राम ने कहा, तुम इतने क्रोध में थे कि आखें तुम्हारी खून से भरी थीं। फूल लाल दिखाई पड़े होंगे! फूल सफेद थे। वे ठीक कहते हैं।

बहुत बार देखा हो तो भी जरूरी नहीं कि सच हो। और बहुत बार न देखा हो, तो भी हो सकता है, सच हो! सच बड़ी रहस्यपूर्ण बात है।

अभी मैं एक नगरी में था, एक बौद्ध भिक्षु मुझे मिलने आए। कुछ बात चलती थी तो मैंने कहा, बुद्ध के सामने एक व्यक्ति बैठा हुआ था, वह पैर का अंगूठा हिला रहा था। बुद्ध बोल रहे थे। तो बुद्ध ने उससे कहा कि मित्र, तेरे पैर का अंगूठा क्यों हिलता है? तो उस आदमी ने पैर का अंगूठा रोक लिया। उसने कहा, अपनी बात आप जारी रखिए, फिजूल की बातों से क्या मतलब? पर बुद्ध ने कहा कि नहीं, मैं पीछे बात शुरू करूंगा। पहले पता चल जाए कि पैर का अंगूठा क्यों हिलता है? तो उस आदमी ने कहा, मुझे पता ही नहीं था, मैं क्या बताऊं? क्यों हिलता था, यह मुझे भी पता नहीं है! तो बुद्ध ने कहा, तू बड़ा पागल आदमी है। तेरा अंगूठा है, हिलता है, और तुझे पता नहीं! अपने अंगूठे का होश रख। और जब शरीर का होश नहीं रखेगा तो आत्मा का होश तो बहुत दूर की बात है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो उस बौद्ध भिक्षु ने कहा, लेकिन यह किस ग्रंथ में लिखा हुआ है ? मैंने कहा, मुझे पता नहीं। मुझे पता नहीं, कहां लिखा हुआ है। यह भी एक फकीर हुआ है चीन में, वह यह बात कहता था। लेकिन उन्होंने कहा, लेकिन कहीं लिखा हुआ नहीं है किसी ग्रंथ में ! मैं तो सारे ग्रंथों का पाठी हूं, उनमें कहीं यह उल्लेख नहीं है। हो सकता है, न हो। लेकिन जिस फकीर ने कहा है, वह उतना ही अधिकार रखता है जितना बुद्ध। और न भी घटी हो घटना यह, तो घटनी चाहिए थी ! इसलिए मैंने उससे कहा कि न भी घटी हो तो कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन घटनी चाहिए थी। उस बौद्ध भिक्षु ने कहा, यह बात मैं मान सकता हूं। घटनी चाहिए थी। बात तो ऐसी है कि घटनी चाहिए थी। इससे क्या फर्क पड़ता है कि घटी कि नहीं घटी ? यह भी बहुत मूल्य का नहीं है कि कौन-सी घटना घटती है कि नहीं घटती है। बहुत मूल्य का यह है कि वह घटना क्या कहती है !

बुद्ध ने बहुत मौकों पर लोगों को यह बात कही होगी कि जो शरीर के प्रति नहीं जागा हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जागेगा ?

और बहुत बार लोगों को उन्होंने टोका उनकी मूर्च्छा में। अब यह दूसरी बात है कि घटना कैसी घटी होगी। यह बहुत गौण बात है। महत्त्वपूर्ण यह है कि बुद्ध जागरण के लिए निरंतर आग्रह करते हैं। और जो शरीर के प्रति सोया हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जागेगा, यह भी कहते हैं। और बहुत बार लोगों की मूर्च्छा में उनको पकड़ लेते हैं कि देखो, तुम बिलकुल सोए थे। और सोए आदमी को बताना पड़ता है कि यह रही नींद ! तभी टूट सकती है। वह घटना बिलकुल सच है, ऐतिहासिक न हो तो भी। और ऐतिहासिक होने से भी क्या होता है ?

इतिहास भी कथा है।

इतिहास भी क्या है ? जहां घटनाएं पर्दे पर साकार हो जाती हैं, इतिहास बन जाता है।

वाल्मीकि ने कथा लिखी और फिर राम को कथा के हिसाब से होना पड़ा। वह जो कथा थी, फिर कोई उपाय न था, क्योंकि वाल्मीकि ने लिख दी थी, फिर राम को वैसा होना पड़ा ! वह सब करना पड़ा, जो वाल्मीकि ने लिख दिया !

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और यह बड़ी अद्भुत बात है। वह इतनी अद्भुत बात है कि इसे सोचना भी हैरान करने वाला है। राम हो जाएं, फिर कथा लिखी जाए, यह समझ में आता है। लेकिन वाल्मीकि कथा लिख दें और फिर राम को होना पड़े! और सब वैसा ही करना पड़े, जो वाल्मीकि ने लिख दिया! क्योंकि मुश्किल है, वाल्मीकि ने लिख दिया था, अब वैसा करना ही पड़ेगा!

तो वह जो उस बोकोजू ने कहा कि कह देना बुद्ध को, कि फिर वह यह कह दें, अगर न कहा हो तो कह दें! तो वह उसी अधिकार से कह रहा है, जिस अधिकार से वाल्मीकि कथा लिखते हैं।

इतिहास पीछे लिखा जाता है, सत्य पहले भी लिखा जा सकता है। क्योंकि सत्य का मतलब है, जिससे अन्यथा हो ही नहीं सकता।

इतिहास का मतलब है, जैसा हुआ; लेकिन इससे अन्यथा हो सकता था। इन सारी बातों पर ख़याल करने की जरूरत है! इतिहास का मतलब है, जैसा हुआ, लेकिन अन्यथा हो सकता था, कोई बाधा नहीं है इसमें।

सत्य का मतलब है: जैसा हो सकता है, जैसा हो सकता था, जिससे अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

महावीर, बुद्ध, जीसस इन जैसे लोगों के प्रति इतिहास की फिक्र नहीं करनी चाहिए। इतिहास इतनी मोटी बुद्धि की बात है कि हो सकता है, ये बारीक लोग उससे निकल ही जाएं, पकड़ में न आएं। उन्हें तो किसी और आंख से देखने की जरूरत है—सत्य की आंख से। और उस आंख से देखने पर बहुत-सी बातें उद्घाटित होंगी, जो शायद इतिहास नहीं पकड़ पाया है।

और इसलिए मैंने जो कहा है, और आगे भी कृष्ण, बुद्ध, कन्फ्यूशियस, लाओत्से और क्राइस्ट के संबंध में जो कहूंगा, उसका ऐतिहासिक होने से कोई संबंध नहीं है। इसलिए जिनकी ऐतिहासिक बुद्धि हो, उनसे कोई झगड़ा ही नहीं है, उनसे कोई विवाद नहीं है।

जगत को एक कवि की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। और तब जगत इतने रहस्य खोल देता है, जितने इतिहास की दृष्टि से देखने वालों के सामने उसने कभी भी नहीं खोले। काव्य का अपना विजन है, अपना दर्शन है। और चूंकि वह ज्यादा प्रेम से भरा है, इसलिए ज्यादा सत्य के निकट है। शास्त्र उसके मेल में भी पड़ सकते हैं, बेमेल भी हो सकते हैं। और चूंकि हमें यह ख्याल में नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रहा है, इसलिए जिन लोगों ने अतीत में इन सारे महापुरुषों की गाथाएं लिखी हैं, उनको भी समझना मुश्किल हो गया है। क्योंकि उन गाथाओं को लिखते वक्त भी सत्य पर दृष्टि ज्यादा थी, तथ्य पर बहुत कम। तथ्य तो रोज बदल जाते हैं, सत्य कभी नहीं बदलता है। इतिहास तथ्यों का लेखा-जोखा रखता है। सत्य का लेखा-जोखा कौन रखेगा ?

इसलिए जिनकी सत्य की वहुत फिक्र थी, उन्होंने इतिहास लिखा तक नहीं। जिनकी सत्य की बहुत फिक्र थी, उन्होंने इतिहास भी नहीं लिखा। यह बात बेमानी थी कि कौन आदमी कब पैदा हुआ, किस तारीख में, किस तिथि में। यह बात बेमानी थी, कौन आदमी कब मरा। यह बात भी अर्थहीन थी कि कौन आदमी कब उठा, कब चला, कब क्या किया ?

महत्त्वपूर्ण तो वह अंतर घटना थी, जिसने उसे सत्य के निकट और सूर्य के निकट पहुंचा दिया। उस घटना को प्रकट कर सकें, ऐसी पूरी की पूरी व्यवस्था की। वह व्यवस्था हो सकती है। बिलकुल ही काल्पनिक है, तो भी कठिनाई नहीं है। और हो सकता है कि इतिहास बिलकुल ही वास्तविक है, तो भी व्यर्थ हो सकता है।

इतिहास तो यह है कि जीसस एक बढ़ई के बेटे थे। और सत्य जिन्होंने देखा, उन्होंने कहा कि वे ईश्वर के पुत्र हैं !

तथ्य तो यह है कि एक बढ़ई के वेटे हैं। तथ्य यही है। इतिहास खोजने जाएगा तो बढ़ई के बेटे से ज्यादा क्या खोज पाएगा ! लेकिन जो जीसस को देखा, उन्होंने जाना कि वे परमात्मा के बेटे हैं। यह किसी और आंख से देखी गई बात है। और इन दोनों में तालमेल नहीं भी हो सकता है। क्योंकि बढ़ई का बेटा और ईश्वर के बेटे में कितना फर्क है। इससे ज्यादा फर्क और क्या हो सकता है ?

लेकिन फिर भी मैं कहूंगा कि जिन्होंने बढ़ई का बेटा ही देखा, वे पहचान नहीं पाए उस आदमी को, जो बढ़ई के बेटे से आया था, लेकिन बढ़ई का बेटा नहीं था। जिसका आना और बड़े जगत से था। और वह नहीं पहचान पाया कोई भी !

क्योंकि जब जीसस ने कहा कि सारा राज्य मेरा है, और जो मेरे साथ चलते हैं, वे साम्राज्य के मालिक हो जाएंगे, तो जो तथ्यों को जानते थे, वे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चिंतित हो गए। उन्होंने कहा, मालूम होता है जीसस कोई क्रांति, कोई बगावत करना चाहता है ! और जो सच में राजा है, उस पर हावी होना चाहता है। और जब जीसस को पकड़ा गया और उनको कांटे का ताज पहनाया गया और उनसे कहा—पूछा गया कि क्या तुम राजा हो ? तो उसने कहा, हां ! हम साम्राज्य··· इन सबको साम्राज्य जिताने के लिए ले जा रहे हैं—किंगडम ऑफ गॉड, ईश्वर का राज्य ! लेकिन फिर भी समझा नहीं जा सका कि वह आदमी क्या कह रहा है ! क्या तुम सम्राट होने का दावा करते हो ? तो उसने कहा, हां, क्योंकि मैं सम्राट हूं !

लेकिन यह बात बिलकुल सरासर असत्य थी। क्योंकि सम्राट तो जीसस नहीं थे—गरीब आदमी का बेटा था। पागल हो गया था, ऐसा मालूम होता है। उस लाख आदमियों की भीड़ में, जो सूली देने इकट्ठे हुए थे ; दस-पांच ही थे, जो पहचान पाए कि हां, वह सम्राट है ! बाकी ने तो कहा कि खतम करो इस आदमी को, यह कैसी झूठी बातें बोल रहा है !

मरते वक्त पायलट ने जो गवर्नर था, वायसराय था वहां का, जिसके सामने सूली की आज्ञा दी गई, जिसकी आज्ञा से सूली लगी—पायलट ने मरते वक्त जीसस के पास खड़े होकर पूछा, ह्वाट इज ट्रूथ ? सत्य क्या है ?

जीसस चुप रह गए ! कुछ उत्तर नहीं दिया !

सूली हो गई। प्रश्न वहीं खड़ा रह गया पायलट का : सत्य क्या है ? जीसस ने उत्तर क्यों नहीं दिया ?

उत्तर इसलिए नहीं दिया कि सत्य दिखाई पड़ता है या नहीं दिखाई पड़ता—पूछा नहीं जा सकता है।

तथ्य पूछे जा सकते हैं। तथ्य क्या है, ह्वाट इज दी फैक्ट ? बताया जा सकता है, कि यह तथ्य है।

जब कोई पूछे सत्य क्या है ? तो बताया नहीं जा सकता, देखा जा सकता है।

तो जीसस चुपचाप खड़े रह गए कि देख लो, अगर दिखाई पड़ जाए तो तुम्हें पता चल जाएगा कि सत्य क्या है—यह आदमी सम्राट है या नहीं ! और अगर तथ्य की बात ही पूछते हो तो फिर ठीक है, यह आदमी बढ़ई का लड़का है और सूली पर लटका देने योग्य है; क्योंकि इसका दिमाग खराब हो गया है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और अपने को सम्राट घोषित कर रहा है !

इधर मैं निरंतर इस संबंध में चिंतन करता रहा हूं कि तथ्य को पकड़ने वाली बुद्धि सत्य को पकड़ सकती है या नहीं ? और मुझे लगता है कि नहीं पकड़ सकती। सत्य को पकड़ने के लिए और गहरी आंख चाहिए, जो तथ्यों के भीतर उतर जाती है। और तब ऐसे सत्य हाथ लगते हैं, जिनकी कि तथ्य कोई खबर नहीं दे पाता। इसी दृष्टि से यह सारी बात की है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भगवान श्री रजनीश
का उपलब्ध हिन्दी साहित्य

		मूल्य रुपयों में (डीलक्स संस्करण)	मूल्य रुपयों में (सामान्य संस्करण)
उपनिषद			
सर्वसार उपनिषद			४०.००
कैवल्य उपनिषद		६०.००	४०.००
अध्यात्म उपनिषद		७५.००	५०.००
कठोपनिषद		७०.००	—
गीता-दर्शन (कृष्ण)			
अध्याय (१,२) (४,५) (६) (७,८) (६,१०)	प्रत्येक	६५.००	—
अध्याय (३)	—	—	३०.००
अध्याय (८)	—	—	२५.००
अध्याय (१५,१६)	—	६०.००	४०.००
अध्याय (१७)	—	—	४०.००
अध्याय (१०)	—	५०.००	३५.००
अध्याय (१३,१४)	प्रत्येक	—	५०.००
अध्याय (१८)	—	१००.००	६०.००
महागीता (अष्टावक्र)			
भाग (२) (३) (४) (५)	प्रत्येक	—	३५.००
भाग (६) (७) (८) (६)	प्रत्येक	५०.००	—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महावीर-वाणी (महावीर)			
भाग (१) (२) पेपरबैक	प्रत्येक	—	२५.००
भाग (३)	—	—	५०.००
जिन-सूत्र (महावीर)			
भाग (१) (२)	प्रत्येक	८०.००	५०.००
भाग (३)	—	—	५०.००
भाग (४)	—	६०.००	—
महावीर या महाविनाश		—	१५.००
एस धम्मो सनंतनो (बुद्ध)			
भाग (१) (३)	प्रत्येक	८०.००	५०.००
भाग (२)	—	—	५०.००
भाग (४) (५) (६)	प्रत्येक	७५.००	—
ताओ उपनिषद (लाओत्से)			
भाग (१)		—	४०.००
भाग (३)		७५.००	४५.००
भाग (४)		७०.००	—
भाग (५) (६)	प्रत्येक	७५.००	—
बिन बाती बिन तेल (झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां)		—	५०.००
सहज समाधि भली "		—	५०.००
दिया तले अन्धेरा "		७५.००	५०.००
भक्ति-सूत्र (नारद)			
भाग (१)		—	३०.००
भाग (२)		५०.००	३०.००
भज गोविन्दम् (आदि शंकराचार्य)		—	३०.००
संत वाणी			
सुनो भाई साधो (कबीर)		५०.००	३०.००
कहै कबीर दिवाना (कबीर)		—	३०.००
मेरा मुझमें कुछ नहीं (कबीर)		५०.००	३०.००

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कहै कबीर मैं पूरा पाया (कबीर)	५०.००	३०.००
होनी होय सो होय (कबीर)	५०.००	—
पिव-पिव लागी प्यास (दादू)	५०.००	३०.००
सबै सयाने एक मत (दादू)	—	३०.००
अकथ कहानी प्रेम की (फरीद)	५०.००	—
बिन धन परत फुहार (सहजोबाई)	—	३०.००
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)	५०.००	३०.००
मैंने राम रतन धन पायो (मीराबाई)	—	३०.००
झुक आई बदरिया सावन की (मीराबाई)	५०.००	—
कन थोरे कांकर घने (मलूकदास)	—	३०.००
रामदुवारे जो मरे (मलूकदास)	५०.००	—
कानों सुनी सो झूठ सब (दरिया)	५०.००	—
अमी झरत बिगसत कंवल (दरिया)	६०.००	—
अजहूं चेत गंवार (पलटू)	७०.००	—
सपना यह संसार (पलटू)	७५.००	—
काहे होत अधीर (पलटू)	८०.००	—
नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)	५०.००	—
अथातो भक्तिजिज्ञासा (शांडिल्य)		
भाग (१) (२) प्रत्येक	७०.००	—
जस पनिहार धरे सिर सागर (धरमदास)	५०.००	—
का सोवे दिन रैन (धरमदास)	५०.००	—
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)	६५.००	—
हरि बोलौ हरि बोल (सुन्दरदास)	५०.००	—
ज्योति से ज्योति जले (सुन्दरदास)	६५.००	—
नाम सुमिर मन बावरे (जगजीवन)	५०.००	—
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी (जगजीवन)	५०.००	—
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)	५०.००	—
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)	७५.००	—
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)	७५.००	—
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)	५०.००	—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियादास, बिहारवाले)	६०.००	—
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)	५०.००	—
हंसा तो मोती चुगैं (लाल)	५०.००	—
गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)	५०.००	—
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)	५०.००	—
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)	८०.००	—

प्रश्नोत्तर

नहिं राम बिन ठांव	६०.००	४०.००
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन	६०.००	—
उत्सव आमार जाति, आनन्द आमार गोत्र	५०.००	—
मृत्योमां अमृत गमय	५०.००	—
प्रीतम छबि नैनन बसी	६५.००	—
रहिमन धागा प्रेम का	६०.००	—
उड़ियो पंख पसार	५०.००	—
सुमिरन मेरा हरि करैं	५०.००	—
पिय को खोजन मैं चली	५०.००	—
साहेब मिल साहेब भये	६०.००	३०.००
जो बोलैं तो हरिकथा		३०.००
बहुरि न ऐसा दांव		३०.००
ज्यूं था त्यूं ठहराया	६५.००	३०.००
ज्यूं मछली बिन नीर		३०.००
दीपक बारा नाम का		३०.००
अनहद में बिसराम		३०.००
लगन महूरत झूठ सब		३०.००
सहज आसिकी नाहिं	—	३०.००
पीवत राम रस लगी खुमारी	—	२५.००
बहुतेरे हैं घाट	—	६०.००

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पेपरबैक प्रकाशन

नेति-नेति	—	२०.००
संभोग से समाधि की ओर	—	३०.००
भारत के जलते प्रश्न	—	२५.००
योग-दर्शन भाग १, २	—	२५.००
असतो मा सद्गमय	—	२५.००
मैं कहता आंखन देखी २	—	२५.००
देख कबीरा रोया	३०.००	—
शिक्षा में क्रांति	—	२५.००

पाकेटबुक्स प्रकाशन

तंत्र-सूत्र भाग : (१) (२) (३) (४) (५) (६) प्रत्येक	७.००
ध्यान-सूत्र	७.००
चेति सकै तो चेति	४.००
चल हंसा उस देस	४.००
कहा कहूं उस देस की	४.००
पंथ प्रेम को अटपटो	४.००
क्या सोवै तू बावरी	४.००
आत्म-पूजा उपनिषद भाग : (१) (२) (३) प्रत्येक	५.००
माटी कहै कुम्हार सूं	५.००
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं	४.००
रजनीश ध्यान योग	४.००
रजनीश ध्यान दर्शन	४.००
नये समाज की खोज	४.००
जीवन ही है प्रभु	४.००
योग-दर्शन भाग (५) (६) (७) (८) प्रत्येक	५.००

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सभी आर्डरों पर पैकिंग और डाक-व्यय अतिरिक्त लगेगा। पुस्तकें
पी. पी. द्वारा भी भेजी जाती है। निवेदन है कि व्ही. पी. पी. आ
के साथ रु० ५०% धनराशि एडवांस भेजें। सभी धनराशि "रजनीशधा
के नाम पर बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर द्वारा भेजें।

रजनीशधाम :

१७, कोरेगाँव पार्क, पूना-४११००१ (महाराष्ट्र)
फोन : ६०९६३, ६०९५३, ६०९५४,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.